



दुराग्रह, बेपरवाही व शिरजोरी के त्रिदोष हैं
समाज बीमार होरही है चिकित्सा करके औपधी शोध
नहीं तो बीमारी असाध्य होजावेगी ॥

-लोकमान्य तिलक महाराज



ग्रन्थार्पण. ।

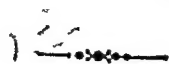


श्रीयुत् सेठजी वाहादूरमलजी वांठीया-भीनासरवाला
हिंदी अनुवाद लेखक पायमें स्वीकारते हैं.



श्रीयुक् सेठजी बहादुरमलजी वाठिया, भानासर
इस पुस्तक को लागत मात्र से कम मूल्य में देने
के लिये दो हजार रुपये देनेवाले दावो गृहस्थ

समर्पण ॥



श्री सेठजी बहादुरमलजी बांठिया,

भीनासर

चरित्र नायक महात्मा पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज की आपने अनुकरणीय सेवा की थी। धर्मज्ञान की अभिवृद्धि के लिये आप आगम व पुस्तकोंकी प्रभा वना विशाल हृदय से कर रहे हो, इस पुस्तककी लागत से बहुत कम में प्रचार करने के लिये आपने रु०२,०००) वेनाभांगे मेरे पास भेजकर मेरा उत्साह को प्रफुलित करा है।

मैं आपकी समाज सेवाओं के आंशिक स्मरण के पलक्ष्य में यह हिन्दी संस्करण आपके करकमलों में आदर सप्रेम समर्पण कर कृतकार्य होता हूँ।

श्रीसंघका सेवक

जौहरी दुर्लभजी

जेय कीने पिए मोए लदे विपिटि कुव्वर् ।

साहीये चयई भाए से हं चाइत्ती वुषइ ॥

11-10-1964

‘धी’ दूरवैकालिक मूत्र

यदि तुम अपना घन गुमा चुके हो तो तुम यह समझ लो कि, तुम्हारा कुछ भी गुमानहीं, अगर तुम अपना स्वास्थ्य खो चुके हो तो तुम जानलो कि तुमरा कुछ खोगया है और कदाचित् तुमने अपना चारित्र्य नष्ट कर दिया है तो भली भाँति जान लो कि तुम अपना सर्वस्व नष्ट कर चुके हो ।

-एक विद्वान्

Lives of great men, all remind us,
We can make our lives sublime, ¹

-Long fellow.

ज्ञान्त्यैवाक्षेपत्वा चरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दपयन्तः

सत्पुरुष तो निन्दा भरे कटुवचन बोलने वाले दुष्टों के अपनी समाध्यास की दूषित-दण्डित-लज्जित कर देते हैं ।

यह महात्माओं का वृत्त है मत्प्रेरक सज्जन को होना ही चाहिये ।

हिन्दी अनुवाद ।

श्री गुमानबाई गोलिबा की ओर से सादर नैट ।

विचार विवेचन अपनी निज की भाषा में अच्छी तरह हो सकता है । भाषान्तर करने से तो भाषा की असली खूबी में अंतर रह जाता है । गुजराती से इसका हिन्दी अनुवाद कराया गया है अगर हिन्दी में ही इसकी स्वतन्त्र रचना होती तो विशेष आकर्षक होती । मैं अपनी शक्ति अनुसार जैसा कर सका वैसा पाठकों के भेट करता हूँ । अनुवादक की त्रुटी के लिये मूल लेखक जिम्मेवार नहीं हो सकता ।

ये अनुवाद अनुभवी आचकों के पास भेजा गया था, उन महानुभावों की सलाह अनुसार कम-ज्यादा किया गया है । उन महानुभावों का आभार मानते हुवे, सुद्ध पाठकों की सेवा में नम्र अर्ज करता हूँ कि, हिन्दी की दूसरी आवृत्ति शीघ्र ही निकालनी पड़ेगी, इसलिये इस अनुवाद में कम वेशी करने अथवा सुधारने के लिये जो सूचनाएं मिलेंगी उनका सादर स्वीकार किया जावेगा ।

जिन महात्मा का यह जीवन चरित्र है उनका मुख्य आदर्श गुणग्राहकता था, पुस्तक पढने वाले सब गुणग्राहक बुद्धि से ग्रन्थ का अवलोकन करेंगे तो मेरा श्रम सार्थक होगा और लेखक का शुभ आशय समझ में आवेगा ।

तन्दुरस्त मनुष्य शक्कर खाता है कोई नमकीन सोडा पीता है लेकिन बीमार को तो वैद्यराजजी कुनाइन जैसी कड़वी ओपधी

देते हैं उससे उसका आशय केवल यामारी को दूर करना होता है इस जीवन चरित्र में से अपनी २ प्रष्टि अनुसार मिष्टान्न, नमस्कार व कुनाइन लेने का अधिकार पाठकों को है । अमृत्य ओषधियों का यह भंडार है, शारीरिक मानसिक सब रोगों के लिये दवा मिलेगी समयाय से, हर्षादिन दृष्टि से देखने में निर्मल चक्षुओं को अद्भुत दृश्य मिलेगा ।

सयम सरिता का वेग शिथिल होने से थड़ा में भी शिथिलता आजाती है, परिणाम में धातुओं को उदामानता होजाती है । चतुर्विध सब का, भविष्य धेय के लिये इस जीवन चरित्र में सयम शुद्ध के लिये जोर दिया है और पुष्टि के लिये पत्रि मूर्खों के सिवाय अनुभवियों के विवेचन उद्धृत करके साधु जीवन की जड़ मजबूत की है । जिस महारामा का जीवन ही चारित्र का आदर्श नमूना था, जिन्होंने चारित्र के लिये रात्रि दिवस उजागर किया था जिनके रंग में सयम श्रोणित रहना था उनके जीवन चरित्र में चारित्र के लिये जितना भी लिखा जाये उतना कम है

मैं साफ दिल से जाहिर करता हू कि चारित्र के लिये जो लिखा है वो समुच्चय ही लिखा है किसी खास व्यक्ति व समाज को अपने ऊपर घटाने की सकोच वृत्ति नहीं रखना चाहिये, बान्फ रन्स प्रकाश का ता० ३१ जुलाई का २० वें अंक में जाहिर कर चुका हू कि पूज्य श्री के जीवन चरित्र में किसी की निन्दा व आक्षेप कारक कुछ भी नहीं लिखा गया है अजमेर वगैरह स्थानों की सत्य घटनाओं में भी मेने शान्ति के लिये जीवन चरित्र में नहीं दी है सिर्फ चारित्र सरक्षण के लिए आगमोक्त आत्रानुसार ये विद्वानों

के वचनमृत उद्धृत किये हैं जो सब के लिये मान्य व हितकर है किसी खास व्यक्ति व समाज के लिए यह सामग्री नहीं है। गुण ग्राहक बुद्धि व कृतज्ञता की दृष्टि से शुभ व सत्य आशय समझ में आवेगा। निर्दोष केवलो हरिः ” और फिर भी पाठकों से अर्ज करता हूँ कि इतना खुलासा करने पर भी इस पुस्तक में कोई भी विषय लेख, वाक्य, शब्द आदि अराचि कर समझे तो उसकी सूचना अवश्य प्रदान करे। ताकि दूसरी आवृत्ति में उन सूचनाओं का अमल किया जावे।

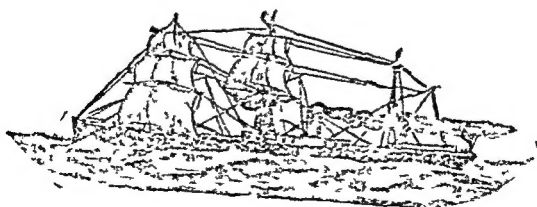
पक्षकारों को वहकाने के लिये जो विज्ञापन छपवाकर भेजे गये हैं वो विज्ञापन के प्रत्युत्तर में मेरा ऊपर का खुलाशा काफी है। गलत अर्थ से असत्य भ्रम होता है लेकिन जो सत्य है वो आखिर तक सत्य ही रहेगा। परमात्मा सबको सन्मति दे।

जैपुर

आपाड़ शुक्ला १५ सं० १९८० }

श्रीसंघ का सेवक

जौहरी दुर्लभजी



निवेदन ।

इस क्रान्तियुग में आर्यावर्त को ऊपर चढ़ाने के लिए सञ्चारिन्व्य के सबल आलम्बन की अधिक आवश्यकता है। जड़वाद के समय में उन्नति के शिखर तक नहीं पहुँचने के कारणों में भी चारिन्व्य की शिथिलता ही प्रधान है, इस परिस्थिति में अनुमती लोग यही राय देते हैं कि और सब उपायों को पीछे हटाकर सिर्फ प्रजा को चारित्र्य सम्पन्न बनाने की कोशिश को ही प्रधान मानना चाहिए। हर एक समय के महापुरुषों ने चारिन्व्य सुधारणा ही अपना मुख्य जीवनोद्देश्य मानी है, उत्कृष्ट चारिन्व्य वाले महात्मा ही जगत के लिए महान् आशीर्वाद रूप माने जाते हैं, वे जब जीते रहते हैं तब उनका चारिन्व्य ही जगत को कर्तव्य पाठ पढ़ाता है और प्रजा का नवीन उरसाह, नवजीवन, नवचेतन आदि उत्पन्न करता है, और उन महात्मा पुरुष की अनुपस्थिति में उनका जीवनचरित्र भी प्रजा में सात्विक प्राण का संचार करता है तथा प्रजा के उन्नति मार्ग में दीक्षा देता है।

वर्तमान काल में साहित्य के अन्दर गल्प, कादम्बरी, नाटक आदि की पुस्तक अधिक संख्या में निकल रही हैं, जिससे कि सत्पुरुषों का सच्चा जीवन वृत्तान्त बहुत कम प्राप्ति होता है, सच्चे जीवन वृत्तान्तों में कल्पनामय मनोरञ्जक वार्ता होती नहीं इसलिए

गल्प और कादम्बरी आदि के रसिकों में जीवनचरित्र का पूर्ण आकर्षण नहीं होता है, लेकिन तोभी गुणान्वेषी सत्पुरुष तो इन जीवन चरित्रों के आनन्द से स्वागत करते हैं ।

दूषरों का अनुकरण करना यह मनुष्यों का स्वभाव है इस-लिए प्रजा के सामने अगर आध्यात्मिक और पारमार्थिक जीवन धिताने वाले महापुरुषों का चरित्र रक्खा जाय तो इससे लाभ ही हो सकता है, चरित्र नायक के गुण ग्रहण करने का जनता को इच्छा होती है और अपने गुणों के साथ तुलना करके अच्छा बुरा समझ कर पाठक उत्तम होने की कोशिश करते हैं, इस रीति से जीवनचरित्र इसलोक से परलोक तक सुख के मार्ग दिखाने के लिए सच्चा शिक्षक का काम देता है। श्री महावीर के जगत् जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मिक शक्ति के विकास होकर देहाभिमान कम होता है और आत्मा की अनन्त शक्ति काभान होता है। श्रीरामचन्द्रजी के वृत्तान्त बांचकर एक पन्नीब्रत और एक रामराज्य क्योंकर होसकता है इसका खयाल होता है। मीष्म पितामह के वृत्तान्त से ब्रह्मचर्य की माहिमा समझ में आती है, राणा प्रतापसिंह के जीवनचरित्र से अटूटल धैर्य और दृढ़ प्रतिज्ञा पालन की शिक्षा प्राप्त होती है

अपने जीवन काल में समय २ पर कुछ न कुछ संकष्ट आता ही रहता है, उस वक्त कईबार अपनी बुद्धि अपने को सहायता नहीं

देती है, वह सहायता और वह बल उस संकष्ट को हटाने के पारसे महापुरुषों के जीवनचरित्र देता है, उस जीवनचरित्र में उस संकष्ट को हटाने के परिश्रम का, और बर्तन का दृष्टान्त अपने को अच्छी तरह हिम्मत बंधाता है । इस ससार सागर में जीवन जहाज को किस रास्ते से लेजाने से ठोकर नहीं लगकर सही सलामत पार पहुँच सकते हैं उस रास्ता को जीवनचरित्र बताता है । इस ससार रूपी घनमें से सही सलामत निकलने का मार्ग अनुकूल हो जाता है, तथा किस्म स्वप्न में वित्तको शान्ति देने वाला व अन्तःकरण को आनन्दित करने वाला आश्रम स्थान आवेगा इन सब बातों को बताने वाला जीवनचरित्र ही है ।

सामाजिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए महापुरुषों का जीवनचरित्र लिखन का प्रचार पूर्वापर से है, रामायण, महाभारत पुराण आदि में लिख हुए सबे अथवा कल्पित जीवनचरित्र में अपने बाहिर्य प्रदेश में उच्चपदवी प्राप्त किया है । जैनागम में भी चरितानुयोग, कथानुयोग को भी इतना ही महत्त्व देनेमें आता है, जीवनचरित्र अर्थात् अमुक व्यक्ति की जिंदगी में कपड़े बनी हुई वार्ता अथवा सत्त्व में कहे तो अमुक व्यक्ति के हृदय का प्रतिबिम्ब यही है मदान् पुरुष जगत् में स्थित स्थल पर एकही समय में प्रगट हो जाय, इस तरह पैदा नहीं होते हैं, जिनके मन, वचन शरीर में पुण्यरूपी अमृत भरा है और जिन्होंने कभी

कायिक, वाचिक, मानसिक पाप किया ही नहीं तथा जिन्होंने उपकार समूहों से संसार को उपकृत किया है, और जिन्होंने अणुपात्र भी दूसरों के गुणको पर्वत के समान मानकर निरन्तर मनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसे सत्पुरुष संसार में विरले ही होते हैं, ऐसे चारित्र्यवान मनुष्यों का जीवन, जीवनचरित्र तरीके लिखने का लायक है इस संसार में जन्म लेकर सिर्फ मौजमजा में, स्वार्थान्धता में, आलस्य में और जीवनकलह में जिसने अपना जीवन बिताया है उसका जीवनचरित्र कभी भी नहीं लिखा जाता है, ज्ञान चारित्र और भ्रेष्टगुणों से संपादित हुआ और मनुष्यों से प्रशंसित जो क्षणभर भी जीया है उन्हीको विचारशील जन इस संसार में जीवित कहते हैं ।

प्रबल वैराग्य, घोर तपश्चर्या, निश्चलमनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता, इत्यादि उत्तमोत्तम सद्गुणों से जीवन को परम आदेशरूप में परिणत कर भव्यजीवों के हृदयपट पर असाधारण असर उत्पन्न करनेवाले और अनेक राजा महाराजाओं को अहिंसा धर्मके अनुयायी बनानेवाले धर्मवीर सत्पुरुष पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज जैसे उत्तम रीति की आध्यात्मिक विभूति की जीवनचर्या संसार के सामने शुद्ध स्वरूप में उपस्थित करते हुए हमें परम आह्लाद होता है, श्री माहावीर भगवान की आक्षारूप भुवतारा के ऊपर निश्चल लक्ष्य रख कर अपने ध्येय पहुंचाने के लिए इनका

जीवन प्रवाह सतत बहता था, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक अधःपतन को देख कर इनकी आत्मा बहुत दुःख पाती थी, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक जीवन को पुनरुज्जीवन करने के लिए पूज्यभी दिन रात व्रतम में तत्पर रहते थे, वक्त पूज्यभी ने अपनी पवित्र जीवन चर्या से जगत के उधार का मार्ग दिखाया है जैन अथवा जैनतर समस्त प्रजा के ऊपर इनका समभाव था । और सभी के ऊपर उपदेश का समान ही प्रभाव पड़ता था बहुत से मुसलमान गृहस्थ इनको पीर के समान मानते थे, बड़े २ राजा महाराजा इनके चरण कमल पर शिर झुकाते थे, इसतरह के इस समय में एक आदर्श महा पुरुष की जीवन घटना हमें जिस प्रमाण में और जिस स्वरूप में मिली उसी प्रमाण में और उसी स्वरूप में हमने उस जीवन घटना को इस पुस्तक के अन्दर गूँथी है ।

महात्मा गांधीजी के समकालीन पूज्यभी १००८ श्रीकालग्री महाराज साहब की समाज सेवा जैनप्रजा में जादिर ही है, उन पूज्य भी का पवित्र नाम उच्च मे उच्च माननीयों में भी मान्य रहा है, निर्मल चारित्र्य और अवर्णनीय गुण प्रादक बुद्धि से पूज्यभी का विजय विजयी और निराभिमानी थे, शुद्ध संयम की आवश्यकता से आसन्नधाम के समान मानते थे ।

सामान्य व्यापारी कुत्त में पैदा होकर न तो था विशेष योग्य-विन्यास और न तो था विशेष अभ्यास, सीमी आप दिग्विजय

कर सके और राजा महाराजा भी आपके चरण कमल में शिर झुकाने में आनन्द मानने लगे । उन पूज्य श्री की गंभीरता, और वह विचारमय गहन मुखमुद्रा, अल्प किंतु मार्मिक वचन और विचार में विद्वान्त पर तथा कर्म क्षेत्र में साध्य सिद्धि पर, उनका अभेद्य, अखंड व अस्त्रलित प्रवाह और उनकी अपूर्व कार्यशक्ति, और उपद्रव से आए हुए असह्य दुःख में सन्तप्त होकर पार उतरा हुआ उनका विशुद्ध जीवन और उनका अगाध भक्तिभाव, तथा अपूर्व संघसेवा इन सब बातों का स्मरण जिन्हे पूरा २ होगा पूज्य श्री की जीवनी की भव्यता का यथार्थ ज्ञान उनकी ही समझ में आवेगा, समकालीन कार्यक्षेत्र में अमुक मतभेद हो जाने पर भी अभी भी जैन जगत एक स्वर से पूज्यश्री का गुणानुवाद करता है, यही बात उनके संपूर्ण गौरव का साक्षी है, इनका आत्मगौरव और इनका आदर्श पहचानने लायक शक्ति अपने में नहीं थी, इनकी तेज प्रभा में खड़ा रहने लायक पवित्रता अपने में नहीं थी, इनकी तपस्या की कीमत अपने को नहीं थी, उन पूज्यश्री के परलोकवास पर आंसू बहाना अथवा देश के शिरोमणि को पहचानना इस बात में अपने को बाधा आती है यह अपना हृत्भाग्य ऊपर आंसू बहाना चाहिए । ”

झारोंतरफ आविश्रान्त विहार कर और निराशाह्ला निकन्दन कर उत्साह के संचार करने में पूज्यश्री ने कुछ बाकी नहीं रखी

थी। धार्मिक शिथिलता और अज्ञानता के बदले श्रद्धा और धार्मिक ज्ञान की उत्पत्ति की व फरवाई है। कायरता के बदले चैतन्य फैलाये, सम्प्रदाय के कल्याण करने में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाये, शिथिलचारियों को अपने उग्र आचार और सयमों से मौन उपदेश देकर चिताये, ऐसा महात्मा पुरुष के जीवन आदर्श पढ़-चानने का अक्षेभाम्य प्राप्त हो इसको हमतो अपनी जिन्दगीमें एक अपूर्व लाभ समझते हैं।

चारित्र घटना के समुदाय मैंने खुद प्रवास किया है, इसका अलावा चारित्रनायक की जन्मभूमि तथा जज्ञज्ञहा विशेष आवागमन रहा, वहा वहा मैंने अगन सहायकों को भेजे, सभी घटना समूहा को संगूह करने नायक भम बठाये इसी लिये पुस्तक को प्रसिद्ध होने में कल्पना से बाहर विलम्ब हुआ है। प्रिय रक्षियाटेकरी की मुलाकात हमारे आर्टिस्ट मित्र. मि तलसानियाजीने करके छायाचित्र तैयार किया है, कल्पित कथा से तथा असत्य घटनाओं से दूर रहने की पूर्ण कौशीस की गई है, चारोंतरफ किरकर देखा, समझा, सुना, खोजा वन्ही सभोंका यह संग्रह है, पाठक इस चोच के समान खारप्रदण कर लेंगे।

व्यावर निवासी गाई मोतीबालजी राकाने चरित्र निखरने का
 - - - - - निम्न कवि निम्न कवि निम्न कवि निम्न कवि निम्न कवि

लेकिन इसी विषयमें वे हमारे प्रयास को देखकर वे भाई साहब ने अपना संग्रह हमें दे दिया और हमारे कार्य में सहानुभूति दिखाई, उनकी इस सहृदयता ऊपर कृतज्ञता प्रगट करते हमें हर्ष होता है।

इस कार्यमें भाई श्री मखेरचन्द जादवजी कामदार की हमें सहायता नहीं मिलती तो इस कार्य की सफलता शायदही होती, वे भाई शरीर तथा परिवार की परवाह नहीं करते हमें दी हुई सहायता की प्रतिज्ञा को पालने में और इस चरित्र को आकर्षक बनाने में जो आत्मभोग दिये हैं उस आत्मभोग से हम उन्हें अपनी सार्थकता में भागीदार तरीके जाहिर कर इस पुस्तक में उनके नाम जोड़ने में आनन्द मानते हैं।

पूज्य श्री के परम अनुगामी शतावधानी पण्डित महाराज श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी तथा और मुनि महाराजों ने पुस्तक को सुशोभित करने में जो श्रम उठाये हैं उन मुनिराजों के तथा हमारे गुरुजी श्री श्रीमान् कोठारीजी श्री बलचन्तसिंहजी साहब वगैरह शुभेच्छुको ने उपयोगी सलाह देकर हमारा प्रयास सरल बनाये हैं उन सभी के मेरे परम उपकार हैं।

साक्षरों में श्रेष्ठ शीघ्र कविवर श्रीयुत श्रीन्धानालालजी दलपतराम कवि एम्. ए. ने इस पुस्तक का उपोद्घात लिखने की कृपाकर पुस्तक को विशेष पवित्र बनाई है इस उपकार का नोध लेते हमें परम हर्ष होता है।

इस पवित्र पुस्तक के लिए कलम चलाने में बहुत सावधानी रखनी पड़ी है जो पवित्र पुरुष की जीवनी लिखने में योग्यता के बाहर सादस स्वीकार, इस गुण प्राप्त महात्मा के जीवन प्रसंग लेखन में सहज भी किसी की जी दुखे ऐसा एक अक्षर भी नहीं लानेका ध्यान रखना है इसी सबब से कितनी सच्ची घटना का भी विवेचन छोड़ा गया है ।

काठियाना के दो चातुर्मास की वार्ता विस्तार पूर्वक लिखी गई है । वह बहुतों को पक्षपात रूप दीख पड़ेगा, लेकिन सच्चा कारण यह है कि, उन दोनों चातुर्मासों की सच्चा २ घटनाओं को अपनी नजर से देखने का अवसर हमें मिला था, इसलिए दूसरे स्थलों के लिए अन्याय नहीं होना चाहिए, अतएव दूसरी आवृत्ति और हिन्दी अनुवाद में उन बातों को संक्षेप करने की सलाह हमें मिली है ।

अमूल्य मनुष्य जन्म समय सार्धक सम्बन्ध में सूत्र, महात्मा और अनुभवियों का वचनामृत उद्धृत करके जो विचार और विनम्रता काहिर किए गए हैं वे सबके समान समझने के लायक हैं, कोई भी खास व्यक्ति अथवा किसी मण्डली के लिये समझ लेने का संकुचित विचार न करते हुए विशाल और गुणप्राप्त बुद्धि से पठन करने के लिए सविनय प्रार्थना है ।

निर्दोष केवलो हरिः

भीमैपुर

शानपंचमी स० १९७६

श्रीधर सेवक

दुर्लभजी त्रि० जीहरो

उपोद्घात ।



बाल्यावस्था में जब कभी वर्षा आदि होने से न्हाने में आलस्य होता था तब एक वाक् सूत्र सुन पड़ता था, 'जाजा रोया ढूँढिया' उसवक्त यह स्वप्न में भी क्योंकर आता कि सं० १६३३ से सं० १६७८ तक देखेगये साधु समूहों में पुण्य-निर्मल परम साधूराज ज्ञानियों में गुणसागर, परम ज्ञानवीर, सन्यासिओं में संन्यस्त भीष्म, परमसंन्यासी के ढूँढिया सम्प्रदाय में से दर्शन होगा ? लेकिन ऐसा ही हुआ, जो जिसको खोजे सो उसे मिलता है, नहीं खोजने वाले को मिलता नहीं, ढूँढने वाले सब ढूँढिया ही कहते हैं, कलापी का प्रख्यात गजल का आध्यात्मिक अर्थ समझने वाला मनुष्य मात्र सिर्फ एक यही भावना पुकारते हैं ।

पैदा हुवा हूँ ढूँढनें तुझको तनम !

चैष्णव भक्तराज सिर्फ यही गाते हैं कि

वनमें भूल रहा हूँ कहो कहां गयो कान,

वेदान्तिओं की सूत्रावली में पहला सूत्र यही है कि—

“ अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ”

वाईचल भी कहता है कि ढूँढो तो मिलेगा हरएक

मनुष्य को हुँदिया शोधक-शाधक मुमुक्षु होना ही चाहिए अपने प्रभु को ही खोजना चाहिए ।

भरतखण्ड की आर्यवाटिका में जल, जमीन, हवा मान की फलद्रुपता एक ही है, लेकिन महावन सरीखी इस आर्यवाटिका में वनान्तर अथवा कुंज अनेक तथा जुदा २ हैं। इसमें बहुत माली की बनाई हुई क्यारियां, लता मंडप, जल, कुवारा धौलरु तरह २ के हैं, जिनमें कि सृष्टि सुन्दरी की चौखटधारीके अनेक रंग और अनेक तरह के दृश्य तथा तरह २ की लताओं से आच्छादित लता मण्डप की अनेक पुष्प परिमल से शोभायमान घूँघट घटा के समान भरतखण्ड की इस आर्यवाटिका में नानारंग वाली संसार रूपी क्यारी के अनेक रंग वाला संस्कृति मण्डप है, श्री महावीर स्वामी के रोपे हुए विहसित मंजरी युक्त विशालनी शाखा वाला जैन-धर्म रूपी आम्रवृक्ष और उस आम्रवृक्ष की संस्कृति रूपी कुपल उस में कवितारूप मंजरी, जिसमें धर्म ज्ञान, शीत, तपस्वरूपी फलों से पृथ्वी यशस्वी है धार्मिकता रूपी सरोवर से इस आर्यवाटिका अजब तथा अनोखी होरही है संसार के शास्त्रियों को तथा मानव संस्कृति के ममिसकों को वह धर्म सहकार भूलने लायक नहीं है ।

१६ वीं सदी में महर्षि दयानन्द ने हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्र और हिन्दू संसारके लिए जो कुछ किया, उन सभी बातों को १५ वीं

सदी में जैन धर्म, जैन शास्त्र और जैन संसार के लिए लोकाशाह ने की थी ई० सं० १४६८ में गुरु नानक का जन्म हुआ और तुरंत ही १५१७ ई० में धर्मवीर मार्टिन ल्यूथर ने केथोलीक सम्प्रदाय में जन्म लेकर अन्ध श्रद्धा का समूल नाश करने का प्रयत्न किया, यूरोपीय उस इतिहास से करीब ५० वर्ष पहले अर्थात् १४५२ में जैनधर्म के ल्यूथर रूपी सूर्य गुर्जरपाट नगरी में ऊगे, ई० सं० १४७४ में लोकागच्छ को स्थापना हुई, इस गच्छ के संस्थापक ने महर्षि दयानन्द और ल्यूथर के समान मूर्तिपूजा का निराकरण किया। मूर्तिपूजा को धर्म विरुद्ध साबित की, शिथिलाचारी साधुओं का व्रत संयम टूट किया, जादू टोना अध्यात्म मार्ग का अंग नहीं ऐसा समझाया, धर्म सूत्रों को अपने हाथ से लिखकर धर्मभिलापियों को समझाया, चतुर्विध संघकी धर्म विरोधी भावनाओं को सत् धर्म रूप में लाई, भेद इतना ही रहा कि महात्मा ल्यूथर पादरी थे, दयानन्द स्वामी सन्यासी थे, और लोकाशाह आर्य महा आदर्श दिखाने में निपुण गृहस्थाश्रमी साधुगज थे, जनक विदेशी के समान संसार भार धुन्धर सन्यासी थे। अदीक्षित किन्तु भाव दीक्षित थे, जैन सन्त जिनप्रभुकी उपासना के लिए ४५ सन्यस्थ सुभटों को दीक्षा दिलवाकर समस्त आर्यावर्त में भ्रमणार्थ छोड़े, ख्रिस्त धर्म सुधारक जर्मन ल्यूथर के ५० वर्ष पहले अमदावाद में यह घटना हुई। ल्यूथर के समस्त ख्रिस्ती जगत् को संभार रहा है लोकाशाह के अमदा-

भाद भी आज उतनाही सम्हार रहा है वो जैन प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के साधुवर थे।

1 भोलालजी महाराज अर्मान् दर्शनप्रिय भव्यमूर्ति सिर्फ नेत्र को लोमाने वाले नहीं, किन्तु नेत्र में चन्द्रभुत रस आजने वाले, इनकी आत्मा के समानही उनके देह वस्त्र भी सुदृढ, बलवान् और अजस्वी था, उनकी सामुद्रिक शास्त्रमें भद्दा थी, और इनकी आकृति ही उनके गुणों को छाप जादिर करती थी, उनकी देह मुद्राही इनकी महानुभावता जता रही थी, इनकी देहमुद्रा थी किसी सजावट से नटमुद्रा बताने वाली नहीं थी, किन्तु स्वभाविक मुद्रा थी सिर्फ दो श्वेत वस्त्र मात्र इनके देह ढाकने लिए थे, ब्रह्मचर्य के सूचक शरीर सम्पत्ति से वे मनुष्यों में नर गजेन्द्र के समान शोभा-यमान थे। नगर के मुख्य दरवाजा के कपाट के अर्गल समान इनका मुकुटदण्ड था, देव दुर्ग के समान विशीर्ण बद्धरथल था, कमल पुष्प के पत्र के समान घेरा वाला भव्य मुख मण्डल और आभ्र के गह्वीन पल्लव समान भालात्र था, साधुता का शिखर समान कुम्भस्थलसा गण्डस्थल कुसुमपल्लव के भार से मुकी हुई लतासी मरी व मुकी हुई भूतता और उस भूतली के नीचे नगर द्वार अथवा राजद्वार लिखे हुए सूर्य चन्द्र के समान नयन मण्डल था, इन सब के ऊपर प्वजासी फरकती मेघ के समान व्रण वाली हल्ल रेखा मानो वैराग्य की कलगीसी उडरही थी, ज्ञान साद के

ऊपर लगाया हुआ विशाल पद्मासन और हस्ताङ्गुली की ज्ञान मुद्रा पेगम्बर भावना का पूर्ण अंश सूचित करती थी, श्रीलालजी महाराज का दर्शन होने पर सभी के मन में बुद्ध भगवान् की स्मृति जागृत होती थी, आठ २ दिन के उपवास करने पर भी दो २ हजार श्रोताओं में सिंह गर्जना के समान गर्जते हुए इस कालिकाल में श्री १००८ श्रीलालजी महाराज को ही देखें, व्याख्यान के बीच बीच में साधुपरिवार यह स्तोत्र गाते थे—

“ चतुरा ! चेतजोरे ।

लेंलनां लेख जो रे ! कै जोवन दो दिन रो भलकार ।

अपने ही रंग में रंग दो

प्रभुजी ! मोको अपने ही रंग में रंग दो ”

इस प्रकार के स्तोत्र जब २ उनके सन्त समूह उच्च स्वर में खींच कर ललकारते थे, तब २ राजगृही नगरी में नगर दरवाजा पर बुद्ध भिक्षुओं का नगर कीर्तन की भावना एक दम जागृत होती थी, कोई चतुर चित्रकार अगर बुद्ध भगवान की मूर्ति बनाने के लिये कोई मनुआदर्श (Model) खोजता हो तो श्रीलालजी महाराज की भव्याकृति से बढ़कर इस संसार में और कोई आकृति मिलना मुशकिल था, रत्नलाम में आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का कहा हुआ—“ सागर वर गंभीरा ” इस आशीर्वाद

भावना से श्रीलालजी महाराज साकार आत्मा की प्रतिमा हो थे । इस प्रकार के साधुदेव के दर्शनार्थ वि० सं० १९६७ में चातुर्मास के अन्दर चोरवाड़ से पटौभारजी राजकोट पधारे थे ।

श्रीलालजी महाराज साहब की व्याख्यान भाषा हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती इन तीनों का अजब संमिश्रण थी, जिसको सुन कर बड़े २ भाषा शास्त्रियों को अपने भाषा पांडित्य का गर्व निकल जाता था, यद्यपि उस भाषा की रचना व्याकरण नियमानुसार नहीं थी तथापि उस वाक्य रचना में क्या ज्ञान, व क्या वैराग्य, क्या तप और क्या संन्यास, ऐसे ही क्या इतिहास और क्या बदरता सभी विराजमान थे । बदरत वादियों की अनुदारता तथा साम्प्रदायिक छोटी २ बातों में तड़कड़ाने वालों की युक्तिवाद बहुवचन सुना तथा देखा लेकिन उन सबों से हमारे पूज्य भी की व्याख्यान शैली निराली ही थी, आधुनिक शिथिलाचारियों से उलट साम्प्रदायिक आचारों से भ्रत, नियम, संयम पतनोत्त हुए साम्प्रदायिक छठप्रती महा तपस्वी इन सम्पदेव की हृदयहरिणी व्याख्यान वाणी की बदरता सीमार्बंध नहीं थी, किन्तु सिंह के बिचरने लायक उन की विस्तारता के समान निस्सिम थी । आकार के समान विरा ल थी ।

गणित विषय में पाश्चात्य गणित के अंदर वीली अनट्ठीलाअन से संख्या गणना की हद होती है, और आर्यगणित में परार्थ

संख्या आखिरी मानी जाती है लेकिन श्रीलालजी महाराज के लिये परार्ध संख्या अंकमाला की मेरु नहीं थी, किन्तु बीच का ही मणका थी, जिस वक्त आप संसार को आश्चर्यचकित करनेवाला राजस्थान के इतिहास से वीर दृष्टांत का वर्णन करने लगते थे उस वक्त सभा जनों में अद्भुतता छा जाती थी, यति मुनियों की रासाओं से जिस वक्त काव्य दृष्टान्त कहते थे और घोर अंधेरी रात के मध्य भागमें हवेली के ऊपर से हाथी की सूंड ऊपर पैर रख कर शकेत के स्थान में जाने वाली अभिचारिका का शाब्दिक चित्र खींचते थे, उस वक्त श्रोताओं को जितना ही काव्यश्रवण से आनन्द होता था उतना ही व्यभिचार के ऊपर विषाद भी होता था । साधु जीवन की तपश्चर्या-दिखाने वाले वे सनातन धर्म से भिन्न जैन संस्कृति खड़ा करनेवाले और सोने की खान के समान फलसुफी की गहनता भरी ज्ञान गुफा दिखाने वाले ऐसे संसारियों में महात्मा गांधी और संन्यासियों में पूज्य श्री १००८ श्रीलालजी महाराज ही दिख पड़े । संसारी की अपेक्षा संन्यासी में तप विशेष होना तो एक प्रकार का कुदरत का नियम ही है, जैसा ही देहरंग, वैसे ही इनका यम-संयम रूरी आत्मरंग भी घरे हुए थे, देह और देही की खाल खींचे सिवाय ये दोनों भिन्न नहीं होते, वैराग्य तो नशों के अन्दर रक्त के समान और हृदय की धकधकी और साधुता तो जीवन का आसो-च्छ्वास ही समझता था । बहुतां को तो श्रीलालजी महाराज किसी

अन्य दुनियां के ही हैं ऐसे दिख पड़ते थे, इस संसार में तो—
 “ न त्वत्समोऽस्त्यप्यधिकः कुतोऽन्यः ” आपका कोई समान भी
 नहीं था, अधिक तो कहां से आवे ?यह दुनियां तो
 सदा ही सन्तों की भूखी ही रहती है ।

वि० स० १६६७ का चातुर्मास गुजरात, काठियावाड़ में
 निष्कल हुआ था, श्रीलालजी महाराज ने भावकों में तथा भोताओं
 में जो दया की करुणा जीतेजी बहागये वह करुणा आज भी
 निर्विच्छिन्न बह रही है ।

जैन संस्कार ने ही संसार को वीरत्वहीन किया, इसप्रकार
 दीप लगाने वाले को अगर उदयपुर के पर्वतों में और जोधपुर-
 बीकानेर की रणथली में तथा आरावली की भूलभुलैया में बिह के
 समान विचरने वाले श्रीलालजी महाराज के दर्शन होजाते तो
 जरूर ही उनकी भूल लगजाती ।

“ पेट कटारीरे के पहेरी सन्मुख चाले ”

हरिनो माग छे शूरानो, नहिं कायरने काम ओने ।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के भक्ति वैराग्यों के इन कीर्तनों में
 भरी **वैराग्य** की वीरता कुछ जैन सम्प्रदाय में कम नहीं पड़ती,
 बुद्ध देव के अथवा महावीर भगवान के अथवा उनकी साधु

साध्वियों के आत्मशौर्य देखने के लिए भी आत्मशौर्य के मार्ग में जाने वाले ही चाहिये । वैराग्य की वारंवा देखने के लिए आंख से स्थूल-वस्तु देखने वाले नहीं चाहिए, किन्तु सूक्ष्म पारखी की ही जरूरी है, संसारियों में सन्वस्थ शोधक और वैराग्य पारख आंखें बहुतों की नहीं होती है ।

श्रीलालजी महाराज साहब प्रभु नहीं थे, प्रभु के अवतार भी नहीं थे, धर्म संस्थापक भी नहीं थे, पेगम्बर भी नहीं थे, सिर्फ साधु थे, सन्त थे, आचार्य थे, ज्ञान भक्ति, शील, तप, वैराग्य की समृद्धि वाले आत्म समृद्ध धर्मवीर थे, जगत इतिहास के कोक वे नहीं थे, सिर्फ जगत कथाओं में से कुछ एक भाग वे थे, वे कुछ देव नहीं थे, सिर्फ साधु थे, संयम पालते और संयम पलवाते थे, लेकिन पाने तीन लाख की अमदावाद की वस्ती में और १२ लाख करीब बम्बई के मनुष्य समुद्र में तथा सत्तर लाख के लगभग लन्दन शहर के मानव महासागर में कितनेक सच्चे साधु साध्वी हैं ? अनु-भवी कोई कहेगा ?

श्रीलालजी महाराज याने संतरूपी पर्वतों से घिरे हुए एक उच्च शिखर, बचपन में ये डोंगरों में खेलते घूमते और कुदरत की गोद में क्रीड़ा करते हुए कितनी अपूर्व अदृष्ट वस्तु को देखते हुए और शून्य वन में विचरते हुए टेकरी के शिखर सिंहासन के रासिक ये साधु शिरोमणि अद्भुत रस पीकर उछल पड़े और जगत की गोद

में अद्भुत बने ! तब वक्त उन्हें पर्वतों की तरफ से निमन्त्रण मिला कि आप नगर के बाहिर और संसार से बाहिर आवें ! आवूँ पर्वत से पैदा हुई तथा आराधनों से पाली गई बनास नदी के जलप्रवाह में नहाये नहाये बचपन में ही पानी की आवाज आपने सुनी थी कि जैसे हम जलप्रवाह निर्वच्छिन्न बहा रही हैं वैसे ही आप दया का प्रवाह समस्त संसार में बहाना, सिद्धार्थकुमार की यशोधरा रानी साध्वी दीक्षा लेकर बुद्ध संघ में मिली । इस बात को इतिहास में तथा काव्यों में बताते हैं, स्वयं छन्द्यस्त दीक्षा लेने के बाद कुछ दिन बीतगये वि० सं० १६५४ में अपनी पूर्वाश्रम की पानी की साध्वी दीक्षा लेने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन, उद्योघन देते हुए तथा जय मिलाते हुए भीलालजी महाराज साहब को देखने वाले भी कई एक विद्यमान हैं, श्री लालजी महाराज साहब की जीवन विजय के प्रसंग का वर्णन उनके जीवन चरित्र लिखने वाले के शब्दों में ही लिखेंगे "पवि के पीछे परनी" इस शीर्षक छोटासा नवमा प्रकरण अद्भुत रस से भरा हुआ आर्यावर्त के धार्मिक इतिहास में अद्यापि कम नहीं है ।

" क्रम से मेवाड़ मालवा की भूमि को यावन करते हुए पूज्य श्री महाराज रतलाम पबारे, X X रतलाम के श्री संघ ने परम उत्साह, आतिशय भक्ति तथा असीम आनन्द के साथ आपका सत्कार किया । करीब दो हजार मनुष्य आपके सामने गये । इस समय

में आचार्य श्री १००८ उदयसागरजी महाराज ने शरीर के अन्दर व्याधि बढ़जाने से संथारा पचक लिये थे, यह समाचार फैलते ही सैकड़ों हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगे । टोंक से श्रीयुत नाथूलालजी भंव, उनके सुपुत्र माणकलाल और श्रीमती मानकुंवर बाई श्रीजी की संसारावस्था की धर्मपत्नी ये सब भी आये । हजारों आदमी के बीच में सिंह गर्जना से धर्म घोषणा करने से श्रीलालजी महाराज साहब के प्रभावशाली व्याख्यान श्रवण करने से मानकुंवर बाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ । पति के पीछे चलकर आत्मोन्नति साधने की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी, अर्धङ्गिनी की दावा रखने वाली को ऐसी ही सद्बुद्धि उपजती है, पूज्य श्री के पास मानकुंवर बाई ने प्रतिज्ञा की कि हमें अब एकमास से अधिक संसार में रहना नहीं है, ऐसी प्रतिज्ञा करके मानकुंवरबाई आज्ञा लेने टोंक गई ।

सं० १६५४ माघ शुक्ला १० के दिन आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ ।

सं० १६५४ फाल्गुण शुक्ला ५ के दिन श्रीमती मानकुंवरबाई रतलाम शहर में दीक्षा ली, इस वक्त पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज भी रतलाम में ही विराजमान थे, एकही तिथि में तीन दीक्षायें थीं ।

धार्मिक संसार की उन्नति करने वाला चमत्कार से मनुष्य संसार की जीवनवृत्ति को यह कथा साफगौर पर बोध देने वाली है ?

ई० सं० १८६७ के इतिहास प्रसिद्ध यशस्वी वर्ष में भारत के विद्वान्मुकुट वीरपुत्र तिलक महाराज की देवकी वसुदेव के समान कारागृहवास दिया गया, उसके बाद थोड़े ही मास में यह घटना घटी, उनीसवीं सदी का अस्त और बीसवीं सदी का उदय ई० सं० १८६८ के प्रभात में आर्यावर्त में से यह संसार जीवन चित्र और यह धर्म जीवन चित्र, पाठक ! "भरतखण्ड में अद्भुतता तो इतिहास में ही है, आज कुछ मगट होती नहीं, आर्यावर्त की आत्म-लक्ष्मी निकल चुकी है, भारतीय प्रजा तो सस्कृती के नाचे उतर कर बैठी है, ऐसे कहने वाले विदेशी लोगों का ज्ञान सीमा कितनी संकुचित है ? भीलाजी महाराज की तथा मानकुवर बाई की संसार जीवन कथा और धर्म जीवन वार्ता इतिहास प्रसिद्ध किसी भी संस्कृति की शोभा कारक ही है, दाम्पत्य जीवन तथा साधु जीवन संसार के अथवा संस्कृति के दो हृदयों के समान ही है अन्य संसार में अथवा संस्कृति में दाम्पत्य जीवन के लिए तथा साधु जीवन के लिए उपदेशों की जरूरी होती है किन्तु आर्य संसार में अथवा आर्य संस्कृति में उपदेश की जरूरी होती नहीं, अतएव और देशों की आत्मा से आर्यावर्त की आत्मा अधिक सजीव है, आज की बीसवीं सदी के भरतखण्ड अर्थात् महात्मा गांधीजी और कस्तूरबा

के तथा श्रीलालजी महाराज साहब व मानकुंवर बाई के तपोमय जीवन के तपोवन ।

राजमुकुट उतार कर भेख लेने के बाद उल्लयिनी में और गाढ़ पाट नगरी में पिंगला राणीजी अथवा मैनावती माताजी के समीप भिक्षा के लिए गये हुए भर्तृहरिजी को व गोपिचन्दजी को नाटकीय रंगभूमि पर बहुतों ने देखे होंगे गृहस्थाश्रम के वेश में जो श्रीलालजी महाराज साहब जन्मभूमि में ठहरते नहीं थे और वनमें तथा तैरागियों में बारंवार भागजाते थे, वही श्रीलालजी महाराज साहब साधुवेश में टोंक नगरी के अन्दर चातुर्मास करके इषदेश देते तथा गोचरी के लिए फिरते थे, उनको वैसे करते हुए देखने वाले कितने ही आज भी मौजूद हैं, आयुष्यवय में तथा दीक्षा वय में छोटे किन्तु गुण भण्डार में बड़े श्रीलालजी महाराज साहब को आचार्य पदपर स्थिर कर के " गुणाः पूजा स्थानं गुणेषु न च वयः " ऐसे सर्व शासनों में प्रधान महा सूत्र को जैन शासन ने भी सिद्ध कर रहा है, ऐसा देखने वालों को दिखाया ।

..... श्रीलालजी महाराज वर्तमान काल से अज्ञ सिर्फ शास्त्र सम्पन्न साधु नहीं थे, किन्तु अनुभव विशारद थे, सिर्फ पण्डित ही नहीं थे, किन्तु सन्त थे ।

युरोप में अद्वितीय सुभटनाथ नेपोलियन इटली के अन्दर बिजयी के लोह मुकुट अपने हाथ से अपने शिरपर रख लिया था ।

श्रीलालजी महाराज और उनके बाल मित्र गुर्जरमलजी पोरवाड़ सं० १८४४ के मार्ग शीर्ष मास में खुद ही साधु दीक्षा धारण किये थे, सं० १८६६ के कार्तिक मास में श्रीलालजी महाराज के छोटे सहोदर कुटुम्ब परिवार मिलकर श्रीलालजी महाराज के लग्न करने के लिए टोंक से दुनों गांव पधारे थे, श्रीलालजी के धर्मगुरु वरस्वीजी श्री पन्नालालजी महाराज तथा श्रीगंभीरबलजी महाराज जैसे कि संसार में पढ़ने रुत भूल से निकालने की विद्यावनी देने के लिए पहले से ही दुनी में जाबिराजे थे, लग्नोत्सव के बाद ३ वर्ष तक श्रीलालजी महाराज साहब की धर्मपत्नी मानकुंवर बाई पीहर में ही रहीं, और सं० १८३६ टोंक आई, इस बीच में श्रीलालजी ने अखण्ड ब्रह्मचर्य एही हमारी जीवन अभिलाषा है ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करली थी, श्रीलालजी महाराज के, मानकुंवर बाई के भाग्य में देवने वैराग्य लिखा था उसको कौन मिटा सकता था, माता पिता, परनी, स्वजन सहोदर इन सबों का प्रयत्न निष्फल गया, पतिने दीक्षाली, पति गुरुदेव के समीप में ही बाद पत्नी ने भी दीक्षाली, धर्म दीक्षिता होकर छः वर्षतक सुन्दर संयम पालकर फिर पति के पड़िले ही स्वर्गजाने की आर्य महिलाओं की अभिलाषा के अनुसार मानकुंवर बाई ने भी महासौभाग्य प्राप्त किया।

क्या संयम में और क्या संसार में श्रीलालजी महाराज सदा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे, और मानकुंवर बाई अखंड सौमग्यवती

ही रही, संसार की और वैराग्य की सौभाग्य चुंदरी औढ़कर ही मानकुंवर चाई मृत्यु निद्रा में सोई, पत्नीभावना या पतिभावना से हताश हुए भए अथवा जीवन के विध्वंश से भग्नांश अपने को मानते हुए तथा नैसर्गिक दुर्बल स्वभाव से या इन्द्रियों की आरजु का रुदन से संसार को धुजाने वाले अपने नवीन संसार के कितनेक प्रेमयोगिओं को इन योगी योगिनिओं के दाम्पत्य योगों नें से क्या २ सद्बोध लेने लायक नहीं है ? आर्य संसार का सफल दाम्पत्य यही है और आर्य सन्यास का सफल सन्यास इसीको कहते हैं । इन योगी-योगिन दोनों का यही परम दाम्पत्य और दोनों के यही परम नैष्टिक ब्रह्मचर्य, ईश्वर का शुभा-शिर्वाद उतरे इस आर्यदाम्पत्य पर ऊभीये युगमें स्थूल पूजा व सुख पूजा का आज का नव जगत में दाम्पत्य जीवन कुं ये गयत्री ईश्वरी आशीर्वाद की अति आवश्यकता है ।

नवीन गुजरात के नवीन श्री पुरुष हमसे पूछते हैं कि अगर कल्पना देश निवासी जय-जयन्त मानव जगत में तुम्हारे देखने में हो तो दिखाओ, और तुरंत ही उत्तर दिया है कि “ इस संसार में तो दाम्पत्य भावना सफलकरना मुश्किल ही है ” यह बात सच्ची है कि कल्पना देश के इन पुण्य निवासिओं को जगज्जीवन दाम्पत्य ब्रह्मचर्य में उतारना मुश्किल है । महात्मा गांधीजी का दाम्पत्य ब्रह्मचर्य आखिर समय का है, लेकिन पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का और

भी मानहुवर धाई का नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण पुरुष जीवन की साधु कथाओं से मैं आशा रखता हूँ कि इन शंकाशील पृष्ठने वालों का समाधान अवश्य हो जायगा । इस वक्त भी यह भाव्य संसार सबे साधुओं से शून्य नहीं है आश्चर्य अभी भी मौजूद है Truth is stranger than fiction मानव सर्जित कल्पना की सचाई से असली प्रभु सर्जित सचाई अजब है, प्रभु कल्पना से पर और आकाश गुफाओं का विराट भंडार से भी न मिले वैसी कल्पना मनुष्य से ऐमे नहीं होती । जहा पर अन्यकारों से अन्यकार छिटक रहा है ऐमे आकाश में चमचमाती तेज पुंज तारागण की परस्पर का पाचकचून्द जरूर देखेही होंगे । पूर्वाकाश में मंगल या बुध क्षितिज के पीछे से लगे और आकाशके मध्यभागमें आकर चमकने लगे तथा गगनमंदाकिनी के समीप शनि अथवा गुरुचमचमाते हो, और फिर वे धीरे २ पश्चिमाकाश में उतर पड़े और स्थिर होजाय, इसप्रकार तेजस्वी शनि की प्रकाशावली भर रात जगती और चमकती हुई आप लोगों ने रात भर में देखी होगी, उनमें मध्य रात्री बीतने पर अमृतनौका सब पूर्व क्षितिज में जगता और धीरे २ तारकचून्द में जाता हुआ चन्द्रमा दाहि पड़ा होगा, हमारे जीवनकाल में भी ऐसा ही हुआ, साधु संगति की हमें बड़ी तत्रि अभितापा थी और आज भी योहीसी बह है, चमकती हुई ताराओंमें छोटा बड़ा प्रह उपग्रह जीवन भर देखें, अपने २ जगत्

के अन्धकारों को थोड़ा बहुत यह सब तारा समान सन्त हटोये हैं और हटावेंगे, लेकिन उन सबों में इस आंख से चन्द्रमा तो सिर्फ एक ही देखा, इस्लामी पांक्ति को तथा पारसी अध्वर्युओं को तो विशेष नहीं देखा है लेकिन सनातनी ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी थियोसोफेष्ट, मुक्तिफौज, युनिटेरियन, प्रेसलिटैरिअन, इंग्लिशचर्च कैथोलिसिस्ममन साधु संन्यासी धर्मप्रचारक पादरियों का परिचय अधिक किया है, बड़ोदा में सनातनियों का ज्ञानस्तम्भ रूप पंडित पूज्य छोट्टमहाराज का भी परिचय है फिलोसफी की कठिनता को सुखवोक करके समझाते हुए नरहरि महाराज का प्रवचनभी सुना है, मोरवी में महामहोपाध्याय संस्कृत शीघ्रकवि शंकरलालजी का भी सत्संग था । जूनागढ में मूलशंकर व्यासजी व्यास बापा के अस्पष्टोत्तर शत परायण का भी दर्शन किया था, अहमदाबाद में प्रेमदर्वाजा पर विराजते हुए सूर्यदासजी के तथा चराचर की चारुता में विचरने वाले जानकीदासजी के दर्शन से विमुख भी नहीं रहे, भजन की धुन में ही रमणवाले मोहनदासजी के भजन भी भरमन सुने, छोटी २ पुण्य कथा से सत्संग मंडलीको रिक्तानेवाले और रिक्ताकर एक कदम ऊपर चढानेवाले जादवजी महाराजको भी बारंबार देखे, नर्मदातीर में गंगानाथ के केशवानन्दजी के साथ भी एकरात हमने बिताई, करनाली के गोविन्दाश्रमजी और चांदोद के वैद्येश्वरजी का भी दर्शन किया है, गंगानाथ के ब्रह्मानंदजी व

वायोदिया के बादरामजी और मालसर के माधवदासजी का दर्शन
 शोभाय नहीं मिला, यह बात नहीं. वासनगढ़ के शिवानन्दजी पर.
 मानन्दजी की अश्विनीकुमार समान वैद्यलता को भी जानता हूँ ;
 पुष्कर वाले भद्रानन्दजी के भजन व वचन सुना, ६५ वर्ष के वयो-
 वृद्ध लटकती चढ़ई वाले भक्त कवि श्यामराजजी के भजन भी
 सुना है, अद्वैता धामदेवजी स्वामी व विशिष्टाद्वैती अनन्व
 प्रसादजी के प्रवचन और कीर्तन में बैठे हैं, नाटक की
 रंगभूमि पर भक्तराज नरसिंह मेहताको भी देखा है, इस जीवन में
 सिन्धु प्रहसमाज के यह दो साधुजन भक्तराज डा० एवेन के बंबई
 प्रार्थना समाज में एकतारा की धुन में नृत्य भी देखा है, आर्य
 समाज का 'Intellectual Gymnast' न्यायवाद का महामञ्ज
 आर्य फिलसुफ आरमानन्दजी का सहवास भी किया है, प्रहसमाज
 के साधुजन प्रतापचन्द्र मजूमदार और बाबू विपिनचन्द्र पाल के
 धार्मिक व्याख्यान सुना है, मुक्ति फौज के सेन्यपति जनरल घूस के
 ख्रिस्ताचार्य मुम्बई के विराप के, डा० केरबेने के डा० फारक बहार
 के, डा० सन्दरलैंड के व्याख्यान व धर्म प्रवचन एक २ दफा सुना
 है, हिमालय की कन्दरा में आसन लगा कर बैठे हुए स्वामीजी भी
 भद्रानन्दजी को भी देखा है, करीब चार अंगुल चौड़ी सुनहरी
 किनारीदार साड़ी पहनी हुई और हाथ पर सोनेरी सांकल की
 पाकेट वाला ७५ वर्ष की बिम्बा मिसेस बेसेन्ट के और आर्य

साधु-वेष में विचरने वाले ब्रूकस के धर्म व्याख्यान में भी गये हैं, शंकराचार्य श्री माधवतीर्थजी, त्रिविक्रमतीर्थजी, श्री शान्त्यानन्दजी, और खिलाफत शंकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थजी से भी हम अपरिचित नहीं हैं, ऐसे ही सफेद, पीला, भगवावाले को यथामति चीन्हे जाने हैं, नवीन प्राचीन अनेक संप्रदाय के साधु संत को देखे हैं, लेकिन जगत् की अंधेरी महारात्रि को देखने से ये सबही छोटे बड़े साधु तारा के सदृश जगमगाते हैं, इस संतरूपी तारकवृन्द के मध्य में अमृत के निधान कलानिधि (चन्द्र) समान विचरने वाले पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को ही देखे ।

पाठक, आपकी अति तेजस्वी आंख से अगर साधुता का चन्द्रदेव किसी अन्य को ही देखे हो तो उसमें हमारी मनाई नहीं लेकिन वह साधुता के चन्द्रदेव आप अपने लिये ही देखे हों तो इतना हमारे लिये पर्याप्त है । पाठक ! हम आपसे विनय पूर्वक इतना ही चाहता हूं क्योंकि पृथ्वी भर में संसार की रात अंधारी है इसलिए संसार का मार्ग विकट तथा भयानक है ।

न्हामालाल दलपतराम कवि

विषयानुक्रमणिका ।



प्रकरण	विषय	पृष्ठांक
	पूज्य प्रभावाष्टकानि	१
	प्रचीन इतिहास और गुहांवलि	१७
१ ला	बाल्यजीवन	६६
२ रा	विरहना	८०
३ रा	भाषण प्रतिज्ञा	८२
४ था	वैराग्य का वेग	१०५
५ वा	विप्ल परंपरा	११४
६ वा	साधुबोध और सत्याग्रह	१२५
७ वा	सरिता का सागर में मिलना	१३८
८ वा	मेवाड़ के मुख्य प्रधान को प्रतिबोध	१४५
९ वा	पति के पादल पत्नी	१५१
१० वा	आचार्य पदारोहण	१५४
११ वा	सदुपदेश प्रभाव	१६२
१२ वा	अपूर्व उद्योग	१६६
१३ वा	उपसर्ग को आग्रहण	१७६
१४ वा	जन्मभूमि में धर्मनाशित	१८०
१५ वा	रत्नपुरी में रत्नत्रया की आराधना	१८३
१७ वा	मेवाड़ मालवा का सफल प्रवास	२०३
१८ वा	मरुभूमि में कल्पतरु	२०८
१९ वा	अजमेर में अपूर्व उत्साह	२१४

२० वां	राजस्थान में आहिंसा धर्म का प्रचार	२२२
२१ वां	एक मिति में पांच दीक्षा	२३१
२२ वां	सौराष्ट्र प्रति प्रयाण	२३५
२३ वां	काठियावाड़ के साधु मुनिराजों का किया हुआ स्वागत	२४०
२४ वां	राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास	२४५
२५ वां	परोपकार के उपदेश का अजब असर	२४६
२६ वां	सौराष्ट्र का सफल प्रवास	२७०
२७ वां	मौरवी का मंगल चातुर्मास	२७३
२८ वां	मौरवी में तपश्चर्या महोत्सव	२८२
२९ वां	पारिचय	२८६
३० वां	काठियावाड़ का अभिप्राय	२९८
३१ वां	मौलवी जीवदया का वकील तरीके	३०६
३२ वां	विजयी विहार	३१४
३३ वां	संप्रदायकी मुख्यवस्था	३२०
३४ वां	आत्मशुद्धि का विजय	३२६
३५ वां	उदयपुरका अपूर्व उत्साह	३३०
३६ वां	आहेड़ा बंध	३४०
३७ वां	थर्लामें उपकारक विहार	३४४
३८ वां	श्री संघकी श्रृंखला	३५४
३९ वां	जयपुरका विजयी चातुर्मास	३५८
४० वां	सट्टपदेशका अशर	३६१
४१ वां	ठाकुरोंका वहम दूर	३६५
४२ वां	उदयपुर के महाराज कुमारका आग्रह	३६९
४३ वां	आर्याजी का आकर्षक संन्यास	३७३
४४ वां	राजवंशियों का मत्संग	३७७

४५ वां	नवरात्री का पशुवध वधवरायागया	१८५
४६ वां	शुयोभ्य युवराज	१८०
४७ वां	रतलामका महोत्सव	१८३
४८ वां	सवालान्तर्का सखावत	४७७
४९ वां	उदयपुर महाराज का भात्रिजाने वशूवध वधकराया	४१५
५० वां	शवसान	४२०
५१ वां	शोक प्रदर्शक समारोह	४३१
५२ वां	सच्चा स्मारक	४६८
५४ वां	बीकानेरमें हिंदका साधुमार्गी जैनोंका सम्मेलन	४८०
५५ वां	विहागावलोकन	४८६
	परिशिष्ट -१-२-३-४	



आभार.

यह पुस्तक लागत मात्र से कम कीमत में बेचकर अधिक प्रचार कराने के उद्देश्य से नीचे लिखे महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी अतः उसका उपकार मानता हूँ ।

- रु० २०००) शेठजी बहादुरमलजी बांठीया-भीनासर
 ,, ५००) भवेरी अमृतलाल राइचंद-पालनपुर
 ,, २५०) भवेरी मोहनलाल रायचंद-पालनपुर.
 ,, १००) भवेरी माणिकचंद जकशी-पालनपुर
 ,, १००) महेताजी बुद्धसिंहजी बेद-बीकानेर.
 ,, १००) शेठजी जतनमलजी कोठारी-बीकानेर.
 ,, १००) भवेरी खूबचंदजी इंदरचंदजी-दिल्ली बगेरे.

नीचे के गृहस्थों ने अगाउ से संख्याबन्ध पुस्तकों के ग्राहक बनकर मेरा उत्साह को बढ़ाया है इससे उनका उपकार मानता हूँ ।

नकलो ५०० श्री उदयपुर श्रीसंघ.

- ,, ३०० रा. रा. हेमचन्द्र रामजीभाई-भावनगर
 ,, २७५ रा. रा. देवजीभाई प्रागजी पारख-राजकोट.
 ,, २५० शेठजी चंदनमलजी मोतीलालजी मुथा-सतारा.
 ,, २५० शेठजी देवीदास लक्ष्मीचंद घेवरिया-पौरवंदर.
 ,, २०० शेठजी हस्तीमलजी लक्ष्मीचंदजी -बीकानेर.
 ,, १०० शेठजी गण्डमलजी लोछा-अजमेर.
 ,, १०१ श्रीमती नानुकाई देशाई-मोरवी.
 ,, १०० शेठजी श्रीचंदजी अब्दुल्ला-ब्यावर
 ,, १०० श्रीसंघ हा. शेठ वरदभाणजी पीतलिया रतलाम.
 ,, ७५ श्री स्था. जैन मित्र मंडल हा. शेठजी

कचराभाई लहेराभाई-अमदावाद बगेरे.

राह पर चलता था. ज्ञानजी ऋषि के समय जैन धर्म की परिस्थिति उपरोक्त थी ।

ऐसा होते भी वीर-शासन साधु विहीन नहीं हुआ । अनुयायियों की अल्प संख्या होते भी अल्प संख्या में साधु सर्व काल विद्यमान थे. जब २ घोर तिमिर बढ़ जाता तब २ कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होता और जैन प्रजा को सन्मार्गारुढ करता था ।

जैन-शासन की मंद हुई ज्योति को विशेष ब्योत करने वाले अनेक नव युग प्रवर्तक समर्थ महात्मा इन दो हजार वर्षों में उत्पन्न हो चुके थे.

ज्ञानजी ऋषि के समय में भी ऐसे एक धर्म सुधारक महापुरुष की अत्यंत आवश्यकता उपस्थित हुई कि जो साधुवर्ग से उपरोक्त ऐशों को दूर कर सत्य का प्रकाश फैलावे और जैन-समाज में बढ़े हुए संदेह और मिथ्या मान्यता को नष्ट करे. इतिहास साक्षी है कि जब २ अंधाधुन्धी बढ़ जाती हैं तब २ कोई न कोई वीर नर पृथ्वी पर प्रकट हो पुनरुद्धार करता है, इसी नियमानुसार पंद्रह सौ के संवत् में ऐसा एक महान् धर्म सुधारक गुजरात के प.य तख्त अहमदाबाद शहर में ओसवाल (क्षत्रिय) जाति में उत्पन्न हुआ. उनका नाम लौकाशाह था, वे सर्राफी का धंधा करते थे. राज्य दरबार में उनका अधिक ज्ञान था, हस्ताक्षर उनके बहुत सुंदर थे.

बुद्धि तीव्र एवम् निर्मल थी. जैन धर्म पर उनका अप्रतिम प्रेम था
 एक समय वे ज्ञानजी ऋषि के समीप उपाश्रय में आये उस
 समय ज्ञानजी ऋषि धर्मशास्त्र संभालने और उन्हें योग्य व्यवस्था से
 रखने में लगे हुए थे. उनके एक शिष्य ने मूत्र की प्राचीन जीण
 प्रतियां देखकर शाहजी से कहा, " आपके सुंदर हस्ताक्षर इन
 पुस्तकों का पुनरुद्धार करने में उपयोगी नहीं होसके ? शाहजी ने
 अत्यंत आनंद के साथ मूत्र की जीण प्रतियों की प्रति लिपि करने
 का कार्य स्वीकार किया (विजय मंथत् १५०६ ई० सन् १४५२)
 अपने लिपे भी उन्होंने सूत्र की प्रतियां लिख लीं लिखते २
 उन्हें विस्तीर्ण सूत्र ज्ञान होगया उनकी निर्मल और कुराम बुद्धि
 वीरत्वामी के पवित्र आशय को समझ गई. उनके ज्ञानबल सुत्र
 जाने से वीर भाषित अणुगार धर्म और वर्तमान में विचरने वाले
 साधुओं की प्रवृत्ति में जमीन आसमान का सा अंतर दिया. साधुओं
 की वामूत्र प्ररूपना उनमें असह्य होगई जैन समाज की गति बलही
 दिशा में देखकर उन्हें बहुत दुःख जंचा और सत्य को वायावध्य
 प्रकाश करने की उनके मानस मंदिर में प्रबल स्फुरण हुई। प्रति पक्षी
 दल अत्यंत बड़ा और शक्ति तथा साधन सम्पन्न था सो भी
 निर्भयता से वे जाहिर व्याख्यान — उपदेश देने लगे और सत्य
 में व्याप्त प्राकृतिक अद्भुत आकर्षण शक्ति के प्रभाव से उनके
 श्रोतृ समुदाय की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी. भिन्न २ देशों के

श्रीमंत अमरगण्य श्रावक वृहत् संख्या में उनके अनुयायी हुए, केवल श्रावक ही नहीं परंतु कितने ही यति भी उनके सदुपदेश के असर से शास्त्रानुसार अण्णहार धर्म आराधने तत्पर हुए, लौकाशाह स्वयम् धृष्ट होने से दीक्षित न होसके परंतु भाणाजी आदि ४५ भव्य जीवों को उन्होंने दीक्षा दिला उनकी सहायता से आप जैन शासन सुधारने के आपने इस पवित्र कार्य में महान् विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक लाखों जैनी उनके अनुयायी बने, जिस समय यूरोप में धर्म सुधारक मार्टिन ल्युथर हुआ और प्युरिटन ढंग से ख्रिस्ती धर्म को जागृत किया, उसी समय या उसी साल अकस्मात् जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लौकाशाह का समय मिलता है *

लौकाशाह के उपदेश से ४५ मनुष्य दीक्षित हुए उन्होंने अपने गच्छका लाकागच्छ नाम रक्खा, वीर संवत् १५३१.

* About A. D. 1452 the Lonka sect arose and was followed by the sthanakwasi sect dates which coincide strikingly with the Lutheran and puritan movements in Europe.

Heart of joinism.

समय २ पर धर्मगुरु जन्म लेते हैं, होते हैं और जाते हैं परंतु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का सौभाग्य बहुत कम

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक गादी नहीं आचार्यों की नामावली निम्न लिखित है.

६२ भाणजी ऋषि ६३ रूपजी ऋषि ६४ जीवराजजी ऋषि ६५ तेजराजजी ६६ कुंवरजी स्वामी ६७ हर्ष ऋषिजी ६८ गोपाजी स्वामी ६९ परशुरामजी स्वामी ७० लोकपालजी स्वामी ७१ महाराजजी स्वामी ७२ दौलतरामजी स्वामी ७३ लालचंदजी स्वामी ७४ गोविंदरामजी स्वामी ७५ हनुमंतजी स्वामी ७६ शिवलालजी स्वामी ७७ उदयचंद्रजी स्वामी ७८ चौधमलजी स्वामी ७९ श्रीलालजी स्वामी (चारन नाटक) ८० श्री अनादिरलालजी स्वामी (वर्तमान आचार्य) ❀

ज्ञानजी ऋषि में आज तक ४५० वर्ष का कुछ इतिहास अब वर्णन करते हैं ।

को प्रप्त होता है, ग्रीष्मी धर्म में मानविक दास्य दूर करने का चित्तना कार्य मार्टिन ल्यूथर ने किया वेसा ही कार्य भीमान् लौकाशाह ने थे, जनधर्म में त्रियोद्वार के लिये किया.

❀ पूज्य श्री हनुमंतजी महाराज की सम्प्रदाय की पाटावली अनुसार उनके सम्प्रदाय के उत्तरोत्तर प्रप्त हुए आचार्य पद की नामावली यहा दिव्याई है।

श्री महावीर की वाणी का अवलम्बन ले धर्मोद्धार का श्रीमान्
 नौकाशाह ने जो शुद्ध मार्ग प्रवर्त्तया उस मार्गगामी साधु शास्त्र
 नियमानुसार संयम पालते, निर्वद्य उपदेश देते, निःपरिग्रही रहकर
 मामानुषात्म अप्रतिबद्ध विहारकर, पवित्र जैन शासन का उद्योग
 करते थे, भाणजी ऋषि साधसखाजी, रूतजी ऋषि तथा जीव-
 राज ऋषिजी प्रभृति ने लाखों की सम्पत्ति त्याग दीक्षा ली थी,
 सखाजी तो बादशाह अकबर के मंत्री सङ्गल में से एक थे, बाद-
 शाह की इन्कारी होनेपर भी पांच करोड़की सम्पत्ति त्याग उन्होंने
 दीक्षा ली थी ।

प्रायः सौ वर्ष तक तो लौका गच्छीय साधुओं का व्यवहार
 ठीक रहा परन्तु पीछे से उनमें भी धीरे २ आचारशिक्षिता और
 अन्धाधुन्धी बढ़ने लगी ।

पूर्ववत् अन्धकार फैलाने वाले बादल फिर चढ़ आये,
 साधु पंच महाव्रतों को त्याग मठावलम्बी और परिग्रहधारी होने
 लगे, तथा सावद्य भाषा और सावद्य क्रिया में प्रवृत्त होने लगे,
 परन्तु उस समय भी कई अपरिग्रही और आत्मार्थी साधु विशुद्ध
 संयम पालते, काठियावाड़ मारवाड़ पंजाब में विचरते थे और वे इन
 बादलों के असर से मुक्त रहे थे, मालवा मारवाड़ आदि में विचरते
 पूज्य श्री हुक्मचिंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय ऐसे ही आत्मार्थी
 साधुओं में से एक के पाट एक होने से हुआ है ।

लौकाशाह के पश्चात् फिर से जब ये मेघक्लृप्त आये तब उन्हें नष्ट करने के लिये गुजरात में किसी समर्थ महापुरुष के प्रादुर्भाव होने की आवश्यकता हुई उस समय प्राकृतिक नियमानुसार धर्मसिंहजी लक्ष्मीजी और श्री धर्मदासजी अण्णगर एक के पश्चात् एक यो तीन महा वीर उदित हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखा लौकाशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया बलि शासन सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे इस त्रिपुटी ने पूर्ण किया उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार अण्णगर धर्म की अराधना प्रारम्भ की उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तपके प्रभाव से तथा शास्त्रानुक्त और समयानुक्त सदुपदेश से लाखों

ॐ एक अमेज बानू मिसीस स्टीवन्सन् कि जो राज कोट में रहती थी अपनी Heart of Jainism (नाम पुस्तक में इस समय का चित्रण यों करती है ।

Firmly rooted amongst the latter they were able once hurricane was past to reappear oncemore and begin to throw out fresh branches many from the Lonka sech Joined this reformer and they took the name of Sthanakwas, whilst their enemies called them Dhundhia Searchers This till has grown to be quite an honourable one

मनुष्य उनके भक्त होगए । उस समय से उन्होंने जैन शासन का अपूर्व उद्योग किया, तब से लौका गच्छ यति वर्ग और पंच महाव्रत धारी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्र० पंथ बँट गया: लौका गच्छीय तथा अन्य गच्छीय जो भ्रात्रक पंच महाव्रतधारी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने वाले हुए वे साधुमार्गी नाम से प्रख्यात हुए यह मार्ग कुछ नया न था इसके प्रवर्तकों ने कुछ नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे. सिर्फ शास्त्र विरुद्ध चलती प्रणाली को रोक शास्त्र की आज्ञा ही वे पालने लगे, मारवाड़ की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने से वे भी साधुमार्गी नाम से पहिचाने जाते हैं । यहां इस सम्प्रदाय के प्रभावशाली पुरुषपरत्नों में से थोड़े से मुख्य २ आचार्यों का कुछ इतिहास अवलोकन करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

श्री: धर्मसिंहजी: — ये जामनगर काठियावाड़ के दशा श्रीमाली वैश्य थे इनके पिता का नाम जिनदास और माता का नाम शिवा था, लौकागच्छ के आचार्य रत्नसिंहजी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यान से १५ वर्ष की उम्र में धर्मसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और पिता पुत्र दोनों ने दीक्षा ली. विनय द्वारा गुरु कृपा सम्पादन कर ज्ञान ग्रहण करने के लिये प्रचल वैराग्यवान् धर्मसिंहजी मुनि सतत सदुद्योग करने लगे. ३२ सूत्रोंके उपरांत व्याकरण-

न्याय प्रभृति में भी वे पारंगत विद्वान् हुए, उनकी स्मरणशक्ति अत्यंत तात्प्र थी। वे अष्टावधान करते थे, शीघ्र काव्य रचते थे, दोनों हाथ तथा दोनों पैर से कलम पकड़ कर लिख सकते थे । बहुत सूत्री होने के पश्चात् एक दिन धर्मसिंहजी अणुगार सोचने लगे कि सूत्र में कहे अनुसार साधु धर्म तो हम नहीं पालते तो रत्न चिंतामणि समान इस मानव जन्म की सार्थकता कैसे सिद्ध होगी ? उन्होंने शुद्ध संयम पालने का निश्चय किया और गुरु से भी कायरता त्याग फटिबद्ध होने का आग्रह किया गुरुजी पूज्य पदका मोह न त्याग सके

अतमें उनकी आज्ञा और आशीर्वाद भी आत्मार्या और सहाय्या यतियों के साथ उन्होंने पुनः शुद्ध दीक्षाली (विक्रम सं १६८५) धर्मसिंहजी अणुगार ने २७ सूत्रों पर (टिप्पणी) लिखी । ये टिप्पणियां सूत्ररहस्य सरलता पूर्वक समझाने को अति उपयोगी हैं । विक्रम सं. १७२८ में डाक़ा स्वर्गवास हुआ, उनका सम्प्रदाय हरियापुरी के नामसे प्रख्यात है ।

श्रीलवजी ऋषिः—सूत्र में वीरजी पक्षोरा नामक एक दशा भीमाली साहूकार रहता था, उनकी लड़की फूलवाई से लवजी नामक पुत्र हुआ लौकागच्छ के यति वजरगजी के पास उनसे शास्त्राध्ययन किया और दीक्षा ली, यतियों की आचार शिथिलता देखकर

ग्रीस का राजा महान् सिकंदर (Alexander the great) चन्द्र गुप्त के समय भारत पर चढ़ आया था. (ई० सन् पूर्व ३२७ से ३३३ ग्रीक लेखक के कथनानुसार चन्द्रगुप्त के पास २० हजार घोड़ सवार, २ लाख सैनिक, २ हजार रथ तथा ४ हजार हाथी थे. सिकंदर के सेनापति सिल्युक्स को चन्द्रगुप्त राजा ने युद्ध में पराजित कर भगा दिया था ।

वीर-निर्वाण के पश्चात् १७० वें वर्ष श्री भद्रनाहु स्वामी स्वर्ग पधारे उनके पश्चात् चौदह पूर्वधारी साधु भरतक्षेत्र में नहीं हुए.

८ स्थूलिभद्र स्वामी—नवें नंद राजा का कल्पक वंशीय शकडाल नामक मंत्री था. उसके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे. पाटली पुत्रमें कोशा नामक एक अतिरूप वाली वेश्या रहती थी । प्रधान पुत्र स्थूलिभद्र उसके प्रेमपाश में फंस गया और हमेशा वहीं रहने लगा. शकडाल के पश्चात् श्रीयक को प्रधान पद देने लगे परन्तु श्रीयक ने कहा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्रजी १२ वर्ष से कोशा वेश्या के घर में रहते हैं उन्हें बुलाकर मंत्री पद दीजिये. राजाने स्थूलिभद्र को बुलाकर मन्त्रीपद लेने को निमन्त्रित किया. लज्जावश स्थूलिभद्र राज्य सभा में नीची दृष्टिसे देखता रहा और विचारकर उत्तर देने की प्रार्थना की. गहन विचार करते राज्य-खटपट में पड़ना उन्हें योग्य न जचा; संसार भी उन्हें अनित्य मालूम हुआ । वे वैराग्य उत्पन्न होने पर

साधुवेष पहिन राजसभा में आये और कहा कि राजन् ! मैंने तो ऐसा विचार किया है, फिर उन्होंने संभूतिविजय स्वामी के पास से दाँता ली चातुर्मास समीप समझ उन्होंने कोशा बेरया के यहाँ चातुर्मास निर्गमन करने की गुरु से आज्ञा मागी, गुरुने धेयस्वर समझ आज्ञा देदी, वही समय तीन दूसरे मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्व के विल में और कुए के रहँद समीप चातुर्मास करने की आज्ञा ले निकले ।

स्थूलिमद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देख कर बेरया ने सोचा ऐसे सुकोमल देहवाले से इनने कठिन महाश्रतों का पावन किस रीती से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा । स्थूलिमद्र को समीप आते ही बेरयाने विशेष आदर सम्मान दे कहा स्वामिन् ! इस दाँती पर महत् कृपा की जो आज्ञा हो वह मुझ से पमाइये निर्मोही निर्विकारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत करना है, बेरयाने चित्रशाला सुपुर्न कर दी । पञ्चान्न खादिष्ट भोजन बहिराये फिर वस्त्रम शृंगार कर उनके सामने आ खड़ी हुई । पूर्वप्रेम का स्मरणकर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह बेरया अत्यन्त हाव भाव दिखाने लगी । परन्तु मुनिराज तो मेरुके समान अटल रहे । मनमें लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरन् उस बेरया को भी उपदेश दे आश्रित बना लिया, चातुर्मास पूर्ण हुआ, वे गुरु के पास आये, बहावक सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनियर भी

आ पहुँचे थे। सब से अधिक सन्मान गुरुजी ने स्थूलिभद्रका किया, जिससे अन्य शिष्यों को ईर्ष्या हुई और द्वितीय चातुर्मास लगते ही उन्होंने ने भी कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की आज्ञा चाही। गुरुके ह्न्कार करने पर भी वे कोशा वेश्याके यहां गये, एकांत में वेश्या का अद्भुत रूप देखकर ही मुनिवरोंका मन चलायमान होगया, परंतु कोशा श्राविका ने उन्हें युक्ति से उपदेश दे गुरुके पास वापिस पठाया।

श्री भद्रबाहु स्वामी नैपाल देशमें विचरते थे. उनके पास जाकर स्थूलिभद्र मुनि ने १० पूर्व का अभ्यास किया और भद्रबाहुस्वामी के पश्चात् उन्होंने ही आचार्यपद दिपाया, श्रीवीरनिर्वाण के पश्चात् २१५ वें वर्ष स्थूलिभद्रजी स्वर्ग पधारे।

६ श्री आर्यमहागिरि—श्री स्थूलिभद्रजीके आसनपर आर्य-महागिरि तथा आर्य सुहस्ति स्वामी पधारे. इनके समय बड़ा भारी दुष्काल पड़ा तो भी अन्न की स्पृहा न करने वाले जैन मुनियों को लोग भाव से आहार बहराते थे. एक समय एक जुधा पीडित भिक्षुक गोचरी से वापिस आते समय मुनियों के पीछे २ अन्न के लिये घबराता हुआ उपाश्रय में आया, आर्यसुहस्तिजी ने कहा कि साधु-के सिवाय हमारा आहार पाने का हकदार कोई नहीं हो सकता. तत्काल उसने दीक्षा ली और अधिक दिन से जुधापीडित होने से

इतना अधिक आहार किया कि वह गरणातिक कष्ट पाने लगा, उस समय वही २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औषधोपचार आदि से उचिन वैद्यावृत्त को, मिर्क जैन मुनिका रूप पहिरने में ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान अंतर हुआ दख बड़ बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चन्द्रगुप्त का पुत्र बिंदुमार, बिंदुमार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुषाण, कुषाण का साम्प्रति नामक पुत्र हुआ ।

साम्प्रति राजा को आर्य मुहस्ति महाराज के समागम से ज्ञानि शरण ज्ञान होगया उन्होंने प्रायक के बारह नव अगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भक्त जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपट्टहा (डिंडोरा) बजवाया अर्थात् देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग अहिंसा धर्म के प्रेमी बनाये —

एक वक्त आर्य मुहस्तिजी वज्जिन पधारे और भद्रा सेठानी की अश्वशाला में उतरे भद्रा का अग्रणी सुकुमार नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था । एक समय आचार्य महाराज पाचवें देवलोक के नासता गुल्म विमान का अधिकार पढ रहे थे, वह सुनकर अवधि

सुकुमार ने सोचा कि पूर्व में ऐसी रचना मैंने कहीं साक्षात् देखी है विचार करने पर उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया, माता की आज्ञा ले आचार्य के समीप दीक्षा ली. अधिक समय तक साधुता के घोर कष्ट सहन करते रहना उन्हें योग्य न जंचा जिससे गुरु से अर्ज की कि आपकी आज्ञा हो तो अनशन कर जहां से आया हूं वहां शीघ्र जाऊं ।

गुरु की आज्ञा पाते ही स्मशान में जा कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हुए राह में कंकर कांटे लगने से सुकुमार मुनि के पैरों से रक्त धारा बहने लगी थी उस रक्त को चूसती चाटती हुई एक सियालनी मय बच्चों के ध्यानरथ मुनि समीप आई और उनके शरीर को भक्ष्य बनाया आत्मभाव में स्थित मुनि तनिक भी न डिगे समाधि पूर्वक काल कर नलिनी गुल्म विमान में देवता हुए दृढ़ मनो बल द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? एक प्रहर में पांचवें देवलोक की समृद्धि प्राप्त करने वाले कुमार ! धन्य है आपके धैर्य को ! वीर-निर्वाण के पश्चात् २४५ वें वर्ष आर्य महागिरी और २६५ वें वर्ष आर्य सुहस्ति स्वामी स्वर्ग पधारे ।

१० बलिसिंहजी (बालिसिंहजी) आर्य महागिरि के पाट पर उनके शिष्य बलसिंहजी पधारे, उनके शिष्य उमास्वामी और उमास्वामी के शिष्य श्यामाचार्य हुए. इन्हीं श्यामाचार्य ने श्री पद्मापना सूत्रको पूर्व से उद्धृत किया, उनके पश्चात् अनुक्रम से ११ सोचन स्वामी १२

धीरस्वामी १३ स्थंडिल स्वामी १४ जयिधर स्वामी १५ आर्य
समेद स्वामी १६ नरीश स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवंत
स्वामी १९ छिंदगणिजी २० मल्लिकाचार्य २१ हेमवत स्वामी २२
नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतरीन स्वामी २५
छोहगणिजी २६ दु.सहगणिजी और २७ देवार्धिमणिजी समा
धमण हुए ।

श्री वीर निर्याण से ६८० वें वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१० ई
समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता समझ वर्तमान प्रचलित
अने साधन समझ करने का योग्य विचार किया । वल्लभीपुर (कठिया-
वाड़ में भावनगर के पास बला स्टे है) में टाडकृत राजस्थान में
लिखे अनुसार जैनियों की घनी बस्ती थी और राज्य शासन शिलादित्य
के हाथ में था जैन धर्म की विजय भ्रजा कहलाने वाले इस प्रसिद्ध
शहर पर वि० सं० ५२५ में पार्थियन, गेट और हूण लोगों ने
हमला किया, जिससे सीस हजार जैन कुटुम्बी यह शहर त्याग मारवाड़
में जा बसे, इस भगामगी दुष्काल के कारण लोका हुआ पूर्ण शुद्ध
नहीं हुआ जिससे सूत्रों की संख्या क्षिणभित्त होगई फिर बौद्ध
लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपक्षी बन जैन शासन को
समुच्छेद उखाड़ डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से श्री
भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जैन
विद्वान् हुए तो भी उनकी कृति हाथ नहीं लगती.

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पाठ पर अनुक्रम से २८ वीरभद्र
 २९ संकरभद्र ३० यशोभद्र ३१ वीरसेन ३२ वीरसंग्राम ३३ जिनसेन
 ३४ हरिसेन ३५ जयसेन ३६ जगमाल ३७ देवऋषि ३८ भीमऋषि
 ३९ कर्मऋषि ४० राजऋषि ४१ देवसेन ४२ संकरसेन ४३ लक्ष्मी-
 लाभ ४४ राम ऋषि ४५ पद्मसूरि ४६ हरिस्वामी ४७ कुशलदत्त
 ४८ उवनी ऋषि ४९ जयसेन ५० विजयऋषि ५१ देवसेन ५२ सूरसेन
 ५३ महासूरसेन ५४ महासने ५५ गजसेन ५६ जयराम ५७ मिश्रसेन
 ५८ विजयसिंह ५९ शिवराजजी ६० लालजी ऋषि ६१ ज्ञानजी
 ऋषि हुए ।

महावीर प्रभु से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के १००० वर्ष
 दरम्यान वीर शासन सूर्य अपना दिव्य प्रकाश विश्व में प्रकट कर
 रहा था, परंतु उनके पश्चात् से ज्ञानजी ऋषि के १०० वर्ष तक यह
 प्रकाश शनैः शनैः कम होता गया और ज्ञानजी ऋषि के समय तो
 जैन दर्शन की ज्योति बिल्कुल मंद होगई थी, निरंकुश और मानके
 भूखे साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपना, श्रावक वर्ग की अज्ञानता और अंध
 श्रद्धा, राज्यविप्लव और अराजकता से भारत में व्याप्त हुई अंधाधुंधी
 आदि गाढ़ काले बादलों ने इस सूर्य को चारों ओर से घेर लिया था,

साधु अध्यात्मिक जीवन बिताते और व्यवहारिक खटपट से
 सर्वथा दूर रहते थे परन्तु ज्यों-२ उनका अध्यात्म प्रेम कम होता

गया त्यों २ बाह्याङ्गवर की वृद्धि होने लगी, वे तुच्छ २ मत भेदों के वडा २ स्वरूपदे नये २ गन्ध उत्पन्न करने लगे, जिससे जैन संपर्क दिनमिश्रता हो एकता नष्ट होने लगी। अपना पक्ष प्रबल और दूसरे के अयत्न करने के लिए परस्पर निन्दा और मिथ्या आरोप लगाने में ही उनका समय और शक्ति का अपव्यय होने लगा, इससे जैन-धर्म के अन्य मिथ्यान्तों पर ही जैन साधुनामधराने बालों के हाथ से ही दार २ कुठार प्रहार होने लगा, साधुओं में शिथिलाचार बढ गया कई तो महाबलम्भी और परिमहचारी हागए यतिके नाम जो कि अति पवित्र गिना जाता था, उस शब्द की महत्ता में हानि पहुँचाई। श्रावकों को अपने पक्ष में लेन का लक्ष्य मंत्र, जंत्र और वैदिक आदि धतगे घटने लगे तथा हिंसादि निषिद्ध कार्य करने पर तत्पर हुए मन, वचन और कर्मा के योग से भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना और करने वाले को ठीक नहीं समझना इस अणुगार पद की मर्यादा का प्रत्यक्ष उल्लंघन होने लगा अन्य मतानुसन्धियों की प्रवृत्ति का अनुकरण कर स्वयं २ पर देनातय और प्रतिपाद स्थापन कीं, अपने २ पक्ष के यतियों के लिये उदाय घटनाये चरघोड़े चढना, उत्सव करना, नाच नचाना-इत्यादि प्रवृत्तियों के प्रेरक और नायक होनायति अपना कर्तव्य समझने लगे, सारांश यह है कि उस समय साधुवर्ग में चारित्र्यधर्म लोप होने लगा था और भावक समुदाय कर्तव्य से पदच्युत हो उनके पीछे २ चलटी

पूज्य प्रभावाष्टकानि ।

लेखक—शतावधानी पंडितरत्न
श्री रत्नचंद्रजी स्वामी ।

नमस्काराष्टकम् ।

वसंततिलकावृत्तम् ।

संशुद्धसंयमधरं सरलस्वभावम्
मोक्षार्थसाधनपरं ग्रथितप्रभावम् ॥
तत्त्वप्रचारपरिशामितदुःखदानम्
श्रीलालजिद्गणिवरं नितरां नमामि ॥ १ ॥

भाषार्थः—सम्यक् इति से शुद्ध संयम के पालने वाले,
स्वभाव से ही अत्यन्त सरल, मोक्ष रूपी उत्कृष्ट पुनर्पार्थ साधने में
सदा निमग्न, देश देशान्तरों में विस्तृत ख्याति-प्रभाव वाले, जैन
तत्त्वों का प्रचार कर अनेक जीवों के दुःख दवाने लगे बुझाने

वाले आचार्य अवतंस भीमत् श्रीलालजी महाराज को मैं मन, वचन और काया की त्रिकरण शुद्धि से नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य मुधासमूहो
यस्यार्द्रशुद्धहृदयात् करुणाप्रपूरः ॥
यस्यानने वहति सौम्यनदीप्रवाहः
श्रीलालजिग्मुनिरं तमहं नमामि ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनकी दृष्टि में से निरन्तर मुधा अवित होता था अर्थात् नेत्रों में अमृत भरा था जिससे हर ओर मुधा दृष्टि से विलोकन होता था; जिनके आर्द्र और पवित्र हृदय से दया का जल बहा करता था जिनके मुग्ध पर सौम्यता—नदी का प्रवाह अवाप्ति रहता था ऐसे श्री श्रीलालजी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

विद्या विवादग्रहिता विनयेन युक्ता
चित्तं विरक्तमपि सर्वजनस्य रम्यम् ॥
मुद्रा तु यस्य निजशान्तिसमुद्रमग्ना
श्रीलालजित्कृतिवरं तमहं नमामि ॥ ३ ॥

भावार्थः—विनय से प्राप्त की हुई जिनकी प्रज्ञा विवाद रहित थी, दूसरों को अपमानित करने की शक्ति से तनिक भी दूषित

न थी, जिनका अंतःकरण वैराग्य रस से पूरित था, परन्तु लुक्छा
न था कि किसीको आरम्य हो, बल्कि सबको मनोहर लगता था,
जिनकी मुग्नमुद्रा आत्मिक शान्ति के समुद्र में मग्न रहती थी;
ऐसे विद्वानोंमें श्रेष्ठ श्रीलालजी महाराजको मैं नमस्कार करता हूँ॥३॥

धीमज्जिनैद्रमतफुल्लसरोजभृङ्गम्

शास्त्रीयतत्त्वशुभमौक्तिकराजहंसम् ।

विस्तीर्णकीर्तिधवलीकृतदिग्विभागम् ।

श्रीलालजित्सुकृतिनं शिरसा नमामि ॥४॥

भावार्थः—जो सब दर्शन की ओर साम्य भाव रखते हुए
भी श्रीतरागमत—जैन दर्शनरूपी प्रकुलित कमल पर भृंग के सदृश
लीन थे, शास्त्रीय तत्त्वरूपी सरस मोती को चुगनेवाले राजहंस थे ।
जिनकी विस्तीर्ण कीर्ति से दसों ही दिशाएं उज्ज्वल थीं ऐसे संतुल्य
परायण श्रीलालजी महाराज को मैं सिर झुकाकर नमस्कार
करता हूँ ॥४॥

यस्याच्छुचुम्बकद्वपत्सदृशप्रतापै

राकृष्यतेमतिविशारदराजवर्गः ।

संश्लाघ्यते सुमनसा गुणपुष्पवल्ली

श्रीलालजिद्यतिवरं मनसा नमामि ॥५॥

भावार्थः—स्वच्छ और बृहत् लोह चुम्बक में अधिक से
अधिक भारी लोहे को भी खींचने की शक्ति रहती है इसी तरह

जिनके प्रताप-प्रभाव में सब पद प्राप्त स्तुतियों के रचने की शक्ति थी इसी प्रताप द्वारा अमाधारण विचारशील विद्वान राजा महाराजा जिनकी ओर झुकते थे इतनाही नहीं परन्तु वे उनके गुण गुण की शान्ति की महत्ता से प्रसन्न हो मुक्तकंठ द्वारा श्लाघा-प्रशंसा करते थे ऐसे यत्निष्ठोंमें प्रधान श्रीलालजी महाराज को मैं अतः वरण पूर्वक नमस्कार करता हू ॥५॥

दम्भोजिभूतं निगमिमानिनात्मलक्ष्यं
 फदर्पमर्पदेशनोन्ग्रनने समर्थम् ।
 शान्त सत्त्वं कल्याणरत्नालयं तु
 श्रीलालजिदगणितरं प्रणमामि भक्त्या ॥६॥

भावार्थः—दम्भ-मिथ्याइवर जिन्हें लक्ष्मणजी भी पसन्द न था, आचार्य पदप्राप्त एवम् प्रणिष्ठापित सरदारों के पूजनीय होते भी जिन्हें अन्विमान हुआ भी न था परन्तु भिन्ने आत्माही की ओर जिनका लक्ष्य था, कर्तृत्व कामद्वन्द्वी विषादी सर्व की दारों बन्द, उन में ना विजयी हुए थे, जिसके चहु ओर शांति स्थापित थी, दया के ना जा पाकर थे उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी महाराज का मैं स्थापित भक्ति से नमस्कार करता हू ॥६॥

पापाण्यतुल्यहृदया अपिकेचनाया
 जीताः स्वधर्मपदवी दुशलेन येन ।

दृष्टांतयुक्तिरगर्भित बाधशून्या

श्रीलालजिद्गणिवर गुरुकल्पमीडे ॥७॥

भावार्थ :—कितनेही आर्यभूमि और आर्यकुल में उत्पन्न होते भी धर्म संस्कार हीन होने से पत्थर से हृदय वाले बन गए थे उनका भी जिन कुशल पुरुष ने दृष्टान्त और युक्ति पूर्वक रसगर्भित उपदेश देने की रीति से उपदेश दे समझा निजधर्म की राह पर लगाये, धर्म परायण बनाये, ऐसे आचार्य शिरोमणि बृहस्पति समान श्रीलालजी महाराज की मैं मुक्त कंठ से स्तुति करता हूँ ॥७॥

रोगेण पीडिततनात्रपि यस्तपस्या

मुग्धां समाचरितवान्मनसोजसा च ॥

मान्द्यं महत्तपसि नापि समाश्रय्यो

बोधादिनित्यनियमे तमहं नमामि ॥ ८ ॥

भावार्थ :— पैरों में बात रोग और देहमें दूसरे त्रामदायक अनेक रोग अधिक समय उत्पन्न हो जाते थे तोभी वे दुःख और शरीर निबलता को न गिनते, सिर्फ मनोबल द्वारा चार २ आठ २ उपवास एकदम कर लेते थे जिसमें भी तुरग यह था कि ऐसी बड़ी तपस्या में भी हररोग व्याख्यानादि नित्य नियमों में तनिक भी मंदता — शिथिलता न होती थी ऐसे दृढ़ मनोबल वाले समर्थ महात्मा श्री श्रीलालजी महाराज को मैं चार २ नमस्कार करता हूँ ।

प्रतापसौभाग्य-वर्णनाष्टकम् ।

वसन्ततिलका वृत्तम् ।

सद्यस्त्वमेव पृथिवीप्रवरप्रदीपो
हर्ता-धकारपटलस्य हृदि स्थितस्य ॥
मन्येऽपरः प्रकटितस्तरणिर्नवीनो ।
धृत्वा तनुं शुभतरां क्षितिपादचारी ॥ १ ॥

भावार्थ — हे मुनिवर ! तयिँकर केवली प्रभुसिक्की अनुपस्थि-
तिमें वर्तमान समय में जैन समाजके हृदयके तमको नाश करनेवाले
आप स्वतः ही पृथ्वी के भेष्ट सूर्य (दीपक) हैं । मेरी मान्यता है
कि मानुषिक देह धारण कर, आप पृथ्वी पर पादविहारी विनक्षण
नवीन सूर्य प्रकट हुए हैं । आकाशमें भ्रमण करनेवाला एक सूर्य
और पृथ्वी पर विचरने वाले आप दूसरे सूर्य हैं ॥ १ ॥

सूर्योदयस्य वैशिष्ट्यम् ।

बाह्यां स्तमस्ततिमलं प्रतिहन्ति भानु
नाभ्यन्तरां हृदयभूमिनतानितान्तम् ॥
त्वं तु प्रबोधकजिनोक्तवचोवितानै
र्जाड्यं द्रव्य हरसि भूमिरवे जनानाम् ॥ २ ॥

भावार्थः—आकाशीय सूर्य तो बाह्य स्थूलान्धकार का नाश करता है परन्तु मनुष्यों के हृदयभूमि पर विस्तृत अज्ञानान्धकार को नहीं हटा सकता, परन्तु हे भौमिकसूर्य ! पादविहारी सूर्यरूप सुनिवर ! आप तो तात्त्विक शिक्षा देने वाले वीतराग के बचन द्वारा जनसमाजकी बाह्य और आंतरिक दोनों तरहकी जड़ता हरलेते हो यह विशेषता है ॥ २ ॥

पुनर्वैशिष्ट्यम्

साम्राज्यमस्ति दिवसे दिवसेश्वरस्य
 सायं पुनर्भुवि तदस्तमुपैति नित्यम् ।
 वृद्धिज्ञतो निशिदिनं तरुणस्त्वदीयो
 नव्यः प्रताप इह भाति विलक्षणो वै ॥ ३ ॥

भावार्थ :—आकाश विहारी सूर्य की महिमा खिफ दिन को ही होती है । प्रातः काल उदय होता है । मध्यान्ह में तरुण रहता है परन्तु संध्या होते ही सूर्य का साम्राज्य विलीन हो इस पृथ्वी पर से अदृश्य हो जाता है परन्तु आपका प्रताप तो रातदिन उच्च शिखर पर चढ़ता हुआ सदैव युवानहीं युवान रह कर प्रतिक्षण सुर्काति की चढ़ती कला में जाता प्रतीत होता है । सूर्य के साम्राज्यसे आपके साम्राज्य में यही विलक्षणता है ॥ ३ ॥

विजय लक्ष्मीः

सघाटके मुनिषु सत्सु महत्सु चा-ये
 स्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
 मन्ये प्रतापतपनं ह्युदित सर्वत्र
 द्रष्टुं प्रसन्निभजन्त्रयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय पूज्य श्री —चौधमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रभ उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक बयोवृद्ध और संघम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरण को दी गयी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही विजय लक्ष्मी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदनिभूषितपण्डिताश्च
 नव्याः पुरातनजनाः चित्तिषा महान्तः ॥
 सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वां
 मध्याह्नकालमहिमैष धराखेस्ते ॥ ५ ॥

भावार्थः—नई रंशनी वाले विद्वान् और आचार्य तीर्थार्थि पदवी से मंडित पंडित नये जमाने के सुमंस्कार वाले युवा और प्राचीन पद्धति को मान देने वाले वृद्ध एवम् प्रतिष्ठित नरेश एक सी समानता से दृढ़भक्ति पूर्वक आपका सम्मान करते हैं और श्रद्धापूर्वक आपकी सेवा शुश्रूषा वजाते हैं यही आपसे भौमिक दिगंबर के मध्याह्न कालकी महिमा है ॥ ५ ॥

सौराष्ट्रिका निजमताग्रहिणोऽपि सन्तो
भूत्वा तवाङ्घ्रिकजचुम्बनचञ्चरीकाः ॥
त्वां भेजिरेऽतिशयिनं प्रबलप्रतापं
मध्याह्नकालमहिमैष धराखेस्तं ॥ ६ ॥

भावार्थः—जब आपका काठियावाड़ में पदार्पण हुआ तब भिन्न २ सम्प्रदाय वाले साधु साध्वियों में से कई तो एक चक्र के समागम से ही आपकी विद्वत्ता और आपके चारित्र्य का पूर्ण मान करने लगे परन्तु जो कोई मताग्रही थे वे भी आपके थोड़ेसे सह-वास और परिचय के पश्चात् मताग्रह त्याग आचार्य के अतिशय सहित और प्रौढ़ प्रबल प्रताप वाले आपके चरण कमल को चुम्बन करने में भुंग छे वन आपकी सेवा में प्रस्तुत होगए, यह भी पृथ्वी विद्वशी सूर्यरूप आपका मध्याह्न काल की महिमा का ही प्रताप है ॥ ६ ॥

यत्रागमस्तव महत्स्वपरेषु तत्र
 विद्वत्सु सत्स्वपि च तावकमेव बोधम् ॥
 श्रोतु रता मुनिजना गृहिणश्च सर्वे
 मध्याह्नकालमहिमैष धराखेस्ते ॥ ७ ॥

भावार्थ—आपके प्रतापकी वास्तविक खूबी तो यह थी कि इस भूमि—काठियावाड़ी भूमि में जहाँ २ आपने पदार्पण किया उस ग्राम में आपसे दीक्षा में और उन्न में बड़े एवम् विद्वान् मुनि विराजमान थे, परन्तु कोई व्याख्यान न देने सिर्फ आपके सामने एक ही सभा में सब साधु, श्रावक और अन्य मतावलम्बी लोग आपके व्याख्यान सुनने को उत्सुक रहते और आपके पास से ही व्याख्यान दिलाते थे और किसी मुनिके दिलमें लेशमात्र भी यह विचार नहीं आता था कि हमारे भक्त हमसे आपको अधिक मान क्या देते हैं ? यह भी क्षितिविहारी सुमूर्त्य रूप आपके मध्याह्न काल की महिमा ही है ॥ ७ ॥

येनैकदापि तव वाक्श्रवणीकृता वा
 दृष्ट सकृच्चव मुमन्यमुस्त्वारविन्दम् ॥
 आजीवन मनसि तस्य छविस्त्वदीया
 लग्ना पिभाति महिमैष तयैव भूतेः ॥ ८ ॥

भावार्थः--जिस मनुष्य ने एक समय भी आपके व्याख्यान सुने हैं या आपके रमणीक मुखारविंद के दर्शन किये हैं उस मनुष्य के मनरूपी लेट पर आपके चेहरे का मानों भव्य फोटो खींच गया है और वह जीवन तक न बिगड़ते हमेशा ज्यों का त्यों प्रस्तुत रहता है। लेखक को अनुभव है कि एक समय परिचित हुआ मनुष्य आपको पुनः २ याद करता है और दर्शन करने को आतुर रहता है यह सब आपकी विभूति-चारित्र्यसम्पत्ति की अलौकिक महिमा है ॥ ८ ॥



अस्मदीयरत्नम् ।

विरहाष्टकम्

उपजाति वृत्तम् ॥

चिंतामणिर्यत्तुलनां न धत्ते
यन्मूल्यकं पार्श्वमणिर्न दत्ते ॥
एतादृशं जङ्गमरत्नमेकं
प्रसिद्धिमाप्तं मरुताधुवर्गे ॥ १ ॥

न बाध — चिंतामणि रत्न जिसकी तुलना नहीं कर सता ।
श्रीर पार्श्वमणिर्भा मूल्य में जिसकी समानता नहीं कर सकता
तमा नगम अर्थात् धजता किरता रत्न हमारे मारवाड की औरक
माध नमुदाय में से प्रसिद्ध प्रख्यात हुआ ॥ १ ॥

श्रीलालजितस्य च नामधेयं
दृष्ट मया प्राक् पुरवक्त्रेरे ॥
तद्दर्शनं तत्र च पक्षमात्र
लब्ध पहाभाग्यवशेन नूनम् ॥ २ ॥

भावार्थः—उन नररत्न-उन मुनिरत्न का नाम अब किसी ने
 गून नहीं है तौ भी कहना होगा कि उनका नाम शिरेलालजी या
 शीलालजिन था। इस लेखकको सिर्फ उनके नामसे ही परिचय नहीं
 है, परन्तु संवत् १६६६ के प्रथम आषाढ मासमें बांदाके राजम
 ने साक्षात् दर्शनसे भी परिचय हुआ था जोंकि उनका दर्शन सिर्फ
 पक्ष भर ही वहां पर मिला था उतने समय की दर्शनकी प्राप्ति भी
 महाभाग्य के उदयका फल है ॥ २ ॥

वृत्तिर्न या वर्षशतेन जन्म्या
 तत्रास्ति पक्षः किमलं प्रमाणम् ।
 तथाप्यभून्मेऽत्र भविष्यदाशा
 हताधुना हा विगता वृथा सा ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिनके दर्शन सौ वर्ष तक होते रहें तो भी वृत्ति
 न हो, तो विचारा एक पक्ष किस गिनतीमें है? एक पक्ष साथ रहने
 से दोनों के मनमें सम्पूर्ण चातुर्मास साथ रहने की प्रवृत्ति सम्कटा
 हुई थी, परन्तु एकका मोरजी और दूसरेका भोराजी चातु-
 र्मास नियत होजाने से अताशा हुई, तो भी चातुर्मास में हेर
 फेर करने का प्रयत्न जारी रहा परन्तु संयोग न होने से परिणाम
 निराशा में परिणित हुआ। चातुर्मास पश्चात् संगम होने की आशा
 की थी परन्तु चातुर्मास के पुरे होते ही आकस्मात् मार-

नाइ की ओर के प्रहार से वह आशा विलुप्त प्रायः हुई थी परन्तु हा ! खेद तो यह है कि अन्तिम दुःखदाई समाचार में उस आशा को बड़ा भारी धक्का लगा । अरे ! अब तो वह सभावना बिलकुलही निष्कल होगई ॥ ३ ॥

विलुप्तं रत्नम् ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥

हा हा ! ' हतं केन समाजभूषणम्

किञ्चिन्न यत्रास्ति प्रिकारदूषणम् ॥

अलकृता येन प्रिराजते मही

रत्न विलुप्तं तदिहोत्तमोत्तमम् ॥ ४ ॥

भावार्थ — अरेरे ! जिनकी प्रकृति में कोई विकार नहीं, जिनके चारित्र में कुछ भी दूषण नहीं, ऐसा हमारा एक जगम रत्न कि जो जैन समाज का देदीप्यमान भूषण था उसे किसने छुटा लिया ? अरे ! जिनसे सम्पूर्ण विश्व अलकृत था ऐसा हमारा उत्तमोत्तम रत्न इस पृथ्वी पर से कहा गुम होगया ? ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तम्

आन्त्वार्थभूमानवलोकयाम

स्थले स्थले रत्नमिदं महार्थम् ॥

न दृश्यते कापि तदस्मदीयं

न चापि तत्तुल्यमथापरं हा । ५ ॥

भावार्थः—आर्यावर्त के देश देश ग्राम २ और स्थान २ घूम-२ कर इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति के लिये देखते फिरते हैं , छानबीन कर ढूँढते हैं परंतु वह अमूल्य जवाहिर कहीं भी नहीं दिखता । खेद है कि उसकी समानता वाला रत्न भी कहीं दृष्टिगत नहीं होता ॥ ५ ॥

कस्मात्तत्तुल्यमपरं न ? ।

अलौकिकं सुन्दरमद्वितीय

मनूनकं कान्ततरं विशुद्धम् ॥

अमन्दमानन्दपदं विपद्मं

पुण्यौघलभ्यं हि तदस्मदीयम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—वह हमारा जवाहिर-लौकिक नहीं परंतु लोकोत्तर था । रमणीय से रमणीय और बिना जोड़ी का अर्थात् जिसकी समानता कोई न कर सके ऐसा, एक्की था-जिसमें कुछ भी न्यूनता न थी । अतिशय मनोद्वय और दूषण रहित विशुद्ध था, जिसकी ज्योति कभी मंद न होती थी सबको आनन्ददाई था, विपत्तिविध्वंसक यह रत्न सचमुच समाजके पुण्योदय से ही यहां प्राप्त हुआ था ॥६॥

स्थातुं न योग्यः किमु मर्त्यलोकः

स्वर्गेश्चनावश्यकतास्य जाता ॥

चलेशः स्वपचेऽरुचिकारणं किं

कस्माद्गतं स्वर्वसुधां विहाय ! ॥ ७ ॥

भावार्थः—क्या उस जग्राहिर के रहने के लिये यह मृत्युलोक-
मनुष्य लोक उचित न था ? या स्वर्गलोक में वसकी विशेष आव-
श्यकता होने से कोई उसे वहां ले गया ? या वर्तमान प्रचलित
सांप्रदायिक तलाश के कारण यहां रहने से उसे अरुचि हुई ? कि-
लिय वह इस पृथ्वी पर कहीं न रहते स्वर्गलोक में चला
गया ? ॥७॥

हतं न केनापि वृथाऽत्र शोधः

प्राप्तुं न शक्यं पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥

गतं भयं तत्खलु दिव्यलोकं

प्रयोजनं किं तदहं न जाने ॥८॥

भावार्थः—हे मानवो ! तुम्हारा यह अमूल्य रत्न इस पृथ्वी
पर किसीने नहीं चुराया, इसलिये उसे ढूँढना वृथा-निष्फल है,
इस पृथ्वी की समझ में पर पादे जितनी तलाश करो सोभी यह
कहीं न मिलेगा, वह स्वतः दिव्यलोक-स्वर्ग की ओर प्रयाण कर
गया है । “किस लिये” यह प्रश्न करोगे तो मैं इस का प्रत्युत्तर देने
में असमर्थ हूँ कारण मैं इस विषय से विशेष विज्ञ नहीं हूँ ॥८॥

प्राचीन इतिहास और गुर्वावली ।

ज्ञानियों का कथन है कि मनुष्यत्व ही ईश्वरता प्राप्ति का मूल साधन है । क्योंकि वह ज्ञानी एवम् विचारवान है इसलिए ब्रह्मासार, सत्यासत्य, धर्मार्धर्म और आत्मअनात्म तत्त्वों का निर्णय कर सकता है उन्नति के आकाशमें मनुष्य कितनी ऊँचाई तक प्रयाण कर सकता है । यह कोई नहीं बता सकता, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार खोलने का सामर्थ्य मनुष्य ही रखता है, प्रभु के गुण वह अपनी आत्मा में प्रकाश कर प्रभुता प्राप्त कर सकता है । समस्त बंधनों से मुक्त होना एवम् सच्ची और सर्वकाल व्यापिनी स्वतंत्रता प्राप्त करना, सर्वदुःखों से मुक्त हो शाश्वत शांति प्राप्त करना यही उन्नति का शिरो-विन्दु है इसीको परमपद—परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं, इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मनुष्य के सिवाय अन्य प्राणी में नहीं होती ।

परन्तु जब तक मनुष्य जन्म का उद्देश्य न समझ सके, स्वस्वरूप का भान न हो सके, जगत् जिस रूपमें है उसी रूपमें उसे न पहि-
चान सके और मोक्ष का यथार्थ मार्ग न ज्ञात कर सके तब तक मनुष्य जन्म सार्थक नहीं । इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि मोक्ष मार्ग ग्रहण कर उस मार्ग पर आगे बढ़े जिससे जन्म, जरा,

मृत्यु और रोग शोकादि दुःखोंकी निवृत्ति हो । परन्तु जिस तरह किसी वन में भटकते हुए मनुष्य को राह दिखाकर बाहर निकालने वाले पथदर्शक की आवश्यकता है इसी तरह इस सांसारिक विकट वन से पार हो मोक्ष नगर पहुँचाने के लिये भी किसी सन्मार्गदर्शक पथिक की आवश्यकता है । इसलिये जो महान् पुरुष इससे जाता हैं उनका अवलम्बन करना उनकी आज्ञा मानना और उनका अनुकरण करना सर्वोत्तम उपाय है ।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं, अनादि काल से ऐसी विश्व व्यवस्था है कि जब २ इन आत्माओंकी आवश्यकता होती है तब २ उनका प्रादुर्भाव होता है, ये सांसारिक क्षुद्र वामनाएँ त्याग संसार को करने जन्म समय की स्थिति से अनिक उद्यमर स्थिति में लाने का निष्काम वृत्ति से प्रयत्न करते हैं इनका समस्त ध्येय्य परोपकारार्थ लगता है । संसार के कल्याणार्थ अपनी अपना समर्पण करते भी ये सदा सत्पर रहते हैं और कर्तव्य पालन करने हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं करते, उनके आचार विचार, नीति रीति, जीवन के छोटे बड़े समस्त काम धुन की तरह संसार सागर में अपनी जीवननौका चलाने के लिये दिशा दिखाने को अटल बने रहते हैं ।

उपरोक्त महात्माओं में भी जो रागद्वेष से सर्वथा मुक्त हैं

आत्मा के मूल गुणों में बाधक मोह ममत्व के परदे चार ढालते हैं, ज्ञानावरणीयादि चार घन घाती कर्म को समूल नष्ट कर आत्मा अन्तर्गत स्थित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य (शक्ति) उपार्जन करते हैं । परमात्मा के नाम से सम्बोधित होते हैं । वे राग द्वेष को जीतने वाले होने से जिन और साधु साध्वी आवक श्राविका चार तीर्थ के स्थापक होने से तीर्थकर कहे जाते हैं ।

अनंत करुणा के सागर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जिनदेव जगत् के उद्धार के निमित्त जो मार्ग दर्शाते हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार जो २ नियम योजित करते हैं और जो २ आज्ञाएं फरमाते हैं उन्हें धर्म अथवा शासन ऐसी संज्ञा देते हैं । ऐसे जितेश्वर देव पंच महा विदेह क्षेत्र में सर्वदा विद्यमान हैं, परंतु भरत और इक्ष्वाकु क्षेत्र में नहीं । यहां जो कालचक्र घूमा ही करता है जैसे समुद्र का पानी छः घंटों तक ऊंचा चढ़ता और छः घंटों तक नीचे उतरता है सूर्य छः माह उत्तर में और छः माह दक्षिण में प्रयाण किया करता है, इसी अनुसार नियमित गति से फिरते कालचक्र में भी धर्म, अधर्म और सुख, दुःख फिरा करते हैं, न्यूनाधिक हुआ करते हैं । बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम के एक कालचक्र के उत्पत्तिणी और अवसर्पिणी ये दो विभाग हैं, प्रत्येक के छः आरे कल्पित किये हैं, इन छः आराओं में से

तीसरे और चौथे आराओं में तीर्थंकरों का अस्तित्व रहता है जो चट्टनी उत्कर्षणी काल में २४ और अनन्त अवमर्षणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौबीसी होती हैं ऐसे अनन्त कालचक्र फिर गए और अनन्त तीर्थंकर हो गए हैं।

अबने इन भारत क्षेत्र में वर्तमान अवमर्षणी के चौथे आरे में उपभद्र से महाधीर स्वामी तक २४ तीर्थंकर हुए। इनमें चरम तीर्थंकर श्री महाधीर प्रभुका वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महाधीर स्वामी का जन्म आज से २५२० वर्ष पूर्व (ई० सन ५६६ वर्ष पूर्व) पूर्वमेघन विहार के कुँदपुर नगर के * क्षत्रिय कुल भूपर, क्षत्रवशी, राम्यर गोत्री मित्रार्थ राजा के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम * निशाना देवी था। प्रभुगर्भ में थे तबही से राजा मित्रार्थ के राज्य विस्तार में तथा धन धान्यादि

* सब तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग जगदुद्धार करने के लिये समय लेते हैं। † त्रिशलादेवी सिंध देश के महाराजा चेटक (चेडा) की -प्रेष्ठपुत्री थी। उनका दूसरा नाम त्रियरारिणी था। उनकी बहिन चेतला मगध देश के अधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेष्ठिक जो भारतीय इतिहास में विम्बसार के नाम से प्रसिद्ध है उनकी पटरानी थी।

के भंडार में अति अभिवृद्धि हुई इससे पुत्र का नाम, जन्म होने पर वद्धमान दिया गया था। पश्चात् अपने अद्भुत पराक्रम के कारण महावीर के नाम से विश्व में विख्यात हुए। अनंत पुण्योदय से तीर्थ-कर पद प्राप्त होता है पुण्य अर्थात् शुभ कर्म के पुद्गलों में शुभ व्रतों को आकर्षित करने का अतुल्य सामर्थ्य है जिससे तीर्थंकरों की शरीर सम्पदा, वाणीविभव, और मनोबल आदि असाधारण होते हैं।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर यशोमती नाम की एक सद्गुण-वती और स्वरूपवाली राजकन्या के साथ महावीर का विवाह किया गया, जिससे प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई। संसार में रहते भी श्री महावीर का चित्त संसार से जलकमलवत् विरक्त था, तत्त्व चिन्तन में जिनके समय का सद्व्यय होता था। दुःखी दुनिया के दुःख दूर करने, दुनिया में शांति प्रसारित करने, यज्ञयागादि में धर्म निमित्त होत असंख्य पशुओं के बच को रोक सर्वत्र अहिंसा धर्म की विजयपताका फहराने, विषय कपायादि की ज्वाला से जलते जीवों को बचाने और प्राणीमात्र को हितकर हो ऐसा कर्तव्य मार्ग जगत् को दिखाने के लिये गृहवास त्याग संयम लेने की वाल्य-काल से ही उत्तरी प्रवृत्ति अभिजापा थी। तीस वर्ष की भर युवा-वस्था में उन्होंने राज्य-वैभव, विषय-सुख और कुटुम्ब परिवार का परित्याग कर दीक्षा ली। घोर तपश्चर्या कर, कर्म जला, केवलज्ञान

त करने को दृष्ट होए । राजमहल में रहने वाले सुकुमार राजपूत
 ॥ ६ ॥, व्याघ्रादि, हिंसक पशुओं के निवास स्थान भयानक अरुण्य
 अनेक उपसर्ग सहन करते विचरने लगे । अन्य परिग्रहों का
 त्याग करने के साथ २ ही देह ममत्व रूप परिग्रह का भी उन्होंने
 वैधा परिस्थाप किया था इसलिये शिशिर ऋतु की कलकलती
 ॥ में उत्तर हिन्द में जहां हिम पड़ता और शीत वायु बहती थी
 ॥ वं वे वस्त्र रहित समस्त राज्ञि ध्यानावस्था में बिताते थे । प्रभु
 ॥ कायोरुर्ग ध्यान में स्थित रहते थे सब कई समय ग्वाल आदि
 ॥ रचना से उन्हें पीटते थे । एक समय एक निर्दय ग्वालने प्रभु के
 ॥ न में खोलें ठोक दिये, दूसरे ग्वाल ने उनके दोनों पैर को मध्य
 ॥ पोछाई में अग्नि जला उस पर चीर पकाई, वो भी प्रभु ध्यान से
 ॥ चालित नहीं हुए । इसके सिवाय चंडकौशिक नाग, शूलपाणियज्ञ-
 ॥ गम देवता प्रभृति की ओर से प्राप्त परिसह तथा अनार्य देश
 ॥ विहार समय आनार्य लोगों के किये उपसर्गों का बर्णन सुनकर-
 ॥ नांच हो आता है ।

परंतु क्षमा के सागर भी महावीर स्वामी ऐसे विषम समय
 ॥ भी कर्मक्षय का कारण समस्त आनंदपूर्वक सहन कर लेते थे ।
 ॥ पसर्ग करने वालों का भी श्रेय चाहते अथवा श्रेय मार्ग की ओर
 ॥ उन्हें लगा देते थे । गौश लाने उनपर तेजोलेरया छोड़ी तोभी प्रभु

ने उसे उपदेश दे स्वर्ग पहुंचाय । चंडकौशिक र्ष ने उन्हें काटो परंतु उसे जातिस्मरण ज्ञान करा स्वर्ग का अधिकारी बनाया ।

प्रभु की घोर तपश्चर्या का वर्णन भी आश्चर्यकारी है कई समय तो वे चार २ छः छः माह तक निराहारी रह कायात्सर्ग ध्यान धरते थे । शरीर पर से मूर्च्छाभाव त्याग, इच्छा का निरोध कर इन्द्रियों की विषयासक्ति हटा आत्मभाव में अटल रहते । बारह वर्ष और ६॥ माह व्यतीत हुए, छद्मावस्था के ४५१५ दिनों में उन्होंने सिर्फ ३५० दिन आहार किया था ।

इस तरह तप्त प्रचंड दावानल द्वाग कर्म काष्ठ का दहन कर तथा शुक्त ध्यान ध्याते चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हुआ और आदि कालसे गुप्त रही हुई केवल ज्योति उदय हुई जिसे प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए—लोकालोक को हस्तामलकवत् देखने लगे, आज तक प्रभु प्रायः मौन थे, परन्तु अब सम्पूर्ण ज्ञानी होजाने से करुणा-सिन्धु भगवाननं जगत् के उद्धारार्थ मोक्ष मार्ग की प्ररूपना की । पैंतीस गुणयुक्त प्रभु की अनुपम वाणी प्राणी मात्र को हितकारी, अनंतानंत भाव भेदों से पूर्ण, तथा भाव समुद्र से तिराने के लिये नौका समान थी । इस वाणी द्वारा प्रभुने मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये—ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप ।

ज्ञानः— ज्ञानद्वारा जीवाजीवादि वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप

समझा जाता है, स्व और पर द्रव्यों की परिचान होती है । परपशु
 अर्थान् पुन्यल मे समस्त दूर हो, आत्मभयमें स्थित होता है ।
 आत्माके चरन ज्ञान और आत्मसाधन का भाव होता है अनादि
 काल मे स्व चरन आत्म विनाशक वैश्वलिक दशा में अहं समस्त
 धारण पर राग द्वेष के बंधनमे बंधा हुआ है और उगमे ही चतु
 र्गति ससार के अनंत दुःख मदन करने पड़ने हैं । उत्तरी सत्यता
 प्रमाणित होती है, देहादिक परपशु में समस्त न रहने से दुःख छू
 नहीं सका, शारवत मुख का अखूट भहार तो अपनी आत्मा ही है
 ऐसा बने साक्षात्कार होता है मत्र आत्मा समान हैं ऐसा भाव होता
 ही सर्वज्ञ पर समदृष्टि होती है मत्र ज्यों को अपने समान समझने
 लगता है जिसे भैरवविरोध और लोभ को यदि दुर्गण एवम् तज्जन्य
 दुःखों का मदन अभय हो जाता है । जगत् के छोटे बड़ समस्त प्राणीयों
 के मुख की ही जनन् मृदा रहती है, मुख मरको सर्वज्ञ प्रिय होता
 है, ऐसा समझकर वह सत्का सुखी करने के लिये प्रेरित होता है,
 इसने ज्ञानी पुरुष नेत्री, प्रमोद, कारुण्य और माधुर्य भावनाएँ
 भा मोक्ष की कुञ्जी प्राप्त कर लेते हैं, मैं अजर अमर अधिभासी हूँ
 देह के नाश से मेरा नाश नहीं, ऐसा समझ कर वह भय का नाम
 निशान मिटा देता है और मृत्यु मे नहीं डरता है । जो मृत्यु से
 नहीं डरता वह क्या नहीं कर सकता ? अर्थान् सब सिद्धियाँ प्राप्त कर
 सक है इसलिये ज्ञानका साक्ष की प्रथम पंक्ति का स्थान दे प्रभु करमाते

हैं निःसंशय आया मे निश्चया मे विश्वाया मे आया, जेण निश्वाण्ड मे आया” अर्थात् जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है वही आत्मा है और जिससे बोध हो सकता है वही आत्मा है । श्री आचारार्य—सूत्र में प्रभु ने ज्ञान का अपार महत्व दिखाया है, ज्ञान से ही वीतरागता प्राप्त होती है और वीतराग दशाही सब सुखोंका आश्रय स्थान है ।

दर्शन—ज्ञान द्वारा जो सूझा है उस पर श्रद्धा करना दर्शन कहलाता है । कई मनुष्य ज्ञान्य भवण या सद्गुरु के उपदेश से धर्मका स्वरूप समझते हैं परन्तु जबतक उसपर अटल विश्वास न हो तबतक उसी अनुसार व्यवहार होना अशक्य है, इसलिए सम्यग्दर्शन अथवा सच्ची श्रद्धा की पूर्ण आवश्यकता है ।

चारित्र—मोक्ष मार्ग की तीसरी सीढ़ी चारित्र्य है, ज्ञान से मार्ग सूझा और श्रद्धा से उसे सत्य माना भी परन्तु जबतक उस मार्ग पर न चला जाय तबतक नियत स्थान पर पहुँचना असंभव है इसलिये ज्ञानानुसार व्यवहार होना उचित है । ज्ञानका फल ही चारित्र है “ ज्ञानम्य फलम् विरतिः ” चारित्र बिना ज्ञान निष्फल है ।

प्राणातिपात अर्थात् हिंसा, असत्य आदि अठारह पापों का त्याग

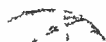
करना, पंचमहाप्रव, तीन गुप्ति और पांचस्मृति धारण करना ही चारित्र है ।

तपः—मोक्षकी चतुर्थ सार्द्धी तप है । उसके छः अभ्यन्तर और छः बाह्य, बंधारह भेद हैं । चारित्र से नये कर्मकी आमद रुकती है और तपसे पूर्वकृत कर्म छय कर सके हैं । सिर्फ भूछे रहना ही प्रभुने तप नहीं करमाया, पापका प्रायश्चित्त करना, बड़ोंका वित्तय करना, बैयावृत्त्य अर्थान् सबकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान धरना, और कायोत्सर्ग करना येभी तप के भेद हैं । इस तप को उत्तम अभ्यन्तर तप कहते हैं । उपवास करना, छणोदरी अर्थात् कम खाना, वृत्ति संज्ञेय अर्थात् इच्छाओंका निरोध करना, रस परित्याग करना, देहका दमन करना, इन्द्रियों को बरा करना ये छः प्रकारका बाह्य तप है ।

आत्मा और कर्म के धूयक् करने के उपरोक्त चार प्रयोग प्रभुने फरमाये हैं । अनन्त ज्ञानी भी वीर प्रभु की बाणी का सार लिखना दोनों मुन्नाओं द्वारा महासागर तिरने के समान उपहास मात्र साहस है सोभी प्रवचन सागर में से बिंदुरूप दर्शाने का सिर्फ यही आशय है कि जैनधर्मकी भावना कितनी सर्वोत्कृष्ट है, ऐसी उदार और पवित्र भावनाओंका विश्वमें प्रचार करनेके समान परमानन्दक और पारमार्थिक कार्य दूसरा क्या है ?

श्री महावीर स्वामी को केवल्य ज्ञान उपार्जन होनेके पश्चात् श्री गौतम स्वामी आदि ग्यारह विद्वान् ब्राह्मण धर्मगुरु स्वपत्नी शंकाओं का समाधान करने के लिये प्रभु के पास आये, उनकी शंका निवृत्त हुई और तत्त्वावबोध होने से वे प्रभु के शिष्य बन गए, प्रभुने उनको चारित्र्य मुकुट पहिनाया, त्रिपदी विद्या सिखाई और गणधर पद अर्पण किया, ये ग्यारह ब्राह्मण धर्माचार्योंके साथ उनके ४४०० शिष्योंने श्रीप्रभु के पास हीछा ली, श्री महावीर स्वामी ने साधु, साध्वी, आचर्य, आश्रमिक इन चार तीर्थों की स्थापना की। देशदेश में विचर कर, धर्मोपदेश द्वारा कई जीवों को प्रतिबोध दिया, अनेक राजा महाराजाओं को प्रभुने शिष्य बनाया। मगध देशका राजा श्रेणिक तथा उसका पुत्र कौणिक ये महावीर प्रभुके परम भक्त हुए, इनके सिवाय चेटक, चन्द्रप्रद्योत, उदायन, नन्दीवर्धन दशार्णभद्र * जितशत्रु, श्वेतराजा, त्रिजय राजा, तथा पावापुरी का हस्तिपाल नामक राजा प्रभुति अनेक राजा महाराजाओं ने श्री वीर प्रभुकी वाणी सुनकर जैनधर्म अंगीकृत किया था। प्रभु तीस वर्ष तक केवलपन से पृथ्वी को पावन करते विचरते अनेक जीवों को तारते रहे और चरम चौमास पावापुरी नगरी में किया। वहां हस्तीपाल राजा की प्राचीन राजसभा में दो दिन का अनशनव्रत

नोट—जितशत्रु ये कलिंगदेश के यादव वंशी महाराजा थे इनके साथ महाराजा सिद्धार्थ की बहिन का व्याह किया था।



घाण कर प्रभु उत्तराध्ययन सूत्र फरमाते थे १८ देश के राजादि भी छठ पौष कर प्रभु की बाणों श्रवण करते थे, इस स्थिति में कार्तिक माह की अमावस्या की रात्रि को पिछले प्रहर चार कर्मों का क्षय कर ७२ वर्ष का पूर्ण आयुध्य भोग प्रभु निर्वाण—मोक्ष पधारे—राश्वेत सिद्ध पद को प्राप्त हुए ।

श्री वीर प्रभुके पवित्र शासन को विजयवश चलाने वाले वीर शासन रूपी आकाश में उदय हो, सूर्यवन् प्रकाश करने का अथवा वीर प्रभु के लगाये हुए कल्पवृक्ष को जल मीचन क तपपल्लित रखने वाले जो २ महात्मा उनके शासन में हुए उनर बुद्ध इतिहास अब देखते हैं ।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण समय श्रीगौतम स्वामी श्री आ सुधर्मा स्वामी ये दो गणधर विगमान थे । रोप नौ गणधर प्रभु के प्रथम ही मास पधार गए थे, जिस रात्रि को महावीर प्रभु मोक्ष पधार उनी रात को भगवान् पर से मोह दूर होन पर गीता स्वामी केवज्जानी हुए । केवमी को आचार्य पद नहीं मिलता इस लिय श्री सुधर्मा स्वामी श्री महावीर स्वामी के आसन पर विराजे । श्री गौतम स्वामी १२ वर्ष तक केवल्य प्रव्रज्या पाल ६२ वर्ष को अरथा में मोक्ष पधारे ।

१ सुधर्मास्वामी:—एक समय राजगृही नगरी में पधारे । महा

अपभदत्त नामक एक धनाढ्य श्रावक तथा उनका पुत्र जम्बूकुमार कि जिनका आठ स्वरूपवती कन्याओं के साथ सम्बन्ध हुआ था, उपदेश श्रवण करने आये। अपूर्व उपदेश कर्णगोचर होते ही जम्बू स्वामी की आत्मा मोह निद्रा से जागृत होगई। उन्हें वैराग्य स्फुरित हुआ। संसार की अनित्यता का भान होते ही शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिये उनका मन ललचाया। घर आ माता पितासे दीक्षार्थ आज्ञा चाही, अतिआग्रह के कारण माता पिता ने जम्बू स्वामी से आठों कन्याओं के साथ विवाह करने पश्चात् दीक्षा लेने का अनुरोध किया, जम्बू स्वामीने मंजूर किया, लग्न हुए, आठों तत्काल व्याही हुई स्त्रियों से जम्बू स्वामीने प्रथम रात को ही दीक्षा लेने का अभिप्राय दर्शाया, पति पत्नियों में वैराग्य और श्रृंगार विषय का बहुत रसमय संवाद शुरू हुआ, इतने में प्रभवा नामक एक राजपुत्र जो अपनी राजगादी न मिलने से लूट खसौट का धंभा करता था ५०० चोर सहित जम्बू स्वामी के घर में घुसा। चोरी का पाप कृत्य करते वैराग्य रस पूरित वचनामृत उसके कर्णपट पर पड़े, पड़ते ही उसे अपने आपकृत्यों का पश्चात्ताप होने लगा और वैराग्य उत्पन्न हुआ, आठ स्त्रियां भी संवाद में पतिसे पराजित हो वैराग्य रस में लीन होगई। उन्होंने तथा प्रभवादिक ५०० चोरों ने पंसार परित्याग कर सुधर्मी स्वामी के पास दीक्षा ली। उस समय जम्बू की उम्र सिर्फ १६ वर्ष की थी।

जम्बूस्वामी को वत्सावबोध होने के लिये श्री महावीर स्वामी की अर्थ रूप प्रकाशी हुई। अनन्त भाव भेद भय वाणीमें से सुधर्मा स्वामी ने द्वादश अंग और उपांग की योजना की। वर्तमान काल में आचारगादि जो जिनागम हैं वे गणरर श्री सुधर्मा स्वामी क प्रथित किये हुए हैं प्रभु के निर्वाण के पश्चात् १२ वें वर्ष सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान उद्योगित हुआ और २० वें वर्ष १०० वर्ष की आयु भोगने पर मोक्ष पर प्राप्त हुआ।

२ जम्बू स्वामी:—श्री सुधर्मा के पश्चात् श्री जम्बूस्वामी पाट पर विराज। श्री वीर स्वामी के २० वर्ष पश्चात् उन्होंने केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ और ६४ वें वर्ष ८० वर्ष की आयु भोग मोक्ष पधारे। श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् भरत क्षेत्र से दस वस्तुएँ विच्छेद होगईं। १ केवल्य ज्ञान २ मन पर्यव ज्ञान ३ परमावधि ज्ञान ४ पुत्राकलत्र ५ आहारिक शरीर ६ क्षपक भेणी ७ उपराम भेणी ८ परिहारनिष्ठक मूत्रम सपराय और यथाप्राप्त ये तीन चात्रिज हस्तिनकली गाधु और १० क्षायिक सम्यक्त्व।

३ प्रमदा स्वामी:—श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् श्री प्रमदा स्वामी पाट पर विराजे, उन्होंने ज्ञानोपयोग द्वारा राजगृहीके वासी शायंभवमट्ट को आचार्य पर योग्य समस्त उपदेश दिया और उन्होंने दीक्षा ली, ८५ वर्ष की आयु पर भोग कर वीर निर्वाण में ७५ वर्ष बाद श्री प्रमदास्वामी मोक्ष पधारे।

४—श्री शय्यंभव स्वामी—उनके पश्चात् श्री शय्यंभव स्वामी आचार्य हुए उन्होंने दीक्षा ली उस समय उनकी स्त्री गर्भवती थी उससे । मनक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । मनक ने नवें वर्ष में पिता के पास दीक्षा ली, परंतु पिताने उसकी आयु अल्प समझ उसे अल्प समय में श्रुतज्ञानी बनाने के आशय से पूर्व में से दशवैकालिक सूत्र का उद्धार कर मनक मुनि को अध्ययन कराया । अणुगार धर्म आराधक दीक्षा लिये पश्चात् छः महीने से ही मनक मुनि स्वर्ग पधार गए और शय्यंभव स्वामी भी वीर निर्वाण संवत् ६८ में स्वर्ग पधारे ।

५ श्री यशोभद्र स्वामी—श्री शय्यंभव स्वामी के पाट पर यशोभद्र स्वामी विराजे—वे वीर प्रभु पश्चात् १४८ वें वर्ष में स्वर्ग पधारे ।

६ श्री संभूति विजय स्वामी—यशोभद्र स्वामी के पश्चात् श्री संभूति विजय स्वामी आचार्य हुए । वे वीर संवत् १५६ वें वर्ष स्वर्ग पधारे ।

७ श्री भद्रबाहु स्वामी—दक्षिण देशके प्रतिष्ठानपुर नगर में भद्रबाहु तथा चराहभिहिर नामक ब्राह्मण रहते थे, उन्होंने यशोभद्र स्वामी का उपदेश श्रवण कर वैराग्य पा दीक्षा ली—भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्व धारी हुए और संभूति विजय स्वामी के पश्चात्

आचार्य हुए। वराहमिहिर को इनसे ईर्ष्या हुई और जैन दीक्षा त्याग
ज्योतिष विद्या के बन से लोगों में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने धराट् सोहना
नामक एक ज्योतिष शास्त्र रनाया है ऐसी कथा प्रचलित है कि वे
सापस पर अज्ञान तर में तप्त हो मरने पर व्यतर देव हुए और जैनों
को उपद्रव प्रसित करने के लिये महामारी रोग फैलाया, जम उपसर्ग
की शान्ति के लिये भद्रबाहु स्वामीने ' चरसगाडर ' स्तोत्र रचा
और उनके प्रभाव से उपद्रव शान्त होगया। इतिहास प्रसिद्ध मौयं
धरीय * चद्रगुप्त राजा भद्रबाहु, स्वामी का परम भक्त हुआ।

* भैरविक राजा का पौत्र वडाई जपुय मरने के पश्चात् पाटली
पुत्र की गादी एक नाई (इजाम) के नंद नामक पुत्र को प्राप्त
हुई, इस राजा का कल्पक नामक मंत्री था। अगुप्त ने नंद वरा के
नौ राजा हुए और उसके प्रधान मंत्री कल्पक वशी हुए।

आणन्य नामक भाक्षणकी सहायता से चद्रगुप्तने
वराचित किया जिससे वह पाटलीपुत्र का राजा हुआ। नंद के
वराजों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया था, चंद्रगुप्त राजा जैनी था
इसलिये धर्म द्वेष के कारण मुद्रा राजस आदि पुस्तकों में उसे
कुट्ट जातिकी कहा है परन्तु उत्तमिय वरकारिणी महासभा ने अनेक
अस्मन् प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि चद्रगुप्त शुद्ध
सौर्यवंशी क्षत्रिय था।

ग्रीस का राजा महान् सिकंदर (Alexander the great.) चन्द्र गुप्त के समय भारत पर चढ़ आया था. (ई० सन् पूर्व ३२७ से ३३३ ग्रीक लेखक के कथनानुसार चन्द्रगुप्त के पास २० हजार युद्ध सवार, २ लाख सैनिक, २ हजार रथ तथा ४ हजार हाथी थे, सिकंदर के सेनापति सिल्युकस को चन्द्रगुप्त राजा ने युद्ध में पराजित कर भगा दिया था ।

वीर-निर्घाण के पश्चात् १७० वें वर्ष श्री भद्रबाहु स्वामी स्वर्ग पधारे उनके पश्चात् चौदह पूर्वधारी साधु भरतक्षेत्र में नहीं हुए.

८ स्थूलिभद्र स्वामी—नवें नंद राजा का कल्पक वंशीय शकडाल नामक सज्जी था. उसके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे, पाटली पुत्रमें कोशा नामक एक अतिरूप वाली वेश्या रहती थी. प्रधान पुत्र स्थूलिभद्र उसके प्रेमपाश में फँस गया और हमेशा वहाँ रहने लगा, शकडाल के पश्चात् श्रीयक को प्रधान पद देने लगे परन्तु श्रीयक ने कहा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्रजी १२ वर्ष से कोशा वेश्या के घर में रहते हैं उन्हें बुलाकर मंत्री पद दीजिये, राजा ने स्थूलिभद्र को बुलाकर मन्त्रीपद लेने को निमन्त्रित किया, लज्जावश स्थूलिभद्र राज्य सभा में नीची दृष्टिसे देखता रहा और विचारकर उत्तर देने की प्रार्थना की. गहन विचार करते राज्य-खटपट में पड़ना उन्हें योग्य न जच्यो, संसार भी उन्हें अनित्य मालूम हुआ । वे वैराग्य उत्पन्न होने पर

साधुबेप पहिन राजसभा में आये और कहा कि राजन् ! मैंने तो ऐसा विचार किया है, फिर उन्होंने संभूतिविजय स्वामी के पास मे दीक्षा ली चातुर्मास समीप समझ उन्होंने कोशा बेरया के यक्ष चातुर्मास निर्गमन करने की गुरु से आज्ञा मागी, गुरुने भ्रयस्कर समझ आज्ञा देदी. उसी समय तीन दूसरे मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्प के बिल में और कुए के रहेंद समीप चातुर्मास करने की आज्ञा ले निकले ।

स्थूलिमद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देख कर बेरया ने सोचा ऐसे सुकोमल देहवाले से इतने कठिन महाप्रतों का पातन किस रीती से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा । स्थूलिमद्र को समीप आते ही बेरयाने विशेष आदर सम्मान दे कहा स्वामिन् ! इस दार्ढ्य पर महत्त कृपा की जो आज्ञा हो वह सुख से पमाइये निर्मोही निर्बिकारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत करना । बेरयाने चित्रशाला सुपुर्द कर दी । पश्चात् रत्नादिष्ट मोनन बहिराये फिर उत्तम रंगार कर उनके सामने आ गयी हुई । पूर्वप्रेम का स्मरणकर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह बेरया अत्यन्त हाव भाव दिखाने लगी । परन्तु मुनिराज तो मेहके समान अटल रहे । मनमें लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरम् उस बेरया को भी उपदेश दे आशिका बना लिया, चातुर्मास पूर्ण हुआ. वे गुरु के पास आये, वहांतक सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी

आ पहुँचे थे। सब से अधिक सन्मान गुरुजी ने स्थूलीभद्रका किया, जिससे अन्य शिष्यों को ईर्ष्या हुई और द्वितीय चातुर्मास लगते ही उन्होंने ने भी कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास करने की आज्ञा चाही। गुरुके ह्न्कार करने पर भी वे कोशा वेश्याके यहां गये, एकांत में वेश्या का अद्भुत रूप देखकर ही मुनिवरोंका मन चलायमान होगया, परंतु कोशा श्राविका ने उन्हें युक्ति से उपदेश दे गुरुके पास वापिस पठाया।

श्री भद्रबाहु स्वामी नेपाल देशमें विचरते थे. उनके पास जाकर स्थूलीभद्र मुनि ने १० पूर्व का अभ्यास किया और भद्रबाहुस्वामी के पश्चात् उन्होंने ही आचार्यपद दिपाया, श्रीवीरनिर्वाण के पश्चात् २१५ वें वर्ष स्थूलीभद्रजी स्वर्ग पधारे।

६ श्री आर्यमहागिरि—श्री स्थूलीभद्रजीके आसनपर आर्य-महागिरि तथा आर्य सुहस्ति स्वामी पधारे. इनके समय बड़ा भारी दुष्काल पड़ा तो भी अन्न की स्पृहा न करने वाले जैन मुनियों को लोग भाव से आहार बहराते थे. एक समय एक जुधा पीडित भिक्षुक गोचरी से वापिस आते समय मुनियों के पीछे २ अन्न के लिये घबराता हुआ उपाश्रय में आया, आर्यसुहस्तिजी ने कहा कि साधु के सिवाय हमारा आहार पाने का हकदार कोई नहीं हो सकता. तत्काल उसने दीक्षा ली और अधिक दिन से जुधापीडित होने से

इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतिक पष्ट पाने लगा, उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औपधोष-चार आदि से उचित वैयावृत्त्य को, मिर्क जैन-मुनिका वेष पहिरने में ही अपनी स्थिति में अमीन आममान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना मह मरकर पाटली पुत्र के राजा चद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल, कुणाल का साम्प्रति नामक पुत्र हुआ ।

साम्प्रति राजा को आर्य सुदस्ति महाराज के समागम से जानि स्मरण हान होगया उन्होंने भानक के बारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की परित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपटहा (डिंडोरा) बजबाया अनार्य देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग अहिंसा धर्म के प्रेमी बनाये;—

एक वक्त आर्य सुदस्तिजी उज्जैन पधारे और भद्रा सेठानी की अग्रशाला में बतारे भद्रा का अयनी सुकुमार नामक एक महा नेजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था । एक समय आचार्य महाराज पांचवें देवलोक के न्यूनना गुह्य विमान का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अत्रि

सुकुमार ने सोचा कि पूर्व में ऐसी रचना मैंने कहीं साक्षात् देखी है विचार करने पर उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, माता की आज्ञा ले आचार्य के समीप दीक्षा ली. अधिक समय तक साधुता के घोर कष्ट सहन करते रहना उन्हें योग्य न जंचा जिसेसे गुरु से अर्ज की कि आपकी आज्ञा हो तो अनशन कर जहां से आया हूं वहां शीघ्र जाऊं ।

गुरु की आज्ञा पाते ही स्मशान में जा कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हुए राइ में कंकर कांटे लगने से सुकुमार मुनि के पैरों से रक्त धारा बहने लगी थी उस रक्त को चूमती चाटती हुई एक सियालनी मय बच्चों के ध्यानस्थ मुनि समीप आई और उनके शरीर को भक्ष्य बनाया आत्मभाव में स्थित मुनि तनिक भी न डिगे समाधि पूर्वक काल कर नलिनी गुल्म विमान में देवता हुए दृढ़ मनो बला द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? एक प्रहर में पांचवें देवलोक की समृद्धि प्राप्त करने वाले कुमार ! धन्य है आपके धैर्य को ! वीर-निर्वाण के पश्चात् २४५ वें वर्ष आर्य महागिरी और २६५ में वधे आर्य सुहस्ति स्वामी स्वर्ग पधारे ।

१० बलिसिंहजी (बालिसिंहजी) आर्य महागिरी के पाठ पर उनके शिष्य बलसिंहजी पधारे, उनके शिष्य उमास्वामी और उमास्वामी के शिष्य श्यामाचार्य हुए. इन्ही श्यामाचार्य ने श्री पद्मापना सूत्रको पूर्व से उद्धृत किया, उनके पश्चात् अनुक्रम से ११ सोवन स्वामी १२

धीरस्वामी १३ रेंडिल्ल स्वामी १४ जीवधर स्वामी १५ आर्य
समेद स्वामी १६ नर्दल स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवंत
स्वामी १९ सिंहगणिजी २० चंडिलाचार्य २१ हेमवत स्वामी २२
नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतदीन स्वामी २५
छोहगणिजी २६ दुःसहगणिजी और २७ देवार्थिगणिजी कुमा
श्रमण हुए ।

श्री धीर निर्वाण से ६८० वें वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१० में
समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता समझ वर्तमान प्रचलित
अरने साधन समझ काने का योग्य विचार किया । बलभीपुर (कठिया-
वाड़ में भावनगर के पास बला रोट है) में टाडकृत राजस्थान में
लिखे अनुसार जैनियों की घनी बस्ती थी और राज्य शासन शिलादिस्थ
के हाथ में था जैन धर्म की विजय ध्वजा कइएने वाले इस प्रसिद्ध
शहर पर वि० सं० ५२५ में पारसियन, गेट और हूण लोगों ने
हमला किया, जिससे तीस हजार जैन कुटुम्बी बह शहर त्याग मारवाड़
में जा बसे. इस भगामगी दुष्काल के कारण लिखा हुआ पूर्ण शुद्ध
नहीं हुआ जिससे सूत्रों की शुद्धता क्षिणभिन्न होगई फिर बौद्ध
लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपर्चा बन जैन शासन को
समुच्छेद सत्ता डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से श्री
भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जैन
विद्वान् हुए तो भी उनकी कृति हाथ नहीं लगती.

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पाठ पर अनुक्रम से २८ वीरभद्र
 २९ संकरभद्र ३० यशोभद्र ३१ वीरसेन ३२ वीरसंग्राम ३३ जिनसेन
 ३४ हरिसेन ३५ जयसेन ३६ जगमाल ३७ देवऋषि ३८ भीमऋषि
 ३९ कर्मऋषि ४० राजऋषि ४१ देवसेन ४२ संकरसेन ४३ लक्ष्मी-
 लाभ ४४ राम ऋषि ४५ पद्मासुरि ४६ हरिस्वामी ४७ कुशलदत्त
 ४८ उवनी ऋषि ४९ जयसेन ५० विजयऋषि ५१ देवसेन ५२ सूरसेन
 ५३ महासूरसेन ५४ महासने ५५ गजसेन ५६ जयराज ५७ मिश्रसेन
 ५८ विजयसिंह ५९ शिवराजजी ६० लालजी ऋषि ६१ ज्ञानजी
 ऋषि हुए ।

महावीर प्रभु से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के १००० वर्ष
 दरम्यान वीर शासन सूर्य अपना दिव्य प्रकाश विश्व में प्रकट कर
 रहा था, परन्तु उनके पश्चात् से ज्ञानजी ऋषि के १०० वर्ष तक यह
 प्रकाश शनैः शनैः कम होता गया और ज्ञानजी ऋषि के समय तो
 जैन दर्शन की उद्योति बिल्कुल मंद होगई थी, निरंकुश और मानके
 भूखे साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपता, श्रावक वर्ग की अज्ञानता और अंध
 श्रद्धा, राज्यविप्लाव और अराजकता से भारत में व्याप्त हुई अंधाधुंधी
 आदि गाढ काले बादलों ने इस सूर्य को चारों ओर से घेर लिया था.

साधु अध्यात्मिक जीवन बिताते और व्यवहारिक खटपट से
 सर्वथा दूर रहते थे परन्तु उ्यों २ उनका अध्यात्म प्रेम कम होता

गया त्यों २ बाणाढम्बर की मृद्धि होने लगी, वे तुच्छ २ मत भेदों को
 पड़ा २ स्वस्थ हो गये २ मन्द उत्पन्न करने लगे, जिससे जैन संघ की
 ध्वनभिन्नता हो एकता नष्ट होते लगी। अपना पक्ष प्रबल और दूसरों का
 अयत्न करने के लिए परस्पर निन्दा और मिथ्या आक्षेप लगाने में
 ही उनका समय और शक्ति का अपव्यय होने लगा, इससे जैन-धर्म
 के अन्य गिरान्तों पर ही जैन-साधुनामधराने वालों के हाथ से
 ही बार २ कुटार प्रहार होने लगा, साधुओं में शिथिलाचार बढ गया
 वही तो महाशतम्बी और परिप्रद्वारी हांगण यतिके नाम जो कि
 क्षति पवित्र गिना जाता था, उस शब्द की महत्ता में हानि पहुँचाई.
 गावकों को अपने पक्ष में होन के लिये मंत्र, जंत्र और वैदिक आदि घतने
 मड़ने लगे तथा हिंसादि निषिद्ध कार्य करने पर तत्पर हुए मन, वचन और
 कर्मा के योग से भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना और करने वाले
 को ठीक नहीं समझना इस अष्टगार धर्म की मर्यादा का प्रत्यक्ष
 उल्लंघन होने लगा अन्य मतानुबन्धियों की प्रवृत्ति या अनुकरण कर
 म्यान २ पर देवालय और प्रतिमाएं स्थापन कीं, अपने २ पक्ष के व्यक्तियों के
 लिये उपाय बंधवाये बरघोड़े चढ़ना, उरसट करना, मोच नचाना:-
 इत्यादि प्रवृत्तियों के प्रेरक और नायक होना याति अपना कर्तव्य समझने
 लगे, सारांश यह है कि उस समय साधु वर्गसे चारित्र्य धर्म लोप होने लगा
 था और भावक समुदाय कर्त्तव्य से पदच्युत हो उनके पीछे २ उजड़ी

राह पर चलता था. ज्ञानजी ऋषि के समय जैन धर्म की परिस्थिति उपरोक्त थी ।

ऐसा होते भी वीर-शासन साधु विहीन नहीं हुआ । अनुयायियों की अल्प संख्या होते भी अल्प संख्या में साधु सर्व काल विद्यमान थे, जब २ घोर विमिर बढ़ जाता तब २ कोई न. कोई महापुरुष उत्पन्न होता और जैन प्रजा को सन्मार्गारुह करता था ।

जैन-शासन की मंद हुई उद्योति को विशेष उद्योत करने वाले अनेक नव युग प्रवर्तक समर्थ महात्मा इन दो हजार वर्षों में उत्पन्न हो चुके थे.

ज्ञानजी ऋषि के समय में भी ऐसे एक धर्म सुधारक महापुरुष की अत्यंत आवश्यकता उपस्थित हुई कि जो साधुवर्ग से उपरोक्त ऐशों को दूर कर सत्य का प्रकाश फैलावे और जैन-समाज में बढ़े हुए संदेह और मिथ्या मान्यता को नष्ट करे. इतिहास साक्षी है कि जब २ अंधाधुन्धी बढ़ जाती है तब २ कोई न कोई वीर नर पृथ्वी पर प्रकट हो पुनरुद्धार करता है, इसी नियमानुसार पंद्रह सौ के संवत् में ऐसा एक महान् धर्म सुधारक गुजरात के प.य तख्त अहमदाबाद शहर में ओसवाल (क्षत्रिय) जाति में उत्पन्न हुआ. उनका नाम लौकाशाह था, वे सर्फी का धंधा करते थे. राज्य दरबार में उनका अधिक मान था, इस्तासर उनके बहुत सुंदर थे.

बुद्धि सीमा एवम् निर्मल थी. जैन धर्म पर उनका अप्रतिम प्रेम था
 एक समय वे ज्ञानजी श्रुति के समीप उपाधय में आये उस
 समय ज्ञानजी श्रुति धर्म शास्त्र समालने और उन्हें योग्य द्रव्यस्था से
 रखने में लगे हुए थे उनके एक शिष्य ने सूत्र की प्रार्थना जीण
 प्रतियां देकर शाहजी से कहा, “ आपके सुंदर हस्ताक्षर इन
 पुस्तकों का पुनर्द्वार करने में उपयोगी नहीं होसके ? शाहजी ने
 अत्यंत आनंद के साथ सूत्र की जांयें प्रतियों की प्रति लिखि करने
 का कार्य स्वीकार दिया (विष्णु सन् १५०६ ई० सन् १४५२)
 अपने लिखे भी उन्होंने सूत्र की प्रतियां लिख लीं जिससे २
 वृद्ध विस्तीर्ण सूत्र ज्ञान होगया उनकी निर्मल और कुशल बुद्धि
 वीरस्वामी के पवित्र आशय को समझ गई, उनके ज्ञानननु सुन
 जाने से वीर भाषित अद्भुत धर्म और वर्तमान में विचरने वाले
 साधुओं की प्रवृत्ति में जमीन आसमान का सा अंतर दिखा, साधुओं
 की उत्सृज प्ररूपना उनसे अमल होगई जैन समाज की गति चलती
 दिशा में देखकर उन्हें बहुत खुश जंघा और सत्य को याथावध्य
 प्रकार करने की उनके मानस मंदिर में प्रबल स्फुरण हुई। प्रति पक्षी
 दल अत्यंत बढ़ा और शक्ति तथा साधन सम्पन्न था तो भी
 निर्भयता से वे जाहिर व्याख्यान — उपदेश देने लगे और सत्य
 में व्याप्त प्राकृतिक अद्भुत आकर्षण शक्ति के प्रभाव से उनके
 भोक्त समुदाय की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी, मिन २ देशों के

श्रीमंत अग्रगण्य श्रावक वृहत् संख्या में उनके अनुयायी हुए, केवल श्रावक ही नहीं परंतु कितने ही यति भी उनके सदुपदेश के असर से शास्त्रानुसार अस्त्रगार धर्म आराधने तत्पर हुए, लौकाशाह स्वयम् वृद्ध होने से दीक्षित न हो सके परंतु भाणाजी आदि ४५ भव्य जीवों को उन्होंने दीक्षा दिला उनकी सहायता से आप जैन शासन सुधारने के आपने इस पवित्र कार्य में महान् विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक लाखों जैनी उनके अनुयायी बने, जिस समय यूरोप में धर्म सुधारक मार्टिन ल्युथर हुआ और प्युरिटन ढंग से ख्रिस्ती धर्म को जागृत किया, उसी समय या उसी साल अकस्मात् जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लौकाशाह का समय मिलता है *

लौकाशाह के उपदेश से ४५ मनुष्य दीक्षित हुए उन्होंने अपने गच्छका लाकागच्छ नाम रक्खा, वीर संवत् १५३१.

* About A. D. 1452 the Lonka sect arose and was followed by the sthanakwasi sect dates which coincide strikingly with the Lutheran and puritan movements in Europe.

Heart of joinism.

समय २ पर धर्मगुरु जन्म लेते हैं, होते हैं और जाते हैं परंतु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का सौभाग्य बहुत कम

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक गादी नहीं आचार्यों की नामावली निम्न लिखित है.

६२ भाणजी ऋषि ६३ रूपजी ऋषि ६४ जीवराजजी ऋषि ६५ तेजराजजी ६६ कुंवरजी स्वामी ६७ हर्ष ऋषिजी ६८ गोवा-
जी स्वामी ६९ परशुरामजी स्वामी ७० लोकपालजी स्वामी ७१
महाराजजी स्वामी ७२ दौलतरामजी स्वामी ७३ लालचंदजी स्वामी
७४ गोविंदरामजी स्वामी हुकमीचंदजी स्वामी ७५ शिवलालजी
स्वामी ७६ उदयचंद्रजी स्वामी ७७ चौथमल्लजी स्वामी ७८ श्री-
लालजी स्वामी (चरित नाटक) ७९ श्री जगद्विरलालजी स्वामी
(वर्तमान आचार्य) ❀

ज्ञानजी ऋषि से आजतक ४५० वर्ष का कुछ इतिहास अब
वर्णन करते हैं ।

को प्राप्त होता है. ख्रिस्ती धर्म में मानसिक दासत्व दूर करने का
जितना कार्य मार्टिन ल्यूथर ने किया वैसा ही कार्य श्रीमान लॉका-
शाह ने श्री. जैनधर्म में क्रियोद्धार के लिये किया.

❀ पूज्य श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की पाठावली
अनुसार उनके सम्प्रदाय के वक्तव्योत्तर प्राप्त हुए. आचार्य पद की
नामावली यहाँ दिखाई है।

श्री महावीर की वाणी का अवलम्बन ले धर्मोद्धार का श्रीमान् लौकाशाह ने जो शुद्ध मार्ग प्रवर्त्तीया उस मार्गगामी साधु शास्त्र नियमानुसार संयम पालते, निर्धन उपदेश देते, निष्परिग्रही रहकर प्रामाण्यमम अप्रतिषिद्ध विहारकर, पवित्र जैन शासन का उद्योग करते थे, भाणजी ऋषि साधसखाजी, रूपजी ऋषि तथा जीवराज ऋषिजी प्रभृति ने लाखों की सम्पत्ति त्याग दीक्षा ली थी, सखाजी तो बादशाह अकबर के मंत्री मंडल में से एक थे, बादशाह की इन्कारी होनेपर भी पांच करोड़की सम्पत्ति त्याग वन्धने दीक्षा ली थी ।

प्रायः सौ वर्ष तक तो लौका गच्छीय साधुओं का व्यवहार ठीक रहा परन्तु पीछे से उनमें भी धीरे २ आचारशिथिलता और अन्धाधुन्धी बढ़ने लगी ।

पूर्ववत् अन्धकार फैलाने वाले बादल फिर चढ़ आये, साधु पंच महाग्रन्थों को त्याग मठावलम्बी और परिग्रहधारी होने लगे, तथा सावध भाषा और सावध क्रिया में प्रवृत्त होने लगे, परन्तु उस समय भी कई अपरिग्रही और आत्मार्थी साधु विशुद्ध संयम पालते, काठियावाड़ मारवाड़ पंजाब में विचरते थे और वे इन बादलों के असर से मुक्त रहे थे, मालवा मारवाड़ आदि में विचरते पूज्य श्री हुकमीचंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय ऐसे ही आत्मार्थी साधुओं में से एक के पाट एक होने से हुआ है ।

लौकाशाह के परचान् फि से जब ये मेघकूचद आये तब वन्हें नष्ट करने के लिये गुजरात में किसी समर्थ महापुरुष के प्रादुर्भाव होने की आवश्यकता हुई उस समय प्राकृतिक नियमानुसार धर्मसिंहजी लखजी ऋषि और श्री धर्मदासजी अण्णगर एक के परचान् एक यो तीन महा व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखा लौकाशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया बलिक शासन सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे इस त्रिपुटी ने पूर्ण किया उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार अण्णगर धर्म की अराधना प्रारम्भ की उनके त्रिशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके प्रभ व से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों

ॐ एक अमेस मानू मिसीस स्टिवन्स कि जो राज कोट में रहती थी अपनी Heart of jainism (नाम पुस्तक में इस समयका उल्लेख यों करती है ।

Firmly rooted amongst the latter, they were able once hurricane was past to reappear oncemore and begin to throw out fresh branches many from the Lonka seeb Joined this reformer and they took the name of Sthanakwas, whilst their enemies called them Dhundhia Seachers This till has grown to be quite an honourable one

मनुष्य उनके भक्त होगए । उस समय से उन्होंने जैन शासन का अपूर्व उद्योग किया, तब से लौंका गच्छ यति वर्ग और पंच महाव्रत धारी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्व० पंथ बँट गया. लौंका गच्छीय तथा अन्य गच्छीय जो श्रावक पंच महाव्रतधारी साधुओं को मानने वाले तथा उनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने वाले हुए वे साधुमार्गी नाम से प्रख्यात हुए यह मार्ग कुछ नया न था इसके प्रवर्तकों ने कुछ नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे. सिर्फ शास्त्र विरुद्ध चलती प्रणाली को रोक शास्त्र की आज्ञा ही वे पालने लगे, मारवाड़ की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने से वे भी साधुमार्गी नाम से पहिचाने जाते हैं । यहाँ-इस सम्प्रदाय के प्रभावशाली पुरुषरत्नों में से थोड़े से मुख्य २ आचार्यों का कुछ इतिहास अवलोकन करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

श्री: धर्मसिंहजी: — ये जामनगर काठियावाड़ के दशा श्रीमाली वैश्य थे इनके पिता का नाम जिनदास और माता का नाम शिवा था, लौंकागच्छ के आचार्य-रत्नसिंहजी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यान से १५ वर्ष की उम्र में धर्मसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और पिता पुत्र दोनों ने दीक्षा ली. विनय द्वारा गुरु कृपा सम्पादन कर ज्ञान ग्रहण करने के लिये प्रबल वैराग्यवान धर्मसिंहजी-मुनि सतत सदुद्योग करने लगे. ३२ सूत्रों के उपरांत व्याकरण

न्याय प्रभृति में भी वे पारंगत विद्वान् हुए. उनकी स्मरणशक्ति अत्यंत तीव्र थी. वे अष्टांगध्यान करते थे, शीघ्र काव्य रचते थे, दोनों हाथ तथा दोनों पैर से कलम पकड़ कर लिख सकते थे । बहू सूत्री होने के पश्चात् एक दिन धर्मसिंहजी अणुगार सोचने लगे कि सूत्र में कहे अनुसार साधु धर्म तो हम नहीं पालते तो रत्न पिंतामणि समान इस मानव जन्म की सार्थकता कैसे सिद्ध होगी ? उन्होंने शुद्ध संयम पालने का निश्चय किया और गुरु से भी कायरता त्याग कटिबद्ध होने का आग्रह किया गुरुजी पूज्य पदका गोद न त्याग सके

अतमें उनकी आज्ञा और अशीर्वाद भी आत्मार्या और सहाध्यायी यतियों के सह उन्होंने पुनः शुद्ध दीक्षा ली (विक्रम सं. १६८५) धर्मसिंहजी अणुगार ने २७ सूत्रों पर (दब्बा) टिप्पणी लिखी । ये टिप्पणियां सूत्ररहस्य सरलता पूर्वक समझाने को अति उपयोगी हैं । विक्रम सं. १७२८ में उनका स्वर्गवास हुआ, उनका सम्प्रदाय हरिपादुरी के नामसे प्रख्यात है ।

श्रीलवजी अपिः—सूरत में वीरजी बहोरा नामक एक दशा भीमाली साहूकार रहता था. उनकी लड़की फूलबाई से लवजी नामक पुत्र हुआ. लौकागच्छ के यति वजरंगजी के पास उनसे शास्त्राध्ययन किया और दीक्षा ली यतियों की आचार शिथिलता देखकर

दो वर्ष बाद उन से प्रथक् हो उनने विक्रम संवत् १६८२ में स्वयमेव दीक्षा ली। अनेक परिपक्व सहन किये और शुद्ध चारित्र्य पाल, जैन धर्म दिया स्वर्ग पधारे। मुनि श्री दौलतऋषिजी तथा अभिरूपापिजी प्रभृति उनकी सम्प्रदाय में हैं।

श्रीधर्मदासजी अणुगार—ये अहमदाबाद के समीप सरखेज ग्राम के निवासी भावसार ज्ञाति के थे। उनके पिता का नाम जीवन कालिदास था। विक्रम संवत् १७१६ में उन्होंने प्रयत्न वैराग्य से दीक्षा ली और उसी दिन गोचरी जाते एक कुम्हारिन ने राख बहराई। वह थोड़ीसी पात्र में गिरी और थोड़ी हवा में बिखर गई। यह वृत्तांत इन्होंने धर्मसिंहजी से कहा।

इसका उत्तर धर्मसिंहजी ने फर्माया कि, जैसे छार दिन कोई घर खाली नहीं रहता उसी तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के बिना कोई ग्राम खाली न रहेगा और छार हवा में फैल गई इसी तरह तुम्हारे शिष्य चारों ओर धर्म का प्रसार करेंगे। धर्मदासजी के ६६ शिष्य हुए। जिन्होंने देश देशान्तरों में जैनधर्मकी अत्यन्त सुकीर्ति फैलाई ६६ शिष्यों में से ६८ तो मालवा, मारवाड़, मेवाड़ और पंजाबमें बिचरते और जैनधर्म की ध्वजा फहराते थे, सिर्फ एक मूलचंदजी स्वामी गुजरात में रहे उन्होंने गुजरात में घूम कर जैनधर्म का अत्यन्त प्रचार किया। मूलचंदजी स्वामी के ७ शिष्य हुए वे भी जैन शासन को दिवाने वाले हुए, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ गुलाबचन्द्रजी २ पंचाणजी ३ बनारजी ४ इन्द्रजी ५ बनारसी
 ६ विठ्ठलजी और ७ भूपणजी उनके शिष्यों, ने काठियावाड़
 में १ लीबड़ी २ गोंडल ३ बरवाला ४ आठ कोटी कच्छी ५
 चूड़ा ६ धागध्रा ७ सायला पेसे ७ सघाड़े स्थापित किये ।

गुलाबचन्द्रजी के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य
 हीराजी स्वामी, हीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और
 कानजी स्वामी के शिष्य अजरामरजी स्वामी हुए । ये अजरामरजी
 महाप्रतापी और पंडित पुरुष हुए । उनके नाम से वर्तमान में लीबड़ी
 संप्रदाय (सघाड़ा) प्रस्थान है ।

श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी—ये । दोनों
 महात्मा समकालीन थे । दौलतरामजी ने स । १८१५ में और अजाम-
 नरजी ने १८१६ में दीक्षा ली थी । श्री दौलतरामजी महाराज पू०
 हुकमीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे, वे अति समर्थ विद्वान्,
 और सूत्र सिद्धान्त के पारंगामी थे. मालवा, मारवाड़, मैथे विच-
 रने और इसी प्रदेश को पावन करते थे. उनके असाधारण ज्ञान
 सम्पत्ति का प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी । अजरामरजी
 स्वामी का ज्ञान भी बड़ा चढ़ा था तो भी सूत्र ज्ञान में अधिक
 उत्तृति करने के लिये श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास
 करने की उनकी इच्छा हुई । इस पर से लीबड़ी संघ ने एक स्रष्टा

मनुष्य के साथ दौलतरामजी महाराज की सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय वृंदी कोटे विराजते थे । उन्होंने इस विद्वत्ति को सहर्ष स्वीकृत कर काठियावाड़ की ओर विहार किया । वह भेजा हुआ मनुष्य भी अहमदाबाद तक पूज्य श्री के साथ ही था परंतु वहां से वह पृथक् हो लॉवड़ी संघ को पूज्य श्री के पधारने की वधाई देने आया । उस समय लॉवड़ी संघ के आनंद का पार न रहा, लॉवड़ी संघने उस मनुष्य को रु० १२५०) वधाई में भेंट दिये । पूज्य श्री दौलतरामजी लॉवड़ी पधारे तब वहां के संघ ने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया ।

लॉवड़ी संघ की अनुपम गुरुभक्ति देखकर दौलतरामजी महाराज श्री भी सानंदाश्चर्य हुए । पंडित श्री अजरामरजी स्वामी पूज्यश्री दौलतरामजी महाराज से सूत्र सिद्धांत का रहस्य समझने लगे, समकित सार के कर्ता पं० मुनिश्री जेठमलजी महाराज इस समय पालनपुर विराजते थे वे भी शास्त्राध्ययन करने के लिये लॉवड़ी पधारे और वे भी ज्ञान गोष्ठी के अपूर्व आनंद का अनुभव करने लगे । भिन्न २ सम्प्रदाय के साधुओं में परस्पर उस समय कितना प्रेमभाव था और साधुओं में ज्ञान पिपासा कितनी तीव्र थी यह इस पर से स्पष्ट सिद्ध है । पं० श्री० दौलतरामजी महाराज के साथ २ कितने ही समय तक विचार कर पं० श्री अजरामरजी महाराजने सूत्र ज्ञान में अपरिमित अभिवृद्धि की थी और पूज्य श्री दौलतरामजी

महाराज के आग्रह से पूज्य श्री अजरामरजी महाराजने जयपुर में एक आशुमंथ भी बनके मान किया था ।

पूज्य श्री हुकमीचन्द्रजी स्वामी—पूज्य दीलतराम महाराज के पञ्चान् श्रीलालचन्द्रजी महाराज आचार्य हुए, और उनके पाठ पर परम प्रतापी पूज्य श्री हुकमचन्द्रजी महाराज हुए टीका (रायमिह के) ग्राम के रहने वाले थे जोसवाल गृहस्थ थे उनका गोत्र चपलौत था घूरी शहर में स० १८७६ में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्रीलाल चन्द्रजी स्वामी के पास उन्होंने प्रबल चेश्म से दीक्षा ली । २१ वर्ष तक उन्होंने बेलें २ तप किया चाहे जितने कड़क शीत में भी वे सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे, शिष्य बनाने का उनके संबंधा त्याग था, उसने सय मिठाई भी खाना त्याग दी थी । सिर्फ तेरह दण्ड रखकर बाकी के समय द्रव्यों का यावर्जीव परित त्याग किया था वे बिन्दुल कम निद्रा लेते और रात दिन स्वाध्याय और ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे मित्य २०० तमोत्थुण गिनते थे, आप समर्थ विद्वान् होते भी निगभिमानी थे कोई पर्व पुरने आता था अपने आज्ञावर्ती साधु श्रीशिवलालजी महाराज के पास भोज देते, अपने गुरु पूज्य श्री लालचन्द्रजी महाराज शास्त्रानुसार राखत आचार पालने के लिये बार बार विनय करते रहते परन्तु अपनी विनय अस्वीकृत होने से पृथक् विदरने लगे और तप सयमादि में वृद्धि करन लगे, इससे गुरुजी उनके अति निंदा

करते लगे, किसीने उनको आहार पानी देना नहीं, उपदेश सुनना नहीं तथा उतरने के लिये स्थान भी नहीं देना ऐसे २ उपदेश देने लगे, क्षमा के सागर श्री हुकमीचंद्रजी महाराज ने इस पर तनिक भी लक्ष नहीं दिया वे तो गुरु के गुणानुवाद ही करते और कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं महा भाग्यवान् हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मा है । इस तरह वे गुरु प्रशंसा और आत्मनिंदा करते थे तो भी गुरुजी की ओर ओर से वाक्वाण के प्रहार होते ही रहे यों करते २ चार वर्ष बीत गए, परंतु वे गुरु के विरुद्ध कदापि एक शब्द भी न बोले । चार वर्ष बाद गुरु को आप ही आप पञ्चात्ताप होने लगा और वे भी निंदा के बदले स्तुति करने लगे । अंत में व्याख्यान में प्रकट तौर पर फरमाने लगे कि हुकमचंद्रजी तो चौथे आरे के नमूने हैं वे पवित्रात्मा और उत्तम साधु हैं वे अद्भुत क्षमा के भंडार हैं । मैंने चार वर्ष तक उनके अवगुण गाने में झुटि न रखी परंतु उनके बदले उन्होंने मेरे गुण ग्राम करने में कमी नहीं की । धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष को ! श्रीमान् हुकमीचंद्रजी महाराज का गुण समूह्रूर सूर्य स्वतः प्रकाशित था, जिससे लोगों की पहिले से ही उनपरपूज्य भाक्ति तो थी ही फिर आचार्य श्री के उद्गारों का अनुमोदन मिलते ही उनकी यशदुंदुभी दशही दिशाओं में गूँजने लग गई । उन्होंने अपनी सम्प्रदाय में क्रियोद्धार किया

तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रविद्ध हुई और पहिचानी जाने लगी। उनके अक्षर मोती के बाने जैसे थे. उनकी हस्तलिखित १६ सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी वर्तमान हैं। सं० १६१७ के वैशाख शुद्ध ५ मंगलवार को आवद्ध भाम में देहोत्सर्ग कर ये पवित्रात्मा स्वर्ग पधार।

श्रीयुत ग्योस्ट सत्य करमाते हैं कि, “ काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ स्मारक मृत्युवाद छोड़ जाना उचित है कि जिससे देह नरवर होने से नाश होजाय तो भी उस स्मारक के कारण हमेशा जीवित रहे और वही वास्तविक कीर्ति का फल है ऐसे महाराज—महापुरुष बिरले ही जन्म लेते हैं।

पूज्य शिवलालजी स्वामी—श्री हुकमचंद्रजी महाराज के पाठ पर शिवलालजी महाराज बिराजे उन्होंने सं० १८६१ में दीक्षा ली थी, वे भी महा प्रतापी थे, उन्होंने ३३ वर्ष तक लगातार अक्षर एकांतर की, वे सिर्फ तपस्वी ही नहीं थे, परंतु पूर्ण विद्वान् भी थे, स्व परमत के ज्ञाता और समर्थ उपदेशक थे उन्होंने भी जैन शासन का अच्छा उद्योग किया और श्री हुकमचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई सं० १६३३ पोष शुक्ल ६ के रोज उनका स्वर्गवास हुआ।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी—इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी भोसवाल गृह्य सेठ नयमलजी की पार्श्वत

परायेणा भार्या श्री जीतु बाई के उदर से सं० १८७६ के पोष माह में हुआ। सं० १८६१ में इनका ब्याह परमोत्साह से किया गया। ब्याह होने के कुछ ही समय पश्चात् उन्हें संसार की अक्षरता का भान होते वैराग्य स्फुरित हुआ। सब सम्बन्ध परित्याग करने की अभिलाषा जागृत हुई परंतु माता पिता कुटुम्बादिको ने दीक्षा लेने की आज्ञा न दी। इसलिये श्रावक व्रत धारण कर साधु का वेष पहन भिक्षाचारी करते ग्रामानुग्राम विचरने लगे। कुछ समय यों देशाटन करने के पश्चात् माता पिता की आज्ञा मिलते ही इन्होंने सं० १६७८ के चैत शुक्ल ११ के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के सुशिष्य हर्षचंदजी महाराज के पास दीक्षा धारण की और गुरु गम से ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी स्मरण शक्ति अद्भुत और बुद्धि बल अगाध था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चारित्र की अधिक ही उन्नति की, इनकी उपदेश शैली अत्युत्तम थी इसलिये पूज्य श्री जहां २ पधारते वहां २ उनके मुख कमल की वाणी सुनने के लिये स्वमती अन्यमती हिन्दू मुसलमान प्रभृति अधिक संख्या में आते थे। उनकी शारीरिक सम्पदा अति आकर्षक थी, गौरवर्ण, दीप्त कांति विशाल भाल, प्रकाशित बड़े नेत्र, चंद्र समान मनोहर वदन और तत्त्वज्ञान सह अमृत समान मिष्ट माधुरी वाणी ये सब श्रोतृ समूह पर जादूसा प्रभाव डालते थे। पूज्य श्री पंजाब में अटक रावल पिंडी तक पधारे थे और उस अज्ञान मुलू

में थी अपना प्रभाव दिमाया था, कई राजाओं को सदुपदेश दे
शिकार और मांस मदिरा जुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय
ध्वजा पहनाई थी ।

पूज्य श्री के आचार निवारः— पूज्य श्री के हृदय की
प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'छिद्रेभ्यनर्या बहुली भवन्ति'
मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दी जाती है वही स्वतंत्रता
फिर स्वच्छन्दता के स्वरूप में परिणित हो जाती है और जिसका
फल भयकर असह्य और असह्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण
प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छन्दी बनने न देते."

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय का शुद्ध
समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है । अनन्तानुबंधी की
चौकड़ी के बंधन में फसते हुए मुनि को मुक्त करने के लिये ये स्तुत्य
प्रयास करते थे । सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते
थे किः—

* असंयुद्धं भवे ! अणुगारे, मिश्रं, युग्मं, मुच्यं, परिनि-
व्यायं, सत्त्वदुःखसाणमंतं करेह गोयमा ! नो इण्ठे समेठ्ठं से के गट्ठेणं
भवे ! जाव अनत करेह गोयमा ! असंयुद्धे अणुगारे आउयवःजाओ

* भावार्थः—गृह भारका त्याग किया परंतु आंतरिक आश्रय
द्वारा जिसने नहीं रोके ऐसे पाखंड सेवी माधु भवबीजरूप कर्म

सत्तकम्म पयडिओ सिद्धिलबंधणवद्धाओ, घणियबंधण वद्धाओ पकरेइ रहस्सकालठिईआओ, दीहकालठिईआओ पकरेइ मंदाणु-
भावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ अण्णपणसगाओ बहुपण्णगाओ पकरेइ..... श्री भगवती श० १ उ० १ इसके अनुसंधान में श्री उत्तराध्यायन से अ १ गाथा ६ वां कहकर भावार्थ गले उतारते थे कि गुरु की हितशिक्षा प्रत्येक शिष्य को सम्पूर्ण ध्यान से सुनना, विचार करना, मन में ठसाना और उसी अनुसार वर्तव्य करना चाहिये. शिष्य के दुर्धृष्ट हृदय की गंभीर भूलों को क्षार करने के लिये कदाचित् कठिन प्रहार युक्त हितशिक्षा हो तो भी विनीत शिष्य को अपना श्रेय समझ कर वह शांति से श्रवण करना, परंतु तनिक भी कोप या शोक न करना और शुभ विचारों से मन को समझा कर क्षमा धारण करनी चाहिये। व्यवहार और मन से क्षुद्र मनुष्यों का तनिक भी संसर्ग न करना और हास्य क्रोडा आदि प्रसंगसे दूर रहना चाहिये।

परंतु सम्प्रदाय में थोड़े शिथिलताचारियों का समूह घुमा हुआ वे पतली दृष्टि से देख कर मन में सोचने लगे कि, साधु के नाम

प्रकृति, स्थिति, रस घटाने के बंदले अधिक बढ़ाते हैं चीकने कर्म बांधते हैं इसलिये अंतरिक रिपुओं से जय प्राप्त करना यही बाह्य त्याग का मुख्य लक्ष्य होना चाहिये।

मे लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंमाने देना यह महा पाप अघम और निबेलता है । सम्प्रदाय की यह बेपरवाही आगे गंभीर और भयङ्कर परिणाम पैदा करेगी।

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इन्द्रिय और मनके बरा रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है । मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विकारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पार हो चुका इशान्तिये साधुधर्म के संरक्षणाभिमित संयम के नियम योजित किये हैं इस अंकुरा को दुःखरूप समझने वालों का दुःखमय हालत से हालत हवाल हो जाते हैं अनेक आकर्षणों में फंसाने से भय हार जाते हैं निःशुक्र स्वतंत्रता में साधुओं में स्वच्छंदता, कलह और दुःख सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं ।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार पानी का सम्बन्ध छोड़ा था । जिसका चेरा अभी तक वर्तमान है । चरित्र शिष्यनिता के चेरा का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को दूँद चिकित्सा कर मजे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़े के सहारा होने से छूट झट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के बैयावृत्त्यसे भी वंचित होने लगे ।

सं० १६५४ के आसोज शुक्ल १५ के व्याख्यान में रतलाम स्थान पर पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ने युवा चार्य पद श्री चौथमलजी महाराज को देना जाहिर किया । श्री संध ने उसे सहर्ष स्वीकार किया, श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास जावद था इस लिये चातुर्मास पश्चात् रतलाम से महाराज श्री पारचंदजी और महाराज श्री इन्द्रचंदजी प्रभृति चादर लेकर जावद पधारे। सं० १६५४ के मंगसर शुक्ल १३ को जावद में महाराज श्री चौथमलजी को चादर धारण कराई । उस समय महाराज श्री श्रीलालजी वगैरह २१ मुनिराज भी जावद विराजते थे।

सं० १६५४ के महा शुक्ल १० के रोज रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ, पूज्य श्री का निर्वाण महोत्सव अत्यंत चित्ताकर्षक और चिरस्मरणीय विधिसे हुआ था ।

पूज्य श्री चौथमलजी स्वामीः— सं० १६५४ के फाल्गुन वद ४ के रोज रतलाम पधार कर सम्प्रदाय की बागडोर आपने अपने हाथ में ली । पूज्य श्रीने सं० १६०६ चैतसुदी १२ को दीक्षा ली थी पूज्य श्री महाक्रियापात्र और पवित्र साधु थे ।

उनकी नेत्रशक्ति क्षीण होगई थी और वृद्धावस्था भी थी । परंतु शरीर की अशक्ति का तानिक भी विचार न कर विहार करते रहते थे, बंजड़ कारण दिखा आजकी तरह थाणपति न रहते

साधुतो फिरतेही अन्धे इस वाक्य को सत्य स वित कर दिखाते थे। पूज्य भी का सूत्र ज्ञान बड़ाचढ़ा था। मुंहसे ही व्याख्यान फरमाते थे, क्रिया की ओर भी पूर्ण लक्ष्य था, रातको एक दो दफे उठकर शिष्यों की मार संभाल लेते थे, सम्प्रदाय मे अलग हुए साधुओं का अवतक सुधरने की ओर लक्ष्य न देखा सो उनसे आहारपानी का व्यवहार रक्खा ही नहीं।

उपदेशकों के चरित्र आर आचरण का प्रभाव समाज पर पड़ता ही है, इस लिये वे भी श्रेष्ठ आचार वाले होने चाहिये। व्याख्यान देनेसे ही उपदेशकों का कर्तव्य इतिभी तक पहुँच गया ऐसा समझना भूल है। सन दिन भर के उनके आचारविचार और रूढ़ार मे गभीरता, पापभीरुता, पवित्रता और प्रसन्नता भक्तकनी चाहिये।

कायदे या नियम कागज पर नहीं परंतु व्यवहार में भी लाने चाहिये प्रविष्ट पापले बचने की जिहारा जागृत रहे सभी असरूप आकर्षणों से आत्मा बच सकती है। महात्मा कह गए हैं कि:—

उपदेशकों के भक्तिभाव, श्रद्धा, मत्प्रेषण, और ऊँची वृत्तियों से ही शिष्यों की धार्मिक वृत्तियाँ खिजती हैं। धार्मिक रिवाज और संस्कार का जितना विशेष ज्ञान हो उतना ही अच्छा है। चाहे जैसा संकट आजाय, चाहे जैसा लालच आने पास हो, सो

भी अपने से धर्म न त्यागा जाय, यह खयाल और निश्चय सम्पूर्ण रीतिसे पैठ जाय तभी सफलता समझनी चाहिये ।

धर्म कुछ पाण्डित्य का विषय नहीं । धर्म बुद्धि गम्य ही क्यों न हो परंतु वह हृदयग्राह्य है, क्योंकि वह श्रद्धा का विषय है । धर्म विहीन नीति शिक्षण भी श्रद्धा के अभाव से पूर्ण असर नहीं कर सका ।

सब मनुष्यों को धर्म की ओर अत्यंत उदार व्यापक और शास्त्रीय शुद्ध खयाल लगाना हो तो धर्म द्वारा ही लगा सकते हैं, हार्दिक इच्छा स्वतः प्रकटित होनी चाहिये । दूसरों के डर या अंकुश का असर कुछ ही समय तक टिक सकता है । आत्मविश्वास के बिना प्रविज्ञा नहीं निभ सकती आकस्मिक भूतोंका परिणाम को प्रायश्चित्त द्वारा नरम कर सकते हैं जो स्वेच्छा से शुद्धभाव द्वारा प्रायश्चित्त हो गया अल्पश्रम और अल्प त्याग से ही निवृत्ति हो सकती है । अगर ऐसा नहीं किया गया तो आगे क्या करना पड़ेगा उसकी कल्पना हृदय में लाते ही देह कंपने लगता है ।

अपने शास्त्रों में हजारों वर्ष पहिले कहा गया है उसी अनुसार महात्मा गांधीजी अभी प्रेम और तपश्चर्यों से ही दूसरों पर प्रभाव डाल रहे हैं ।

एक ने दूसरेपर मिथ्या कलंक लगाना, अनर्थ दण्ड सेवन करना, यह जैन नाम को लजाता है, माहत्मा गांधीजी की सलाह तो यह है कि, प्रेम से मनाओ, भूलें बताओ, सड़े खोलों से बचाओ और उन खड्डों में गिरने वालों का हाथ पकड़ो, दर्ती ल से समझाओ ममत्व का नशा उतारकर वात गले उतारो, सत्यमत की प्रशंसा से बस बेग को रोको परंतु बसात्कार मत करो ।

समाज की मुख्यवस्था वह साधुओं की पहरेदारी का ही प्रताप परिणाम है । समाज के नेता मुनिराज की निष्पक्षपात से उपरोक्त सलाह देते रहने से ही साधुसमाज की कर्त्ति प्रज्ञा पहराती रहेगी ।

सुरामन्द यह गुप्त विष है । मनुष्य मात्र भूल का पात्र है । भूल करने वाला फिर स ऐसी भूल न करे ऐसे समझाने वाले ऐसे कर्तव्य अदा करने वाले को अपना शुभेच्छुक समझना चाहिये परंतु पछाय हो, की हुई, भूल को कुछ गुन्हगारों को मद्ध करना गुहा मदाने जैसा महापाप है यह प्रवृत्ति तो अपराध करने वाले को उभेजना के समान है । यह पक्षपात मोह भ्रष्ट से भ्रष्ट और समर्थ मनुष्यों में भा गुप्त विष फैलाकर गिराकर कितना मत भेद उत्पन्न करता है जिमके शोचनीय दृष्टांत अपनी आरसा आगे मौजूद हैं ।

रोगी को विश्वास दे पाल पशोल कर मुख्य धंरा प्रकट करने

तक श्रवण करना निभ सकता है परंतु खास अंश लुप्रा रोग को असाध्य और जहरीला बनाना महापाप है। इस इंद्रजाल के शिकार होने से वचना श्रावकों का मुख्य धर्म है। धर्म की इज्जत को तिरस्कृत दृष्टि से पददलित करने वालों को इस गुप्त विष को भयंकर प्रभाव से सचेत कर देना चाहिये। सचेत करने वाले अपने इस धर्म को नहीं पालने से धर्मद्रोही हैं—शुद्ध श्रद्धापूर्वक आत्म यज्ञ करने वाले शूरवीर ही शुद्ध संयम के संरक्षण करने का यश प्राप्त करेंगे समाज की वांग दोर ऐसे शूरवीरों के ही करकमलों में शोभा देती है कि, जो इस विपीले फंदे से समाज को बचाते हैं।

हिन्दू समाज की ऐसी रचना है कि, प्राचीन काल से ही समाज और गुरु नेता है भोला भारत प्रजा धर्म के नाम से भूलावे में भूल जाता है धर्म अज्ञान वर्ग में भय या संदेह उत्पन्न करता है जब समझदार समाज में श्रद्धा जागृत करता है। हमें पवित्र अपने स्थान निभाने के लिये उस स्थान के योग्य बनना ही पड़ेगा और समाज श्रद्धापूर्वक मान दे ऐसी योग्यता रखनी ही पड़ेगी।

To err is human, to know that one has erred is super human, to admit and correct the error and repair wrong is Divine. “भूल हो जाय मनुष्य का स्वभाव है। हम से भूल होगई उसका ज्ञान होना उच्च मनुष्यत्व है परंतु भूल मंजूर

कर उसे सुधारना बुरों का भला कर देना ये देवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएँ पमंड में नम्रता में उतरें कि भून सुधारने की दरय प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ ।

“ अपने देशमें समाज राज घल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है । यह अपने समाज की विशेषता है, मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतना ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिम के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है । ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है ।

कान के काँडे रिसाने वाले निंदक की निंदा न करते घम के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सदबुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सकल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची धीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुमय किया हुआ सच्चा मार्ग है ।

आसीद्यथा गुरुमनोहरणे समर्या ।

त्वत्प्रेमवृत्तिरनघा न तथा परेषाम् ॥

रत्ने यथाऽऽदरमर्तिर्मणिलक्षकाणां

नैवं तु काच शकलेकिरणाकुलेऽपि ॥

शतावधानी पंडित श्री रत्नचन्द्रजी महाराज—मानिक—मोती—
हीरा, पन्ना, देखने वाले जौहरी का मन कीमती रत्नों पर जैसा
आकर्षित होता है उतना सूर्य के प्रकाशमें प्रकाशित काच के टुकड़े
(ज़ा इमिटेशन जो सच्चे से भी बाह्य दिखावट में विशेष सुंदर
दिखते हैं) के तरफ नहीं आकर्षित होता ।



पूज्य श्री श्रीलालजी ।

अध्याय १ ला ।

बाल्य जीवन ।

राजपूताने के पूर्वीय बनास नदी के दक्षिण तट पर टोंक नाम का एक नगर बहुत प्राचीनकाल से बसा हुआ है । जो जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील दूर है । ई० सन् १८१७ में जब प्रख्यात अमीरखा पिठारी ने राजपूताने में एक नये राज्य की स्थापना की तब उसने राजधानी का शहर बनाया । राजपूताने में सबसे पहले जो कोई राज्य स्थापित हुआ तो यही राज्य । दो हजार चौरस माइल का इसका विस्तार है । उसका कितना ही भाग राजपूताने में और कितना ही मान्वा में है । टोंक के राज्यकर्ता अफगान जाति के रोहिला पठान हैं और वे नवाब की पदवी से

पहिचाने जाते हैं । सारे राजपूताने में यह एक ही मुसलमानी राज्य है । चारों ओर ऊँची २ टेकरियों से घिरा हुआ और पुरानी पद्धति का टोंक शहर पुरानी टोंक और नई टोंक ऐसे दो भागों में बंटा हुआ है ।

सकड़े बाजार और ऊँचे नीचे रस्ते वाली और बहुत प्राचीन समय से बसी हुई पुरानी टोंक में अपने चरित्र नायक का जन्म हुआ था, इसी कारण से वर्तमान में यह शहर जैन प्रजा में अधिक प्रसिद्ध है । यहां पुरानी टोंक में * क्षत्रिय वंशा परमार जाति से निकली हुई ओसवाल जाति और बम्ब गोत्र में उत्पन्न हुए चुन्नी-लालजी नामक एक सद्गृहस्थ रहते थे । राज्य में एवम् जाति में सेठ चुन्नीलालजी बम्ब की प्रतिष्ठा अधिक थी । स्थावर सलकियत में दो २ तीन २ मंजिल की तीन हवेलियों के सिवाय पुरानी और नई

* जैन राजपूत जाति के सम्बन्ध में कितनी ही जानने योग्य ऐतिहासिक बातें कर्नल सर जेम्स टॉड राहब रचित "राजस्थान इतिहास" के हिन्दी के आधार पर नीचे लिखी जाती हैं ।

१—चित्तौर के किले में मानसरोवर के अन्दर जो पंवार राजाओं के वक्त का शिलालेख लगा हुआ है उसकी नकल है:—

मानसरोवर राजा मान पंवार (परमार) ने बनाया है ।
उसके सात सौ वर्ष के बाद उनके कुल के राजा भीम ने शिला-

टोंक में मिलाकर छोटी बड़ी १४ दुकानें थीं । जिसका किराया आता था तथा सरकार में तथा सरकारी फौज में लेनदेन का धंधा था चुर्नालालजी सेठ प्रमाणिक और धर्मपरायण थे । एक सद्गृहस्थ के समस्त योग्य गुणों से अलंकृत थे ।

लेख लगाया है और उसी भीम के पुत्र ने मारवाड़ में बहुत से नगर बसाये और उसीके उत्तराधिकारी जैन क्षत्रिय ओसवाल कहलाये हैं ।

नोट नं० ५—मालवे के महाराज अवंति या वज्जैन के अर्धाश्वर राजा भीम की बहुत ही प्रशंसा का वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है । उनके ही एक पुत्र ने मारवाड़ राज्य के अनेक स्थानों में नगर स्थापन किये और लूनी नदी से अरवली शिखर तक स्थल के अनेक स्थानों में उनके द्वारा अनेक नगर स्थापित हुए । किन्तु उन नगरवासियों में से सब ही जैन धर्म में दीक्षित हुए । उनके उत्तराधिकारी लोग इस समय सब में अधिक धन-शाली और वाणिज्य व्यवसायी महाजम नाम से विख्यात हैं । वे राजपूत-रक्तधारी होने से सर्वत्र गर्व करते हैं और उनको किसी राजकीय पद पर नियुक्त करने पर वे लोग लोरिनी चलाने के समान स्वच्छंदता से चलवार चलाने में भी समर्थ हैं । भाग पाइला हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ११३७-३७ ।

चुन्नौलाल सेठ की धर्मपत्नी का नाम बांदकुंवर बाई था । हम चरित्र घटना के संग्रहार्थ पांच दिन तक टोंक में रहे उस समय इन बाई के यशोगान इनके परिचित व्यक्तियों के मुख से सुने उतने विस्तार भय से यहाँ नहीं लिख सकते । ये बाई पवि-

२—रामसिंह जैनधर्मावलम्बी और 'ओस' जाति के हैं । इस ओस जाति की संख्या सब राजवाड़ों में लगभग एक लाख के होगी और सबही अग्निकुल राजपूत वंश में उत्पन्न हुए हैं । इन्होंने बहुत काल पहिले जैन धर्मावलम्बन और मारवाड़ के अन्तर्गत ओसा नामक स्थान में रहना आरम्भ किया था तथा उस स्थान के नामानुसार ही ओसवाल नाम से विख्यात हुए ।

अग्निकुल के प्रमार व सोलंकी राजपूतशाखा के लोग ही सबसे पहिले जैनधर्म में दीक्षित हुए थे । भाग पहिला द्वि० खंड अध्याय २६ पृष्ठ ७२४-३५ ।

भारतवर्ष के ८४ जाति के व्यवसायियों में ओसवाल गिनती में बहुत ज्यादा तथा विशेष द्रव्यवान हैं । वे प्रायः १ लाख हैं । ये ओसवाल इसलिये कहे जाते हैं कि इनके रहने का पूर्व स्थान ओसिया था । ये सर्व विशुद्ध राजपूत हैं इनमें एक ही समुदाय के नहीं हैं । परन्तु पंवार, सोलंकी, भाटी इत्यादि सब समुदाय हैं ।

प्रता और पतिप्रता की साक्षान् मुर्ति थी । उनका धार्मिक ज्ञान जितना बढ़ा बढ़ा था उतना ही उनका चरित्र भी अद्वय विरुद्ध था । इनका विचार माधवपुर (अयपुर स्टेट) में था । इनके पिता सूरजमलजी और काका * देववत्तजी देरा विख्यात धावक थे । देववत्तजी को २८ सूत्रों का अभ्यास था और सूरजमलजी भी शास्त्र के अच्छे ज्ञाता बिबेकी और कर्तव्य निष्ठ थे । वन्हीं के ये गुण उनकी पुत्री को प्राप्त थे । दिन में दो वक्त सामायिक प्रतिजमण करना, शरीरों को शुभदान देना, तपश्चर्या करना, ज्ञानाभ्यास बढ़ाना आदि सत्प्रवृत्तियों से तथा शान्त स्वभाव, चतुराई, विवेक आदि सद्गुणों से चांदकुंवर बाई के प्रति सब का आदर भाव था । चुन्नीलालजी सेठ के बड़े भाई हीरालालजी यम्ब कई वक्त कहते थे कि इनके पुण्य से ही हमारे कुटुम्ब चन्द्र की वला दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी है और इनके इस घर में पांव रखते ही ऋद्धि सिद्धि की भी वृद्धि हुई है ।

चांदकुंवर बाई ने सामायिक प्रतिजमण तथा कितने ही गोरुदे तो लगनके होने पहिले ही सीख लिये थे । लगन होने के पश्चात् भी

* देववत्तजी के पौत्र लक्ष्मीचन्दजी कि जो वर्तमान में विद्यमान हैं उनने श्रीलालजी को दीक्षा की आज्ञा के निमित्त अपने पुत्राजी को समझाया था ।

आर्याजी के सहवास से उनने धार्मिक-ज्ञान में वृद्धि की । उनके व्रत प्रत्याख्यान चारों स्कन्ध उनकी जिन्दगी के अन्तिम कई वर्षों तक रहे । साधु साध्वियों के प्रति उनका अनुपम पूज्य भाव था । यदि आहार पानी बहराने के समय कदाचित् कुछ असूक्ष्मता हो जाता तो वे उस दिन आहार न करती थीं सारांश इन सती साध्वी स्त्री का चरित्र अतिशय स्तुतिपात्र था, स्तुतिपात्र ही नहीं परन्तु भक्तिपात्र भी था ।

इन निर्मलहृदय रत्नप्रसूता स्त्री के उदर से मांगावाई नामक एक पुत्री और नाथूलालजी नामक एक पुत्र का प्रसव होने के पश्चात् विक्रम सं० १६२६ के आषाढ मास वद्य १२ को एक पुत्र का जन्म हुआ । जगत् में पुत्र जन्म का असीम आनन्द तो कई माताओं को प्राप्त होता है परन्तु वही माता आनन्द सफल समझती है कि जिसका पुत्र उसके दूध को दिपाता है और कुल को प्रकाशित करता है ।

श्रीमती चांदकुंवर वाई ने * शुभ स्वप्न सूचित एक ऐसे पुत्र का प्रसव किया कि जो पवित्रात्मा, धर्मात्मा, महात्मा और वीरात्मा के

* श्रीलालजी को माता के गर्भ में उत्पन्न हुए तीन चार महीने बति थे कि एक समय माजी साहिबा चांदनी में सोई थीं ।

सदृश विश्व में प्रख्यात हुआ । जबतक जीवित रहे इस पृथ्वी पर चन्द्र की तरह अमृत वर्षाते रहे, शक्तिलता प्रवाहित करते रहे और अनेक भव्यात्माओं के हृदय-कमल को विकसित करते रहे । जिनका नाम श्रीलाल रक्खा गया । पुत्र के लक्षण पालने में दिखाये, सूर्य के प्रकट होते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊँचे से ऊँचे पर्वत के मस्तक पर जा बैठती हैं इसी तरह इस बालक की प्रतिभा ने आप्त जनों के अन्तःकरण में उच्च स्थान प्राप्त किया था । इसकी तेजस्विता, मनोहर वदन, शरीर की भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से ऐसी सूचना देते थे कि यह बालक आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा ।

सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय बीता था । उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देखीप्यमान काठिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया । थोड़े ही समय में वह बिस्कुल समीप आ पहुचा । ज्यों २ वह समीप आता गया त्यों २ उसका प्रकाश भी बढ़ता गया । माजी आश्चर्य चकित हो गई प्रकाश के मध्य स्थित कोई मूर्ति मानो कुछ कह रही हो ऐसा भास हुआ परन्तु असाधारण प्रकाश से उनके हृदय पर इतना अधिक जोम-हुआ कि मूर्ति ने क्या कहा उसकी स्मृति न रही घड़कती छाती से वे जग पड़ी और पति के नाम जाकर सब हकीकत नियेदन की ।

श्रीलालजी बालक थे तब उनकी माता उन्हें साथ लेकर स्थानक में श्रीमोताजी तथा गेंदाजी नामक विदुषी और विशुद्ध चरित्र वाली सतियों के पास शास्त्राध्ययन करने के लिये निरन्तर जाया करती थीं। उनके पवित्र संवाद का पवित्र असर उनके हृदय पर बाल्यावस्था से ही गिरने लग गया था। उस समय दोंक में पूज्य श्री हुक्मचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के सुसाधु तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी (पूज्य श्रीचौथमलजी के गुरु भाई) तथा गंभीर-मलजी महाराज विराजते थे। अपने पिता के साथ उनके पास भी जाने का अवसर श्रीलालजी को कभी २ मिलता था। पन्नालालजी महाराज बड़े आत्मार्थी, सुपात्र, समय के ज्ञाता और विद्वान् साधु थे। एक से लगाकर ६१ उपवास तक के थोक उन्होंने किये थे। इन दोनों सत्पुरुषों का सत्समागम श्री श्रीलालजी के जीवन को उत्कर्षाभिमुख करने में महान् आधार भूत हुआ।

बाल्यावस्था से ही साधु और आर्याजी की ओर अप्रतिम प्रेमभावि और अनुपम भक्तिभाव था। जब वे पांच वर्ष के थे तब और बालकों की रम्मत की तरह श्रीलालजी भी ऐसी रम्मत करते थे कि कपड़े की झोली बनाते, मिट्टी की कुलड़ियों के पात्र बनाते, मुँह पर वस्त्र बांधते, हाथ में शीख के बदले कागज लेते और व्याख्यान बाँचते ऐसा दृश्य दिखाते थे। इस स्थिति में उन्हें देख-

कर छोड़ प्रश्न करता कि श्रीजी ! लाढ़ी परणोगा के दीक्षा लोगा ? तो प्रत्युत्तर में वे कहते कि “ मैं तो दीक्षा लऊंगा शा ! ” पूर्व जन्म के संस्कार बिना लघुवय से ही ऐसे सुविचारों की स्फुरणा होना अशक्य है । यह खबर उनके पिताजी को मालूम होते ही उन्होंने ऐसा स्वल्प न खेदने को करमाया और बिना ठ पुत्र ने फिर से मैसा करना योढ़े वर्षों के लिये परित्याग किया ।

छठे वर्ष के प्रारम्भ में श्रीलालजी को व्यवहारिक शिक्षा देना प्रारम्भ किया गया परन्तु धार्मिक शिक्षा का प्रारम्भ तो पहिले से ही उनकी सुशिक्षिता और कर्तव्यपरायण माता की ओर से हो चुका था । छः वर्ष इतनी कम उम्र में उन्होंने माता के पास से सामायिक प्रतिक्रमण सम्पूर्ण कीज लिया था सिर्फ श्रीलालजी को ही नहीं अपनी तीनों सन्तानों को इसी तरह धार्मिक अभ्यास

॥ श्रीजी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुव नाथूलालजी बम्ब अभी वर्तमान हैं । उनके कुटुम्ब में आज भी कितना धर्मानुराग है उसका किंचिन् परिचय देना आवश्यक है । सं० १६७७ के द्वितीय आवण वद्य ११ के रोज स्व० पूज्य श्रीजी की जीवन घटना के संप्रहार्थ हम टोक गये थे और श्रीयुव नाथूलालजी बम्ब के यहां पांच दिन तक रहे थे । वे रात दिन हमारे पास बैठकर सोच २ कर हमें

कराने के पश्चात् नीति अर्थात् सामान्य धर्म की उच्च शिक्षा चांदकुंदर चाई ने दी थी । “ एक अच्छी माता सौ शिक्षकों की आवश्यकता पूरती है ” । इस कहावत को उन्होंने चरितार्थ कर दिया था । आर्यावर्त ऐसी माताओं के पदरज से सदा पवित्र बना रहे ऐसी हमारी भावना है ।

टोंक में सरकारी एवं खानगी दोनों प्रकार के स्कूल थे परन्तु खानगी स्कूलों की शिक्षा विशेष व्यवहारोपयोगी समझ श्रीलालजी

सब विगत लिखाते थे । उनके पास भी कई मुख्य २ बातें विगतवार लिखी थीं ।

श्रीयुत नाथूलालजी एक आदर्श श्रावक हैं । उन्होंने चारों स्कंध पढ़ाये हैं तथा और भी कई व्रत प्रत्याख्यान लिये हैं । रोज तीन सामायिक करने का उनके नियम है । वे विवेकी, धर्मप्रेमी और मुलायम (मृदु) स्वभाव वाले हैं । ५७ वर्ष की उम्र होते भी वे एक युवा की तरह कार्य करते हैं । उनके चार पुत्र हैं, बड़े पुत्र माणिकलालजी भी वैसे ही सुयोग्य हैं । श्रीयुत नाथूलालजी के पुत्र पौत्रों प्रभृति सारे कुटुम्ब का धर्मानुराग प्रशंसनीय है । टोंक में उनकी कपड़े की दुकान बहुत अच्छी चलती है तो भी सेठ नाथूलालजी इस व्यापार से धर्म व्यापार में विशेष लक्ष देते हैं ।

को हिन्दी सिखाने के लिये पंडित मूलचन्दजी नामक एक ब्राह्मण अध्यापक के स्कूल में गहरा और उर्दू शिक्षार्थ हाजी अब्दुल रहीम के स्कूल में भेजना प्रारम्भ किया । विद्याभ्यास की ओर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि बाल्यवय से ही थी । इससे अपने सहाभ्या-
यियों की स्पर्धा में श्रीलालजी ने आगे नम्बर मिला, अपने शिक्षक का प्रेम सम्पादन किया । उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उनके शिक्षकों को बड़ा आश्चर्य होता था ।

स्कूल में सत्यव्रता, सरल स्वभावी और प्रामाणिक विद्यार्थी की तरह इनकी कीर्ति थी । विद्यागुरुओं के वे प्रीतिपात्र और विश्वासी थे । श्रीलालजी के उच्च गुणों से मुग्ध हुए सहाभ्यायी उनसे पूर्ण प्रेम रखते थे और सम्मान देते थे । इतना ही नहीं परन्तु उनके नाना गुणों की मधु कोई विशुद्धभाष से श्लाघा करते थे । अपने विद्यागुरु की ओर श्रीलालजी का प्रेमभाव भी प्रशंसा-पात्र था और शाला छोड़ने के पश्चात् भी वैसा ही प्रेम कायम था इसका एक उदाहरण यहाँ देते हैं ।

सं० १९४४ में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाल के साथ स्वयं बीदा अर्णाकुल की तब उन्हें प्रायः सात तोले की एक सोने की कंठी अध्यापक महाशय को इनायत की थी ।

श्रीलालजी स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू अभ्यास करते थे और उनका धार्मिक अभ्यास भी शुरू ही था तो भी आश्चर्य यह था कि वे स्कूल में हमेशा उच्च नम्बर रखते थे और अभ्यास में भी सबसे आगे रहते थे । तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी महाराज के पास निवृत्ति के समय वे जाते और पच्चीस बोल, नवतत्व, लघुदंड, गतागत, गुणस्थान, क्रमारोह आदि अनेक विषय तथा साधु का प्रतिक्रमण प्रभृति कंठस्थ करते थे । धार्मिक अभ्यास करने में उनके एक मित्र बच्छराजजी पोरवाल कि जो अभी विद्यमान हैं उनके सहाध्यायी थे । दोनों साथ २ अभ्यास करते थे । श्रीयुत बच्छराजजी कहते हैं कि जब हम साधु का प्रतिक्रमण सीखते थे तब महाराज मुझ जो पाठ देते उसे सिर्फ सुनकर ही श्रीलालजी कंठस्थ कर लेते थे और मुझ वही पाठ बारंबार रटना पड़ता था इतनी अधिक उनकी स्मरणशक्ति तांत्र थी ।

श्रीलालजी का शरीर निरोगी और सुदृढ था । जन्म से ही वे उनके दूसरे भाइयों से अधिक मजबूत थे । सदन शीलता, निर्भयता साहसिकवृत्ति दृढनिश्चय किया हुआ कार्य पूर्ण करने की उत्कंठा उत्साह और सत्याग्रह इत्यादि गुण बाल्यावस्था से ही उनमें प्रकाशित थे, शुक्ल पत्र के चंद्रकी तरह उनकी बुद्धि के साथ उपर्युक्त गुणों का प्रकाश भी बढ़ता गया जिसके अनेकानेक

प्रदाहरण इन महापुरुष के जीवनचरित्र में स्थान स्थान पर दृश्यमान हैं ।

श्रीलालजी का स्वभाव बहुतही कोमल और प्रेम पूर्ण होने से, उनके बालमित्रियों की संख्या भी अधिक थी । उनके साथ इनका वर्ताव बड़ाही उदार था । श्रीलालजी के उत्तम गुणोंकी छाप मित्रसमूह पर जादूसा असर करती थी वन्द्यराजजी और गुजरमलजी पोरवाल ये दोनों उनके सख्त मित्र थे । श्रीलालजी के वैराग्यसे इन दोनों मित्रों के हृदय पट पर गहरी छाप लगी थी और इसीसे उन्होंनेभी उनके साथ असर परित्याग कर आत्मोन्नति साधन करने का दृढ संकल्प किया था, परन्तु पीछे से वन्द्यराजजी को आशान मिलनेसे वही तरह सयोगों की प्रतिकूलता होने से दीक्षा न ले सके और गुजरमलजी ने श्रीलालजी के साथ ही दीक्षा ली । श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था ।

स्कूल के श्रीलालजी के सहोपाधी उन्हें इतना चाहते थे कि जब ये स्कूल छोड़कर अलग हुए तब आँखों में अध्रु लाकर रुदन करने लगे थे । उनके मित्र उनका वियोग सहन नहीं कर सकते थे उनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, और प्रेम भय स्वभाव से उनके मित्रों का हृदय द्रवीभूत होता था । परन्तु उन्हें निशपतः वशीभूत करने वाला कारण उनका क्षमागुण था । श्रीलालजीका हृदय इतना

अधिक कामेल था कि वे किसीका दिल दुखे ऐसा एक शब्द भी कहते डरते थे और क्वचित् उनके कोई शब्द या किसी प्रवृत्ति से दूसरों का दिल दुख गया ऐसा भाव होते ही तत्काल जाकर उनसे क्षमा प्रार्थी होते थे, ये आद्य सद्गुण उनकी वरि माता की तरफ से उन्हें प्राप्त हुए थे । श्रीलालजी की ऐसी उदार प्रवृत्ति से उनका किसीके साथ वैर भाव न था । शत्रुता थी तो सिर्फ मनुष्य के शरीरमें मित्रकी तरह रहते हुए शत्रुका काम करने वाले आज्ञस्य रूपी शत्रु से थी—श्रीलालजी का क्षमागुण उनकी महत्ता बढ़ाता था, इतनाही नहीं किंतु ऊपर कहे अनुसार वशीकरण मंत्रकी आवश्यकता भी पूर्ण थी । इस उत्तम गुण द्वारा वे परिचित व्यक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकते थे । (क्षमावशीकृते लोके, क्षमया किं न सिध्यति !) अर्थात् यह संसार क्षमा द्वारा वशी है अतः क्षमा द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता ? अर्थात् सब मनःकामना सिद्ध होती है ।

सं. १९३२ के भाद्र शुक्ल ५ के रोज जयपुर अंतर्गत दुनी नामक ग्राम निवासी बाबावत्तजी नाम के सुआवक की पुत्री मानकुंवर बाई के साथ श्रीलालजी का सम्बन्ध किया गया । उस समय श्रीलालजी की उम्र ६ वर्ष की और मानकुंवर बाई की उम्र ४ वर्ष की थी ।

अध्याय २रा

विवाह और विरक्तता

सं १६३५ में भीलालजी ने शाला छोड़ी और जब धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए अधिक अध्ययन करने लगे। इसी वर्ष अर्थात् सं १६३६ के भाद्रपद माह में इनके पितासेठ चुन्नीलालजी स्वर्ग पधारे। पिताजी के स्वर्गवास के पांच मास पश्चात् सं १६३६ के मार्गशीर्ष वद्य २ को भीलालजी का व्याह हुआ। उस समय इनकी उम्र १० वर्ष की पूरी होकर ११ या वर्ष लगा था और इनकी भार्याको ६ या वर्ष लगा था। राजपूतानेमें बाललग्नका अत्यन्त हानिकारक रिवाज आज से भी उस समय अधिक प्रचलित था इस प्रथा को मिटाने के लिए भीलालजी ने दीर्घव्रत हुए पश्चात् सतत उपदेस दिया। जिसका कुछ ही परिणाम आज जनित्यों में दृष्टिगोचर होता है।

— भीलालजी की बरात टोंक से दुर्गा आई। उस समय प्राकृतिक किसी अदृश्य अकल आकर्षण के प्रभाव से उनके परमोपकारी धर्मगुरु तपरजीजी श्रीपन्नालालजी तथा गंगौरमलजी महाराज भी इधर उधर से बिहार करते २ दुर्गा पधार गए। ये शुभ संवाद

सुनते ही वरराज के रोमांच विकसित होगये और अति आतुरता के साथ गुरुश्री के दर्शनार्थ उपाश्रय गए।

भारवाड़ में वरराज के हाथ मदनफल के साथ दूसरी भी चीजें एक बस्त्र में लपेट कर बांधने की प्रथा प्रचलित है उसमें राई के दाने भी होते हैं राई सचेत होने से साधु मुनिराजों का सचेत वस्तु सहित संघट्टी नहीं कर सकते तो भी भक्ति के आवेश में आये हुए श्रीलालजी का हृदय गुरु के चरण स्पर्श करने का विवेक न त्याग सका। वरराज ने सचेत वस्तु सहित अपने गुरु के चरण कमल का स्पर्श किया इस अपराध (!) के कारण साथ वाले श्रावक भाई एक के पश्चात् एक इन्हें उपालभ देने लगे, तब तपस्वीजी महाराज ने कहा कि आप इनके भक्तिभाव, धर्मप्रेम और उत्साह की ओर तनिक ध्यान देओ और वरराज को बिल्कुल घबरा ही मत डालो। इस प्रकार लोगों को उपदेश दे शांत किये और वरराज को सम्बोधन कर कुछ बोधप्रद वचन कहे। इन वचनों ने श्रीजी के हृदय पट पर जादू सा असर उत्पन्न किया।

श्रीलालजी के लग्न समय चुन्नीलालजी के ज्येष्ठ भ्राता हीरालालजी तथा श्रीलालजी के ज्येष्ठ बन्धु नाथूलालजी प्रभृति कुटुम्बीजन आनन्दोत्सव में लीन थे। उनके हृदय आनन्द में मग्न थे, पर श्रीलालजी के हृदयकमल पर उदासीनता छा रही थी। पूर्व

जन्म के शुभ संस्कारों के प्रभाव से बालवय में ही वैराग्य के बीज अंकुरित हुए थे और जिन वार्षारूपी अमृत जन का बार २ खींचने होने से अब वह वैराग्य वृक्ष विशेष पल्लवित हो बढ़ गया और उसका मूल भी गहरा बैठ गया था तो भी आनन्ददा से बड़ों की आज्ञा चुप रह कर शिरोधार्य करते रहे । उनकी यह प्रवृत्ति शायद पाठकों को अदृष्टि कर होगी और यही प्रश्न मन में उठेगा कि क्या न करना ही क्या बुरा था ? परन्तु कर्म के अचल कायदे के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है और प्राकृतिक सर्व कृतिया सर्वदा हेतुयुक्त ही होती हैं । श्रीमती मानकुवर बाई के भ्रमस् का मार्ग भी इसी प्रकार प्रकट होना विधि ने निर्माण किया होगा । श्रीमती को श्रीमती आदकुवर बाई जैसी सुशिक्षिता खास के पास से उत्तम उपदेश (शिक्षा) सम्पादन करने का सुयोग प्राप्त हुआ और पवित्र जीवन व्यतीत कर दीक्षिता हो छः वर्ष तक संयम पालन से पहिल स्वर्ग में पधरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी इसी प्रवृत्ति से परिणाम हुआ ऐसा अनुमान करना अनुचित है ऐसा कोई कह सकेगा ? हा ! अलिलालजी का हृदय उस समय रग से रगा हुआ था और ज्ञानाभ्यास की उन्हें अपरिमित विपासा थी यह बात निर्विवाद है परन्तु दीक्षा लेने का दृढ निश्चय उस समय था या नहा यह निश्चयात्मक रीति से नहीं कह सकते ।

लग्न के समय मानकुंवर बाई की वय बहुत छोटी अर्थात् आठ नौ वर्ष की थी। इसलिये वे उसी समय पिअर गई और तीन वर्ष तक वे पिअर में ही रहीं। मारवाड़ में प्रथा है कि योग्य उमर होने के पश्चात् गोना देते हैं परन्तु जो लग्नादि कोई प्रसंग अशुभ गृह में हो तो थोड़े दिन के लिये नववधू को बुला लेते हैं। परन्तु श्रीलालजी के लग्न हुए पश्चात् ऐसा कोई खास अवसर न आया जिससे मानकुंवर बाई तीन वर्ष पितृगृह में ही रहीं।

इधर श्रीलालजी का वैराग्य बढ़ता ही गया। संसार पर अकचि हुई। व्यापारादि में उनका चित्त न लगता। ज्ञानाध्ययन में, सत्समागम में और धर्मध्यान करने में ही वे निरन्तर दत्तचित्त रहने लगे। तपस्वीजी, पन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी के सत्संग और सदुपदेश का इनके चित्त पर भारी प्रभाव गिरा। उनके पास शास्त्राध्ययन करने में ही वे अपने समय का सदुपयोग करने लगे।

श्रीजी बारह वर्ष के थे तब एक दिन वे सामायिक व्रत कर मुनि श्रीगम्भीरमलजी का व्याख्यान प्रेमपूर्वक सुन रहे थे इतने में बीकानेर निवासी श्रीयुत चुन्नीलालजी आगे कि, जो रत्तलाम वाले सेठ पुनमचन्दजी दीपचन्दजी की टोंक की दुकान पर मुनीम थे व्याख्यान में आये। चुन्नीलालजी शास्त्र के ज्ञाता, उत्पात, बुद्धि वाले विद्वान् और व्योवृद्ध श्रावक थे। सामुद्रिक और ज्योतिष-

शास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था । वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे । अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी । श्रीजी के शारीरिक लक्षण को बार २ निरखने लगे । व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् अपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये । थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी बम्बर भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि “ श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था । उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे । मुझ आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों ? यह कोई म्वांधारण मनुष्य नहीं । परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है । सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रसादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोककर कहता हूँ कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा । जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने गहन विचार किया तो मैंने यही सार निकाला कि यह रकम तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है । ” श्रीयुन हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए ।

कई समय श्रीजी शहर के बाहर निमलकर पास के पर्वतों पर चले जाते और वहां घंटों ठहरते । वहां के नैसर्गिक दृश्य और



मेवाड़ के नामदार महाराणा श्री के मुख्य सलाहकार और
पूज्यश्री का परम भक्त श्रीमान् कोठारीजी श्री बलवंत-
सिंहजी साहिब, श्री उदयपुर.



दाहना गमाया रकरीपर बसारी श्रीलालजी

प्राकृतिक अपार लीला देखते २ मस्तिष्क में एक के पश्चात् एक नये २ विचार तरंगों लाते । वहां पर कोई २ समय तो तत्त्व चिंतन में ऐसे निमग्न हो जाते कि कितना समय हुआ यह भाव भी नहीं रहता । श्रीजी कहा करते कि पर्वत पर का निवास मुझे बड़ा भला लगता था । घर में भी वे अपनी तीन मंजिल वाली ऊंची हवेली में * चांदनी पर विशेषतः अपनी बैठक रखते । शहर के बिल्कुल समीप नेत्रों को परमोत्साह देने वाली पर्वतश्रेणियां यहां से भी दृष्टिगोचर होती थीं । टोंक के समीप की ऊंची ऐतिहासिक रसिया की टेकरी मानो तत्ववेत्ताओं का सिंहासन हो ऐसा आभास दिखाती और अपनी पीठ पर आराम लेने के वास्ते श्रीजी को पुनः २ आमन्त्रित करती हुई मालूम होती थी । श्रीजी भी इस आमन्त्रण को पुनः २ स्वीकारते और उत्साह से उसके उत्तुंग शृंग पर चढ़ते । आसपास का अनुपम सृष्टिसौंदर्य उनके तप्त मस्तिष्क को शांति देता । विशाल वृक्षों के पल्लव पंखे का काम कर आतिथ्य धर्म बजाते, कोयलों की मीठी कुहक और मयूरों का माधुर्य केकारव रूपी संगीत आगत मिहमान का मनोरंजन करते, परिमल फैलाता हुआ ठंडा स्वच्छ समीर चारों ओर फैली हुई अपूर्व शान्ति और प्राकृतिक अद्भुत कलाओं का प्रदर्शन

अमित मगज को तर कर देने में परस्पर स्पर्धा करते थे । आमु से
 उत्पन्न और अरवली तथा उदयपुर के तासाब का पानी पीकर
 पुष्ट हुआ बनास नामक विशाल सरित्प्रवाह अनेक आभितों को
 शान्ति देता । अपने समय तट पर खड़े आम्रादि वृक्षों का पोषण
 और परोपकार परायण जीवन बिताने का अमूल्य बोधपाठ
 सिखाता, बीबी गति से बहता था । आम्रवृक्ष फल आने पर अधिक
 नीचे झुक बिनय का पाठ सिखाते और अपने मिष्ट फलों द्वारा
 दुनियां में परमार्थ बुद्धि की प्रभावना करने को ही उत्पन्न हुए हों ऐसी
 प्रतीति दिलाते थे । एक बाजू पर सगे हुए बट वृक्ष पर टाँट गिरते
 ही यह सूचना मिलती थी कि राई जैने बीज से ऐसी बड़ी वस्तु
 हो जाती है । संसार में जरा फंसे हो अंगुली पकड़ते पहुँचा
 पकड़ेंगे ।

संसार में फंसे हुए को बचाने का उपदेश देने वाले बट वृक्ष
 का आभार मानते । बीजी के तात्त्विक विचार भावी जीवन की
 इमारत की नींव दृढ़ करते थे । कठिन पथरों से टकरा कर आवाज
 करने वाली सरिता के तट पर रसेन्द्रिय की लोलुपता के कारण देह

॥ उदयपुर के सरोवर से निकली हुई बडघ नदी बनास में
 जा मिलती है ।

को भोग दी हुई तदफती मङ्गलियां कदाचित् उनके दृष्टिगत होतीं तब इन्द्रियों के वश न करने वाले विचारों को पुष्टि मिलती थी ।

सूर्यास्त पहिले पहुँचने की तेज़ी में नीचे उतरते सामने ही फूल झाड़ दिखते, फैला हुआ पराग मगज को तर करता, परन्तु फूटे हुए अंकुर, खिली हुई कलियां, फूले हुए फूल और नीचे गिरे हुए, मिट्टी में मिले कुम्हलाये हुए पुष्प जीवन की बाल, युवा, प्रौढ़ा और वृद्धावस्था तथा जीवन मृत्यु का प्रत्यक्ष चित्र खड़ा करते और श्रीजी प्रकृति की समस्त कलाएं देखते, पास के पत्थर पर बैठ जाते थे । प्रत्येक पत्थर, प्रत्येक पान और भूविहारी प्रत्येक पत्ती, मानो स्वार्थमय और परिवर्तनशील संसार का नाटक करते हों ऐसा मालूम होता था । समीप में बहते हुए झरने को मानो जीभ आई हो उस तरह पत्थर के साथ का विवाद इस नाटक में संगीत का कार्यकर्त्ता था “ जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ” इस नैसर्गिक नियमानुसार ये सब दृश्य और सब घटनाएं श्रीजी को वैराग्य की ही शिक्षा देती थीं ।

प्रकृति की रचनाओं ने मस्तिष्क के परमाणुओं पर इतनी प्रबल सत्ता जमा ली थी कि राह में भी वे ही विचार स्फुरित होते रहते थे ।

“मुशोभित ने मुगंधो छे छना कांय गुलावे छे,
 पूरा प्रेमी पर्याने, तृपातुर केम राखे छे ?
 मनाहर कठनी कोयल करी कां तेहने काली ?
 हलाहल मेर छे जेमां सफेदी मोमले मूकी ?
 रुठो रजनी तखो राजा, कलंजित चन्द्र कां कीधो,
 बनान्यो केम चयरोगी ? अरे अपवाद कां दीधो ?

मणिकान्त

प्रकृति की अमूल्य शिक्षा से भीजी के हृदय में वृद्धि पाता हुआ वैराग्य भाव उनकी कोमलता और सत्यप्रियता के कारण बचन और व्यवहार में भी व्यक्त होने लगा । केवल मित्रों से ही नहीं परन्तु अब तो माता और भ्राता के समक्ष भी मानवजीवन की दुर्लभता, संसार की अमरता और साधु जीवन की श्रेष्ठता इस बच आशय के वाक्य भीजी के मुखारविंद से पुनः २ निकलने लगे ।

गृहकार्य में तनिक भी ध्यान न देते केवल सत्समागम ज्ञानाध्ययन और एकान्तवास में ही वे समय बिताने लगे ।

भ्रातालजों की यह सब प्रवृत्ति और संसार की ओर से उदासीन वृत्ति देख उनकी माता प्रभृति सम्बन्धीजन के चित्त चिन्ता प्रसन्न हुए । जो माता अपने पुत्र का धर्म पर अति अनुराग देखकर

प्रथम आल्हादित होती थी, वही माता पुत्र के वैराग्यमय वचनामृत भी आज सुनना नहीं चाहती । उनका धर्ममय व्यवहार उन्हें अति अरुचिकर—अस्वस्थकर मालूम होने लगा । साधु साध्वी की सेवा शुश्रूषा तथा उनकी सत्संगति में रहना ही जिसने अपना कर्त्तव्य बना लिया है वही साध्वी स्त्री सांसारिक मोह के कारण अपने पुत्र का साधुओं के सत्संग में रहना नहीं देख सकती । उनका अन्तःकरण उनका सत्संग छुड़ाना चाहता है । सांसारिक प्रेम गांठ उनके मन में घोटाला किया करती है परन्तु वे अपने अभिप्रायों को स्पष्ट शब्दों में पुत्र के सामने व्यक्त नहीं कर सकती थीं । अहा ! यह संसार के राग का कितना अधिक प्राबल्य है ।

अध्यापक गेटसे के किये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि:— सारी वृत्तियाँ पुष्टिकारक रासायनिकतत्त्व उत्पन्न करती हैं । शरीर के परमाणुओं को शक्ति उत्पन्न करने के लिये उत्तेजित करती रहती हैं । क्रोध, घृणा और दूसरी दुर्वृत्तियाँ शरीर में हानिकारक मिश्रण बनावट उत्पन्न करती हैं जिसमें से कितने ही अत्यन्त जहरीले होते हैं । प्रत्येक दुर्वृत्ति शरीर में रासायनिक हेरफेर करती है । मन में उत्पन्न हर एक विचार मस्तिष्क के परमाणुओं की रचना में हेरफेर करते हैं और यह परिवर्तन कुछ न कुछ अंश में स्थित ही रहता है ।

माता और भ्राता इत्यादि कुटुम्बी जनों को इस समय सिर्फ एक ही विचार आश्वासन देता था । वे ऐसा मानते थे कि, इनके बहु के यहां आने पर इनके विचारों में परिवर्तन हो जायगा । इसी आशा में वे योंही दिन बिताने लगे ।

आशा यही रागपारा में फंसे हुए प्राणियों की प्राणशयिनी घूटी है । यह मनुष्य के मानसिक प्रदेश में प्रविष्ट हो भविष्य के लिये नई २ रम्य इमारतें चुनती है और आश्रितों को आश्वासन देती रहती है ।

सं० १६३६ में भीजी की धर्मपत्नी मानकुंवर बाई को दूनी से गोना लट टोंक ले आये, उस समय उनकी उम्र १२-१३ वर्ष की थी । पुत्रव्यू के आगमन से सास का हृदय आनन्द से समरा गया और उन्हें उनके दिनयादि गुण और योग्यता देखकर तो अपनी आशा सफल होने के संकेत मालूम हुए । भीजी के सहाय्याय नित्र भी उसकी परीक्षा करना चाहते थे कि, भीजी का बैराग्य पतंग के रंग जैसा क्षणिक है या मजीठ के रंग जैसा है । इस परीक्षा का क्या परिणाम होता है तथा भीजी के कुटुम्बादिक जनों की आशा कितने अंश तक सफल होती है यह अब देखना है ।

भीजी ने कई वचनामृत जेष में रखने की छोटी पुस्तिका में

उतार लिये थे उनमें से नीचे के वचनमृत का स्मरण वे बारम्बार किया करते थे ।

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यानिकमटो

यमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं बन्धनमिव ।

सदाऽमेध्यापूर्णं व्यसनविलसंसर्गविषमं

भवः कारागेहं तदिह न रतिः कापि विदुषाम् ॥

भावार्थ—संसार में स्त्रियों का स्नेह शृंखला के बंधन जैसा तथा भटकते हुए गोधे जैसा है । अपना कुटुम्बी वर्ग यमराज के समान, लक्ष्मी नई जात की बेड़ी के समान है और संसार अपवित्र वस्तुओं से लीन दुःखदाई दीनों के संसर्ग जैसा भयंकर है । यों संसार यह सचमुच कारागृह ही है और इसीलिये विद्वान् मनुष्यों की प्रीति इसके किसी स्थल पर भी नहीं नज़र आती ।



अध्याय ३ रा.

भीषण प्रतिज्ञा ।



भीजी नित्य की तरह अपने परोपकारी गुरुवर्य का व्याख्यान आज भी प्रेमपूर्वक सुन रहे हैं। वीर प्रभु की अमृत मय वाणी के पान से श्रोताजनों के हृदय भी आनन्द से क्वचने लगते हैं। व्याख्यान में आज ब्रह्मचर्य का विषय है। ब्रह्मचर्य सब सद्गुणों का नायक है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग मोक्ष का वायक है, ब्रह्मचारी भगवान् के समान है, दक्ष, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और बड़े २ चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमल में सिर झुकाते हैं और उनकी पूजा करते हैं इत्यादि सार से भरी हुई सूत्र की गाथाएँ एकके पश्चात् एक पढ़ी जाती है और रहस्य समझाया जाता है। शीघ्र २ में नेमनाथ, राजेमती, जम्बू कुवार विजय सठ, विजयारानी इत्यादि आदर्श ब्रह्मचारियों के चरणान्त भी दिये जाते हैं और उनके यशोगान गाये जाते हैं।

६०

एक ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष क मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य धर्म की इस प्रकार अपार महिमा सुन श्रीजी के हृदय सागर में इच्छाओं की चमगें उठने लगीं, तरंगों से लुभित महासागर की तरह उनका

अंतःकरण विचारतरंगों से भर गया और व्याख्यान पूर्ण होते ही खानपान की परवाह त्याग अपनी पूर्व परिचित-प्रिय टेकरी की ओर प्रयाण किया; वहां एकांत में एक शिला पट पर बैठ कर वे विचार करने लगे “ एक छोटी बाल वय की सुकुमार कन्या का हाथ पकड़ कर मैं यहां ले आया हूं. मुझे समझाते हैं कि उनका भव विगाड़ना महागप है तो जम्बूकुमार का मोक्ष होना असंभव है तीर्थंकर पद प्राप्त श्रीनेमनाथ भगवान् ने भी ऐसा क्यों किया ? मेरे हृदय में उस पर दया है, अनुकम्पा है । मेरे संसार त्यागने से उन्हें कितना महान् कष्ट होगा यह सब मैं जानता हूं, परन्तु एक ही व्यक्ति की दया के कारण अनंत पुण्योदय से प्राप्त और अनंत भव की अपणता से मुक्त करने की सामर्थ्य रखने वाला यह मनुष्य जन्म कि जो देवों को भी दुर्लभ है मुझे हार ज ना चाहिये क्या ? काम भोग स्त्री कीच में इसे नष्ट भष्ट कर डालना मेरुं जैसी भूल करना है । जिंदगी का पल भर भी विश्वास नहीं और यौवन तो चार दिन की चांदनी है यह विद्युत् के चमत्कार की नाई क्षणिक है, क्षण भर चमक लुप्त हो जायगा, एक पुल पर संवेग से जाने वाली टून को जात हुए देर नहीं लगती, इसीतरह इस युवावस्था को निकलते देर न लगेगी काल की अनेकता का विचार करते तो सौ वर्ष का आयुष्य भी विद्युत् के चमत्कार जैसा ही है । इतने से अल्प समय के लिये मेरे या उनके क्षणिक सुख दुःख का मुझे

क्यों विचार करना चाहिये ? हाँ, मांस, चर्म और रक्त से बने हुए इस क्षणभंगुर शरीर पर के मोह भाव ही बंधन और दुःख के कारण हैं जैसे कमल पत्र पर पड़ा हुआ तुषार बिंदु थोड़े समय तक मोती भाँकेक साँभा दे अदृश्य हो जाता है वसीतरह यह शरीर, यौवन, स्त्री और संसार के सर्व वैभव भी अवश्य अदृश्य हो जायेंगे इन सब के लिये मैं अपनी अविनाशी आत्मा का हित न बिगड़ने दूँ । यह समस्त संसार स्वार्थी है, जबतक वृक्ष पर फल होते हैं तब तक ही सब पक्षी आकर उसका आश्रय लेते हैं और फल रहित होते ही उसको त्याग सब चले जाते हैं, अगर मैं विषयों को न त्यागूँ तो भी यौवन वय का अन्त आते ही इन्द्रियों का बल क्षीण हो जायगा और ये विषय भोग भी मुझे छोड़ चले जायेंगे और मेरी आत्मा को अधोगति की गहरी खाई में दकेलते जायेंगे, इस लिये इन विषय सरीखे विषयों का मुझे अभी से ही त्याग क्यों न करना चाहिये ? इन विचारों के परिणाम से भीगी यही निश्चित कर सके कि वस ' मैं तो अब विषयों का परित्याग कर ब्रह्मचर्य की ही सेवा महण करूँगा ।

- इस समय ऊपर की वृक्ष-लताओं में से सुंदर सुगंधित पुष्प श्रीमती के शरीर पर गिर पड़े, वृक्षों परके पक्षी मानो श्रीमती की दृष्टता की तारीफ करते हों और प्रतिष्ठा अटल पालने का आग्रह करते हों,

ऐसा मधुर संगीत अलाप आलापने लगे । सूर्य नारायण की किरणें वट वृक्षों को भेद श्रीजी के मस्तक पर विजय तاج पहिराती हों ऐसा भास होने लगा, सृष्टि देवी ने श्रीजी के साथ सहानुभूति दिखाने के लिये हा यह व्यवस्था क्यों न रची हो ?

अहा ! कैसा मांगलिक शब्द ! कैसा अपूर्व व्रत ! कैसी दिव्य भावना ! कैसा विशुद्ध जीवन ! बस बस मैं ऐसे ही पवित्र जीवन बिताऊंगा । यही कल्याणप्रद मार्ग ग्रहण करूंगा और जन समाज को भी इसी मार्ग पर खींचूंगा जिसके लिये मेरा हृदय चिंतातुर रहता है उसके लिये भी यही निर्भय और कल्याणकारी मार्ग खोलूंगा । अखंड ब्रह्मचर्य, यही मेरे जीवन की अभिलाषा हो । इंद्रियजनित सुखों की अब मुझे तनिक भी इच्छा नहीं, इंद्रिय विलास का विचार भी अब मुझे विष सम दुखदाई मालूम होता है । मैं अब इंद्रियों का दमन तप आदरूंगा, संयम अंगीकार करूंगा ब्रह्मचारियों का गुण कीर्तन करूंगा, प्रभु का ध्यान धरूंगा और प्रभु के ज्ञानादि गुण अपनी आत्मा में प्रकटाऊंगा । ब्रह्मचर्य की जगमगाती ज्योतिर्मय रत्नशाला को मैं अपने कंठ में धारण करूंगा और जगत् में ब्रह्मचर्य का दिव्य प्रकाश फैलाऊंगा । विषय वासना की प्रचंड आर धकधकती लोह शृंखला से मैं अपने शरीर अपनी इंद्रियां और मन को परिवद्ध नहीं होने दूंगा शील के संरक्षार्थ देह

का विनाश होता हो तो बेशक हो " नस्थि जीवस्स नासोत्ति " इस वीरवाक्य पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है इसलिये मैं किसी भी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करूंगा । अपने मन से प्रभु की साखी द्वारा श्रीजी ने ऐसे विशुद्ध ब्रह्मचर्य धर्म आदरने की भीषण प्रतिज्ञा की और वे अपनी आत्मा में नया उत्साह नया सतेज प्रकटा घर की तरफ किये । जुवानी में ऐसे विचार आना भी पूर्व पुण्योदय का ही फल है ।

जरा जन जालवी लेजे, अरे भेरी जुवानी छे ।
 कलंकित कीर्ति ने करशे, खरे ! पैरी जुवानी छे ॥
 अभिमाने करे अंधा करावे नीच ना धन्या ।
 रिचारो फेरवे सन्धा जुवानीतो गुमानी छे ॥
 घनाव्या कैकने कैदी, नखान्या शीप कैह छेदी ।
 जुवानी शत्रु छे भेदी न मानो के मजानी छे ॥
 विकारो ने बलगनारी, बतावे पापनी बारी ।
 सुजाडे बुद्धि ना सारी, पीडा कारक पीछानी छे ॥
 समझ संसार ना प्राणी जुवानी मान मस्तानी ।
 अरे पण चार दोढांनी जुवानी जाण फानी छे ॥
 कथे शकर भुठी काया भुठी संमार की माया ।
 जुवानीनी भुठा छाया जुठी आ जिन्दगानी छे ॥



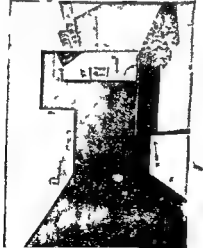
पुज्यश्रीना वडील वंधु शेठजी नाथुलालजी वंव-टोक.

पत्निका-पानगा ९

परपकारे पारेख श्रीभोवनदास प्रागजी-राजकोट.

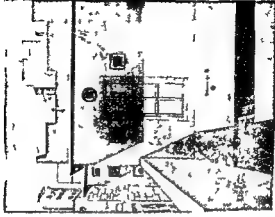
पत्निका-पानगा २५.

ટોકમાં થીલાલજીનું મકાન



જે અગાશીમાં થીલાલજી બેસી વાંચતા ને
જ્યાંથી કુદી પડ્યા.

પરિવલ-મથળ રૂ



ઉપરની અગાશીમાંથી જે અગાસીમાં કુદી
પડ્યા ને

मानकुंवर चाई को घर आये धोड़े ही दिन हुए । उनके धिन-यादि उत्तम गुण तथा कर्त्तव्य परायणता ने घर के सब मनुष्यों के मन हर लिये । सब कोई बहुत की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता था परन्तु इससे मानकुंवर चाई को कुछ भी आनन्द न मिलता था । अपने पति की वैराग्यवृत्ति उनके हृदय को नोच खाती थी । जब वे अकेली रहतीं तब २ विचारमाला में गुंथाती और पति का मन किस तरह प्रसन्न करना तथा किन २ युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा उनका प्रीतिपात्र बनना ये उपाय सोचने में ही प्रायः वे अपना सब समय व्यतीत करती थीं । “ विनय यही महा वशीकरण है ” यह महा-मंत्र आते ही खास ने इन्हें सिखा दिया था, इसीलिये वे हर तरह विनय, भक्ति द्वारा पति का मन प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थीं परन्तु श्रीजी तो प्रायः इससे दूर ही रहना पसन्द करते थे ।

विशेष कर वे पृथक् हवेली के पृथक् स्थान पर ही सोते, क्वचित् वार्तालाप करते और अधिक समय पढ़ने लिखने या धर्मानुष्ठान में ही व्यतीत करते थे । ऐसा होते भी उनकी पत्नी को यह मान्यता थी कि धीरे २ पति की भक्ति को ठिकाने ला सकूंगी । उनके सासुजी भी प्रायः यही आश्वासन देते रहते थे. परन्तु आज का व्याख्यान सुनने के पश्चात् पर्वत पर की हुई प्रतिष्ठा के कारण श्रीजी के विचार, वाणी और व्यवहार में एकाएक बहुत परिवर्तन होगया । पत्नी के साथ एकान्तवास और वार्तालाप आज से हमेशा के लिये बन्द

क्षोभया । इससे मानकुंवर बाई के हृदय में प्रज्वलित चिन्ताग्नि में घी होमा गया परन्तु वे बिल्कुल निराश न हुई अपनी प्राणदायिनी प्रिय सखी आशा का उनसे सर्वथा परित्याग न किया ।

पति की सेवा करने तथा अपने हृदय के उभार पति से कह हृदय का भार हलका करने की तीव्र अभिलाषा होते भी मानकुंवर बाई कितने ही दिनों तक ऐसा अवसर न मिलने से सिर्फ अधुपाव द्वारा ही हृदय का भार कम करती रहीं, कारण यह एक ही रास्ता इनके लिये खुला था । रातको तो भीजी उपाभय में या अपनी दूसरी हवेली में संघर करके सोते । दिन में बहुत कम समय पर रहत । कुटुम्ब अधिक होने से दिन में एकान्त में वार्तालाप करने का समय मिलना दुर्लभ था और फिर भीजी भी दूर २ भागते थे इसलिये मानकुंवर बाई के मन की सब आशाएँ मन में ही रह जाती । भाजी के माताजी तथा उनके मित्र इत्यादि उन्हें बार २ निवेदन कर कहते परन्तु भीजी के मन पर उसका कुछ असर न होता था ।

एक दिन भीजी अपनी तीन मजिदगी ठाँही हवेली की चादनी में बैठे थे और जयपुर निवासी स्वर्गस्थ कवि जौहरी जेठमलजी चारङ्गिया विरचित पद्यात्मक जम्बू चरित्र पढ़ने तथा उसकी कविता कठस्थ करन में लीन थे उस समय अवसर देखकर भीरे पात्र से

मानकुंवर वाई पति के पास आ खड़ी हुई और नम्र भावयुक्त दीन वाणी से, हाथ पकड़कर लाई हुई अबला की ओर अभिदृष्टि से देखने की प्रार्थना करने लगी । परन्तु काम को किम्पाक फले समझने वाले और प्राण की आहुति देकर भी शिथिल व्रत के सरक्षण की प्रतिज्ञा लेने वाले दृढव्रतधारी महानुभाव श्रीलालजी ने नीचे नयन रख मौनधारण कर लिया । युवती के सौजन्य, सौंदर्य, वाक्पटुता और हावभाव उनके हृदय पर एकान्त होते भी कुछ असर पैदा न कर सके । एकान्त में स्त्री के साथ रहना, वार्तालाप करना, उसके कंठ से वचन सुनना, उसके हावभाव या अंगोपांग देखना प्रभृति ब्रह्मचारियों के लिये अनिष्टकर और अकल्पनीय है ऐसा सोचकर श्रीजी ने त्वरा से निकल भागने का निश्चय किया और उठ खड़े हुए, परन्तु नीचे उतरने की पत्थर की सीढ़ियों की राह रोक्ककर मानकुंवर वाई खड़ी थी, इसलिये श्रीजी सीढ़ी के दूसरे और चांदनी के दूसरे खंड में जल्द २ जाने लगे ।

हृदय का भार कम करने के लिये प्राप्त अवसर से लाभ उठाने और उन्हें भग्न न जाने देने का निश्चय कर युवती उनके पीछे २ कोमल पांव से चली और श्रीजी का हाथ पकड़ने के लिये अपना कोमल करपल्लव बढ़ाया । अपना वही हाथ जो पिता ने पति को हथलेवे के समय हाथ में सौंपा था । वही हाथ पति को फिर से पकड़ने का विनय करने पर अबला की ओर अलक्ष्य ही रहा ।

“ नजर से निरखो नाथ ” इस गूंगी अर्ज का दिव्यनाद श्रीजी के श्रवणयुगल में गिरने ही न पाया—किसी भी स्त्री का स्पर्श न करना । इस प्रतिज्ञा का कहीं भंग हो जायगा इस डर से और अन्य राह न मिलने से सरकाल श्रीजी यहां से उत्तर की ओर की इस तीन मंजिल की हवेली के बराबर वाली पश्चिमी द्वार की अपनी दूसरी दो मंजिल वाली हवेली की चांदनी पर कूद पड़े * अपने इस व्यवहार पर पश्चात्ताप करती भय में धूजती मानकुंवर बाई एकदम सीढ़ियों उतर नीचे आई और यह क्या शब्दार्थ हुआ ? ऐसे सासुजी के प्ररन का अभ्रपूर्ण नयन से खुलासा किया । तुरन्त माजी नीचे उतर दूसरी हवेली के मंजिल चढ़ पुत्र के पास दौड़े पड़ा पहुँची । खबर होते ही नाथूलालजी भी आये ।

चांदनी की समतल भूमि जोबंध होने से श्रीजी के एक पांव में सख्त चोट लगी, नस पर नस चढ़ गई । यह देखकर माजी के आप्त से अभ्रु बहने लगे । वे बोलीं बेटा ! ऐसा न किया घर, अब तू बालक नहीं है । इतनी ऊँचाई से कूदने पर कभी जीव की जोखिम रहती है । उत्तर में श्रीजी ने कहा । माजी ! संसार की ज्वाला में जलने की अपेक्षा मैं मरना अधिक पसन्द करता हूँ । उस समय हकीमजी को बुलाने के लिये नाथूलालजी चले गये थे ।

हकीम तथा डॉक्टर का इलाज कराने से थोड़े दिनों पश्चात् पंगी अच्छा हो गया । परन्तु सर्वथा आराम न हुआ । यह तकलीफ तमाम जिन्दगी पर्यन्त रही । यह घटना सं० १९४० में घटी । उस समय श्रीजी की उम्र १५ वर्ष की थी परन्तु शरीर का बहुत ठीक होने से वे १८ वर्ष के हों ऐसे दिखते थे ।

भोग की लालसा को हृदय-देश में से हमेशा के लिये देश निकाला देने की हिम्मत करना, सुकुलवती और सुरूपवाली स्त्री का भर यौवन में परित्याग करना कुछ नन्ही सी बात नहीं है । श्रीवीर प्रभु का उपदेश जिनके रंग २ में रंगा हुआ है ऐसे आदर्श ब्रह्मचारी श्रीलालजी ने यह उत्साह दिखाया । यह सचमुच प्रशंसनीय, बन्दनीय और आश्चर्य उत्पादक तथा सामान्य मनुष्यों की शक्ति के बाहर का है । जो कार्य संसार त्यागने पर भी कितने ही व्यक्तियों से न बन सका वह कार्य श्रीजी ने संसार में रहकर कर दिखाया । काजल की कोठरी में रहने पर भी कपड़े पर रेख न लगने देना बड़ा दुष्कर कार्य है । श्री वीर प्रभु की आज्ञा को श्रीजी प्राणों से भी अधिक मानते थे । चांदनी पर से कूद श्रीजी ने वीर प्रभु की आज्ञा का अनुकरण कर सच्ची वीरता दिखाई है । श्रीउत्तराख्ययन सूत्र में कहा है कि :—

जहा निराला बसहस्स मूले न मूसगार्ण-बसही पसत्था ।
 एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे न वमयारिस्स खमो निवासो ॥

अर्थ—जहां बिछी रहती हो वहां चूदे का रहना ठीक नहीं
 इन्हीं तरह जहां स्त्री का निवास हो वहां ब्रह्मचारी का रहना जेम-
 पारी नहीं ।

श्री दशै कालिक सूत्र में कहा है कि :—

हत्थपायपडिच्छिर्णं कर्णं नासं विकम्पियं ।
 अशिवात्ससयं नारिं वंमयारी विवज्जण ॥

अर्थ—जिसके हाथ पांव छिन्न भिन्न हैं कान और नाक भी
 ढटे हैं और सौ वर्ष की मुदिया दे देसी स्त्री का भी ब्रह्मचारी का
 सद्वास न करना चाहिये ।

जहा कुक्कुटपोयस्स निचं कुललओ भयं ।
 एव खु वंमयारिस्स, इत्थिविग्गहो भयं ॥

अर्थ—जैसे कुक्कुट के बच्चे को हमेशा बिछी का भय रहता
 है ऐसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री का वंद से भय उत्पन्न होता है ।

श्री श्रीर प्रभु ने पवित्र जिनागम में ब्रह्मचर्य की भूरी २
 प्रशंसा की है और ब्रह्मचर्य के मंग करने की अपेक्षा करना भला

ऐसा साधुओं को सम्बोधन दे कहा है । श्रीजी भी गृहस्थ के वेष में साधु ही थे ।

कामान्ध और विषयलुब्ध मनुष्यों को यह घृतान्त पदकम सोचना चाहिये, पश्चात्ताप करना चाहिये और अपनी आत्मा के हितार्थ इन महात्मा की सत्प्रवृत्ति का अनुकरण कर साफल्य जीवन करना चाहिये ! विषयों के गुलाम न बन मन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सीखना चाहिये और ऐसा करने के लिये अनेक प्रकार के नियम निश्चय आदर कर जीव की जोखिम में भी वे पालने चाहिये ।

अनादिकाल के अभ्यास से मन और इन्द्रिय स्वभाव से ही शब्द स्पर्शादि विषयों की ओर खिंचाकर वैषयिक सुखों में ही सर्वथा लीन रहती है और यही कारण है कि आत्मा की अनन्त शक्ति का भान नहीं रहता । मन बन्दर की तरह अति चंचल है । बन्दर जैसे वृक्षों पर कूदता फिरता है वैसे ही मनुष्य का मन भी नानाप्रकार के विषयों में बेग से दौड़ता रहता है । सर्व क्लेशों के क्षय और परमानन्द की प्राप्ति के लिये मन की ऐसी चंचलता और क्लेशप्रद स्वभाव के ध्वंस करने की खास जरूरत है । कोई एक महाभाग विरले पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं । श्रीलालजी ने बालवय से ही वैषयिक सुखों को परित्याग करने में अद्भुत परा-

क्रम दियाया । इससे उनका चरित्र प्रत्येक मनुष्य के मनन करने योग्य, अनुकरण करने योग्य और स्मरण में रखने योग्य है ।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्रीजी के उपदेश में ब्रह्मचर्य के लिये हमें बहुत जोर रहता था । ब्रह्मचर्य के निर्वाहार्थ शिष्यों के आहार विहार की तरफ भी वे बहुत ध्यान देते थे और यही कारण था कि इनकी सम्प्रदाय में ढोला पोला साधु न टिक सकता था ।

अध्याय ४ था

वैराग्य का वैग ।

उपर्युक्त घटना के बीतने के थोड़े दिन पश्चात् श्रीजी ने अपनी माता के पास से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी । माजी के कोमल हृदय पर ये शब्द वज्राघात जैसे प्रहारी हुए तो भी इनने धैर्य धारण किया कारण ऐसे ही मतलब वाले शब्द वे आज से पहिले कई समय पुत्र के मुख से सुन चुकी थीं इस समय उनने इतना ही उत्तर दिया कि “ संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान क्या नहीं हो सकता ? हमारी दया न आती हो तो कुछ नहीं परन्तु इस विचारी के ऊपर तो तुम्हें कुछ दया लानी चाहिये । इसका जन्म बिगाड़कर जाना यह महा ‘अन्याय’ है । फिर भी अगर तुम्हें दीक्षा लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में बिता । ” इतना कहते २ उनका हृदय भर गया और आंख में से आंसू गिरने लगे । श्रीजी ने अपना हृद निश्चय दिखाते हुए कहा कि “ माजी ! आप कोटि उपाय करो तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूं । मुझे अब आज्ञा देओ तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं । आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है । ”

माजी के कहने से इस बात की खबर नाथूलालजी को और फिर सेठ हीरालालजी को हुई । सेठ हीरालालजी ने श्रीलालजी को बुलाकर कहा कि, खबरदार ! दीक्षा का किसी दिन नाम भी लिया है तो ! आज से तूने साधु के पास भी किसी दिन नहीं जाता । साधु तो मिठले बैठे २ लड़कों को चढ़ा मारते हैं । ” इन शब्दों से श्रीलालजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ । उन्होंने बोलने का प्रयत्न तो किया, परन्तु कुछ बोल न सके । अपने पिता के बड़े भाई हीरालालजी की आज्ञा का उनने कभी खलपन नहीं किया था तो उनके सामने बोलना भी उन्हें दुःसाध्य था । सेठ हीरालालजी ने नाथूलालजी से भी कहा कि “ इसकी बहुत संभाल रखना और साधु के पास इसे बिल्कुल मत जाने देना ” ।

हीरालालजी सेठ की सख्त मनाई होने पर भी श्रीलालजी गुमरीति से अपने गुरु के पास जाने लगे । सद्गुरु का वियोग वे न सह सके । सत्संग में कोई अनोखी आकर्षण शक्ति रहती है । श्रीजी की उत्तम ज्ञानाभिलाषा और सत्संग के आकर्षण के समीप सेठ हीरालालजी की ओर का भय कुछ गिनती में न था ।

एक दिन श्रीजी ने परमप्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी के

महाराज के दर्शन करने का अपने मन में निश्चय किया और वड़ों को विनय-पूर्वक अपना अभिप्राय दर्शाया । परन्तु उन्होंने जाने की आज्ञा न दी । उस समय पूज्य श्री रतलाम शहर में विराजते थे । रेलवे में बैठने के लिये टॉक से ६० मील दूर जयपुर स्टेशन पर उस समय जाना पड़ता था । श्रीजी ने एक दिन मौका देख घर के मनुष्यों से बिना कहे टॉक से जयपुर तक का २० रुपये किराया ठहरा दूसरे मनुष्य को न बिठाने की शर्त से तांगा किराये किया और जयपुर में ट्रेन में बैठ सीधे रतलाम पहुंचे । पूज्य श्री के दर्शन कर नेत्र पवित्र किये और उनकी अमृत समान मिष्ट वाणी श्रवण कर कान पवित्र किये । यहां सेठ नाथूलालजी बगैरह को यह हकीकत मालूम हुई तो वे बड़े चिन्ताग्रस्त हुए । सेठ हीगलालजी घर आ श्रीजी की माता चांदकुंवर बाई को उपालंभ देने लगे कि “ तुमने छोटी वय से अपने पुत्र को धर्म का रंग जोरशोर से लगाया इसीका यह नतीजा तुम देख रही हो ! ” सारांश श्रीलालजी को छोटी उम्र से ही धर्म में लगाया जिसका यह दारुण परिणाम तुम्हारे आंखों के सामने है ।

दूसरे दिन नाथूलालजी टॉक से रवाना हो जयपुर होकर रतलाम पहुंचे । वहां पूज्य श्री को बन्दना कर बैठ गये । तब पूज्य श्री ने पूछा ‘ कहां रहते हो ’ नाथूलालजी ने कहा ‘ टॉक रहता हूं महाराज ? ’ तब पूज्य श्री ने कहा ‘ कल ही टॉक से एक भाई

श्रीधर भी आया है विशेषता में पूज्य श्री ने करमाया कि वसका नाम तो श्रीलाल है परन्तु उसके गुणों की ओर ध्यान देते श्रीधर कहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है ' अपने छोटे भाई की ऐसे महा-पुरुष के मुँह से प्रशंसा सुनकर नाथूलालजी को कुछ आनन्द हुआ परन्तु पूज्य श्री के मुँह से ऐसे शब्द सुनकर उन्हें यह भी भास हुआ कि श्रीजी अब अपने घर में रहेंगे यह होना अशक्य है ।

थोड़े ही समय में श्रीजी आकर अपने भाई से मिले और मिलते ही प्रश्न किया कि " भाई ! क्या आज ही तुम्हारे साथ मुझे पीछा घर जाना पड़ेगा ? मुझे यहाँ थोड़े दिनों पूज्य श्री की सेवा का लाभ नहीं लेने दोगे ? नाथूलालजी ने कहा ' बड़े श्वाक में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के मोरमसिंहजी महाराज बिराजने हैं उनके दर्शन कर रवाना होना है । उस समय कुछ आनाकानी न कर अपने बड़े भाई के साथ चले पड़, यह उनके हृदय की मृदुता और विनय गुण की परीक्षा की सूचना है । चलते समय उन्होंने बड़े भाई से एक वचन माग लिया था कि, मैं घर तो आता ॥ परन्तु जिस हवेली में आप सब रहते हो उसमें मैं नहीं रहूँगा । बाहर की हवेली में अकेला ही रहूँगा । भाई ने उनकी यह बात मजूर की ।

रत्नलाल से रवाना हो वे जाकर आये । वहाँ मुनि श्री राज-

भलजी कस्तूरचन्दजी तथा मगनलालजी महाराज विराजते थे उनके दर्शन किये मुनि श्री मगनलालजी महाराज कि जो विद्यमान आचार्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के गुरु थे उनको सञ्ज्ञाय करने की अनुपम और अति आकर्षकशैली * देख श्रीलालजी सानन्दाश्रय हुए और इनकी सेवा में थोड़े दिन रहना मिले तो कैसा अच्छा हो ? ऐसा सोचने लगे, परन्तु भाई की इच्छा के कारण वे दूसरे दिन जावद आये। वहां श्री तेजसिंहजी महाराज प्रभृति मुनिराज विराजते थे, उनके दर्शन किये और फिर दोनों भाई टोंक आये। नाथूलालजी का अपने छोटे भाई (श्रीजी) पर बहुत प्रेम था। उन्हें हरतरह खुश रखना ऐसी उनकी खास इच्छा थी। इसीलिये राह में श्रीजी की मर्जी सम्पादन करने के लिये वे उनको महन्त पुरुषों के दर्शन तथा उनकी वाणी श्रवण करने कराने चतुरते थे। उस समय नाथूलालजी की और २० श्रीजी की १५ वर्ष की उम्र थी।

टोंक आये पश्चात् श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते और पठन प्राठन तथा धर्मानुष्ठान से जीवन सार्थक करते थे। उन्हें संसार कारागृह लगता था। दीक्षा ले आत्महित साधने की उनकी प्रबल

* सञ्ज्ञाय करने की ऐसी ही शैली श्रीजी महाराज को भी प्राप्त हो गई थी और यह प्रसादी मगनलालजी महाराज की ओर से ही मिली हुई है ऐसा वे कहा करते थे।

चकंठा थी । इसके विरुद्ध उनके कुटुम्बीजनों की इच्छा किसी भी तरह किसी भी युक्ति प्रयुक्ति से या अन्तमें बलात्कारसे भी संसारमें रक्षित की थी । जैनशास्त्र का ऐसा क्रायदा है कि जबतक बड़ों की आज्ञा न मिले तबतक शीघ्रित न हो सके । श्रीजी ने बहुत २ प्रयत्न किये, परन्तु आज्ञा नहीं मिली । इससे श्रीजी को बहुत दुःख हुआ और ऐसा निश्चय किया कि अब तो किसी दूर देश में जाकर सन्त महन्त की सेवा कर जैन सूत्रों का अभ्यास कर आत्महित प्राप्ति चाहिये ।

ऐसा विचार कर एक समय वे गुपचुप घर से निकले और जयपुर या रेल में बैठ गुजरात काठियावाड़ की ओर चले गए और वहां कई साधु महाराजों से समागम हुआ । श्रीजी का विनय गुण, ज्ञानवृद्धि के लिये आधारभूत हुआ । काठियावाड़ से वनछमुज की तरफ हो गए रस्ते धराह होकर वे फिर गुजरात में आये और वहां से मुनि श्री चौधमलजी महाराज सेवाह में विचरते हैं ऐसी खबर या ज्ञानाभ्यास की तीव्र जिज्ञासा से सेवाह तरफ गए और नाथद्वारा से मुनि श्री चौधमलजी महाराज की सेवा में रह ज्ञानाभ्यास करने लगे । वहां से किसी ने यह खबर टोंक पहुंचाई ।

श्रीजी ने टोंक छोड़ी तब से आजतक टोंक पत्र न लिखा या तथा किसी साधन द्वारा भी कुटुम्बियों को इनका पता न मिलाया ।

इसलिये इनके प्रवास समय में इनके कुटुम्बीजनों ने ऐसी चिन्ता-प्रस्त स्थिति में अपने दिन निर्गमन किये. यह आगे देखिये ।

श्रीजी टोक से रवाना हुए उसके दूसरे ही दिन इनके भाई नाथूलालजी उनकी तलाश में निकले और जयपुर स्टेशन आये परन्तु अब किधर जाऊं यह राह उन्हें नहीं सूझी ! बहुत सोच विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि जहां २ विद्वान् मुनिराज विराजते हों वहां जाकर तपास करना चाहिए । ऐसा सोच वे अजमेर, नयेशहर, रतलाम बीकानेर, नागौर, जोधपुर, दिल्ली, आगरा आदि २ कई शहरों में घूमे, परन्तु किसी भी स्थान पर भाई का पता न मालूम हुआ । फिर निराश हो घर आये । माजी प्रभृति को भी श्रीलालजी का पता न मिलने के समाचारों से बड़ा दुखें हुआ नाथूलालजी ने रोज चारों ओर पत्र लिखना प्रारंभ किये यों दो एक महीने बीते पश्चात् एक समय माजी ने सजला नयनों से नाथूलालजी को कहा ।

श्रीलाल का कहीं पता न लगा ऐसा कह कर तू चुपचाप घर में बैठा रहता है यह ठीक नहीं यह सुनकर नाथूलालजी का हृदय भर आया । मातु श्रीकी ओर उनका अतुलित पूज्य भाव था, उनका दिल किसी भी तरह से न दुखाना यह उनका दृढ निश्चय था इसलिये मातु श्री के ये शब्द कर्णपटु पर गिरते ही वे फिर

दुबने निकले दूसरे ही दिन रवाना होकर कई शहर और ग्रामों में होते हुए नागौर आये । नागौर में उन्हें एक चिट्ठी मिली कि जो टोंक से छेठ हीरालालजी के पुत्र लक्ष्मीचंदजी की लिखी हुई थी । उसमें लिखा था कि नाथद्वारा में मुनि श्री चौधमलजी महाराज बिराजते हैं वहां भीजी है । इसलिये तुम वहां से नाथद्वारा जाओ । इस पत्र के पाठे ही नाथलालजी नाथद्वारा की ओर रवाना हुए । राह में कपासन मुकाम पर पं० मुनि श्री चौधमलजी महाराज के दर्शन हुए और कपासन में तपास करने से मालूम हुआ कि टोंक से लक्ष्मीचंदजी नाथद्वारा आये थे और भीलासजी को बुला ले गए हैं । यह खबर सुनकर नाथलालजी भी वहां से सीधे टोंक आये ।

उस समय भी भीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते थे और वे कहीं भग न जाय, इसलिये उनके पास खास-मनुष्य रक्खे गए थे । उनके लिये भोजन भी वहीं पहुँचाया जाता था । ज्ञाति की रसोई में भोजन करने जाना उनसे हमेशा के लिये बन्द कर दिया था । एक साधारण कैदी की तरह उनकी स्थिति थी ।

जब २ अवसर मिलता तब २५ वे अपनी मातुश्री और भाई को दीक्षा की आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करते थे । आपसे मैं कई समय अधिक-रसमय सुसम्वाद भी होता था । भीजी की मान्यता

फिराने के लिये चाहे जैसी सचोट युक्तियां भिड़ाई जातीं तो भी उनका प्रत्युत्तर श्रीजी बहुत उत्तम रीति से देते थे। मोह की उप-शान्तता और उत्कृष्ट वैराग्य आत्मा में स्थित प्रज्ञापना प्रकटाता है। निर्मोही पुरुषों के सामने प्रकृति हमेशा नानावस्था में ही खड़ी रहती है। सत्य उन्हें कहीं ढूँढने नहीं जाना पड़ता। वे स्वतः ही सत्य की साक्षात् मूर्ति रहते हैं। श्रीजी महाराज ने मोह-रिपु को कई अंश से पराजित किया था, इसलिये उनकी मति अति निर्मल हो गई थी और यही कारण था कि, श्रीजी के उपदेशात्मक और मार्मिक शब्द प्रहारों से माजी के मन पर गहन असर होता था; परन्तु सेठ हीरालालजी की इच्छा के प्रतिकूल वे निश्चयात्मक रीति से कुछ भी कहने की हिम्मत न कर सकती थीं।



अध्याय ५ वां.

विघ्न पर विघ्न ।



ऐसी संकटमयी हालत में दो एक वर्ष व्यतीत होगए । श्रीलासजी की उमर १७ वर्ष की हुई । आशा के लिये उनके सकल प्रयत्न निष्फल हुए और दिन पर दिन अधिक खरबी होने लगी । साधु मुनिराजों के दर्शन, शास्त्र भवण और पठन पाठन में उनके कुटुम्बी जनों की ओर से होते हुए विघ्न उन्हें अतिशय असह्य होगए । बिन अपराध कैद में डाल रखना यह बड़ों का अन्याय अब उन्हें किसी तरह सहन न हो सका । अपनी स्वतंत्रता अपहरण होते देख श्रीजी के दिल में अधिक चोट लगी । सत्य कहा है कि “मुमुक्षु प्राणी को उन्नति के लिये बाहर निकलने के प्रथम अपनी अन्तः दशा को उन्नत बनाना चाहिये ” ।

एक दिन सुबह शौचकर्म से निर्दोष होने के मिस से ऊपरी मजिल न नीचे आये । उस समय सख्त ठंड पड़ रही थी । तो भी कुछ कपड़े लते न लिये फक्त एक चादर डाल ली और इसी हालत में वे टोक लागे रहना हुए । एक दिन से २२ कोस की कठिन नज्जि पर कर शादपुरा के समीप कोदेडी ग्राम पहुँचे । भूम थका-

बट और ठंड से उनके शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई । और एक कदम भी आगे चलने की शक्ति न रही । पास में एक पाई भी न थी तथा वहां कोई पहिचान वाला भी न था । समभाव से वेदना सहते ठंड से थर २ धूजते वे खादेड़ा ग्राम में आये । दुःख, भय और चिन्ता के विचार ही मनुष्य की शक्ति को शिथिल करते हैं । हिम्मत और श्रद्धा से कार्य करने वाले को प्राकृतिक सहायता मिलती रहती है । ऐसी दुःखितावस्था में यहां उनकी सार संभाल करने वाला कौन था ? परन्तु पुण्य प्रसाद से नाथूलालजी के श्वशुर शिवादासजी ऋणवाल (घटयाली निवासी) किसी कार्य से खादेड़ा आये थे । उन्होंने श्रीलालजी को राह चलते देख लिया और वाला २ जहां आप ठहरे थे वहां ले गए । वहां खानपान शयनादि की सुव्यवस्था करने के पश्चात् औषधोपचार द्वारा शान्ति होने के अनेक प्रयत्न किये । प्रकृति की गति कृति भिन्न है । पवित्र वृत्ति वाले पुण्यशाली पुरुषों को अनुकूल संयोग अकस्मात् मिल ही जाते हैं । भर्तृहरि यथार्थ कहते हैं कि:—

वने रणे शत्रुजलान्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विपमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥

सब स्थान पर अपने पूर्व कर्म ही रक्षा करते हैं । जबतक कसौटी का प्रसंग नहीं आता तबतक किसी मनुष्य की सहन करने

की शक्ति का नाप नहीं हो सकता। आवश्यकता उपस्थित होती है, तब ही प्राकृतिक अकलकला के प्रदर्शन निरखने का मौका मिलता है। शिवदासजी ऋणवाल श्रीलालजी तथा उनके कुटुम्बीजनों से पूर्णतया परिचित होने से सब हाल जानते थे। इसलिये उन्होंने दूसरे दिन एक ऊंट किराये कर श्रीजी को समझा बुझा टोंक की तरफ रवाना किया और जबतक तबीयत नादुरुस्त है तबतक टोंक में रहने की ही दिशायत की। तथा ऊंटवाले से भी खानगी रीति से कहा कि तुम इन्हें टोंक पहुँचाकर चिट्ठी लाओगे तभी भाड़ा मिलेगा। उसी दिन शाम को श्रीजी टोंक पहुँचे।

श्रीजी—एक कपड़े से भरो उसकी खबर नाथूलालजी को मिलने ही वे तुरत उन्हें दूढ़ने निकले। वे कपासन, निम्बाहेड़ा दो खबर मिलते ही पीछे टोंक आये। उस समय श्रीजी भी टोंक आ पहुँचे थे। नाथूलालजी ने श्रीजी से यह गद्गद कठसे कहा “भाई तुम इस तरह घड़ी २ चले जाते हो इसीलिये हमें बहुत बैरान होना पड़ता है और तुम भी तकलीफ पाते हो,,

श्रीजी—यह तकलीफ दूर करजा तो आपके ही हाथ है दीचा की घाशा दो कि, सब तकलीफ मिट जाय माजी (बहादावर थे) बोल उठे
 “दीचा लेनी थी तो क्याह क्यों किया? तेरे गए बाद इस ज़िचारी का रक्षक कौन होगा?”

श्रीजी—जमा करना माजी ! आठ दस वर्ष के लड़के को बिना उसका अभिप्राय जिये माता पिता व्याह देते हैं उसे व्याह क्यों किया ? ऐसा कहने का हक तो होता ही नहीं मेरे व्याह की (लहावा लेने की) इतनी उतावल न की होती-तो यह परिणाम भाग्य से ही आता सो भी मैं आपका दोष नहीं मानिंता । सब उसके कर्मानुसार ही हुआ करता है फिर मैं किसीके रक्षक होने का दावा भी नहीं करता । रक्षण करना न करना उससे शुभ कर्म का ही कारण है । काटेड़ों में भी मेरी रक्षा उसीने की थी ।

माजी—^० बैठी हूँ तब तक तू संसार में रह और बाद में सुख से संगम लेना । महावीर स्वामी ने भी माताजी को दुःखी न करने के लिये वे जो वित्त रहे वहां तक संयम न लिया था भगवान् जैसे ने भी माता की इच्छा रक्खी थी ।

नाथूलालजी—(पीच में ही बोल उठे) और भगवान् ने बड़े भाई की इच्छा भी क्या नहीं रक्खी थी ? माता के लिये २८ वर्ष रहे तो बड़े भाई (नंदीवर्द्धन) के लिये दो वर्ष भी रहे ।

श्रीजी—महावीर प्रभु तो तीन ज्ञान के स्वामी थे और मुझे तो एक पल पश्चात् क्या होने वाला है उसकी भी खबर नहीं । महावीर ही कह गए हैं कि, समयमात्र का प्रमाद नहीं करना चाहिये ।

माजी—परंतु पुत्र ! मैं एक दिन भी तुम्हें नहीं देखती हूँ तो मेरा आधा रुधिर औंटा जाता है मुझे तेरी बहुत फिकर रहा करती है । तुम्हें तो अपने देह की वनिक भी परवाह नहीं । ऐसी कड़कड़ाती ठंड पड़ती है उसमें एकही कपड़े से भूखा प्यासा २२ कोस तक चला गया और इतना दुःख उठाया (माजी की आंख में अश्रु भर आये)

श्रीजी—एक ही बच्चा हो, मां को प्राण से भी अधिक प्यारा हो । उसके सिवाय उसे दूसरा कोई आधार न हो तो भी निर्दय काल उसे भी उठा ले जाता है ऐसे अनेक उदाहरण अपने सामने प्रत्यक्ष हैं । यह शरीर छोड़ कर पुत्र चला जाता है वह दुःख भी माता को सहन करना पड़ता है । मैं तो घर ही छोड़ कर जाता हूँ यहां आप मेरी सार संभाल करके हो वहां मेरे गुरु मेरी खार संभाल लेंगे आप मेरे शरीर की ही चिंता करते हो वे तो मेरे शरीर की मन की और मेरी अधिनाशी आत्मा की भी संभाल लेंगे । इसलिये आपको दुःखित होने का कोई कारण नहीं, राजी होकर मुझे आज्ञा दो, आपके आशीर्वाद से मैं सुखी ही होऊंगा ।

माजी—मैं प्रसन्न होकर किसी को अपने नयन निकाल लेने की आज्ञा दे सकूँ तो तुम्हें राजी खुर्रा से दीक्षा की आज्ञा दे सकूँ ।

नू चतुर है इसीसे समझ ले । और मेरी दया आती हो तो मेरी आंखों के सामने रहकर चाहे जितना धर्म ध्यान कर । तुझे मैं कमाने को नहीं कहती । प्रभु की दया है और भाई जैसा भाई दे तुझे कुछ दुःख नहीं देगा ।

श्रीजी—माजी ! आगे पाँचे मुझे यह घर छोड़ना पड़ेगा ही और लम्बे पाँच पसार कर परवश दूसरों के कन्धों पर चढ़ इस हवेली से निकलना तो पड़ेगा ही । तो अभी ही खड़े पाँच से स्वयमेव मुझे इस बंदीखाने में से छूटने दो और सिंह की तरह स्वतंत्र विचरने दो तो क्या बुरा है ? ।

श्री मृगापुत्र ने अपनी माता से कहा है कि:—

जहा किंपागफलाणं परिणामो न सुंदरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र, १६ अ० ।--

किंपाक वृक्ष के फल देखने में बड़े सुन्दर हैं परंतु परिणाम भयंकर है उसी तरह संसार के सुख भोग भोगते मिष्ट हैं परंतु परिणाम भयंकर दुर्गति में लेजाने वाला है । श्री कीर्तिधर मुनि ने भी अपने संसार पक्ष के पुत्र सुकोशलकुमार को कुटुम्ब-और

ससार का सार समझा उसका जन्म मार्गक किया था, जिससे पुत्र
जन्म हो उसमें माता को अंतराय न देना चाहिये ।

माताजीः कुत्र बोल मैं उसके घनका हृदय भर आया, जांखों से
अधु प्रवाह प्रारंभ हुआ । नाथूनालजी की चकोर चतुर्भों ने भी
माताजी का अनुकरण किया। इस कहणा रसपूरित नाटक के समय
भीजी के हृदयसागर में सो ऐसी ही तरंगें उठ रहीं थीं कि—

अनित्यानि शरीराणि, विमनो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युस्त्वस्मादर्मं च साधयेत् ॥

भीजी बाहर की हवेली में जाने के लिये उठ खड़े हुए । और
मातु भी को आश्वासन देते बोले— “ मातु भी ! आपके संसार
मोह के अधु आपकी मस्तिष्क की गर्मी का शांत करते हैं तो
भी उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है ।

परन्तु मातु भी ! आप क्या नहीं जानते की बार २ होते हुए
जन्म, जरा और मृत्यु के अनंत दुःखों के सामने यह दुःख किस
गिनती में है । आपको दुःख हुआ इसीलिये समाता हूँ । माजी !
यह तो आपका अनुभव किया हुआ आप भूल जाते हैं कि—

“ नो मे मित्रकलत्रपुत्रनिकरा नो मे शरीरं त्विदम् ”

मित्र, कलत्र, पुत्र, शरीर आदि में से कोई भी अपना नहीं ।

“ सम्बन्धी जन स्वार्थी अर्थी सघला अंत रहे वेगला ”

“ व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती

रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।

आयु परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो

लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ” ॥

जरा बाधनी और रोग शत्रुओं के सदा प्रहार होते भी स्वार्थान्ध मनुष्य गफलत में पड़े रहते हैं, परिणाम यह होता है कि, छिद्र वाले घड़े के जल की तरह यह पुण्यायु कम होता जाता है और मनकी सन में ही रह जाती है ।

माजी ! सत्य मानिये कि, मेरा वैराग्य मेरा, लाख या काष्ठ के गोला जैसा नहीं है । परन्तु मट्टी के गोला जैसा है । उपसर्ग की अग्नि से वह अधिकाधिक परिपक्व होगा । इसलिये अब भी जो परिसह प्राप्त होंगे वे हँसमुख से सहन करूंगा यह दृढ समझिये ! ऐसा कह श्रीजी चले गए ।

इन शब्दों ने माजी और भाई के मन पर विजली जैसा असर किया उसके परिणाम में उन्हें उपाश्रय जाने की परवानगी मिली और किसी प्रकार का परिसह न देना देना निश्चय किया ।

एक समय वातचीत में श्रीजी ने दर्शाया था कि:—

“ललमी तणो आ बास, पेची राज्य गादी ने तजी
भावे थेकी मिचुक थहं, मागो गया कां भरत जी ?

अपन सो किस गिनती में हैं। अपने भगवान्‌का यही
वपदेश है कि, जण मात्र भी प्रमाद मत करो कारण कि:—

इंद्रिय सर्व अस्पृष्टित जे, तन साव निरोगी अने बल पूरु।
शुद्धि विचार, विवेक, सहायक, साधन, अन्य न कोई अधुरं।
सठ अरे ? अभिमान तभी करे वक्ष्य केम रह्यो करजोई।
वेश घणा घरवा तुजेने पण पाइल राठ रही बहु थोड़ी।
सुरर आ तन ते जण भगुर भाई ! अचानक जे पकवानु।
‘केराव’ आलस आज करो पण पाइल भी नहिं कोई यवानु।

उनके श्वसुर पक्ष के तथा माता पिता के पक्ष के कितने ही
सम्बन्धी उन्हें ससार में रहने के लिये शरमाते और समय २ पर
दबाते थे परंतु श्रीजी इन भयों से चरने वाल नहीं थे।

शांति से सब को प्रसन्न करने वाले प्रत्युत्तर दे देते थे। उनके
कितने ही मित्र अपने मा बाप की आज्ञा पालन करने के लिये उन
से आग्रह करते तब से उनकी और बहुमान प्रदर्शित कर अपने
निश्चय पर ध्यान दिलाते थे। उनके उत्तर एक साक्षर के शब्दों में
कहे तो ” मैं जानता हू कि, माता पिता की आज्ञा पालना मेरा धर्म

कारण कि वे ही मेरे जन्मदाता और पालन कर्त्ता हैं । पिता की ओर मैं रमा हूँ, माता के दूध से पला हूँ उनके इशारे से विष तक का गला पी सकता हूँ । तलवार की धार पर चल सकता हूँ और अग्नि में कूद सकता हूँ, परन्तु उनका दुराग्रह मेरे श्रेय कार्य में बाधक है इसलिये लाचार हूँ ,,

लोकमान्य तिलक के लिये कहे हुए शब्द यहां स्मरण हो आते हैं “ नर रंक के पुत्र रत्नों को निराश होना योग्य नहीं ज्वलंत धर्माभिमान, अचूक सावधानता, अचल श्रद्धा, अद्वय धैर्य, अखण्ड शौर्य, और अनन्य भाक्ति हो तो बाकी सब सरल है..... पास खड़े रहने वाले न थे, सहायता करने वाले कम थे ऐसे संयोगों में भी वह भारत तिलक निराश नहीं हुआ, श्रमित नहीं हुआ, विश्राम लेने नहीं ठहरा, अनेक संकट सहे, अनेक यातनाएं सहन कीं परन्तु अपना मंत्र जप तप तो प्रारंभ ही रक्खा काल उनके घात्र भर देगा । दुःख की रात व्यतीत हो कर प्रातःकाल भी होंगा ” ।

उस समय (सं० १९४३) में पूज्य श्री छगनलालजी महाराज टोंक में विराजते थे । उनके पास श्रीजी शास्त्राध्ययन करने लगे परन्तु दीक्षा की आज्ञा न मिली और आज्ञा न मिले वहांतक श्रीजी से कुछ बन सके ऐसा न था ।

एक दिन श्रीजी हवेली में आकर अपनी पूज्य मातुश्री के

पाँच लगे । माजी उस समय मानिकलाल को रमाती हुई खड़ी थी । श्रीजी ने उस छः माह के बालक (मानिकलाल) को प्रेम पूर्वक माता के पास से ले लिया और अपनी गोद में बिठाया । थोड़े समय तक वैसे रमाया और फिर माजी के हाथ में देकर श्रीजी बोले “ इसको अच्छी तरह रखना ” माजी बोले “ बेटा ! इसकी और हमारी संभाल लेने का काम तो तुम्हारा है ” श्रीजी मौन रहे । वैराग्य के विचार स्फुरित होने लगे ।

प्रियवाचक ! हम लोग भी एक तत्त्ववेत्ता के विचारों का मनन करें “ इच्छुक हृदय नहीं बोल सकते, अगर बोल सकते हैं तो उन्हें कोई नहीं सुन सकता । किसी को प्रवाह भी नहीं, शोक पूर्ण मनन एवं नहीं रो सकते ” अगर रोते हैं तो लोग हसी करते हैं....

“आवाज और गति” की यह दुनिया तथा ‘शान्ति और एकान्त’ का यह जगत् भिन्न २ होने पर भी बहुत समीप २ है । गुप्त जिज्ञा की कई इच्छाएँ, हृदय के कई चभरते आसू, बुद्धि की कितनी ही प्रवृत्त तरंगें हमें निष्कल होती मालूम पड़ती हैं । जिन इच्छाओं के परिपक्व होने के लिये ससार में स्थान नहीं, अश्रु के प्रवाह को रोकने के लिये जगत् की सहायता की आवश्यकता नहीं, तरंगों को मूर्तिमान् बनाने के लिये दुनिया अनुकूल नहीं ।

अध्याय ६ ठा

साधु वैद्य और सत्याग्रह ।

“ कितनी उन्नति करने के लिये हम जन्मे हैं ? कितनी उन्नति की हमसे आशा की गई है ? और हम प्रायः कितने अंश तक अपनी देह के स्वामी बन सकेंगे ? यह हम नहीं जान सकते । अगर हम चाहें तो अपने स्वतः के भाग्य पर सम्पूर्ण अधिकार जमा सकते हैं, जो २ कार्य योग्य हों अपनी आत्मा से करा सकते हैं और हम जैसे होना चाहें वैसे ही हो सकते हैं ” ।

ओ. स्वे. मार्टिन

श्रीजी के वैराग्य का वेग बढ़ता जाता था और शास्त्राभ्यास से अनुमोदन भी मिलता था । प्रथम तो एक वीर योद्धा के समान उनका विचार था कि न 'दैन्यं न पलायनम्' परन्तु जब निराशा के प्रवाह में सत्र प्रयास अदृश्य होने लगे तब इस महासागर में नाव की अपेक्षा एक पटिया के आधार से ही प्रवाह उतरने तक ग्रहण करने का निश्चय किया । अनेक आघात और घाव सहन करते अपने निश्चय को दृढ़ बनाते रहे । दृढ़ निश्चय आत्मविश्वास यह एक अलौकिक रसायन है । इस रसायन के सहारे जाने वालों ने ही सच्चे

धीरे-धीरे नायक का नाम पाया है चक्रवर्ती के समान सब देश वश किये और श्री चतुर्विध-संघ ने प्रीति फलश से प्रचलित कर पूज्य ताज पहिराया ।

अंतिम निश्चय कर अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाड़ के साथ श्रीजी एक दिन टोंक से गुप्त गुप्त निकल गये और अपनी पूर्व परिचित प्रिय रसिक पहाड़ी का देकर उसके समझाये अमूल्य तथ्यों को याद कर दीक्षा लिये बिना टोंक में पग देना ही नहीं यह निश्चय किया । यह गंगा निश्चय पृष्ठों को समझा यह संदेशा प्राकृतिक आन्दोलनों द्वारा अपने कुटुम्बियों को पहुँचाने को कह कर वे रानीपुरा (यूरी स्टेट) की तरफ चले गए । खबर मिलते ही नाथूलालजी बन्धु उनकी माता गुजरमलजी की माँ तथा गुजरमलजी की बहू उनके पीछे पीछे रानीपुर गए । वहाँ पूज्य जगन्नाथजी महाराज विराजते थे । पूज्य ताज करने पर विदित हुआ कि, वे दोनों यहाँ आये थे परंतु एक रात रहकर चले गए हैं । यह समाचार सुन सब वहाँ से रवाना हुए । राह में खबर मिली कि, एक नाले के नीचे दोनों जनो ने स्वयं साधु के वेप पहिने हैं और साधु के भंडोपकरण ले फोटे की तरफ गए हैं । यह घटना सं० १८४४ में गगसर नद में घटी ।

फिर श्रीजी की माता श्री प्रभुति सब कोटे आये वहाँ भी पता न चला । फिर निराश हो सब टोंक आये चारों ओर पत्र व्यवहार

शुरु किया तब खबर मिली कि, रामपुरा (भानपुरा) में मुनिश्री किशनलालजी विसनलालजी और बलदेवजी महाराज विराजते हैं उनके पास वे अभ्यास करते हैं ।

यह खबर पढ़कर नाथूलालजी तथा गुजरमलजी के भाई हरदेवजी ये दोनों जने उन्हें लिवा लाने को रामपुरा गए परन्तु वे वहां न थे खबर मिलने से वे सुनहेल (इन्दौर स्टेट) गए वहां एक कुतबी के मकान में दोनों साधु के वेष में नजर आये । उस समय श्रीजी सदुपदेश सुना रहे थे श्रोताओं की संख्या १०० से १५० भनुष्य के करीब थी । सदुपदेश पूर्ण होने तक दोनों आगन्तुक चुप बैठे रहे । व्याख्यान समाप्त होने पर उन्होंने कहा ।

“ हमारी बिना आज्ञा के तुमने यह वेष पहिन लिया, सो ठीक नहीं किया, अब हमारे साथ टोंक चलो ” उत्तर में उन्होंने कहा “अब पीछे तो आवेंगे नहीं । कृपाकर आज्ञा दो तो हम संतों की सेवा में रह सकेंगे और हमारे ज्ञानाभ्यास में भी वृद्धि हो सकेगी । चाहे जितना मथा मक्खन निकलने की आशा नहीं है, व्यर्थ मोह के बश हो अन्तराय कर्म क्यों बांधते हो ।

नाथूलालजी ने कहा “ आप एक समय टोंक आवें आप कहेंगे वैसा करेंगे ” । यहां बहुत कहा सुनी हुई । श्रीजी तथा गुजरमलजी ने आज्ञा देने के लिये आप्रह किया और उनके भाइयों ने इन्कार किया और दोनों को टोंक ले जाना निश्चित किया ।

नाथूलालजी तथा हरदेवजी जब टोंक से रवाना हुए थे तब टोंक रियासत से दोनों को पकड़ लाने के लिये वारंट निकलवाया था । वे वारंट के साथ सुन्देल के सूबा साहिब को मिले । सूभा साहिब ने कहा तुम फिर से एकवक्त और समझाकर कहो कि, सूभा साहिब का हुक्म है इसलिये चल पड़ो । अगर न माने तो फिर मुझे कहो ।

उन्होंने आकर वैसा ही किया परन्तु भीजी न माने । इसलिये फिर सूभा साहिब से मिले । उन्होंने भीलालजी और गुजरमलजी को कचहरी में बुलाया । सुन्देल के बहुत से आदमक भी उनके साथ थे । स्वाभाविक रीति से उन आदमकों का भीजी पर पूज्यभाव प्रकट रहा था । अल्प परिचय में तथा अल्प वय में ऐसी असरकारक सद्बुधदेश शैली से भीजी ने उनके मन जीत लिये थे । विषय की मलिनता से निर्मल होकर निकले हुए शाम्भ के प्रभावशाली पुतलों की और सदृश में रहने वालों की अंतरात्मा में गहनभक्ति पूर्णता से भर रही थी ।

प्राकृतिक नियम है कि मानव जाति के सहायक शुभेच्छुक और उपदेशक होना चाहते हों उन्हें याद रखना चाहिये कि, अपना अनुभव पूर्वादि महात्माओं की तरह— काइस्ट के कोष की तरह संकटों की शृंखला पर ही प्राप्त होने वाला है । जीवन का सच्चा

शक्त, हृदय का सच्चा तत्त्व इनकी आत्मत्याग की वेदी पर सोने से ही सार्थकता सिद्ध होती है । महात्मागान्धी इसी अभिप्राय को अनुमोदन देते हैं—फतह जब बिल्कुल समीप आकर खड़ी रहती है तब उसी राह से संकट भी सबसे अधिक आते हैं । इस दुनिया में आजतक किसीको महान् फतह प्रारंभिक अनेक प्रयत्नों और संकटों को पीछे हटाने वाली एक अंतिम असाधारण कोशिश किये बिना नहीं मिली । प्राकृतिक चरम से चरम कसौटी बड़ी कठिन से कठिन होती है । शैतान का अंतिम से अंतिम लालच सबसे अधिक लुभाने वाला रहता है । जो स्वतंत्रता अपने को प्यारी हो तो इस प्राकृतिक कसौटी में से अपने बिल्कुल शुद्ध पार उतरना चाहिये, शैतान के चरम लालच के लोभ से हरतरह अलग रहना चाहिये ।

श्रावक समुदाय सहित श्रीजी तथा गुजरमलजी सूबा साहिब के आफिस के चौक में खड़े रहे । उन्हें देखकर सूबा साहिब ने आज्ञा की कि, तुम दोनों इनके साथ टोंक जाओ इनके पास टोंक स्टेट का वारंट है तुम नहीं जाओगे तो कायदेसे गिरफ्तार कर तुम्हें टोंक पहुंचाया जायगा ।

यह सुन किसीसे न डरने वाले सत्याग्रही श्रीलालजी पग घर पग बढ़ा एक पांव से खड़े होगये और सूबा साहिब से बोले कि:—

‘मैं यहाँ खड़ा हूँ टॉक भेजना तो दूर रहा परंतु मुझे इस स्थान से भी हटाना दुष्कर है हम साधु हैं, बुलाने से नहीं आते । भेजने से नहीं जाते, बैठते हैं जो सोहे की कील की तरह और आते हैं तो पवन के बेग की तरह । आप राजा के अमलदार हैं परंतु साधुओं को सताने का अधिकार आपको भी नहीं हो सकता ।’

एक विद्वान् के विचार मत्त हैं कि “ किसी आपानि से तुम अपनी अज्ञात भी मन दिजने को, जब तक तुम्हारी अपनी आत्मा का हृद आत्म अज्ञात होगा, तब तक हमेशा तुम्हारे लिये आशा है । जो तुमने आत्म अज्ञात नहीं मोई और आगे बढ़ने की रहे तो संसार त्याग पीछे कभी न कभी तुम्हारे लिये मार्ग देगा ही । अज्ञात अज्ञात को जन्म देती है, मनुष्य चाग्रिबल से और अपने मास्तिष्क को शक्ति से अत्यन्त प्रविष्ट न सयागों में भी मफतता सिद्ध करत हैं । “अज्ञात मानसिक खेला का महाभर है । यह दूसरी अनेक शक्तियों को दुगुना तिगुना बल अपेक्ष करती है जब तक अज्ञात नेता है तब तक समस्त मानसिक सैन्य स्थिर है, प्रत्येक व्यक्ति में गुप्त बल अविनाश शक्ति गर्भित है ।”

भाग्यदेवी के लादले पुत्र की दंडता और हिम्मत से वन्धारण भिद्ये-द्वय वचन सुनकर सुबा साहिब हिम्नूद बन गए और ‘राजाका दुष्मन तुम्हें सिर चढ़ाना ही पड़ेगा’ इतने शब्द कह भय से झुकते वे ऊपर ।

के मकान में चले गए प्रायः एक प्रहर तक श्रीजी एक पाँव से खड़े रहे, अंत में नाथूलालजी को ऊपर बुलाकर सूबा साहिब ने कहा, "भाई! इस मनुष्य को हम टोंक नहीं पहुँचा सकते, इन्होंने चोरी या ऐसा कोई गुन्हा किया होता तो हम चाहे जैसा कर सकते थे, परंतु साधु का वेष पहिना कुछ गुन्हा नहीं इस लिये तुम्हें योग्य जेबे देना पड़ेगा, वैसे करके ले जाओ और हमें इस फंद से अलग रखो।

नाथूलालजी निराश हो श्रीजी के पास आये और घर आने के लिये नम्रता से प्रार्थना की तब श्रीजी ने कहा, "आप मोहिनीय कर्म छोड़ दो कि, जिससे यह सब संताप मिट जाय।

अपने भाई को बहुत समय तक एक पाँव से खड़े देखकर नाथूलालजी गदगद हो गए और कहा कि, आप अपने स्थान पर पधारो और आहार पानी करो फिर हम बातलापें करेंगे पश्चान् श्रीजी बगैर वहाँ से रवाना हो उठे कुनची के घर पर जहाँ पहले से ठहरे हुए थे आये। श्रीजी पानी तथा गौचरी लाये आहार पानी किये पश्चान् नाथूलालजी ने श्रीजी से कहा कि, अभी टोंक से चिट्ठी आई है उसमें लिखे हैं कि, चि. कुंवरीलालजी को ब्याह सकगया है इस लिये आप श्रीजी को लेकर जल्द आओ।

श्रीजी ने कहा "अभी टोंक आने की इच्छा नहीं, आप आशा करेंगे तो ही—

“बिना संयत लिये टोंक में धँस भी न दूँगे ” ।

अंत में निराश हो माधूलालजी तथा हरदेवजी टोंक की तरफ रवाना हुए परन्तु जाते समय टोंक निवासी बालजी नाम के माध्यम को वहीं रस्ताएँ और उसे कह गए कि, जहाँ २ श्रीजी विचरें वहाँ २ नूँ इनके साथ जाना इनकी सार संभाल लेना और इनके कुशल बतलाना से हमें रोज २ स्थान ० सहित टोंक लिखते रहना ।

माधूलालजी ने टोंक आकर माजी प्रभृति से सब समाचार कहे और कहा कि, संसार में रहने की उनकी बिल्कुल इच्छा नहीं है । माजी ने कहा कि, मुझे यह बात नहीं नहीं मालूम होती अब उसे अधिक सताना मुझे ठीक नहीं जँचता ।

श्रीजी तथा गुजरमलजी साधू के वेप में विचरने लगे, सुन्दल लुछाम पर किरानलालजी विसनलालजी महाराज (पूज्यभी अनूप चम्पूजी महाराज की सम्प्रदाय के) से समागम हुआ और उनके पास स शस्त्राभ्यसन करना प्रारम्भ किया । वहाँ से पाचों ठाणों के साथ २ विहार वर रामपुरा (हो. स्टे.) में चातुर्मास किरा । सवत्. १६४५ ।

रामपुरा में केशरीमलजी नाम के आदर सूत्र के जाणकार और विद्वान् हैं उनके परिचय से श्रीजी के सूत्र ज्ञान में अधिक वृद्धि

हुई। उनके साथ के ज्ञान संवाद में श्रीजी को अपार आनंद आता और अधिक ज्ञान सम्पादन होता था।

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चान् भालावाड़ कोटा प्रभृति की ओर हो पांचों महात्मा पुरुष माधोपुर पधारे। पाठकों को विदित हांगा कि, माधोपुर में श्रीजी का मौसाल था। और उनके मौसाल पक्ष का धर्मानुराग अधिक प्रशंसनीय था। श्रीजी को कैसे २ परिसह सहन करने पड़े यह सब वे जानते थे। श्रीजी के मामा के पुत्र लक्ष्मीचंदजी (देववत्तजी के पौत्र) माधोपुर निवासी मायाचंदजी पारवाड़ प्रभृति श्रीजी तथा गुजरमलजीकी आज्ञा के लिये कौशिक की टोंक आकर इनके कुटुम्बियों को नाना विधि से समझा दीक्षा को आज्ञा देने वाद्यत कहा।

प्रथम श्रीजी की मातु श्री चांदकुंवर बाई को अरज करने पर उन्होंने कहा कि, बहू को (श्रीजी की अर्धांगिनी) पूछने दो। उनकी ओर से क्या उत्तर मिलता है।

माजी ने फिर पुत्र वधू को बुलाकर पूछा कि, दीक्षा की आज्ञा देने में तुम्हारी क्या राय है? मानकुंवर बाई ने विनय तथा धैर्यपूर्वक उत्तर दिया " आपने संसार में रहने के लिये जितने प्रयत्न हो सके किये परन्तु सब निष्फल गए। अब तो आपका और उन्हें सबको तकलीफ होती है इसलिये आप जो फरमायेंगे मैं शिरोधार्य

चरुंगी ” । अपने पति को अपने समीप से टलने की आज्ञा नहीं देने वाली मोह फांस में पति को फांतरुग रखने वाली वर्तमानकाल की अर्द्ध दग्ध अर्धांगनाओं को यह अवसर सोचना चाहिये ।

यह उत्तर सुनकर माजी का हृदय भर गया । आँखों से दृढ़ २ अश्रुपात होने लगा । भोड़े समय तक विचार निमग्न रहे और फिर लक्ष्मीचन्द्रजी तथा नाथूलालजी से कहा कि, वि. मानिकलाल (नाथूलालजी का पुत्र) को श्रीलालजी के नाम पर रखो । “ नाथूलालजी ने माजी की यह आज्ञा शिरोधार्य की, फिर माजी ने कहा ” “ भुक्त से तुम आज्ञा देने जाओ । मेरा आशीर्वाद है कि श्रीजी सुन्दर रीति से संवत्स पालें, आराम का कल्याण करें और जैन मार्ग दिपायें ” । घन्य है ऐसी उत्कृष्ट इच्छा वाली माताओं को । इसी तरह गुजरमलजी पोरवाड़ की माता तथा बनधी श्री तथा उनके भाई मांगीलालजी को समझा उनकी दीक्षा की आज्ञा भी प्राप्त की । पहिले से ही साधु का वेप पहिन लिया होने से किसी

३ माता के सम्बन्ध में एक कथा पूज्य श्री कहते कि पांच पुत्र वाली एक माता ने एक पुत्र को इच्छा दीक्षा लेने की देने से गुह्य श्री ने माता को सद्गुपदेश दे अपने पुत्र को भिक्षा देने कहा उस माता ने अपने अहोभाग्य समझ एक के बदले दो पुत्रों को गुह्य के शिष्य बनाये ।

प्रकार की धूम धाम की आवश्यकता न हुई। टोंक से पूर्व में ७ कोस दूर वण्णैठा ग्राम में उन्हें दीक्षा का पाठ पढ़ाया जाने वाला था। माधोपुर वाले लक्ष्मीचंदजी तथा मुनिराज बगैरह पहिले से ही वहां पहुंच गए थे। और टोंक से श्रीजी की माता की आज्ञा लें उनके भाई नाथूलालजी तथा सेठ हीरालालजी के पुत्र रामगोपालजी लक्ष्मीचंदजी प्रभृति तथा गुजरमलजी की माता की आज्ञा लेकर उनके भाई मांगीलालजी पोरवाड़ बगैरह चांदर कपड़े आदि लेकर वण्णैठा आये।

संवत् १८४५ के माघ वद्य ७ गुरुवार के दिन सुबह आठ बजे पूज्य श्री अनूपचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री किरानलालजी महाराज ने श्रीलालजी तथा गुजरमलजी दोनों को विधिपूर्वक दीक्षा दी। यहां यह बात सिद्ध हुई कि “हम परिस्थिति के दास नहीं” परन्तु हम जिसके लिये आपस पूर्वक विचार कर रहे थे और जिसके लिये अखंड उद्योग करते थे वह प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया। दीक्षा लेने के प्रथम गुजरमलजी ने श्रीलालजी से कहा कि, मैं आपकी नैश्राय में विचरुंगा अर्थात् आपका शिष्य दौऊंगा। तब श्रीजी ने कहा कि, मुझे शिष्य करने का त्याग है।

परस्पर थोड़े बहुत प्रशोत्तर हुए पश्चात् जब गुजरमलजी ने श्रीजी से शिष्य के समान अपने को स्वीकार करने की बहुत विनय पूर्वक अर्ज की, तब श्रीजी ने कहा—तुम मेरी आज्ञा में चलोगे ?

गुजरमलजी:- (सबके संमुख बोले) मैं सर्वदा आपकी आज्ञा में ही विचरूंगा ।

श्रीजी:-बस, तो अभी ही मेरी आज्ञा है कि, अपने दोनों बलदेवजी महाराज की नेमाय में रहें ।

गुजरमलजी ने यह आज्ञा शिर चढ़ाई और दोनों को बलदेवजी मुनि (किसनदासजी महाराज के शिष्य) के शिष्य बनाये । श्रीजी का इच्छा न होते भी किशनलालजी महाराज बोले कि, हमतो गुजरमलजी को आपकी नेमाय में समझते हैं यह मुनकर गुजरमलजी को अपार आनंद हुआ और वे बोले कि, मुझे सम्पत्त्व राज की प्रति कराने वाले धर्म के मार्ग पर लगाने वाले सच्चे उपकारी गुरु को श्रीजी महाराज ही हैं ।

यद्यपि श्रीजी की इच्छा पूर्य श्री दुर्कमीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पास दीक्षा लेने की थी, तो भी उनके माता पिता के आग्रह से अपने गुरु आमनाय की सम्प्रदायमें अर्थात् काटे वाले की सम्प्रदाय में दीक्षा देने की थी और इसी रात से आज्ञा मिली था । इसलिये कोटा सम्प्रदाय में उन्होंने दीक्षा ली दीक्षा लेने के पहिले ही आचार सम्बन्धी कितनी ही कठिन रातें उनके गुरु से श्रीजी ने मजूर करवाली थीं ।

श्रीजी को दीक्षित हुए पश्चात् श्री किशनलालजी महाराज से नाथूलालजी ने विनय की, कि आप श्रीजी के साथ टोंक पधार कर हमारी मातुश्री के दर्शन की अभिलाषा पूर्ण करो । महाराजने कहा जैसा अवसर ।

तत्पश्चात् महाराज साहिब टोंक पधारे और वहां एक ही रात रह दर्शन दे हाड़ोती की ओर विहार किया और वहां से भालरा-पाटन पधारे ।

संवत् १६४६ का चातुर्मास भालरापाटन किया । वहां धर्म का बहुत उद्योत हुआ, परन्तु श्रीजी महाराज के गुरु के भी गुरु श्रीकिशनलालजी महाराज कि, जो उनके ज्ञानादि गुणों की अभिवृद्धि करने वाले आलंबन भूत थे उनका इस चातुर्मास में स्वर्गवास हो गया इस कारण श्रीजी को बहुत दुःख हुआ । परन्तु जिंदगी की अस्थिरता और का संसार असारपना समझने वाले तुरन्त उसे सहन करने के लिये कटिवद्ध होगए और वीर वाक्यों का मलहम पट्टी से इस घाव को भरने लगे ।



अध्याय ७ वाँ ।

सरिता का सागरमें प्रवेश ।

पूर्व अध्याय में अपने पद खुले हैं कि, श्रीजी की आंतरिक अभिलाषा ज्ञान वृद्धि और चारित्र्य विशुद्धि विषय में अपनी इष्ट-मिष्टि साधनार्थ श्रीमान् हुक्मोचंद्भी महाराज की सम्प्रदाय में सम्मिलित होने की थी, चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् अपना मनोरथ खुले दिल से गुरु की सेवा में निवेदन किया। मुनिजी विद्यनलाक्ष्मी तथा बलदेवजी ने कहा एकता गुरु वियोग से हमारा हृदय भग्न हो रहा है और तुम भी हम से अलग होकर जल पर तमक झिङ्कना चाहते हो ।

वत्सर में श्रीजी महाराज ने विनय पूर्वक कहा कि, जिस हेतु से मैं घर द्वार और कुटुम्ब परिवार त्यागा है उस हेतु से पूर्णतः मैं सिद्ध परमा ही मेरा परम ध्येय है ।

श्रीजी महाराज अपने उन्चाशय से न डिगे और अपने दृढ निश्चय को सिद्ध करने के लिये गुरुजी की शुभाशीष पाकर रामपुरा पधारे । वहा सुयोग्य मुखाङ्क केमरीमलजी मुगना का समागम

शास्त्राध्ययन में अत्यन्त उद्योगी हुआ। श्रीजी अविरत रीति से शास्त्राध्ययन करने लगे। ज्ञानमें अधिक उन्नति की। इनकी व्याख्यान शैली भी उत्तम और आकर्षक होने से श्रावकों में भी ज्ञानरुचि और धर्म भावना बढ़ने लगी।

चातुर्मास पूर्ण हुए बाद रामपुरा से बिहार कर श्रीकानोड़ मुकाम पर पंडित मुनि श्री चौथमलजी महागज विराजते थे वहां पंधारे और अपना अभिप्राय कहा। टोंक श्रीयुत नाथूनालजी वन्ध को भी यह खबर मिलते ही वे भी कानोड़ आये और श्रीजी महाराज की इच्छानुसार उन्हें अपनी नैश्राय में लेने के लिये श्रीमान् चौथमलजी महाराज को आज्ञापत्र लिखा दिया, तत्र उन्होंने अपने बड़े शिष्य वृद्धिचंद्रजी महाराज के शिष्य बनाकर श्रीजी महाराज को अपनी सम्प्रदाय में ले लिया। यह घटना हुंगरा (मेवाड़) मुकाम पर संवत् १६४७ के मगसर शुक्ल १ शनिवार को हुई। तत्पश्चात् वे श्रीमान् चौथमलजी महाराज की आज्ञा में निवहने लगे। यहां उनकी आत्मिक शक्तिका अधिक विकास हुआ। ज्ञानी गुरुके समांगम से सूत्र ज्ञान में आशातीत उन्नति की, निरतिचार चारित्र पावन थे वे गुरु के प्रीतिपात्र होकर लोगों में पूजनीय और कीर्ति के कोलिप्रद सदृश होगए। " सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? "

सं. १६४६ का चातुर्मास सद्गुरुवर्य श्रीचौथमलजी महाराज के साथ कानोड़ में किया।

यहां विशेषतया कदाकाल श्रीजी महाराज करमाते थे । पत्थर जैसे दृश्य को पिघलादे ऐसा उपदेश और वसुधा अद्भुत अमर देव्य मय को बड़ा आनंददायक होता और श्रोतृगण पर अकर्णनीय उपकार होता था ।

इस प्रातुर्नाम में ये जिन मकान में ठहरे थे वहां एक बड़ा बिकराल सर्प रहता था । एक दिन भी ऐसा भाग्य से ही हो जाता कि, जिस दिन सर्प देखने में न आता हो । आहार पानी के पाद पर वह कई समय गरल डालता था । रात के जगमग रास्ते में पग रेतें या पात्रा-टाकने जाने तो रजोहरण के माधु बुझता । तब दूमरी राहमें आकर कूँकार मारता और सामने होता था । तथा कचिन् समय पाद का प्रहार करता था । दिन में भी वह निबर हो उस मकान में फिरता था । साँप साधुजी से निर्भय था । वसी तरह साधु भी साँप से निर्भय थे । आबकोने मकान बदलने के लिये महाराज से पुनः २ बहुत विनय की, परन्तु यह निरुक्त गई । महाराज कहते थे कि पिहित के सुनि सिद्धकी गुफा, सर्प के जिल और घोर रमरान भूमि में स्वच्छेदार्थक जाकर उपसर्गों की निमंत्रित करते थे । यह सर्प हमारी कर्माटी के लिये बिना आमंत्रित किये यहां आया है सो येशक हमारे मरमग का लाभ उठा पत्रि जिनगणी का भवण करता रहे । पूर्ण चातुर्मास इसी स्थान पर साँप के साथ रहकर ऋतुवर्ति किया परन्तु पुण्यप्रसाद मे तथा तपचारित्र के प्रभाव से साँप

कुछ उपसर्ग न कर सका और साधुओं के धैर्य तथा निर्भयता की कसौटी का यह समय निर्विघ्न समाप्त हुआ। इस युगमें भी चारित्र्य बल अपना प्रभाव तिर्यचों पर दिखा सकता है, जिसके अनेक उदाहरण पूज्य श्री के जीवन में मिलेंगे।

१. संवत् १६५० का चातुर्मास श्रीमान् चौधमलजी महाराज के चरणकमल के समीप रहकर जावदमें किया। श्रीजी के समागम तथा सद्बोध से जैन अजैन इत्यादि लोग हर्षित हुए और ज्ञानवृद्धि कर कर्त्तव्यपरायण बनें।

संवत् १६५१ का चातुर्मास निम्बाहेड़ा (मालवा) संवत् १६५२ का छोटी साबड़ी (भेवाड़) और सं० १६५३ का चातुर्मास जावद में किया। श्रीजी महाराज चातुर्मास या शेषकाल जहाँ से विराजते थे वहाँ वहाँ के लोग उनके अपरिमित ज्ञान निर्मल चारित्र्य वाक्पटुता इत्यादि असाधारण गुणों से मुग्ध बनकर श्रीजी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे। दिन पर दिन उनका विमल यश देश देशान्तरों में विस्तारित होने लगा।

सागर वर गंभीर।

संवत् १६५३ में तपस्वीजी श्री हजारीमजजी महाराज के साथ श्रीजी महाराज ठाणा के रामपुरा पधारे। वहाँ ऐसे समाचार

मिसे कि, आचार्य महोदय श्री उदयसागरजी महाराज की स्वस्व
ठीक नहीं, आचार्य श्री की ओर श्रीजी का अनुग्रह भास्ति भाव जब
गया तब मैं भी मेरा उपरोक्त समाचार मिलता था उनके चि-
न्तातुर हृदय और दर्शनातुर नेत्रों ने शान्त निहार करके क लिखे
प्रेरणा की ओर धाके ही दिनों में परम प्रतापी महान् आचार्य श्री
उदयसागरजी महाराजको सेवा में रतताम पथरे ।

श्रीलालजी महाराज का ज्ञानाभ्यास की ओर विशेष लक्ष्य तथा
तदनुसार उत्तम आचार विचार दृष्ट आचार्यजी महाराज बहुत
प्रसन्न हुए और श्रीजी से पूछा कि अब कौन से सूत्र का अभ्यास
करते हो ? श्रीजी ने विनयपूर्वक उत्तर दिया :—“ कृपानाथ !
अभी मैं श्री ठाण्ड्यायनी सूत्र का अभ्यास करता हूँ ” यह सुन
कर भीमान् आचार्य श्री क मुन्य कमल ने सहन ही ऐसा शब्द
निकल पड़ा कि ठाण्ड्यायनी समाससूत्र का अभ्यास करने से । सागर
वर गभीर । होभाग । इस आशीर्चन को महाराज श्री ने परम ,
आदर पूर्वक शिरसावध कर कहा, कि कल्पवृक्ष की सेवा करने से
हृच्छिन वस्तु की प्राप्ति हो उसमें आरच्य क्या ?

पठक पहिले पठ चुके हैं कि, जब श्रीजी गढ़नाम में थे तब
उन्हें आरत नाम देने वाले भी यही महापुरुष थे । सन और योग
रूपी श्री (लक्ष्मी) का धारण कर सचमुच श्रीधर बन फिर जब

इन्हीं महापुरुष की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्हें 'सागर समान गंभीर होओगे' ऐसी शुभाशिष दी और वह थोड़े बहुत समय में सफल भी हुई । सतत सत्य का सेवन करने वाले महापुरुषों के वचन कदापि निष्फल नहीं जाते । योग दर्शन के प्रणेता पतञ्जलि (जिन्होंने हरिभद्र सूरी को मार्गानुमारी कहा है) कहते हैं कि—

“ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ”

मूलार्थः - (साधक योगी के चित्त में) सत्य की स्थिरता होने पर क्रिया तथा फल की स्वाधीनता (होती है)

अर्थात् अपनी इच्छानुसार अन्य को धर्माधर्म तथा स्वर्ग नरक आदि प्राप्त करा देने का उभ योगी की वाणी में सामर्थ्य है । सत्य जिसे सिद्ध हो गया है ऐसे योगी की वाणी अमोघ, अप्रतिहत होती है । इसलिये ऐसा योगी किसी को बहे कि, नृ धार्मिक होजा तो उनके वचनमात्र से ही वह पापी हो ता भी धार्मिक हो जाता है, किसीको कहें कि नृ स्वर्ग प्राप्त कर, तो उनके कथनमात्र से ही वह अधार्मिक हो ता भी स्वर्ग नहीं देने वाले संस्कारोंको दूर कर स्वर्ग प्राप्त कर लेता है (पानंजलि योगदर्शन)

(१४४)

आचार्य श्री के शरीर में ठ्याधि बढ़ती देख शरीरका कुछ भंगुर स्वभाव समझ उन्होंने सम्प्रदाय की रक्षा और व्रतानि के लिये श्रीमान् चौधमलजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया । (संवत् १९५२) सर्वश्रान वेदनीय कर्म के लयोपशम से पूग्र श्री को कुछ आराम होने पर उनकी आज्ञासे भीजीने रतनाम से विहार किया और संवत् १९५३ का चातुर्मास युवाचार्यजी महाराज के साथ जाबद में किया ।



अध्याय ८ वाँ ।

मेवाड़ के मुख्य प्रधान को प्रतिबोध ।

श्रीजी की अपूर्व ख्याति सुन मेवाड़ के ॐ पायतल उदयपुर श्री संघ ने उनका उदयपुर चातुर्मास होने के लिये आग्रह पूर्वक र्ज की। इसलिये सं० १६५३ का चातुर्मास उदयपुर में हुआ। यहाँ ख्यान में हिन्दू मुसलमान हजारों लोग आते लगे। कई मंदिर-

॥मेवाड़ की प्रसिद्धि में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं अपनी टेक कायम लेने के लिये राणा प्रताप ने हजारों संकट सहन किये थे समस्त हिंद उदयपुर के राजपूत अग्र स्थान पाते हैं मुसलमानों ने चित्तौड़ को माल किये बाद उदयपुर को राजधानी बनाया। पुरुषों ने अपना कायम रखने और स्त्रियों ने अपना सतीत्व कायम रखने के प्राणों की भी परवाह न की थी। उनके स्मारक अभी चित्तौड़ में कायम हैं। भारत के इतिहास में मेवाड़ की कीर्ति सुवर्णा से अंकित है, इतनाही नहीं आज भी अपने उस मान के लिये गर्व है, सम्राट् जार्ज के दिल्ली दरबार के समय भी हिन्द के महान् राज्यों से भी इनके लिये खास व्यवस्था हुई थी और

मार्गी भाई भी नित्य प्रति व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे और वनमें से कितने ही ने श्रीजी से सम्यक्त्व की प्रहण की श्रीजी महाराज के अनुग्रह गुणों में सब लोग मुरझाते और कहते कि, सचमुच उस महात्मा का अस्तित्व जैन-शासन के पुनरुत्थान कलियुग ही है ।

अभी भी उदयपुर राज्य अपने भिक्षे में 'वोस्त खंडन' जिल्लते हैं चारों ओर की उच्च पहाड़ियां प्राकृतिक कोट के रूप में विद्यमान हैं । यहा की जमीन उरी होने से कई जगह यहा से पानी जाता है परन्तु कहीं से भी उदयपुर में पानी नहीं आ सकता मेवाड़ की भूमि भी पवित्र गिना जाता है । जिनियों के श्री स्वामी नाथजी श्रीकेशरियाजी, वैष्णवों के श्रीनाथजी और शैवों के श्री एकलिंगजी इन तीनों धर्मों का राज्य की तरफ से पूर्ण मान सम्मान दिया जाता है । श्री जयभक्त स्वामी के पादरी स्वादान में होने से अभी तक य " धर्मरक्ष " के लगान अपना धर्म अदा करते हैं । इस राज्य का मूलमिथ्यान्न है कि, ' वो दंड राज्ये धर्म को तिह राज्य कवतार ' अर्थात् राजाओं की सेवा में सालह दजार और वृत्तीय हजार राजा रहने थे वैसा ही हाल श्री उदयपुर के महाराणा साहब का है य भा अपना सोलह और वृत्तीय उमरावों में मूर्य क सप्ताह शाभा पाने निकलते हैं । कचहरी सनारी तथा राज्य की दूसरी रीति रिवाज अब

इस चातुर्मास में बदयपुर में संवर और तपश्चरण इतना अधिक हुआ कि, पहिले कभी भी न हुआ था। स्कंध त्याग प्रत्याख्यान इत्यादि इतने अधिक हुए कि, जिनकी कदाचित् नामवार तपसीलि दी जाय तो एक पुस्तक भर जाय।

कई श्रावक श्राविकाओं ने बारह व्रत अङ्गीकार किये—शारीरिक रचना, वैद्यक, नीति ककसर इत्यादि सिद्धान्तों से मांस खाना हानिकारक समझ कई मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण करने का त्याग किया कईयों ने मदिरापान त्याग और कईयों ने शिकार खेलना छोड़ा। कटाव्यों को मुंह मांगे दाम देकर छुड़ाने की अपेक्षा मांसाहारियों को समझाने में विशेष लाभ है। शहर में बड़े (बीसा ओसवाल) के मालिकता एक पंचायती हवेली हैं जिसे

भी शास्त्रानुसार ही होते रहते हैं—जगन्माना गाय को सेनाइ की सीमा के बाहर कोई नहीं लेजा सकता, बैल, भैंस, पाटे इत्यादि जानवर भी अजान आदमी या कसाई के हाथ बेचने की राखत मनह है, मोर, कबूतर, मच्छी, मारनेकी भी मनाई है। वृद्ध जानवरों को नीलाम नहीं करने देते और न कसाई के हाथ ही बेचने देते। राज्य की तरफ से सरकारी पशुशाला में उनका पालन किया जाता है वर्ष के कई महीनों कसाई कंदोई तेली कुम्हार इत्यादिओं से अंगते पलाये जाते हैं।

नोहरा भी कहते हैं वही बड़ी विराज जगह में माधु गुनिराज
 पातुर्मास करते हैं यहां हमेशा २०० से ३०० मनुष्य श्रीजी के
 व्याख्यान में एकत्रित होते थे । दोनों बड़ी २ धर्मशालाएं भी जाने
 पर सोसरी भोजनशाला है यहां बैठना पड़ता था । श्रीजी की आवाज
 सुनना सुनंद थी कि सब श्रोतृममुदाय बराबर श्रवण कर
 सकते थे ।

चातुर्मास में आगे के रावतजी साहिब पचायती नोहरे में
 पधारे थे श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उन्हें बहुत ही आनंद हुआ
 आदिना धर्म की रुचि हुई व्याख्यान के पश्चात् रुके हो श्रीजी महाराज
 के पास उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि, नवरात्रों में बलिदान होता है
 उसमें से दो पाके और पार बफरे हमेशा के लिये कम करता हूं ।
 इसी तरह कोठारिया के रावतजी साहिब ने भी दो पाके और पार
 नफरे नवरात्रों के बलिदान में से हमेशा के लिये कम करने की
 महाराज के पास प्रतिज्ञा ली थी, इनके सिवाय दूसरे भी कई जागीर-
 दारों ने तथा राज्यकर्मचारियों ने श्रीजी के अनुग्रह सङ्कोष से नाना-
 विधि की प्रतिज्ञाएं ली थीं ।

चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् कार्तिक वद्य १ के रोज बिहार
 कर आहूत प्राप्त कि जो उदयपुर में १॥ माइल दूर आति
 साधान स्थान है वहां श्रीजी महाराज पधारे यहां श्रीमान् बल

पूज्यश्रीना

साचा

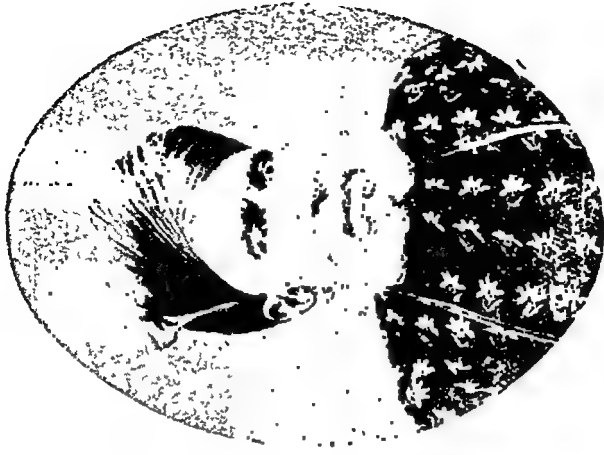
सलाह-

कारो.

परिवय

प्रकरण

४८.



सेठजी वालमुकनजी मुथा-सतारा.

सेठजी अमरचंदजी पीतळीया-रतलाम.



मेवाडना मुख्य प्रधान श्रीमान् काठारेजी
श्री बलचतसिंहजी साहेब-उदयपुर

वंत सिंहजी साहिब कोठारी * उनकी अद्भुत प्रशंसा सुने पशुपति पधारे दर्शन कर वार्तालाप किया । कितनी ही शकाएं थीं जिनके निराकरणार्थ विविध प्रश्न किये । उनको महाराज श्री की तरफ से ऐसे संतोष कारक उत्तर मिले कि उनकी मन बहुत ही प्रफुल्लित हुआ ।

फिर दूसरे दिन दीवान साहिब आहड़ पधारे उनके साथ श्रीमान्, महेशजी गोविन्दसिंहजी साहिब भी पधारे दर्शन कर एकान्त स्थानमें पूज्यश्री के पास बैठ अनेक बातें बहुत समय तक करते रहे और उसी दिन से श्रीमान् कोठारीजी साहिब के हृदय पर महाराज श्री के वचनानुमोदों का इतना अधिक प्रभाव गिरा कि जैन

* श्रीमान् कोठारीजी साहिब उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान थे । साथ के पृष्ठ पर उनका फोटो दिया गया है । वे विद्वान् बुद्धिमान्, सत्यवक्ता, विचक्षण और सद्गुणों पर एकसा भाव रखते श्रीमान् मेवाड़ाधीश हिंदवा सूर्य महाराणा साहिब की वे अंतःकरण पूर्वक प्रशंसीय सेवा बजाते हैं । उनकी अनुकरणीय राज्यभक्ति के कारण महाराज श्री के प्रीतिपात्र और विश्वासपात्र हो गए हैं । अभी भी राज्य में उनकी मानप्रशंसा अधिक है । जयम सुवर्ण वक्ता है और वंश परम्परा की जामीन मिली है ।

धर्म पर उनकी दृढ़ अट्टा हो गई और श्रीजी महाराज के वे अनन्य भक्त बन गए. तत् पश्चात् वहां से विहार कर मेवाड़ के प्रान्तों में विचरते समय लोगों ने उनमें हजारों रुकंध, तपस्वर्या तथा ऋषि, प्राणायाम किये ।



अध्याय ६ वाँ ।

पति की राह पर पत्नी ।

क्रमशः मेवाड़ मालवा की भूमि पावन करते श्रीजी महाराज रतलाम पधारे । श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज भी जावद से विहार कर रतलाम पधार गए थे । रतलाम श्री संघने अत्यंत उत्साह भक्ति और हर्ष पूर्वक उनका स्वागत किया । प्रायः दो हजार मनुष्य, उन्हें लाने के लिये सामने गए थे । उस समय आचार्य श्री-उदयसागरजी महाराज की तकलीफ के समाचार देशान्तरों में फैलते ही हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगे । टोंक के श्रीयुक्त नाथूलालजी बम्ब उनके पुत्र मानिकलाल और श्रीमती मान-कुंवर बाई (श्रीजी की संमारावस्था की धर्मपत्नी) भी आई । उस समय हजारों मनुष्यों के बीच सिद्धगजना से धर्म घोषणा करते श्रीलालजी महाराज की अपूर्व वगैरी श्रवणकर मान-कुंवरबाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ । पति की राह ग्रहण कर आत्मोज्ज्वलि साधने की उत्कंठा हुई अर्द्धांगना का दावा रखने वाली हर एक पत्नी को ऐसी मद्वृद्धि उत्पन्न होती है है इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं । श्रीमान् आचार्यजी महाराज के पास ऐसी प्रतिज्ञा ली कि, मुझे एक

मास से अधिक समय तक संचार में रहने के प्रत्याख्यान हैं । उप-रोक्त प्रतिष्ठा के मानकुंवरबाई सबकी आज्ञा लेने टॉक गई ।

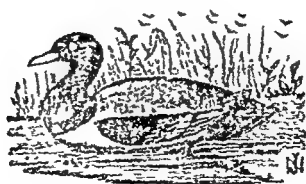
सं० १६५४ माघ शुक्ल १० मी के दिन आचार्य भी उद्य सागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ उनकी ऊर्ध्व देखिक किया रतनाम के भी संघ ने बहुत ही उदारता पूर्वक समारंभ से की ।

पश्चात् सं० १६५४ के फाल्गुन शुक्ल ५ मी के रोज भीमती मान कुंवर बाई ने रतनाम स्थान पर भीमती रंगुजी महासठजी की सम्प्रदायकी सतीजी भी राजाजी के पास दीक्षा अंगीकार की उस समय भीजी महाराज भी रतनाम विराजते थे एक ही मिति को तीन दीक्षाएं हुई । दीक्षा अवसर्ग भी बड़ी ही धूम धाम से किया गया रतनाम संघ अंत महत् की सेवा और धर्मोन्नति के कार्य में समय २ पर अनुस्रित द्रव्य व्यय कर जिनमत को दिपाते हैं तथा कर्तव्य पालन करते हैं यह अत्यंत ही प्रशंसनीय है ।

श्रीमान् चौधमलजी महाराज आचार्यपदार्ह हुए और सम्प्रदाय की सब तरह सार संभाल करने लगे परंतु स्वयं बयोवृद्ध होने से तथा नेत्रशक्ति भी छीण हो जाने से उनसे विहार होना अशक्य था इसलिये वे भी रतनाम में ही स्थिर

(१५३)

वास रहे और श्रीजी महाराज को आह्वा की कि, तुम शेषकाल निकटवर्ती ग्रामों में विहार करते हुए चातुर्मास रतलामही करो अपने पश्चात् अगर सम्प्रदाय का भार उठा सके इतने गुण वाले व योग्यता वाले साधु कोई थे तो ये श्रीलालजी ही थे । और इसी लिये उन्हें अपने पास रख शिक्षित करने की उनकी इच्छा थी । इस लिये सं १६५५-५६-५७ ये तीनों चातुर्मास पूज्य श्री की सेवा में रह रतलाम किये । पवित्र पुरुष जिस स्थान को अपने चरणरज से पवित्र बना रहे हों वही स्थान तीर्थभूमि कहलाता है । उस समय रतलाम शहर सन्मुख तीर्थक्षेत्र था । श्रीजी महाराज के सद्गंधामृत का विपुल प्रवाह रतलामवासीयों के अंतःकरण की मँल धो उन्हें पावन करता था । तीन वर्ष के बीच जो २ महान् उपकार हुए वे अदर्शनीय हैं । देशान्तरों से भी बहुत लोग दर्शनार्थ रतलाम आते और श्रीजी महाराज के व्याख्यान से बहुत २ संतुष्ट होते थे । इससे श्रीजी महाराज की कीर्तिदुंदभी दशों दिशाओं में बजने लगी ।



अध्याय १० वाँ

आर्चायपदारोहण ।



भीमान् आचार्य महोदय भी चौधमलजी महाराज की सेवा में अर्जी धिराजते और अपने अमूल्य वचनामृतों द्वारा जनसमूह पर अपार उपकार कर रहे थे इतने ही में सं० १६५७ के कार्तिक मास में आचार्य भी चौधमलजी महाराज के शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई । समासागर उसे समभाव से सहन करते थे । कार्तिक शुक्ल १ के रोज रात को १०-११ बजे व्याधि बढ़ने लगी । भीजी महाराज ने पूरव श्रीर्षा सेवामें तन मन, अर्पण किया था । उनके हाथ में नाड़ी न धाने से वे बाहर आये । और श्री शृपमंदासजी भीमाल जो संवर कर वहीं पर सोए थे उन्हें यह इकीकत कही तुरंत वे आसंघ के अग्रगण्य सेठ अमरचंदजी साहिब पोंतलिया तथा भीयुन सेजपालजी सचेती इत्यादि को यह खबर दे आये । इसपर वे दोनों तथा और कितने ही आबक पूज्य थीही सेवामें आये । सेठ अमरचंदजी साहिब ने नाड़ी देखी और पूज्य थी को आवाज़ दे सचेतन किया तुरन्त सचेतन हो उन्होंने उपस्थित साधु भावकों के समक्ष प्रकट आलोचना निंदना को पुनः महाप्रद आरोपण-

कर शुद्ध हुए। तब समय भेठजी श्री अमरचंदजी पीतलिया
 आयुत तेजपालजी इत्यादि श्रावकों ने अरज की कि " श्रीमान् ! आपने
 तो आलोचनादि करके शुद्धि करली है परंतु अब हमें और चतुर्विध
 संघको किस का आधार है। उत्तर में पूज्य महाराज ने फरमाया
 कि " मेरे पश्चात् सम्प्रदाय की सार संभाल श्रीलालजी करें " श्रीजी
 महाराज के अनुपम गुणों से श्रावक लोग परिचित थे और इसीलिये
 आचार्यपद को श्रीजी महाराज दिपावे ऐसा वे पहिले से ही चाहते
 थे सबने सबने पूज्य श्री की उर्युक्त आज्ञाको अत्यानंद पूर्वक शिरो-
 धार्य किया।

दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला २ के रोज दोपहर को चतुर्विध संघ
 एकत्रित हुआ और श्रीमान् सेठ अमरचंदजी साहिब पीतलिया ने
 आचार्यश्री की सेवा में पुनः चतुर्विध संघके समस्त अर्ज की कि
 " जैनशासनरूप आकाश में आप सूर्यवत् प्रकाश कर रहे हैं यह
 सूर्य चिरकाल तक प्रकाशित रह हमारे हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धकार
 को दूर करता रहे यह हमारी हार्दिक भावना है। परंतु आपके
 शरीर में व्याधि है इसीलिये सम्प्रदाय में जो मुनिराज आपको
 योग्य जंचते हों उन्हें युवाचार्य पद प्रदान करने की कृपा करें ऐसा
 मैं श्रीसंघ की तरफ से नम्र प्रार्थना करता हूं " इसपर से आचार्य
 श्री ने पुण्यपुंज सर्वदा सुयोग्य मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को
 युवाचार्यपद प्रदान करने का हुक्म फरमाया तब श्रीलालजी महाराज

ने अति नम्रभाव से आचार्यजी की सेवा में सबके सामने यही अर्ज की कि 'सम्प्रदाय में कई मुनिराज मुझसे दीक्षा में वय में ज्ञान में, गुणों में अधिक हैं इसीलिये मुझपर यह भार न रक्खा जाय ऐसी मेरी अंतःकरण पूर्णक प्रार्थना है ।'

यह सुन श्रीजी महाराज के गुरु और आचार्य जी के मुख्य शिष्य भी वृद्धिचंद्रजी महाराज कि, जो यहां विराजमान थे वे श्रीजी से यों बोले कि " श्रीलालजी ! तुम्हें आनाकानी न करना चाहिये श्रीमान् आचार्यजी महाराज बहुत ही दीर्घदर्शी, पवित्रात्मा, समय के ज्ञाता और चतुर्विध संघ के परमहितैषी हैं उनकी आज्ञा शिरसा वंद्य कर श्रीसंघ की सेवा बजाओ और जैन-शासन को दिपाओ " । इन वचनों को चतुर्विध संघ ने बहुत २ अनुमोदन दिया तब श्रीलालजी महाराज दोनों हाथ जोड़ खिर, नमो मीन रहे पश्चात् आचार्यजी महाराज ने भी चतुर्विध संघ की सम्मति पूर्वक युवाचार्य पद प्रदान किया और चतुर्विध संघ को उनकी आज्ञा पालन करने का हुक्म फरमाया, तब चतुर्विध संघ ने हर्ष गर्जना के साथ खड़े हो अत्यंत भक्तिभाव सहित नवयुवाचार्यजी महाराज की सेवामें बंदना की ।

श्रीमान् आचार्य जी चौधमल्लजी महाराजने अपना अथमान-काल सभीप समस्त संघारा किया संघारे की खबर विजजी की तरह चारों

ओर फैल गई. संख्याबद्ध श्रावक आधिकाएं बाहर प्रामों से पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगीं, नित्य बढ़ते परिणाम से कार्तिक शुक्ल २ की रात को पूज्य श्री चौधमलजी महाराज शांतिपूर्वक आध्यात्मिक देह को त्याग स्वर्ग सिद्धि ।

दूसरे दिन अर्थात् सं० १६५७ के कार्तिक शुक्ल ६ के दिन सेवरे रक्तमय संघ आचार्यश्री का निर्वाण महोत्सव करने को एकत्रित हुआ । दर्शनार्थ आये हुए अन्य प्रामों के श्रावक बड़ी संख्या में वहां उपस्थित थे । उस समय चतुर्विध संघ ने श्रीमान् शुभाचार्यजी महाराज को आचार्यपदारूढ करने के लिये उनके गुरु श्री वृद्धिचंदजी महाराज से विज्ञप्ति की ।

आचार्य श्री के मृतदेह को विमान में पधराया. पश्चात् चतुर्विध संघ की विनय परसे उनके पाठ पर श्रीमान् श्रीलालजी महाराज को बिठाये और उनके गुरु श्रीवृद्धिचंदजी महाराज ने आचार्य श्री की पंखेवड़ी धारण कराई और चतुर्विध संघ अत्यन्त अनंद और भक्तिभाव सहित आचार्य श्री को वंदना कर जय विजय शब्दों से वधाने लगा शास्त्र और सम्प्रदाय की रीति के ह्वाता श्रीमान् सेठ अमरचंदजी साहिब ने खड़े होकर बुलंद आवाज से कहा कि " आजसे श्रीमान् श्रीलालजी महाराज आचार्यपदारूढ हुए हैं इस लिये अब सब छोटे बड़े संतों को, आचार्यों को उसी तरह समस्त श्रावक आधिकाओं को उनकी आज्ञा का पालन

करना चाहिये और सम्प्रदाय की रीतानुसार दीक्षा में बड़े मुनिगजों को वे ध्वजा करेंगे और छोटे मुनिगज उन्हें वंदना करेंगे परंतु सब को सनकी आज्ञा में चलना चाहिये ॥ ये शब्द सुनकर सब ने एक ही आवाज से पूज्य श्री को विश्वास दिलाया कि आजसे आप ही आज्ञा को प्रभु आज्ञा समान समझ हम आपकी आज्ञा में बिचरेगे ।

पञ्चामृत सद्गुरु आचार्य श्री के मृत देह को हजारों मनुष्यों के समूह में मनोहर निमान में पधरा बड़े धूमधाम से जय २ नंदा जय २ भद्रा के शब्दों से आकाश को गुंजाते शब्द के मध्य हं रामानं भूमि से ले गए बड़ा चदन, बाण धृतादि से अग्निसंस्कार किया ।

आचार्य श्री चौधमलजी महाराज अंतिम तीन वर्षों से रमलाम में गिरासत थे, कारण कि उनकी नेत्र शक्ति क्षीण हो गई थी इस कारण से और वृद्धावस्था होने से साधुओं की बहुत संख्या वाली एक बड़ी सम्प्रदाय की भली भांति संभाल करने का कार्य आचार्य श्री चौधमलजी महाराज को मुश्किल मात्राम होने से सम्प्रदाय की सम्यक् गति से सार संभाल और उन्नति होने के लिये उन्होंने अपनी आज्ञा में बिचरते साधुओं में से चार साधुओं को प्रवर्तक की तरह मुहरूर कर सब अधिकार उन्हें सौंप दिये थे उन चार प्रवर्तकों के नाम निम्नांकित हैं ।

- १ श्रीमान् कर्मचंदजी महाराज.
- २ ,, मुन्नालालजी महाराज.
- ३ ,, श्रीलालजी महाराज.
- ४ ,, जवाहिरलालजी महाराज (वर्तमान आचार्य) .

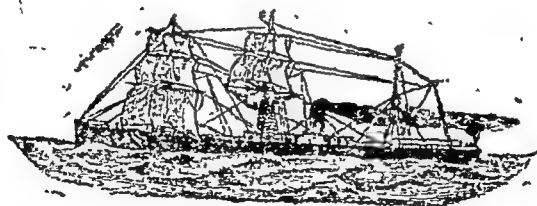
आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज दीक्षा में उस समय कई मुनिवरों से छोटे थे, उनका वय भी सिर्फ ३१ वर्ष का था परंतु उन्होंने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की अपरिमित वृद्धि की थी, उनके उदात्त विचार, धैर्य, शांतता, क्षमा, मनोनिग्रह, जिज्ञेन्द्रियता, न्यायप्रियता, वाक्पटुता, विनय, वैराग्य आदि २ उत्तम गुण शुक्लपत्र के चन्द्र की भांति दिन प्रति दिन वृद्धि पाते थे इसमें श्रीमान् हुक्मीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय की उन्नति हो उसका गौरव विशेष वृद्धि पायगा ऐसी चतुर्विध संघ को पूर्ण सम्मोद हो गई थी और सबके मन सन्तुष्ट थे ।

श्रीजी महाराज को अपने प्राप्त अधिकार की महत्ता और जोसमदारी का सम्पूर्ण भान था सम्प्रदाय की उन्नति करने की उनकी तीव्र अभिलाषा थी इसलिये वे आचार्यपद प्राप्त होने ही अति-सावधानी से प्रमाद को त्याग पूर्व से भी विशेष पुरुषार्थ करने लगे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पर्यायों में वे विशेष कर वृद्धि करने लगे, जिसके परिणाम में उनका मतिश्रुत ज्ञान अधिक निर्मल हो गया

कि चाहे जो मनुष्य चाहे जैसे विकट प्रश्न करता उसे वे ऐसी नकार और खूबी तथा संतोष कारक उत्तर देते कि, प्रश्नकर्ता को पुनः शंका दठाने की प्रायः आवश्यकता न रहती थी, इस प्रकार जैन शास्त्रों का उद्योत करता हुआ मध्यजनों के हृदयरूप कमजोर मन को विकसित करता हुआ, पूज्यभीरूपपाद विहारी सूर्य भूमंडल में विचरने लगा ।

रतलाम का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज वहां से बिहार कर मालवा और मेवाड़ की भूमि को पावन करते २ अपने पूर्व पुण्य का प्रकाश फैलाते तथा श्री हुक्मीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाते अनुक्रम से उदयपुर रोज-काल पधारे उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान भीमान् कोठारीजी साहिब व्याख्यान का लाभ लेते थे वे पूज्य श्री से व्याख्यान के बीचों बीच खड़े होकर सं० १६५८ का चातुर्मास उदयपुर करने के लिए प्रार्थना करने लगे इसके उत्तर में पूज्य श्री ने कहा कि इस वर्ष तो यहां चातुर्मास करने की अनुकूलता नहीं है परंतु तुम्हारे निये जवाहिर (जवाहरात) की बेटी समान थी जवाहिरलालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने भेजा दूंगा और उनके चातुर्मास से आनंद मंगल होता रहेगा तदनुसार सं० १६५८ में भीमान् जवाहरलालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने को भेजा वहां उनके उपदेश से बड़ा उपकार हुआ कई कसाइयों ने जीवाहिंसा करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया इस वर्ष मोतीलालजी

तपस्वीजी महाराज ने ४५ उपवास किये थे उस मौके पर श्रावण वद ७ से श्रावण वद ७ तक कसाई खाने बंद रहे हजारों जीवों को अभयदान दिया गया, कई जीव सुलभ बोधी हुए। महाराज श्री के व्याख्यान की अद्भुत छंटा से जैन अजैन श्रोतृगण पर अपूर्व प्रभाव पड़ता था। उदयपुर का श्रावक समुदाय चातुर्मास के दरम्यान पूज्य श्री के वचनों को पुनः २ याद कर उनका उपकार मानता और कहता था कि, सचमुच जवाहिर की पंटी ही हमारे लिये पूज्यश्री ने भेजी है ये जवाहिरलालजी महाराज वेदी हैं जो अभी आचार्य पद दिया रहे हैं आपने दक्षिण के प्रवास में संस्कृत का बहुत अच्छा अभ्यास किया है।



अध्याय ११ वाँ सदुपदेश-प्रभाव ।

भीलवाड़ा—पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज उदयपुर से भीलवाड़े पधारे शेषकाल कल्पते दिन ठहरे । भीलवाड़ा के हाकिम मइतार्जी श्री गोविंदसिंहजी साहिब ने श्रीमान् के सदुपदेश से सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया । वे व्याख्यान में पधारसे थे, जैनधर्म का रंग बनकी हुई २ वी मीजी में रम गया था, वे पूज्य श्री के अनन्य भक्त बन गए । उपरोक्त हाकिम साहिब ने जीवदया के अनेक बृहद् कार्य किये हैं और जैनधर्म का बहुत उद्योग किया है ।

भीयुन करोहीमलजी सुगणा कि, जो भीलवाड़े के एक श्रीमंत मन्गूदरभ थे उन्हें पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ उन्होंने धन, माल, जमीन इत्यादि त्याग कर सं० १६५८ के चित्र वैशाख वद्य १ के रोज बडे ठाठ (धूमधाम) से दीहा ली ।

श्रीजी के व्याख्यान में स्वमयी अन्यमयी, हिन्दू मुसलमान सब आते थे, डाक्टर हसमत अलीजी श्रीजी के पास आते थे और उनका जीवदया की ओर पूर्ण प्रेम होगया था ।

भीलवाड़े से जमशः विहार करते २ तामोर से पूज्य श्री देह पधारे वहां के ठाकुर साहिब कालूभिहजी राठोड़ पूज्य श्री के व्याख्यान में आते पूज्य श्री की प्रभावशाली वाणी सुन उन्हें अनरिमित आनंद होता था । उन्होंने दारू, मांस हमेशा के लिए त्याग दिया था, रात्रिभोजन का त्याग किया, उनका जैनधर्म पर बहुत प्रेम हो गया था । उनकी नवकार महामंत्र पर अतुल श्रद्धा जम गई थी ये ठाकुर साहिब प्रति दिन छः सामायिक करते और महीने के छः पौष करत थे यह सब प्रताप पार्श्वमणि—समान प्रतापी पूज्य श्री के सत्संग और सुद्बोध का था ।

जोधपुर (चातुर्मास) सं० १६५७ का चातुर्मास जोधपुर में किया इस चातुर्मास में पूज्य श्री की अमृतधारा वाणी से अनहद उपकार हुआ । वैष्णव धर्मानुयायी प्रायः ४०—५० घर पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशामृत का पान कर जैनधर्मानुयायी बने, जिनमें खास कर श्रीसुत गुलाबदासजी अमवाल तो वृत्तधारी श्रावक ही बने ।

जावदः—जोधपुर से विहार का सं० १६५८ के गंगमंड महीने में श्रीमान् वृद्धिचंदजी महाराज के साथ पूज्य श्री जावद पधारे । वहां पूज्य श्री के उपदेशामृत का पान करते २ वैराग्य देशों को प्राप्त हुए भाई मोड़ीलालजी और गजबूलालजी को दीक्षा अर्थात् सग

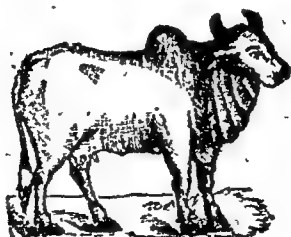
बीकानेरः (चातुर्मास) सं० १६५८ का चातुर्मास पूज्य श्री ने बीकानेर किया वहाँ धर्म का अपूर्व प्रदीप्त हुआ । यहाँ के अपने स्वधर्म परायण भाईयोंने अभयदान, ज्ञानदान, आतिथ्य-साकार इत्यादि पारमार्थिक कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया पूज्य भी की कीर्ति दशों दिशाओं में विस्तृत होने से दूर २ देशावरों के लोग पूज्य भी के इशानार्थ संख्याबद्ध आते, इनका स्वागत बीकानेर का संघ बहुत सरकंठा और उदारता पूर्वक करता था । साधुसाधियों के उपश्रयों की तथा ज्ञानभ्यान की स्त्रु धूम मच रही थी । अनेक भावक और आविष्कार भी व्रत, प्रत्याख्यान, दया, पोषण, पच-रंगी इत्यादि से अपनी आत्मा का कल्याण करने लगीं । कल्याण में स्वमतो अन्यमत्वियों की भारी भीड़ होने लगी । इस चातुर्मास में हजारों प्रशुओं को अभय दान मिला था ।

किनने अन्य मतावलंबियों ने जैन-धर्म संगीकार किया सुप्र-सिद्ध सुभाषक गणेशीलालजी मालू कि, जो साधुमार्गी जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे पूज्य श्री के परिचय और सद्गुणदेश से दृढ़ भावक बन गए और चातुर्मास में श्रीजी के इशानार्थ आये हुए सैकड़ों भावक आविष्कारों के स्वागत स्वागत तथा भोजन इत्यादि का समान प्रबंध उन्होंने अपने स्वर्ष से किया था । इतनाही नहीं परंतु जैन-धर्म के प्रदीप्त के लिये तथा जनसमूह के दिवार्थ परमार्थ कार्य में उन्होंने लाखों रुपयों का सद्व्यय किया और वर्तमान में इनके

दत्तक पुत्र को भी द्रव्य के हक के साथ २. इस सद्गुण का भी हक प्राप्त हुआ है ।

इस चातुर्मास के दरम्यान एक बस्तावर नाम की वेश्या ने पूज्य श्री के सद्गुणवेश से वेश्यावृत्ति का बिरुद्ध त्याग किया था तथा वह भाविकावृत्ति धारण कर पवित्र और धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगी थी कि, जो अभी भी विद्यमान है ।

बिकानेर के चातुर्मास के पश्चात् पूज्य श्री ने जोधपुर की तरफ विहार किया । वहां श्री मुन्नालालजी महाराज का समागम हुआ परंतु किसी आचार्य श्री की इच्छा के विरुद्ध वे पृथक् विचरने लगे । इस कारण के भीमान् के हृदय में जावरे वाले संतो को अपने साथ शामिल करने की प्रेरणा हुई । फिर वहां से वे क्रमशः विहार कर मेवाड़ में पधारे उदयपुर संघ की कई वर्षों से चातुर्मास के लिये विनन्ती थी इसलिये सं० १९४६ का चातुर्मास उदयपुर में किया ।



अध्याय १२ वाँ

अपूर्व—उद्योत ।

पूज्य भी का चालुमांस होने के कारण उदयपुर संघ में, आनन्दसिंह आ गया पहिले कभी किसी स्थान पर पक्षीसंरंगी सामयिक होने का वृत्तान्त नहीं सुना था। वह पक्षीसंरंगी यहाँ पर हुआ इस संवर-करणी में ६२५ पुरुषों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है। लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा था कि, चित्तौड़ निवासी मोड़सिंहजी सुराना ने एक ही आसन पर एक साथ १५१ सामायिक किये। एवं दिन रात खड़े रहकर सामायिक का समय बयतीन किया। इसी भाँति पेरीजालजी महता ने १३१, तथा कन्हैयालालजी भंगारी ने १३१ सामायिक खड़े रहकर किये और अति उत्साहपूर्वक पक्षीसंरंगी के ऊपर सामायिक की पक्षरंगी तथा तपरंगी की। इस चौमासे में १०८ अठाइयों दुरे थीं। इसके सिवाय सैकड़ों रुकथ तथा अन्य प्रकार की भी बहुतसी तपश्चर्या हुई थी।

कई स्त्रियों (कसाइयों) ने हमेशा के लिये जीवहिंसा करने का त्याग किया। इस प्रकार त्याग करने वाले स्त्रियों में ने

किशोर, गोकल वरधा, और नन्दा- ये चारों भाई- तथा दूसरे भी कई खटीक और उनकी स्त्रियाँ, साधु मुनिराजों- के पास उनके व्याख्यान (उपदेश) सुनने आती थीं। पूज्य श्री के उपदेश से कसाई पने का धन्दा छोड़ने के पश्चात् किशोर आदि की आर्थिक- स्थिति अच्छी होने से बहुत सुखी हो गये थे। वर्तमान समय में भी व्याज बढ़ा तथा हुंडी पत्री का धन्दा करते हैं, और बाजार में उनकी सांख (पेठ) इतनी बढ़ गई है कि, उनकी हजारों रुपयों की हुंडियाँ बिक्रि जाती हैं। इनके सिवाय दूसरे भी कई नीच (शूद्र) लोगों ने आजीवन मांस, मदिरा का उपयोग करना छोड़ दिया और कितने ही अन्यमतावलम्बी जैन-धर्मावलम्बी हो गये।

गोचरी करने के हेतु पूज्य श्री स्वयं जाते और सामुदायिक गोचरी करते थे। अन्य धर्म (जैनेतर) तथा दीनावस्था वाले मनुष्यों के यहाँ जाकर मक्की तथा जौकी रोटी 'वेहर', लाते थे। शास्त्रों में जिन जिन जातियों के यहाँ का आहार ग्रहण करने की आज्ञा है उन उन के यहाँ से आहार ले आने में पूज्य श्री अपने मन में जरा भी संकोच नहीं करते थे।

इस वर्ष भी बाहर से सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आते थे। उन सबों के भोजन आदि का प्रबन्ध संघ की ओर से भली भाँति होता था।

अमीर, उमराव, आफिसर और राज्य-कर्मचारी गण आदि बहुत संख्यक लोग व्याख्यान से लाभ उठाते थे, और उनमें से कई जैन धर्म के प्रेमी भी हो गये थे । उन सबों में भीमान् महाराजाजी साहिब के ज्यूहिरियाल्ल खेक्रेटरी लाला केशरीलालजी साहिब का नाम उल्लेखनीय है । पूज्य भी के सद्गुणदेश से उन्होंने जैन-धर्म को स्वीकार किया, इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने जैनशास्त्र का सब कोटी का ज्ञान सम्पादन करके, जो एक उत्तम भावक की शोभा है, उस प्रकार का अनुकरणीय धारमार्थिक जीवन व्यतीत किया है, और हजारों पशुओं को अभय-दान दिया है । लाला साहिब अब भी विद्यमान हैं । कुछ महीने पहिले (संवत्) १९७७ के अधिक भावण की ६ के दिनका मुकाम बीकानेरसमा में हमारे जाने से, उनकी भेट का हमें लाभ प्राप्त हुआ था । वर्तमान आचार्य महोदय भीमान् जवाहिरलालजी महाराज का चातुर्मास उस समग्र बीकानेर में था अतः उनके आदर्श का लाभ उठाने के लिये ही वे बीकानेर में आकर रहे थे । इन महानुभाव का संक्षिप्त जीवन-चरित्र उनके ही मुंह से अवलोक करने की हम को अभिलाषा होने से उन्होंने निम्न लिखित जीवन-परिचय दिया था ।

मेरा नाम केशरीलाल है और मेरी जाति कायस्थ माथुर है । मेरा निवास स्थान (वतन) उदयपुर है । मैंने ५० वर्ष तक मेवाड़ दरबार की नौकरी की है । जिनमें से २४ वर्ष तक ज्यूड़ी-

शियल सैक्रेटरी के पदपर रहकर स्वयं महाराणा साहिब श्री फते-
सिंहजी महारुर के समस्त मुकद्दमों की पेशी की है, और अब ३
वर्ष से श्री पूज्य १००८ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के १६
वर्ष के सत्संग और सद्गुपदेश से निश्चितपरायण-जीवन व्यतीत
करता हूँ ।

किशनगढ़ महाराज के सम्बन्धी (कुटुम्बी) सरदारसिंहजी
नामक एक राठोड़ राजपूत जो कि, वैष्णवधर्मावलम्बी थे और
विरक्त दशा में रहते थे । वे योग विद्या के पूर्ण अभ्यासी थे ।
मैं उनके पास उदयपुर मुकाम पर, योगाभ्यास करने के हेतु
संवत् १९५३ में जाता था एक दिन उनसे मुझे सामने के बगीचे
में से मेंहदी के फूल का फूल तोड़कर ले जाते देखा । उसी
समय तुरंत ही आवाज देकर मुझे बुलाया और कहा कि
"तुमने ढाली के ऊपर से यह फूल किस लिये तोड़ा ? यदि कोई
तुम्हारी अंगुली काटकर लेजाय तो तुम्हें कितना दर्द हो ? क्या
तुम नहीं जानते कि, जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में दर्द होता है,
वही प्रकार वृक्ष में भी जीव होने से उसको दर्द होता है ?" इसके
सिवाय उन्होंने फूल में के त्रसजीव (चलते फिरते) भी प्रत्यक्ष
रूप से मुझे बतलाये और कहा कि "मुझे मालूम होता है कि, तुमने
किसी जैन साधु महात्मा की संगति नहीं की होगी इसी कारण से
ही मु

अमीर, सम्राट, आफिसर और राज्य-कर्मचारी गण आदि बहुत संख्यक लोग व्याख्यान से लाभ उठाते थे, और उनमें से कई जैन धर्म के प्रेमी भी हो गये थे । उन सबों में भीमान् महाराजाजी साहिब के ज्यूहिरियल सेक्रेटरी लाला केराीलालजी साहिब का नाम उल्लेखनीय है । पूर्य भी के सदुपदेश से उन्होंने जैन-धर्म को स्वीकार किया, इसना ही नहीं किन्तु उन्होंने जैनशास्त्र का सब कोटी का ज्ञान सम्पादन करके, जो एक उत्तम भावक को रोभावे, उस प्रकार का अनुकरणीय पारमार्थिक जीवन व्यतीत किया है, और हजारों पशुओं को अभय-दान दिया है । लाला साहिब अब भी चिद्यमान हैं । कुछ महीने पहिले (सन्) १९७७ के अधिक आषण की ३ के दिनका मुकाम बीकानेरसभा में हमारे जाने से, उनकी भेट का हमें लाभ प्राप्त हुआ था । वर्तमान आचार्य महोदय भीमान्, जवाहिरलालजी महाराज का चातुर्मास उस समय बीकानेर में था अतः उनके उत्सव का लाभ उठाने के लिये ही वे बीकानेर में आकर रहे थे । इन महानुभाव का संक्षिप्त जीवन-परिचय उनके ही मुह से अवलण करने की हम को अभिलाषा होने से उन्होंने निम्न लिखित जीवन-परिचय दिया था ।

मेरा नाम केराीलाल है और मेरी जाति कायस्थ माधुर है । मेरा निवास स्थान (वतन) चदयपुर है । मैंने ५० वर्ष तक मेवाड़ दरबार की नौकरी की है । जिनमें से २४ वर्ष तक ज्यूजी

शियल सेक्रेटरी के पदपर रहकर स्वयं महाराणा साहिब श्री फते-
सिंहजी महारुर के समस्त मुकदमों की पेशी की है, और अब ३
वर्ष से श्री पूज्य १००८ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के १६
वर्ष के सत्संग और सद्गुपदेश से निष्ठातिपरायण-जीवन व्यतीत
करता हूँ ।

किशनगढ़ महाराज के सम्बन्धी (कुटुम्बी) सरदारसिंहजी
नामक एक राठोड़ राजपूत जो कि, वैष्णवधर्मावलम्बी थे और
विरक्त दशा में रहते थे । वे योत ब्रिया के पूर्ण अभ्यासी थे ।
मैं उनके पास उदयपुर मुकाम पर, योगाभ्यास करने के हेतु
संवत् १९५३ में जाता था एक दिन उनसे मुझे सामने के बगीचे
में से मेंहदी के फूल का फूल तोड़कर ले जाते देखा । उसी
समय तुरंत ही आवाज देकर मुझे बुलाया और कहा कि
"तुमने डाली के ऊपर से यह फूल किस लिये तोड़ा ? यदि कोई
तुम्हारी अंगुली काटकर लेजाय तो तुम्हें कितना दर्द हो ? क्या
तुम नहीं जानते कि, जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में दर्द होता है,
वही प्रकार वृक्ष में भी जीव होने से उसको दर्द होता है ?" इसके
सिवाय उन्होंने फूल में के असजीव (चलते फिरते) भी प्रत्यक्ष
रूप से मुझे बतलाये और कहा कि "मुझे मालूम होता है कि, तुमने
किसी जैन साधु महात्मा की संगति नहीं की होगी इसी कारण से
ही मूर्ख के समान इन जीवों को कष्ट पहुँचाने हो" । मैंने यह सुन

अश्विर्गन्धिवत (विश्विमत) हो अपने योगी गुरु से प्रार्थना की कि ' हम वैष्णव धर्मी हैं, हमको जैन साधु महात्माओं का सत्संग करने की क्या आवश्यकता ?' इसके सिवाय मैंने यह भी मुना है कि " इग्निना ताह्यमानोऽपि न गच्छेन्नैनमन्दिमम्" ।

यह सुनकर उन योगी ने उत्तर दिया कि " यह वचन तो किसी मूर्ख का है अब तुम अवश्य किमी जैन साधु महात्मा की सगति करो" । वही महात्मा की कही हुई बात है कि " तीर्थंकर सभ से बड़े हैं और उन्होंने जो वर्यो करमाई है वह सत्य ही सत्य कही है क्योंकि, वे सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी हुए और हम बात का मुक्तोः पूर्ण विश्वास दिलाने के लिये जैनकी कई एक धर्मकथाएँ द्रष्टा-न्तरूप से अवसर २ पर कत्माते रहे, मुझे उनकी कृपा से योगाभ्यास में अत्यन्त लाभ हुआ था, और उनके वचनों पर मेरी पूर्ण भद्रा जम गई थी, उनकी प्रत्येक बात को मैं अन्त करण पूर्वक सत्य मानता था । इस कारण उसी दिन से जैन साधु महात्माओं के दर्शन और सत्संग की उत्कट अभिलाषा हो गई ।

— इस अरसे में एक दिन एक मनुष्य गोभी का फूल लेकर जाता था उसके पास से मेरे योगी गुरु ने गोभी मारी और एक थरिया (थाली) में खखेरी तो उसमें से बहुत सब्जी निकले वे प्रत्यक्ष बनाये और गोभी खाने की मुझे शरण (खीर) भी दिलाई ।

उपरोक्त कथेनानुसारं जैन साधुओं के दर्शन के लिये मेरी अभिलाषा दिनो दिन विशेष बलवती होती गई, और सौभाग्य से संवत् १९५६ में श्रीमान् पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास्य उदयपुर होने से उनका पधारना हुआ। यह खबर मिलते ही मैंने उनके चरणकमलों में जाकर वन्दना की और व्याख्यान भी सुना। पूज्यश्री पूर्ण दयादृष्टि से मेरे समान अन्य धर्मी अज्ञान को प्रत्येक बात व्याख्यान द्वारा पूर्ण प्रेम के साथ स्पर्शकरण करके समझाने लगे। पूज्य श्री ने मेरे मन को जीत लिया और उसी दिन मैंने अपने पहिले योगी महात्मा को यह सब वृत्तान्त निवेदन किया; तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक फरमाया कि, तुम प्रति दिन व्याख्यान सुनते रहो और जो सुनो वह मुझे भी यहां आकर कहते रहो। चौमासे के चार महीनों में प्रायः सदैव मैंने व्याख्यान सुना, तब से आज तक लगभग १७ वर्ष हुए, पूज्य महाराज तथा अन्य मुनिराजों का जबजब उदयपुर में पधारना होता रहा, तब तब मैं बराबर उनकी सेवा करता रहा हूँ तथा व्याख्यान सुनता रहा हूँ। और लाख करके पूज्य महाराज जहां विराजते हैं वहां देश परदेश में रहकर उनकी श्रेणी श्रवण करने का लाभ लेता रहा हूँ। उनकी कृपा से मुझे अलभ्य लाभ होने लगा है।

प्रिय पाठक ! उक्त शब्द स्वयं लालजी के ही कहे हुए हैं। हमें की आयु (उमर) इस समय ६८ वर्ष की है, तो भी एक युवा

(जुवान) के समान काम कर सकते हैं। घर्मोन्नति के काम में हमेशा
 अमगल रहते हैं, वे एक ही बार भोजन करते हैं, और ७ खात
 पदार्थों के सिवाय सब पदार्थों का उन्होंने त्याग कर दिया है। मूंग
 की दाल, रोटी, दूध, चावल, जल, एक शाक यह उनकी सुराफ
 है। सब प्रकार की मिठाई खाना भी आपने छोड़ दिया है।

संवत् १८६३ में वर्तमान आचार्य महोदय श्रीमान् जवाहर-
 लालजी महाराज का चातुर्मास था। उस समय उनके सदुपदेश से
 लालाजी ने अपनी पत्नी के सहित (जोड़ी से) ब्रह्मचर्यव्रत अंगी-
 कृत किया है।

लालाजी को अंग्रेजी, फारसी तथा काश्मीरी कानून का सब ज्ञान
 है। उनकी मुक्ति अत्यन्त निर्मल है। उनका जैनशास्त्र का ज्ञान भी
 प्रशस्तनीय है। वे उत्तम वर्ग के भोक्ता हैं। प्रति वर्ष वे सैकड़ों रुपये
 पशुओं को अभयदान देने आदि धार्मिक कार्यों में व्यय करते हैं
 और गत तीन वर्षों से उन्होंने अपना जीवन पारमार्थिक कार्य करने
 के हेतु ही अर्पण कर दिया है। वे वृद्ध भी के अनन्य भक्त हैं।

संवत् १८६० के उदयपुर के चातुर्मास में उपरोक्त लिखे अ-
 नुसार, लालाजी केशरीलालजी जैन-धर्म के पूरे अनुरागी हुए। इसी
 प्रकार उदयपुर के एक बड़े बकील श्रीयुक्त हीरालालजी राफदियाको
 त्रिनके पास हजारों रुपयों की रक्षाकर बड़ा संगम स्टेट (गिरफ्तार)

थी उनको पूज्य श्री के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया; इस कारण उनसे तथा आवरे वाले एक गृहस्थ श्रीयुत हीराचन्दजी ने पूज्य श्री के पास 'दीक्षा' लेने का निश्चय किया ।

आतुर्मास पूर्ण होते ही संवत् १६६० की मंगसर वदि ३ के दिन उन दोनों को कविराज श्री शामलदासजी की बाड़ी में बड़ी धूम धाम के साथ दीक्षा देने में आई । इस प्रकार का दीक्षामहोत्सव इससे प्रथम उदयपुर में कभी नहीं हुआ था ।

श्रीवकील हीरालालजी पूज्य श्री के पास दीक्षा लेते हैं, ऐसी अवसर मिलते ही श्रीमान् हिन्दवां सूर्य महाराणा साहिब ने कृपा पूर्वक एक हाथी दीक्षा लेने वाले को बैठने के लिये, तथा एक हाथी आगे रखने के लिये, तथा सरकारी बाजे इत्यादि सरकार में से भेज दिये तथा नवदीक्षित को प्रछेदी ओढ़ाने के लिये उत्तम दो आनमल भूषण के भेज दिये ।

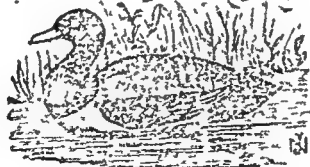
श्रीयुत हीरालालजी साकड़िया हाथी पर बैठे और दूसरे हीराचन्दजी आवरे वाले पालखी में बैठे । एक हाथी निशान समेत आगे चलता था । हजारों मनुष्यों की भीड़ लगी हुई थी । श्रीयुत हीरालालजी साकड़िया ने रुपयों की एक थैली अपने पास रख ली थी । वे उसमें से मुट्ठी भरभर कर भीड़ में फैकते जाते थे । इसीप्रकार मनुष्य इस प्रकार के पैसों को पवित्र मान कर इकट्ठा कर रखते हैं ।

दीक्षा का बरघंदा बाजार के बीच में होकर, घंटाघर के पास होवा हुआ हाथीपोल (दरवाजा) के बाहर श्री कविराजजी की बाड़ी में आ पहुँचा और वहाँ पर पूज्य भी ने दोनों मठानुभावों को विधिपूर्वक दीक्षा दी। पूज्य भी को शिष्य करने का त्याग होने के कारण उन्होंने दोनों मुनि श्रीहालचन्द्रजी महाराज के नेमाय में कर दिये।

तत्पश्चात् पूज्य भी उदयपुर से बिहार परके 'कणपुर' होकर उदयपुर से १० कोस 'ऊँटाला' नामक ग्राम की ओर पधारते हुए रास्ते में ऊँटाला की हड़ में एक कसाई ८० बकरों सहित समने मिला। यह खटीक—कसाई ग्राम 'कपारान' में से बकरे चरीद करके, उदयपुर के कसाइयों के हाथ बेचने के लिये ले जाता था। पूज्य भी की दृष्टि उन बकरों पर पड़ी और कादृश्य भाव की छाया उन के मुखकमल पर छा गई। 'ऊँटाला' के लोगों ने इसी समय खण्ड खटीक को १७५ रुपये देने का ठहराकर, ८० बकरों को अभयदान दिया और उनको उदयपुर के नगरमेठ के पास भिजवा देने का प्रबन्ध किया। खटीक के हृदय में स्वाभाविक रोनि से हा, पूज्य भी पर अद्भुतनीय पूज्य भाव प्रकट हुआ और वह पूज्य आ के पैरों में पड़कर मुनः २ अपने अपराध की क्षमा मागने लगा। पूज्य भी ने समयानुसार उसको अत्यन्त प्रभावत्वाद् और उपदेशमय इन वचन कहे। इसका 'निशान' के समान ऐसा प्रभाव पड़ा कि, उसने स्वयं महाराज भी क पान आकर इस प्रकार प्रतीक्षा की कि,

“ महाराज ! मैं आसपास के गाँवों में से बकरे खरीद करके, उदयपुर के खटीकों के हाथ बेचता हूँ, मेरा यही धन्दा है; किन्तु आज से मैं जीऊंगा वहाँ तक यह धन्दा नहीं करूँगा ” । ❀

वहाँ से पूज्य श्री कानोड़ पधारे । कानोड़ के रावजी साहिब ने कानोड़ पट्टे के गाँवों में जहाँ जहाँ नदी, नाले और तालाब हो वहाँ और उसी प्रकार उनका खालसा गाँव ‘कुणनी’ के पास जो नदी है वहाँ मच्छी मारने की हमेशा के लिये मनाही कर दी उस आज्ञा की आज तक पालना होती है । इसके सिवाय पूज्य श्री के उपदेश से कानोड़ में ५० के लगभग ‘स्कंध’ हुए ।



कुछ माघ पहिले उदयपुर वाले जीतमलजी भट्टा भी हमको कहते थे कि, उपरोक्त खटीकों ने यह धन्दा बिल्कुल छोड़ दिया है ।

अध्याय १३ वाँ

उपसर्ग को निमंत्रण ।

कानौड़ से कभरा: बिहार करते हुए आचार्य श्री विसौढ़ होठे हुए 'मांडलगढ़, पधारे और वहां से कांटे की और बिहार किया कोटे जाने के दो रास्ते हैं । एक मार्ग जंगल में होकर जाता है यह महामंयकर है । दूसरा रास्ता जंगल को चलाकर देकर जाता है । पूज्य श्री ने सीधा जाने वाला (पहिला) रास्ता पसन्द किया और मांडलगढ़ से बिहार करके सिंगोली पधारे । वहाँ के लोगों ने पूज्य श्री से प्रार्थना की कि " इस रास्ते यदि आप न पधारें तो उत्तम हो क्योंकि, यह रास्ता भूल भूलावली वाला ' जाने इस रास्ते में मार्ग भूल जाने का डर है) और लगभग १०, १२ कोस का जंगल है और वहाँ सिंह, चीते, शेर आदि मनुष्य को फाड़ कर खाजाने वाले हिंसक पशु बहुतायत से बसते हैं । दूसरे रास्ते होकर यदि आप कांटे पधारेंगे, तो केवल १५ कोस आपको अधिक चला पड़ेगा किन्तु इस रास्ते में किसी प्रकार का भय नहीं है । अपने शरीर की पर्वाह नहीं करने वाले, और आपत्तियों को शानन्द पूर्वक आमंत्रण देने वाले पूज्य श्री मीलालजी महाराज ने लोगों की

प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और सीधा मार्ग पकड़ा । यह दुराग्रह नहीं किन्तु आत्म श्रद्धा का दृष्टान्त है पूज्य श्री के साथ आठ साधु थे । उनमें से अधिकांश साधुओं को उस दिन उपवास था । किसी किसी ने केवल छात्र (मही) पीने का आगार (छूट) रखा था । थोड़ा मार्ग व्यतीक्रम करते ही पहाड़ों में रास्ता भूल गये और दूसरी पगडंडी से चढ़ गये । ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों त्यों पड़ुत ही भयावना और घना जङ्गल आने लगा । हिंसक पशुओं की पादपंक्तियों (पैरों के चिन्ह) दृष्टिगोचर होने लगीं, सिंह बाघ इत्यादि के गगन भेदी शब्द श्रुतगोचर (सुनाई देना) होने लगे, इस कारण एक साधुने पूज्य श्री से अर्ज की कि “महाराज यह जङ्गल सचमुच ही महाभयङ्कर है ।” महाराज ने कहा “ भाई अपने साधुओं को किस बात का डर है ? भय तो उसे होना चाहिये जो मृत्यु को अपने जीवन का अन्त समझता हो, शरीर के विनाश के साथ में अपना नाश मानता हो अथवा मृत्यु के पश्चात् के जीवन को भय और आपदा का स्थान मानता हो । जो सद्गुरु के प्रताप से जिनवाणी का ठीक ठीक रहस्य समझता हो उसको जीवन और मरण में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं समझना चाहिये । जीने की आशा और मरने का भय इन दोनों को जला भस्म करके विचरने में ही अपने संयोग-जीवन की सच्ची कसौटी है । माया समता को हवा में फेंक दो और दृढ़ता धारण करो” ।

इतने में एक अन्य साधुने कहा “महाराज ! दूसरा तो कुछ नहीं किन्तु रास्ता भूल गये हैं इससे बहुत ही हैरान होना पड़ेगा” । भीजी महाराज ने फुर्माया “कुछ पर्वाह नहीं, यकीन रखो और श्री नवकार मंत्र का ध्यान धरो,, संजों ने आगे चलना शुरू किया थाभी फलफा से रास्ता भूले थे लेकिन पूज्य श्री ने जो दिशा साधी थी वसाको वे चूके नहीं थे उससे छः कोस दूर बड़वा नामक गांव है वहा वा सब पहुँचे । वहाँ से छाछ मिली और सब कोई आगे बढे पैर थक गये थे तो भी आशा बरसाह नहीं थका था । आशा पैरों को नया बल देती जाती थी । उस दिन कम से कम १२ कोस की यात्रा हुई होगी ।

मनुष्य स्वभाव का प्रवर्णन करने वाले एक अनुभवी के अनुमान सत्य हैं कि: “ जिस मनुष्य की वाणी, व्यवहार, चालचलन (दिखावा) विजय का विश्वास बँधाने वाले होते हैं यही मनुष्य विजय के विराम का प्रचार कर सकता है और स्वतः के प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण करने में सागर्भ्यवान् है, इस प्रकार की श्रद्धा भी वररत्न कर सकता है । जो मनुष्य आत्म-भद्रा वाला, निश्चयी एवं आशावादी है वह अपना कार्य सफलता मिलने की प्रतीति सहित प्रारम्भ करता है वह मद्दान् आरुपण शक्ति भी रखता है । शिथिल महत्वाकांक्षा अथवा अपूर्ण उद्योग से कभी भी कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ । अपनी आशा, भद्रा, निश्चय और उद्योग में बल

(शक्ति) होना चाहिये । अपने कार्य को सिद्ध करने वाली शक्ति के सहित निश्चय करना चाहिये ।

मट्टी के वर्तनों को पकें करने के लिये सुवर्ण को शुद्ध कुन्दन हाने के लिये, और धातुओं को आकृति के रूप में आने के लिये अग्नि की आँच सहकर उसमें से निकालना पड़ता है । इस दृष्टान्त से अनेकों विषय की बातें विचार सकते हैं । साधुलोग आत्म-श्रद्धा वाले और मन को दृढ़ रखने वाले हों तो विचारा हुआ कार्य पूर्ण कर सकते हैं । आधि, व्याधि और उपाधि के दास बने हुए हर पोक साधुओं को विलकुल समीप दिखाते हुए गांवों के बीच में, अच्छे दिन में बिहार करते हुए भी, साथ में मनुष्य रखना पड़ता है । यह निर्बलता का नमूना है ।

विशुद्ध संयम के प्रभाव के अदृश्य-आन्दोलनों द्वारा प्रकृति पर भी इतना आधिपत्य उत्पन्न पड़ता था कि, सूर्य की ऊष्णता से संरक्षण करने के लिये बादलों में भी स्पर्धा (ईर्ष्या) उत्पन्न होगई थी (यानें आसमान में बादलों के आवागमन का क्रम नहीं दृष्टता था और ज्ञाया यनी रहती थी) ठीक दुपहरी (मध्यान्ह के समय) में शीतल वायु का अनुभव होता था और जंगली जानवर भी लिप छुप कर महात्माओं के दर्शन से कृतार्थ-होते थे । पशुपति वसुन्धरा । श्री तीर्थंकरों के समोसरण में बाघ, सिंह, बकरे, भैरव

एक साथ बैठकर कीड़ा करते, उन्हीं वर्गिकरों के वारिमों (इक्षारों) में फूल (पुष्प) नहीं तो फूल की पालखीरूप यह अद्भुत शक्ति हो तो उसमें आश्चर्य करने वा कोई कारण नहीं है । योगी माधुओं की अपार लीला है । दूसरे प्राचीन समय में मंत्र प्रकार की सुविधा होते हुए भी संयमी मुनिराज घोर श्मशान, सर्प की बाबी (भिल, दर) और सिंह की गुफाओं के पास ब्राह्मण करते थे । यह सब कुछ पाथिया में बाँध, पिढारे में पूर अपने मनचाहे (इच्छानुसार) स्थान पर ही विराजता और परिसह—कसौटी का अवसर ही न आने देना यह एक प्रकार की कान दोष की भीरुता ही है ।



अध्याय १४ वाँ

जन्मभूमि में धर्म जागृति ।

ढाँक (चातुर्मास) मेवाड़ में से क्रमेशः विडार करते हुए कोटे होकर ढाँक पधारे और संवत् १८६१ विक्रमी का चातुर्मास अपनी जन्मभूमि ढाँक में किया । यहां धर्म का अत्यन्त उद्योत हुआ । अजमेर से दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी साहिब लोढा आचार्य श्री के दर्शनार्थ ढाँक पधारे थे । ये वहां के नवाब साहिब की भेंट करने को गये, उस समय नवाब साहिब के समक्ष आचार्य श्री की दैवी अनुमति पायी, और उत्तमोत्तम गुणों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि “ यह रत्न आपकी ही राजधानी में उत्पन्न हुए होने से जैन इतिहास में ढाँक का नाम भी स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा,, । यह सुन कर नवाब साहिब अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने भी पूज्य श्री की प्रशंसा की ।

पूज्य श्री की अपूर्व प्रशंसा सुनकर खान साहिब महम्मद इन्सुख खान पूज्य श्री के पास आने लगे और उनके हृदय पर श्रीजी के उपदेश का इतना प्रभावोत्पादक असर पड़ा की उन्होंने

“आजीवन शिकार नहीं रखने तथा मांस नहीं खाने की प्रविष्टि की ।”

एक गृहस्थ कायाय साक्षात् ब्रह्मसाक्षात्त्री ने अपनी जी विद्वान् होते हुए भी महाचर्य प्रत आङ्गीकार किया, प्राणियों के प्रवृत्तों का स्वीकार किया, आध्यात्मिक प्रतिक्रमण करना शुरु किया और दृढ़ धर्मी जैन बन गये । पूज्य श्री के देहसे चेहरे से मुख मंडल भव्य मालुम होता था । ज्ञान के प्रभाव से आँखें बमकसी थीं । चेहरे पर माधुर्य, गांभीर्य, अच्युता, सामर्थ्य और दैवी-शक्ति का प्रकाश झलकता था । जिससे अपने सागने वाले गमुष्य पर इन्द्रानुसार प्रभाव पड़ता था ।

सरकारी मेम्बर बाबू दामोदरदासजी साहिब जो कि, कठियावाड़ के प्रख्यात गृहस्थ थे वे श्रीजी के मुखार्चिभ की अमृतदानों मुक्त कर अत्यन्त हर्षित होते, समय समय पूज्य श्री के पास आते : कितनी ही बार तो वे व्याख्यात के प्रारम्भ में ही उपस्थित होना

और पूज्यभी मंद मंद स्वर से—

सबैया—वीर हिमाचल से निकसी,
गुरु गौतम के श्रुत कुंड टली है ।
मोह महाचल भेद चली,
जग की जड़ता सब दूर करा है ॥

ज्ञान पयोदधि माँहि रली,

बहु भङ्ग तरङ्गन से उछली है ॥

ता शुचि शारद गङ्ग नदी,

प्रणमी अँजली निज शीशधरी है ॥ १ ॥

यह स्तुति शुरू करते और श्रोता वर्ग उसको मेल कर गाते उस समय दामोदरदासजी को बहुतही रस आता (आनन्द मिलता) किसी भी धर्म की निन्दा न करते हुए सर्व धर्म वालों को सन्तोष देने की पद्धति से पूज्य श्री जहां २ अपने भक्तों में जाते अधिक भर्ती कर सकते इस गृहस्थ ने भी उपकारों के बदले में उत्तम प्रकार के नियम किये हैं ।

एक वैष्णव सज्जन सदाशिवजी अग्रवाल ने पूज्य श्री के समीप सम्यक्त्व ग्रहण करके त्याग पञ्चक्याण किये । प्रतिवर्ष संवत्सरी का उपवास करने की प्रतिज्ञा की और जैन-धर्म के पूर्ण आस्तिक बन गये । इस समय भी उनकी वैसी ही धर्म रुचि है ।

टोंक में लगभग ५० घर तेलियों के हैं उन्होंने पूज्य श्री के सदुपदेश से चोमाछे में घाणी बंद रखने का ठहराव किया, ये आज तक उसका पालन करते आ रहे हैं ।

७. सांसारिक लोगों में कहावत है कि ■ घर यह दुनिया का धन्त है । मातृभूमि के उपकार अगणनीय है । संसार के सब प्राणियों का दिन चाहने वाले जन्मभूमि को किस प्रकार भूल सकते हैं ? किसी ठीक ही कहा है:—

पर्या ऐसा नर शून्य हृदय का, इमजग में पाता विधाम ।
जो यह कभी नहीं कहता है 'यही हमारा देश-ललाम' ॥
'मेरी प्यारी जन्मभूमि है' इस विचार से जिसका मन ।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है, उसका पृथ्वी पर जीवन ॥

Breathes there the man, with soul so dead,
Who never to himself hath said,
This my own, my native land !

Sir Walter Scott.

उपकार का बदला न दे सकने के कारण सांसारिक दृष्टि से कृतघ्न गिने जाने की पर्वाह वे नहीं रखते थे किन्तु जहां पर उपकार होने का सम्भव होता था वहां वे सब से प्रथम विचरते थे । पूज्य श्रीके टोंक में चातुर्मास जैनशासन का बहुत प्रकार से उद्योत होने के सिवाय जैन, अजैन, हिन्दू, मुसलमान एवं राजा प्रजा को व्याख्यान के निमित्त परस्पर दृढ़ सम्बन्ध लाने का हेतु रखा था । धर्म के समान नाजुह विषय में पृथक् २ धर्म की प्रजा

और राजा परस्पर सहानुभूति रखते हों वह दोनों के कल्याण के लिये आवश्यक है । एक द्वौपारी दानिये का युवा पुत्र, परमाथे पथ पर कहां तक प्रयास कर सका है वह प्रयत्न अनुभव होने से वृद्ध लोगों की मंङ्गी बातें किया करती कि " पुरुषों के प्रारब्ध के आगे पता है, उसका यह प्रत्यक्ष प्रदर्शन श्री पूज्यजी महाराज हैं । रसिया के शिखर पर अकेले किरते हुए श्रीलालजी में और इस समय के पूज्य श्रीलालजी में ' कोई और कुंजर जैसा अन्तर पड़ गया था, इस समय बड़े २ राजा महाराजा और नवाब रसिया के शिखर के प्योरलाल के पैरों में मस्तक झुकाते थे ।

जिस व्यक्ति को हजारों लाखों मनुष्य मस्तक झुकाते हों, वैसी राजवंशी व्यक्तियां जिस समय एक बाणिक युवक के पैरों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाने को अपना सौभाग्य समझें उस समय प्रकृति की मालूम न होने वाली कलाबाजी की अपूर्ति सिद्ध होती थी ।

एक अनुभवी सत्य कहता है कि ' श्रद्धा गिरिशृङ्गों पर परिभ्रमण करती है, इस कारण उसकी दृष्टि—मर्यादा बहुत बड़ी होती है । अन्य मनुष्य जिस वस्तु को देखने में असमर्थ होते हैं वही वस्तु श्रद्धावान् मनुष्य की दृष्टिगोचर होती है । इससे जिस कार्य

कार्य को करने में श्रद्धावान् मनुष्य विशेष प्रयत्न करता है । पूज्य श्रीजीने इसी प्रकार का प्रयत्न अपने स्थायी धैर्य से प्रारम्भ करने का निश्चय किया ।

हम पादिते कह चुके हैं उस प्रकार जावर के सन्तों को सम्मिलित करने (अपने में निभाने) की पूज्य भी की इच्छा थी । पूज्य श्री जब रतनाम पधारे तब अपना यह अभिप्राय वहाँ प्रकट किया । यह हकीकत (समाचार, हाल) जावरों के सन्तों तथा उनके भक्त भावकों का श्रुति होते ही वे आनन्दित हुए, कारण कि, उनकी भी इच्छा यही थी कि, पूज्य भी की आज्ञा में विचरें । ये सन्त हुक्मी-चन्दजी महाराज की ही सम्प्रदाय के हैं किन्तु श्री वर्यसागरजी महाराज के समय से उनके साथ का सहभाजन का व्यवहार आदि बन्द करने में आया था जो आज तक कायम था । रतनाम में पूज्य भी विराजते थे उस समय उनकी सेवा में जावरा के सन्तों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी उपस्थित हुए । पूज्य भी के पास यथोचित समाधान का वातावरण होने के बाद उनका सहभोज शामिल किया गया । इस समय उन सन्तों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी ने कहा कि, भूत काल में जो हुआ सो हुआ किन्तु भविष्य काल में वैसा न हो इस बात का मैं सब सन्तों की ओर से विश्वास दिलाता हूँ । उत्तर में आचार्य श्री ने न्यायानुसार कहा कि, अपने धर्म की सगाई से अणगर धर्म की पर्याप्त में रह

ने वाले साधुओं को ही मैं मेरे साधु मान सकता हूँ । यदि इस मर्यादा का कोई उल्लंघन करे तो उसके साथ समाचारी के सम्बन्ध को भङ्ग करने में मैं तनिक भी संकोच न करूँ इसका कारण यह है कि, जिस कर्त्तव्य के लिये कुटुम्बियों और संसार के सम्बन्ध को छोड़ा है उस कर्त्तव्य में अन्तराय करने वाले का साथ और सम्बन्ध त्याग्य है । परस्पर प्रेम पूर्वक संयम समाधान हो गया ।

वचित रीति से विचारें तो मालूम हो कि, सहकार की भी सीमा हो सकती है । शास्त्र की प्रतिष्ठा और चारित्र्य के आदर्श जब तक उज्ज्वल रहें तब तक ही सहकार सम्भव रह सकता है, तत्पश्चात् उसकी हद्द पूरी होते ही असहकार ही आवश्यक है छाती पर पत्थर बाँधकर अपार समुद्र नहीं तैर सकते । क्रिस हेतु न्याय और कौनसी नीति साधने से सहकार या असहकार करना पड़ता है इसका गम्भीर विचार किये सिवाय किसी प्रकार भी अनुमान नहीं कर सकते । भारी और व्यवस्थित शासन के बिना प्रगति असम्भव ही है । किसी भी कार्य में अव्यवस्था घुमी, अंधा धुंधी और गडगड़ बढ़ती गई । विष प्रचारक चेष रोकने का उत्तम रामबाण उपाय असहकार है । समाचारी यह सहकार का माप देखने का थर्मोमीटर यंत्र ही है ।

शरीर से साधु होने के साथ ही मन से भी साधु हो । मस्त मुँडाने के साथ ही मन को भी मूँड़ा हुआ समझे तभी त्याग का शु

साधा ले सकते हैं । “रवेत कपड़े पहिने हैं पर रवेत दिल धीन
नहीं । सरय कहता हूँ मैं यागो ! निज धर्म को धिन्दा नहीं” ।

जो समाज को ऐक्यता का मयक मिगाने के लिये संसार त्यागी
हुए हैं वनका कतरकर खाने वाला अनेक्यगारुषी कीड़ा निकल जाय
और पूर्ववत् सुख शान्ति के साथ रामन की विजय ध्वजा परके
यह दरा दखकर किसका हृदय हर्ष से आलङ्कित न हो । हा किन्तु
इस हर्ष की सजीवन रखने के लिये महात्मा भी गांधीजी के निम्ना-
हित वचनामृत मुनिराजों को अपने हृदयपर आकृत कर लेने
चाहिये । ये वचन ऐसे हैं गानों भी महावीर प्रभु की आह्वानें हैं
प्रतिष्पन्नित हो रही हैं । समाधान कर्त्ता को बदले या सौदे के
रूप में मत समझो । मैत्री यह कुछ सौदा नहीं है । यह तो
केवल धर्म और प्रेम सम्बन्ध है । जो सेवा है वही धर्म
है और जो धर्म है वही ऋण (कर्ज) है यदि उस ऋण
को नहीं चुकाना है तो पापके भागी होइये । अपने सामने वाले
के व्यवहार की जिम्मेवारी उर्बापर डालना योग्य है । क्योंकि,
जितना विशेष दवाज डाला जायेगा उतना ही विशेष विरोध (बैर)
होता सम्भव है । इसलिये प्रतिपक्षी (सामने वाले) को बर्त्ताव
की जिम्मेवारी उसके खानदान और कर्त्तव्य का खयाल करके या
विषय वसी पर छोड़ देने में ‘हाँ’ बड़ी से बड़ी सेवा भरी हुई है ।
“आम शुद्धि का मार्ग है । यह उपध्या-आत्मवत्त है ।

पूज्य श्री फेरमाते थे कि, जैसे जहाज का आधार उसके योग्य फलान पर, रेलवे ट्रेन का आधार एंजिन की ब्रेक पर, और घड़ी का मुख्य आधार उसकी मुख्य कमानी पर है। वंसी प्रकार मुनि-जीवन का आधार शुद्ध चरित्र पर है। जैसे आकाश में चन्द्र, सूर्य ग्रहादि अपनी नियमित चाल से चल रहे हैं। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप का नियत नियमानुसार ही साधुजीवन होना चाहिये।

पूज्य श्री सच्चि समयसूचक थे। उन श्रीमान् की गुण-प्रादुर्बुद्धि कभी भी किसीके अवगुणों को याद करने का अवकाश ही न देती थी। वे महानुभाव, इसी प्रकार मानते कि ' दीर्घ दृष्टि से शान्ति पूर्वक समाधान करके समाज की रक्षा करना ' यह पहिला धर्म है। आवेश के वेग में और पक्षापक्षरूपी अंधेरे में पड़कर अपना लक्ष्य नहीं चूकना चाहिये। अपने विपक्षी के दोषों (अवगुणों, पेशों) का प्रदर्शन कराना (बताना) और उसकी निर्वलता के गीत गाते रहना यह कुछ चतुराई और विचारशीलता नहीं है। सांसारिक लोगों की दृष्टि में किसीको गिरा देने की अपेक्षा, यह उस प्रकार की भूतों (गलतियों) पुनः न करे, ऐसा धार्मिक या नैतिक दबाव देना यही बात साधुओं को शोभा देती है और अपने पूर्वजों की महापरिश्रम से रक्षा करके रखी हुई चरित्र-श्रीर्ति विरोध प्रवृत्त बनाती है।

शुद्ध मंत्रों का पालना तजवार की धार पर चलने के समान है (वैराग्य-बंध तजवार) छोड़े पर चढ़ने वाला पड़ता भी म-
वरण है भोगन बनाने वाला आगि से जलता भी है, राजासी का
काम करने वाले को दूबने का डर भी पड़िते है वसी प्रकार सैन्य
में आगे चलने वाले सेनापति को तीर, भाला, बन्दूक, तजवार आदि
शस्त्रास्त्रों के आघात भी सहन करने पड़ते हैं । आगे चलने वाले
को हिम्मत धैर्य बहादुरी पर ही पीछे वालों की विजय निर्भर
है, आगे चलने वालों की मुक्ति की, पीछे वाले लोगों के ह्रास
पर परछाई पड़ती है ।

आचार्य भीका जायरे के सन्तों को शाश्वत कर लेने का यह
कार्य, सर्वे मुनिवरों की सम्मति पूर्वक नहीं हुआ था, इस कारण से
सम्प्रदाय के स्वामी श्रीमुन्नातालजी आदि कितने ही मुनिराज इससे
अप्रसन्न हुए । इसका कारण यह है कि, वे उनको पूर्ण तौर से प्रायश्चित्त
दिये बिना सम्मिश्रित करना नहीं चाहते थे । इसमें कई सन्तों ने
पूज्य श्रीके इस कार्य को स्वीकार करने से इन्कार किया । किन्तु
पूज्य श्रीकी समयसूचकता, सब को समुदाय रखने की अद्भुत
प्रकार की अत्यन्तता और समझावट से सबों का शान्त कर, आगे
वाले सन्तों के साथ सहमोजन आदि का व्यवहार शुरू करा सम्प्रदाय
में सर्वत्र शान्ति स्थापित की । समार-व्यवहार में फर्क हुआ,
मन्त्री जो कुछ नहीं देख सकते हैं, वही प्रकार की अपूर्वता त्यागी

मुनि देख सकते हैं । उनके अलिप्त रहने से वे सामान्य मनुष्य को अगोचर हो ऐसे भी कुछ २ पदार्थों का अनुभव कर सकते हैं । प्राकृतिक नियमों को स्वयं समझने एवं समझाने का उन्हें पूरा अवकाश मिलता है वनको स्वयं अपनी ही आत्मा का विचार नहीं करने का है किन्तु जो सम्प्रदाय के सिंहासन पर विराजता है उसके श्रेय के लिये भी प्राणपण से (जीतोड़, बहुत ही) प्रयत्न करना पड़ता है । मुखिया की जवाबदारी दूसरे सर्वों की अपेक्षा सदैव विशेष रहती है ।

जोधपुर—(चातुर्मास) संवत् १९६२ का चातुर्मास पूजा श्रीने जोधपुर में किया स्वधर्मी, आन्धर्मी, हिन्दू, मुसलमान हजारों मनुष्य सदैव श्रीजी महाराज के वचनमृत का पान कर (श्रवण कर) सन्तुष्ट होते थे । और त्याग, प्रत्याख्यान, तपश्चर्या तथा संवर-करणी द्वारा आत्म साधन करते थे । कई मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण और मदिरापान का त्याग कर दिया और हजारों पशुओं को अभयदान दिया गया ।

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके श्रीमान् पूज्य श्रीजी महाराज ने प्रथम मेवाड़भूमि पवित्र की । मार्ग में पड़ने वाले कई ग्रामों में अत्यन्त उपकार, और बहुत ही त्याग पञ्चक्रवाण हुए । श्रीजी घाणेराम (मार-वाड़ का एक ठिकाना, सादड़ी की ओर होते हुए ' श्रीचारभुजाजी

तथा नाथद्वारा पधारे । उस समय काठरिवा के ब्रह्मन्
 राबनजी माहिष भी दरीनार्थ पधारे और उन्होंने पूज्य श्री से
 अर्ज की कि ' मैंन प्रथम आरुके पास मे जो प्रतिष्ठा श्री दी
 उसका मैं यथार्थ पाजन कर रहा हू । '



अध्याय १६ वाँ

रत्नपुरी में रत्ननयी की आराधना ।

क्रमशः वहाँ से (कोठारीया नाथद्वारा से) बिहार करते हुए पूज्य श्री रत्नलाम कुछ समय के लिये पधारें । तब उनको श्री संघने चातुर्मास करने के लिये अति आम्रहपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु वह अस्वाकृत हुई । और रत्नलाम से बिहार करके श्रीजी पंचेड़ पधारें । रत्नलाम संघ के कई अग्रगण्य आचक भी दर्शनार्थ पंचेड़ गये और वहाँ के स्वर्गीय कैप्टन ठाकुर साहिब * रघुनाथसिंहजी ने

ॐ ये स्वर्गीय ठाकुरसाहिब तथा उनके भाई साहिब वर्तमान ठाकुरसाहिब श्री चैनसिंहजी साहिबदानों पूज्य श्री पर इतना अधिक (श्रद्धा एवं प्रेम) भाव रखते थे कि, उन श्रीमानों के फोटो इस पुस्तक में यहाँ पर देना अचित्त होगा । 'पंचेड़' यह ग्राम मार्ग में ही होने के कारण पूज्य श्री का वहाँ पर समय समय पर पधारना होता और ओमान् ठाकुर साहिब पूज्य श्री के उपदेश का लाभ उठाकर शान्त स्वभाव के होगये थे । पूज्य श्री के दर्शनों का लाभ जिस समय आप रत्नलाम में आते उस समय भी लिया करते थे ।

अर्ज की कि, यदि श्रीमान् रतलाम में चातुर्मास करें तो मैं आजीवन पर्यन्त हरिण का शिकार करने की सौमन्द करता हूँ और मेरी मरहट में कोई भी मनुष्य हरिण, खरगोश इत्यादि का शिकार न कर सके इसका दृढ मन्दोषस्त करने की तैयार ॥ ।

मलयासा के ठाकुर साहिब की ओर से भी मलयासा का जो बड़ा तलाब है, यहाँ पर कोई भी मर्ज्या न मार सके इस बात का पक्का मन्दोषस्त हमेशा के लिये करने में आया, तत्सम्बन्धी पट्टे, परवाने भी करने में आये ।

इस प्रकार अत्यन्त उपकार का कारण समझकर रतलाम में चातुर्मास करने की रतलाम सभ की प्रार्थना श्रीजी महाराज ने स्वीकृत की । इससे सब लोगों के हृदय में आनन्द सागर की तरङ्गे कल्लोलित होने लगी ।

रतलाम (चतुर्मास) मेवाड़ में से प्रमशः विहार करते हुए श्रीजी महाराज मालवा देश में पधारे और रतलाम के श्रीसभ की प्रार्थना स्वीकार कर संवत् १९६३ विक्रमी का चार्तुर्मास रतलाम नगर में किया । इससे पहिले जितने चातुर्मास हुए उन सबकी अपेक्षा अबका चातुर्मास अत्यन्त उपकारक सिद्ध हुआ । इतने ही समय में आचार्य श्रीजी के ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पर्याय इतने विमल होगये थे और पुण्य प्रवाप भी इतना अधिक बढ़ गया था

कि, रतलाम के बड़े २ वयोवृद्ध श्रावकों के मुख में से पुनः २ इस प्रकार के वाक्य निकलते थे कि, “श्रीमान् उदयसागरजी महाराज आदि महापुरुषों के आगमन और उपस्थिति के समान ही लोगों के हृदय पर उग्र प्रभाव तथा उत्कृष्ट उत्साह दृष्टिगोचर होता है”। धर्म, ध्यान, त्याग—प्रत्याख्यान करने के लिए श्रीमान् कदापि किसीको भी आग्रहपूर्वक नहीं कहते थे, उसी प्रकार न किसीको मजबूर करते थे, ऐसी स्थिति में भी उनका उत्कृष्ट चारित्र और आत्म शक्तिओं का आकर्षण इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग स्वयं ही त्याग—पञ्चक्खाण, धर्मध्यान, जप, तप, स्कंधादि विशेष २ उत्साह के साथ हार्दिक-उमंगों के साथ करने लगे। इस समय संवर करणी, धर्मजागृति और ज्ञानवृद्धि इतनी अधिक हुई थी कि, पिछले वर्षों से उसको चौंगुनी कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी।

इसके सिवाय विशेष चित्ताकर्षक बात यह है कि, राज्य कर्म-चारी गण साधु महात्माओं के सत्संग का लाभ बहुत कम उठाते थे, किन्तु श्रीमान् के विराजने से उनकी अनुपम प्रशंसा सुनकर राज्य के बड़े २ ओहदेदार, अमीर, उमराव, वकील इत्यादि पूज्य श्रीकी सेवा में आने लगे और उनके ऊपर पूज्य श्री का इतना अधिक प्रभाव पड़ने लगा कि, वे पूज्य श्री के पूर्ण गुणानुरागी और प्रशंसक बन गये थे।

रत्नलाल स्टेट के मुख्य दीवान श्रीमान् पी. बाबूगय साहिबूबी. ए. एल. एल. बी. जो कि, उस समय इन्डियन स्टेट में मुख्य कार्य करी साहिब के बदपर सुशोभित हुए थे उन्होंने पूरबी के सम्मग पर बहुत धनका लाभ लिया था। पूरबी के विषय में तथा जैन-धर्म के मूल सिद्धान्तों के विषय में उन्होने बहुत धनका शौक लग गया था। श्रीमान् दीवान साहिब केवल कानून में ही नहीं किन्तु गण-द-काज में (दुपहर के समय में) भी किसी २ दिन आया करते थे। प्रेमपूर्वक कथावाचन मरुत करत, रत्ना ही नहीं किन्तु अपनी धर्मपत्नी तथा बालबच्चों को भी पूरबी का धर्मोपदेश प्रत्यक्ष करवाने के लिए अपने साथ लाते थे। उनका विमल बुद्धि और मरुत-शक्ति कीज होने के कारण थोड़े ही समय में जैन-धर्म के मुख्य २ सिद्धान्तों का उन्होंने उत्तम ज्ञान सम्पादन कर लिया। जिसके कारण उस जमान पर उनकी इतनी अधिक अभिरुचि उत्पन्न होगई थी कि, पूरबी के बिहार करवाने पर भी (रत्नलाल से) वे श्रीमान् सर्व साधारण की समा के सम्मुख नय, निरुध, समझती आदि महत्वपूर्ण विषयों पर गता करने वांग्य भाषण देते थे। ऐसे ही रत्नलाल स्टेट के एक जैन साहिब श्रीमान् पंडित बीजगोविन्दनाथ बी. ए. एल. एल. बी भी पूरबी का उपदेश का काम उठाने थे।

रत्नलाल के मे० पुत्रिम सुनियेस्टेट में रहनाथी भी एल. एल. बी साहिब को दिन में कई बार पूरबी की सेवा में

पधारते थे और तब परीक्षा पूर्वक चातुर्मास के अन्त में पूज्य श्री के पान में सन्यकृत रत्न प्राप्त करके दृढधर्मी श्रावक बन गये थे । संवत् १८६३ की मार्गशीर्ष चर्दी १^१ के दिन, रतेलाम में विहार करने के समय श्री जी से उन्होंने इस प्रकार अर्ज की कि, “हुजूर ! आज तक मैंने किसीको भी गुरु नहीं किया था, इनका कारण यह है कि, जहाँ तक आत्म-परितोष (आत्मा का समाधान) न हो जाय वहाँ तक गुरु के समान किसी भी व्यक्ति को किन्तु प्रकार स्वीकार कर सकते हैं ? आज मैं आपको अन्तःकरण में शुद्ध श्रद्धापूर्वक गुरु के समान स्वीकार करता हूँ ”। इस समय से वे श्री जी के अनन्य भक्त बन गये । श्री जी महाराज से उनका सत्संग होने के पूर्व उनकी श्रद्धा किसी भी सम्प्रदाय पर नहीं थी ।

संस्थान ‘अमलेठा’ के स्वर्गस्थ रा० घ० महाराज रघुनाथसिंहजी तथा पंचेड के ठाकुर साहिब कपटन रघुनाथसिंहजी सदैव पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे ।

उपरोक्त चातुर्मास में हिन्दू मुसलमान, क्षत्र्यादि लोग सहस्रों की संख्या में एकत्रित हो पूज्य श्री के व्याख्यान का अपूर्व लाभ उठाते थे । ‘बहोरा’ कौम (जाति) के भी एक सद्गृहस्थ ‘द्विपतुल्लाजी’ कभी २ पूज्य श्री के व्याख्यान में आते थे, एक दिन व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् वे खड़े होकर परिपट् (उपस्थित श्रं तृण) के सामने कहने लगे “ आप जैन लोग ऐसे महात्मा

पुरुषों के उपदेश सुनने वाले सचमुच भाग्यवान् हो, आचार्य महाराज के आज के उपदेश से मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह ऐसा है जो कि, आजीवन स्मरण रहेगा । आज से मैं कभी भी पशु-हिंसा नहीं करूँगा; वही प्रकार मांस भक्षण भी नहीं करूँगा, इतना ही नहीं, किन्तु अपने भाई बन्धु, इष्ट मित्रों को भी यही मार्ग बतलाऊँगा । मेरे समान वे भी पूज्य श्री के ऐसे अमूल्य उपदेश का लाभ लेते हों तो कितना अच्छा हो ।

यह भाई दूसरे ही दिन अपनी जाति के तीन चार भाईयों को अपने साथ पूज्य श्री के व्याख्यान में बुला लाये थे । और वे अपने साथ के बैठने बैठने वाले मित्रों को ' आहिंसा-धर्म ' का महत्त्व समझाने को अपना कर्तव्य समझने लग गये थे । (समझते थे)

चातुर्मास पूछे होने पर पूज्य श्री ने विहार किया, उस समय स्वधर्मी, अन्यधर्मी हजारों मनुष्यों के सिवाय पुलिस सुपरिंटेंडेंट साहेब अपनी पूरी पलटन के साथ जन-समुदाय के आगे २ चल रहे थे । और जैन शासन की प्रभावना करके पूज्य श्री के विषय में अपना अप्रतिम पूज्यभाव प्रदर्शित करते थे

आचार्यश्री नगर के बाहर पहुँचे, उस समय श्रीमान् दीवान साहिब की ओर से मेहताजी साहिब (पो. सु.) ने सरकारी बाग में विराजने के हेतु अर्ज की वससे महाराज श्री बाग में विराजे । दूसरे दिन प्रातःकाल के समय में पूज्य श्री विहार करने को उद्यत

इतने में दीवाने साहिब आ पहुँचे, एवम् पूज्य श्री से प्रार्थना की कि " यदि आप एक दो दिन यहां विराजो तो बड़ी कृपा हो" इस पर से पूज्य श्री दो दिन तक सरकारी घात में विराजमान रहे, सरकारी बाग में जैन साधु के विराजने का यह पहिजा ही अवसर था । यहां पर गुलाबचक्र के विशाल भवन में पूज्य श्री व्याख्यान देते, राज्य के अधिकांश आफिसर लोग अपने स्टाफ के सहित व्याख्यान का लाभ उठाते थे । इसके सिवाय स्वधर्मी, अन्यधर्मी सहस्रों मनुष्य आते थे । यह प्रसंग भी रतलाम के इतिहास में प्रथम ही था । श्रीमन्महावीर प्रभु के समवसरण का जो वर्णन श्री ' उववाहूँ सूत्र, में है उसकी कुछ २ भांकी इस समय गुलाब-चक्र भवन में होती थी ।

श्रीमान् रतलाम दरबार ने उस समय यह बात स्वीकृत भी की कि " पूज्य श्री के पुण्य-प्रतापक्ष से ही रतलाम शहर पर लोग का जोर नहीं चल सकता ।

रतलाम के चातुर्मास में अजमेर निवासी साधुमार्गी जैन-संघ के माननीय नेता राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा जैन-समाज

* ऐसा ही मौका मोरवी में भी मिला था जो कि, आगे देख सकेंगे ।

के अन्य अमरगण आर्यक लोग श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे, वे तथा वसी प्रकार रतनाम कांफरन्स सम्बन्धी विचार करने के हेतु रतनाम मुकाम पर एकत्रित हुए थे, ये सब सज्जन धीमान् दरबार श्रीकी सेवा में उपस्थित हुए और अर्ज की कि " रतनाम शहर के आसपास सब स्थानों में सेना का बड़ा भारी उपद्रव मच रहा है किन्तु रतनाम में ऐसे महात्मा के विराजने से रतनाम में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है, यह सुनकर श्रीमान् दरबार श्री ने कहा कि " रतनाम शहर के अहोभाग्य हैं कि ऐसे महाराम का यहां विराजना हुआ है । यहां पर शान्ति रही यह इन्हीं के पुण्य प्रताप का फल है इनके गुरुवर्य श्रीशुद्धचन्द्रजी महाराज भी यहां पर कर्णधार विराजे थे और वे भी अत्युत्तम साधु थे ।

संवत् १६६३ के रतनाम के चातुर्मास में पूज्य श्री आदि ठाणा ४६ विराजते थे । उस अवसर पर आपठ शुद्ध १४ भावदा शुद्ध ५ तक तपश्चर्या तथा सवरकरणी निम्न लिखे अनुसार हुई थी ।

सप्तरह १० उपनास का थोक		१६	१५	१३	१२	११	१०
		२	४	६	६	११	१५
६	८	७	६	५	४	३	२
७१	१८१	२१	२६	६११	७४६	१३००	२७००

एक दिन के अन्तर से दो माह तक (एकान्तर)

(२०१)

श्री गायक दो द्वा दिन के अन्तर में । (दो पेटे पारना)

२१

तीन तीन दिन के अन्तर में श्री गायक । (दोल तेने पारना)

११

वर्ष बकसी तपस्या,

२१

व्यंघ (चार पंकी)

व्यंघ जमीरन्द के

७४

४१

पोषा कुल

संवत्सरी के पोषा

१०६८६

१६०१

तपस्याकी पचरंगी

दया की पचरंगी

२७

४

पूज्य श्री ने १ आठई, २ तैला, तथा १॥ डेढ महीने तक एकान्तर उपवास, तथा इसके भिवाय फुलकल उपवास किये थे । भूलचन्दजी महाराजने ३४ उपवास का थोक किया था । ३४ के पूर के दिन स्वधर्मा अन्यधर्मी, लोगों ने ब्यौपार धन्धा बन्द करके यथाशक्ति व्रत, नियमादि किये । कनार्इखाने की ४४ दूकानें बन्द रहीं तथा कछेरा, तेली, कंदोई, धोत्री, रंगरेज इत्यादिकों का व्यापार

धन्दा मन्द रहा । १०० बकरीं को अमयदान दिया गया । इस काम में श्री सरकार की ओर से बहुत मदद दी गई थी ।

उपरोक्त लिखे अनुसार रतनाम के चातुर्मास में जैन-धर्म का बहुत ही बढ़ोत हुआ ।

अध्याय १७ वाँ

मेवाड़ और मालवे की सफलता पूर्वक यात्रा



रतलाम से विहार करके श्रीमान् आचार्यजी श्री बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे वहां संवत् १९६३ पौष वद्य ३ के दिन श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज जो कि, इस समय विद्यमान हैं, उनके सांसारिक अवस्था के पुत्र पन्नालालजी तथा रतनलालजी * ये दोनों भाई तथा पन्नालालजी की स्त्री हुलास्यांजी ऐसे एक ही कुटुम्ब के तीन जनों में धन, माल, जीमन इत्यादि का दान करके प्रबल वैराग्यपूर्वक दीक्षा स्वीकार की।

* भाई रतनलालजी का (सम्बन्ध (सगाई) हो चुका था और विवाह होने की तैयारी थी, ऐसी दशा में भी उन्होंने दीक्षा ले ली। रतनलालजी की उमर थोड़ी होते हुए भी वे अत्यन्त प्रतिभाशाली, धीर वीर, गम्भीर और संस्कारी पुरुष थे, और उनकी ज्ञानशक्ति भी अत्यन्त बढ़ी हुई थी। उनकी व्याख्यान शैली भी अधिक प्रशंसनीय थी। कई श्रावकों का ऐसा अनुमान था कि, श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय को यह महानुभाव प्रकाशमान

तत्पश्चात् सादही के मेहता कुटुम्ब के एक सातदाजी घर ५ (उच्च नुन दी) साजगणजी, नामकी एक आशिका यदिन ने भी दीक्षा ली थी । एक ही दिन चार दीक्षा हुई थी । इस समय मादही में साधु, साध्वी मिलकर कुल ८४ ठाया विराजते थे । पन्नाथ के पूज्य भी धोचन्दनी महाराज भी इस सम्मेलन में विराजते थे ।

सादही क्षेत्र इस समय तीर्थस्थान के रूप में हो गया था । इस शुभ अवसर पर ६० ग्रामों के लगभग ५००० पात्र सत्तक धनु प्र सादही में पकत्रित हुए थे । दीक्षा महोत्सव बहुत ही धूमधाम से— अत्यन्त समारोह पूर्वक हुआ था । रात्र की ओर से हाथी, घोडा, मियाणा घोबदार, बैरर इत्यादि सब प्रकार की सम्पूर्ण सहायता मिली थी । इस प्रकार की दीक्षा सादही में इसल पहिल कभी भी नहीं हुई थी । यह सब पूज्य श्रीने बहुपत के कारण ही होने पाया । कहा जाता है कि, बहुत से मुनिराजों के एकत्र होजान के

करेगा, इनमें श्रीमान् आचार्यजा महाराज को भी सम्मेल था । कि तु आनुय कर्म की स्थिति न्यून होने के कारण ११ वर्ष तक समय पातकर, मवन् १६७४ विजयीके मगप्रर महीने में इस असार मसार को छीड़ वे स्वयं को सिधारे ।

काष्ण आहार पानी की अन्तराय न पड़े इसलिये कई दिन तक कांयत सूखे आटे में जल मिलाकर आहारकर 'चउविहार' कर लेते थे ।

सादई की ओमशान्त जाति में प्रथम कुछ अनेक्यता (फूट) थी । चार तहें पड़ गई थीं । किन्तु पूज्य श्रीके सदुपदेश से सब ही एकत्रित होगये (याने चारों तहें एक होगईं) और अनेक्यता का स्थान ऐक्यता ने ग्रहण किया । इसके सिवाय इस चिरस्मरणीय अवसर पर रक्तध त्याग पञ्चकलाण जीवों को अभयदान देना आदि इतना अधिक उपकार हुआ कि, उगका सविस्तर वर्णन करना असम्भव है ।

बड़ी सादई की श्रीमान् राजराणा साहिब दुर्गेशिंहजी भी पूज्य श्रीके दर्शन तथा उनके वचनानुसृत का पानकर अपने को कृतकृत्य समझते और पूज्य श्रीकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे, इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने जीवहिंसा न करने, तथा प्राणियों की रक्षा करने के विषय के अनेक त्याग पञ्चकलाण किये । जो कार्य लाखों, करोड़ों रूपयों से नहीं होता, सैन्यबल तथा तापों की लड़ाइयों से नहीं होता, जो कार्य रोव तथा भय से नहीं हो सकता, ऐसा कठिन-असम्भव और अत्यन्त दुष्कर कार्य भी निःस्वार्थी शुद्धसंयमी, सन्त के-वचन मात्र से सिद्ध होता है । पूज्य श्री के सदुपदेश का ऐसा प्रभाव

सबही स्थानों में विजयी भिन्न हुआ है । इस प्रकार के विजय के लिये आत्म-संयम और चरित्र की-शुद्धचरित्र की प्रथम आवश्यकता है ।

बड़ी सादृशी से विहार करके माघ या फाल्गुन मास में पूज्य श्री १६ ठाणा साहिब रामपुरे (शोल्कर) स्टेट पधारे । इस समय जाधरे के सन्त श्री बड़े जवाहिरलाजजी (जो कि, इस समय विप्र-मान नहीं है) श्री हीरालालजी, श्री खूबचन्दजी, श्री चौधमलजी, आदि श्री श्री आचार्य श्रीको आशानुसार चलेते हुए उनके स्थान में यहा पर जितने समय तक उनको (धार्मिक नियम से) रहना योग्य था याने कल्पता था वहा तक रहे थे । जाधरे के उपरोक्त सन्तों ने इन समय श्रीमान् आचार्य महोदय के गुणानुवाद विषय के कई स्तवन, लावनी भजन इत्यादि बनाये थे उनमें से कईओं को मुश्राफ करके अचक लोग गाते हैं ।

इस अवसर पर श्रीमान् दीवान खुमानसिंहजी साहिब ने दशहरे के दिन जो प्रतिवर्ष इनके यहां पाड़े का बंध होता था (मारा जाता था) वह इमेशा के लिए पूज्य श्री के मदुपदेश से बन्द कर दिया और वम विषय का पट्टा-परवाना भी करवा दिया ।

राय बहादुर कोठारी हीराचन्दजी साहिब ने भी पूज्य श्री की बहुत ही सेवा भक्ति की । इसके सिवाय अनेकों व्रत, पंचम्याण,

तथा जीवों को अभय-दान आदि उपकार के कार्य हुए ! अनेकों मुसलमान वगैरह मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण तथा मदिरा पान करने की कसम ली ।

द्रव्य, क्षेत्र काल भावानुसार सदुपदेश से स्वधर्म और स्व-समाज की अच्छी सेवा करके अनेकों निराधार जीवों को अभय-दान दिलाकर धर्म की दलाली की । शुद्ध संयम का प्रभाव ही ऐसा है कि, जहां जावे वहां ही विजय-स्वजा फरके, धर्म का उद्योत हो और अनेकों जीवों को शान्ति मिले । स्वधर्म का सत्य ज्ञान सम्पादन होने से, मन का मैल धुल जाने से, शंकाओं का समाधान हो जाने से उत्साही युवक धर्म को आवश्यक ही प्रकाशित करें ।

यहां से विहारकर पूज्य श्री कोटा पधारे, कोटे में रामपुरे बाजार में महारानी साहिवा की कन्याशाला है, वहां पूज्य श्री विराजते थे । उस समय व्याख्यान में कोटे के महारावजी साहिब पधारे थे । पूज्य श्री की अमृतमय वाणी श्रवणकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए किन्तु सामायिक व्रत लेकर बैठे हुए कई श्रावकों में महाराजा साहिब को सम्मान देने के लिए खड़े होना, आसन लगाना वगैरह चेष्टाएं कीं उनके विषय में उन श्रीमान् ने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की । जिस दिन पूज्य श्री का व्याख्यान श्रवण किया उसी दिन महारावजी साहिब शिकार खेलने के लिए शहर के

बाहर निकले, थोड़ी दूर जाने पर एक मुल्हद्दी (सरदार) ने अर्ज की कि " हज़ूर ! आप तो आपने जैन-धर्मो गुरु का व्याख्यान सुना है । इसक स्मरण - आज शिखर नहीं करता चाहिये " ये शब्द सुनते ही बन्दूक का मुह कमाल से धाधते २ महाराजजी साहिब ने कहा, अच्छा चलो । आज शिखर नहीं ही खेलें, पैसा बहककर महाराजा साहिब राजमहल की ओर पाछे फिर गये ।

(२०६)

अध्याय १८ वाँ ।

‘ मरुभूमि में कल्पवृक्ष ’

कोटे से विहार करके मार्ग में अत्यन्त उपकार करते हुए पूज्य श्री नसीराबाद होते हुए नवानगर (व्यावर) पधारे, वहाँ पर अजमेर के श्रावकों की वितती पर से संवत् १६६४ का चातुर्मास अजमेर में करने का निश्चय किया ।

अजमेर (चातुर्मास) संवत् १६५६ में श्रीमान् पूज्य श्री नानकरामजी महाराज के सम्प्रदाय के प्रतापी मुनियों का वियोग होने तथा पूज्य श्री वितयचन्दजी महाराज का विराजना वृद्धावस्था के कारण जयपुर होने से अजमेर की जैन-समाज में धर्म के विषय में कुछ शिथिलता उत्पन्न होगई थी, किन्तु आचार्य श्री के पधारने से पुनर्जीवन प्राप्त हुआ । पूज्य श्री के प्रताप से बहुत से मनुष्यों को धर्म-ध्यान की रुचि उत्पन्न हुई, और बहुतसों की धर्म-रुचि विशेष रूप से दृढ हुई । त्याग पचखाण, तथा अत्याधिक स्कंध और तपश्चर्या आदि बहुत ही उपकार हुआ । तदुपरान्त श्रीजी महाराज के सदुपदेश से विरादरी में (जाति में) रात्रि भोजन बिल्कुल (नितान्त) बन्द करनेमें आया । वनौरे वगैरह जो रात्रि के समय निकलते थे वे सब भी रात को निकलना बन्द होगये ।

इस वर्ष में संवत्सरी-वर्ष के विषय में एक दिन का मत-भेद था।

श्रीमान् की गुरु आम्नाय के अनुसार एक दिन आगे संवत्सरी थी जब कि, दूसरे सम्प्रदाय की एक रोज पाँचे थी लेकिन आचार्य भीने सब को सम्मिलित करके दोनों दिन अत्यन्त ही धर्म-ध्यान कराया। बहुत से छठे हुए बहुतसी दया, पोषे हुए। किसी प्रकार का भेदभाव या राग द्वेष की छुद्दि नहीं होने दी। इतना ही नहीं, किन्तु परंपरा (पूर्वजों के समय) से चली आती अगले सम्प्रदाय की रीति के अनुसार संवत्सरी पहिले दिन कर अगले दिन करने पर इस विषय को लेकर जैन पत्रों में पूज्य श्री के ऊपर कितने ही एक पक्षीय आक्षेप, पूर्ण लेख प्रकाशित हुए किन्तु मागर के समान गम्भीर महात्मा भी ने उनका भी खेद न करते हुए उनके आक्षेपों का प्रतिवाद नहीं किया, यह क्षमालुपि-गाथकी उपश्रृंग अत्यन्त ही कठिन है समर्थ पुरुषों का क्षमा करना, उपशम(शान्ति)भाव धारण करना, ॥ इनके समान महान् आत्मबली मशानुभाव का ही काम है। इसका प्रभाव गुजरात, काठियावाड़ के जैन वन्धुओं के ऊपर ऐसा पड़ा कि, वे श्रीमान् को महान् उग्र आत्मा के समान मानने लगे। इस चातुर्मास में जोधपुर के भाई शोभाचन्द्रजी को पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने पूज्य श्री के पास से दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् रत्नलाम नि-वासी श्रीयुत लज्जमलजी चपलोट के भतीजे तख्तमलजी ने भी अल्पायु में ही प्रबल वैराग्य पूर्वक श्रीमान् के पास दीक्षा अंगी-

कार की । जिसका दीक्षा-महोत्सव अजमेर के संघने बहुत ही उत्साह पूर्वक किया । यह उत्सव अजमेर के " दौलतबाग " में हुआ था ।

अजमेर के चातुर्मास में तारीख ३-११-१६०७ के दिन श्रीमान् मोरधी नरेश सर बाबजी बहादुर जी, सी. एस. आई तथा अजमेर के व्युडिशियल आफिसर श्रीमान् खांडेकर सहिव पूज्य श्री के व्याख्यान में पत्रों में । श्रीमान् मोरधी नरेश पूज्यश्री के व्याख्यान में अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उन श्रीमान् ने श्रीजी महाराज से अर्ज की कि, जो आप काठियावाड़ की तरफ पधारेंगे तो बहुत ही सरकार होगा । श्रीजी ने उत्तर दिया कि, जैसा अवसर ।

अजमेर का चातुर्मास पूर्ण होने पर श्रीजी महाराज नयानगर (व्यावर) की ओर पधारे । मार्ग में ' दोराई, मुकाम पर स्वामीजी श्रीमुन्नालालजी महाराज जोकि, नयानगर से अजमेर की तरफ पधारते थे उनका समागम हुआ, वहाँ पर सायदाल का प्रतिक्रमण करने के पश्चात् स्वामी श्री मुन्नालालजी महाराज ने श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब से अर्ज की कि, मेरी इच्छा पंजाब की ओर विचरने की है, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उस ओर विचरूँ ? आचार्य श्रीने फरमाया कि " आपको जिधमें सुख हो, वैसा करो "

पूज्यश्रीने मुन्नालालजी महाराज को पंजाब में पाँच वर्ष तक

विचरने की आज्ञा प्रदान की। भोमुनालालजी महाराज सरल स्वभावी और सूत्रों के अभ्यास में पूर्ण विश्व हैं।

तत्पश्चात् आचार्य श्री गुरु भूमि-मारवाड़ को पवित्र करते हुए, अनेक सरकार कगटे हुए श्री बीकानेर श्री संघ की विनम्र से यहाँ पधारे और संवत् १९६५ का चातुर्मास श्रीजी ने बीकानेर में किया।

बीकानेर (चातुर्मास) संवत् १९६५ का चातुर्मास श्रीजी महाराजने बीकानेर में किया, इन वर्ष बीकानेर के भावकों में अपूर्व बसाह छा रहा था। धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये भावकों में अधिक उद्योग किया और बालकों तथा नवयुवकों को जैन-धर्म के सर्वोत्कृष्ट (अत्युत्तम) तत्त्वज्ञान का लाभ मिलता रहे इस उद्देश्य (मतलब) से बीकानेर के संघ ने एक साधुमार्गी जैन पाठशाला की स्थापना की *

* वर्योक्त पाठशाला एक वर्ष तक श्री संघ ने चलाई। तत्पश्चात् श्रीमान् सेठ भैरूदानजी छेठी ने अपने स्वयं के व्यय से पाठशाला चलाना शुरू किया, वसमें दिनोंदिन वृद्धि होती गई और इस समय भी वह पाठशाला बहुत अच्छी नींव पर (अच्छी तरह से) चल रही है। पाठशाला को उपयोग के लिये सेठ भैरूदानजी ने अपना मकान दे रक्खा है। लगभग ८० विद्यार्थी उससे लाभ उठा रहे हैं। सात अध्यापक नियत हैं। लगभग ४०० रुपये मासिक का व्यय है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। इसके सिवाय हिन्दी, अंग्रेजी

इस चौमासे में तपस्वी मुनि श्री धूलचन्दजी महाराज जो कि, विद्यमान पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के शिष्य हैं उन्होंने ६१ उपवास किये थे । इस अवसर पर सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य दर्शन के लिए आते थे; उनका आतिथ्य सत्कार बीकानेर संघ की ओर से भलीभांति होता था । आबकों ने भी बहुत ही तपश्चर्या और अत्यन्त ही व्रत नियम किये थे । पूज्य श्री के सदुपदेश से जोधरा निवासी जोसवाल गृहस्थ श्रीयुत ताराचन्दजी तथा उनके पुत्र चांदमलजी ने तथा बीकानेर के सुप्रसिद्ध सेठ अगरचन्दजी भैरूदानजी के छोटे भाई की विधवा स्त्री रतनकुंवर बाई को वैराग्य व्रतज्ञ हुआ और इन तीनों का एक ही दिन दीक्षा-महोत्सव हुआ । श्रीमान् बीकानेर नरेश ने दीक्षा महोत्सव के लिए अपना हाथी तथा लवाजमा (घोड़े, नगारा, निशान, आदि अन्य सामान) भेज दिया था । संवत् १८६५ मंगसर वद्य २ के दिन तीनों को एक ही मुहूर्त में पूज्य श्री ने दीक्षा दी थी ।

और महाजनी हिसाब और लेखनकला आदि विषय सिखाये जाते हैं । कन्याओं को भी व्यावहारिक और धार्मिक शिक्षा मिले इस मत-लब से एक कन्याराजा भी उपरोक्त सेठ साहिब की ओर से थोड़े ही समय में स्थापित होने वाली है । बालकों के पास से कुछ भी फीस नहीं ली जाती है । धार्मिक शिक्षण में सामायिक प्रतिक्रमण, अर्थ सहित तथा शालोपयोगी जैन प्रश्नोत्तर इत्यादि सिखाये जाते हैं ।

विचरने की आज्ञा प्रदान की। भीमनालालजी महाराज सरल स्वभावी और सूत्रों के अभ्यास में पूर्ण विश्व हैं।

तत्पश्चात् आचार्य श्री गुरु भूमि-पारवाड़ को पवित्र करते हुए, अनेक करकार करते हुए श्री बीकानेर श्री संघ की विनन्ति से यहाँ पश्चिम ओर संवत् १९६५ का चातुर्मास श्रीजी ने बीकानेर में किया।

बीकानेर (चातुर्मास) संवत् १९६५ का चातुर्मास श्रीजी महाराजने बीकानेर में किया, इस वर्ष बीकानेर के श्रावकों में अपूर्व बसाह छा रहा था। धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये श्रावकों में अधिक व्योग किया और बालकों तथा नवयुवकों को जैन-धर्म के सर्वोत्कृष्ट (अत्युत्तम) तत्वज्ञान का लाभ मिलता रहे इस उद्देश्य (मतलब) से बीकानेर के संघ ने एक साधुमार्गी जैन पाठशाला की स्थापना की *

* वर्योक्त पाठशाला एक वर्ष तक श्री संघ ने चलाई। तत्पश्चात् श्रीमान् सेठ भैरूदानजी सेठा ने अपने स्वतः के व्यय से पाठशाला चलाना शुरू किया, उसमें दिनोदिन वृद्धि होती गई और इस समय भी वह पाठशाला बहुत अच्छी नींव पर (अच्छी तरह से) चल रही है। पाठशाला को उपयोग के लिये सेठ भैरूदानजी ने अपना मकान दे रक्खा है। लगभग ८० विद्यार्थी वसंसे लाभ उठा रहे हैं। सात अध्यापक नियत हैं। लगभग ४००) रुपये मासिक का व्यय है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। इसके सिवाय हिन्दी, अंग्रेजी

पूज्य श्री को अपने वचन के लिये ८० कोस का विशेष विहार कर जोधपुर जाना पड़ा, कारण कि, जोधपुर श्रीसंघ ने पूज्य श्री की विनय की थी उस समय उन्हें जोधपुर स्पर्शने का वचन पूज्य श्री ने दे दिया था ।

वहां से पूज्य श्री जोधपुर पधारे वहां भी फिर राय सेठ चांदमलजी साहिब विनन्ती करने पधारे और क्रमशः पूज्य श्री विहार करते सं० १९६६ के चैत्र वद्य २ को अजमेर पधारे पूज्य श्री अजमेर पधारने वाले हैं ऐसी खबर पहिले से ही देश देशान्तरों में फैल गई थी इसलिये बाहर के हजारों श्रावक उनके दर्शनार्थ कान्फरन्स के अधिवेशन के समय आये थे और साधु साध्वी भी वहां बड़ी संख्या में पधारी थीं, इसलिये श्रावक राग वश साधु के निमित्त आहार पानी अधिक निपजावें, अथवा कुछ दोप लगावें इस डर से महाराज श्री ने जाते ही तैला किया और पारणा करते ही दूसरा तैला किया थोड़े ही साधु आहार पानी करते थे । उन्हें भी आज्ञा की कि, अन्य दर्शनियों के वहां से आहार पानी बहर लाया करो । ऐसी तपस्या में भी पूज्य श्री बुलन्द आवाज से व्याख्यान फरमाते थे ।

उस समय सब मिलाकर करीब १५० साधु अजमेर में थे व्याख्यान श्रीमान् लोढ़ाजी की कोठी में होता था और वहां हजारों मनुष्य एकत्रित होते थे पहिले दूसरे साधु वारी २ से थोड़े समय

अध्याय १६ वां ।

अजमेर में अपूर्व उत्साह ।

श्रीजी महाराज कुचेरे विराजते थे तब अजमेर निवासी राय सेठ चांदालजी साहिब ने अजमेर की कि, आगामी फाल्गुन मास में अजमेर मुकाम पर फाल्गुन का अभिवेशन है, श्री लिये समस्त हिन्दूस्थान के अनेक स्वामी धांधन यहां पधारेंगे, उस समय आपके समर्थ धर्माचार्य और धर्मोपदेशक यहां विराजते हों तो यह उपकार होने की संभावना है । इत्यादि शब्दों से बहुत ही आग्रह पूर्वक विनम्रता की । इस समय पूज्य श्री का दिल यहां हाजिर रहने का नहीं था, परंतु सेठजी के अत्याग्रह और कितने ही साधुओं की प्रबल वक्तव्य से पूज्य श्री ने अपने साधुओं को सम्बोधन दे कहा जो यह शर्त तुम्हें मंजूर हो तो मैं अजमेर की ओर विचरूँ । एक तो साधुमार्गी भाइयों के घर से जबतक अभिवेशन होता रहे किसीने आहार पानी न खाना और दूसरी शर्त यह है कि, अपने को जोधपुर होकर यहां जाना पड़ेगा इससे लम्बे विहार करने से कदाचिन् मेरे पांव में तकलीफ हो जाय तो तुम्हें अपने रुकणों पर बिठाकर मुझे अजमेर पहुंचाना पड़ेगा । साधुओं ने दोनों शर्तें स्वीकार कीं और पूज्य श्री ने सेठजी की विलय मंजूर की ।

पूज्य श्री को अपने वचन के लिये ८० कोस का विशेष विहार कर जोधपुर जाना पड़ा, कारण कि, जोधपुर श्रीसिंघ ने पूज्य श्री की विनय की थी उस समय उन्हें जोधपुर स्पर्शने का वचन पूज्य श्री ने दे दिया था ।

वहां से पूज्य श्री जोधपुर पधारे वहां भी फिर राय सेठ चांदमलजी साहिब विनन्ती करने पधारे और क्रमशः पूज्य श्री विहार करते सं० १९६६ के चैत्र वद्य २ को अंजमेर पधारे पूज्य श्री अंजमेर पधारने वाले हैं ऐसी खबर पहिले से ही देश देशान्तरों में फैल गई थी इसलिये बाहर के हजारों श्रावक उनके दर्शनार्थ कान्फरन्स के अधिवेशन के समय आये थे और साधु साध्वी भी वहां बड़ी संख्या में पधारी थीं, इसलिये श्रावक राग वश साधु के निमित्त आहार पानी अधिक निपजावें, अथवा कुछ दोष लगावें इस ढर से महाराज श्री ने जाते ही तैला किया और पारणा करते ही दूसरा तैला किया थोड़े ही साधु आहार पानी करते थे । उन्हें भी आज्ञा की कि, अन्य दर्शनियों के वहां से आहार पानी बहर लाया करो । ऐसी तपस्या में भी पूज्य श्री बुलन्द आवाज से व्याख्यान करमाते थे ।

उस समय सब मिलाकर करीब १५० साधु अंजमेर में थे व्याख्यान श्रीमान् लोढ़ाजी की कोठी में होता था और वहां हजारों मनुष्य एकत्रित होते थे पहिले दूसरे साधु वारी २ से थोड़े समय

तक व्याख्यान करमाते थे । उस समय किसी २ साधु के व्याख्यान के समय बहुत ही हल्ला होता रहता तो पूज्य श्री के पाट पर विराजते ही शीघ्र सर्वत्र शांति हो जाती और सब लोग चुपचाप रह बराबर व्याख्यान सुना करते थे । पूज्य श्री का व्याख्यान भावकों की श्रुति अङ्गाने वाक्ता या जय कहीं कुछ गड़बड़ जैसा प्रसंग उपस्थित होता तो उस समय शांत रखने के वास्ते पूज्य श्री प्रभु स्तुति या भक्तिरस मय काव्य छेड़ देते और लोग वनमें शामिल हो जाते थे । महात्मा गांधीजी की भी यही सलाह है कि, संगति का असर बिजली जैसा है गान अर्थात् सूरीली अवस्था; यह वत्काल कोमलता और मुलायमपन पैदा करती है ।

अहमदाबाद कांग्रेस के समय खादी नगर में निवास करने वालों ने भिन्न २ मण्डलियों के हृदयभेदक भजन सुने होंगे वे जीवन पर्यंत याद करेंगे, इतनाही नहीं, परन्तु वह भावना कभी भूलेंगे नहीं ।

श्रीमान् मोरवी नरेश तथा श्रीमान् खोंवही नरेश कि जो खास कॉन्फरन्स का अधिवेशन दिवाने के लिए ही आये थे वे भी व्याख्यान में पधारते थे अजमेर कॉन्फरन्स सं० १९६६ के चैत्र वद्य ३-४-५ तीन रोज हुई थी ।

.सं० १९६६ के चैत्र वद्य ६ के रोज जोधपुर के मीरा ओष-

वाल श्रीयुत शोभालालजी दोशी ने पूज्य श्री के पास दीक्षा ली, उस समय फान्फरन्स में आये हुए हजारों मनुष्य चत्सङ्ग में शामिल हुए थे । श्रीमान् मोरवी और लॉबडी नरेश भी विराजमान थे, दीक्षा देने के प्रथम पूज्य महाराज ने फरमाया कि, भाई तुम घर कुटुम्ब इत्यादि त्याग कर मेरे पास दीक्षित होने आये हो परन्तु समय का कार्य महान् दुष्कर है । अनुभव हुए बिना कितनी ही बातें ध्यान में भी नहीं आती, इसलिए पूर्ण विचारकर यह सादस करो, फिर दूसरी यह बात भी याद रखना कि, जबतक तुम पंच महाव्रत शुद्धतापूर्वक पालन करोगे वहांतक मैं तुम्हारा साथी हूँ, अगर उसमें जरा भी दोष लगाया कि, मैं तुम्हारा साथ छोड़ दूंगा, तुम्हारे और मेरे धर्म की ही सगाई है । यों पूज्य श्री ने सब संयम की दुष्करता दिखाई, उसके उत्तर में श्रीयुत शोभालालजी ने अर्ज की कि, महाराज श्री जबतक मेरी देह में प्राण है तबतक मैं बराबर आपकी और आप मुझे जिसकी नेशाय में सौंपोंगे उन मेरे गुरुदेव की आज्ञा का पालन सच्चे दिल से करता रहूंगा, फिर पूज्य श्री ने विधिपूर्वक दीक्षा दी ।

शिष्यों की संख्या बढ़ाने का पूज्य श्री को बिल्कुल लोभ न था । उन्होंने अपनी नेशायका एक भी शिष्य नहीं किया एकदम मुंडन कर देने की पद्धति से वे बिल्कुल विरुद्ध थे । वे दीक्षा के उम्मेदवारों को अपने पास रखकर शास्त्राभ्यास कराते थे । वैरागी को

अनुभव देते और कभीटी पर कमते थे। वैरागी की मानसिक, शारीरिक और सामुद्रिक चिकित्सा किये बाद उन्हें मुनि मार्ग में लेते थे। इस प्रवृत्ति के समय महात्मा गांधीजी का अनुभव यह आता है, वे कहते कि, एक भी अक्षरमात्र आ पड़े रहने वाले को पूर्ण स्वयं-सेवक की तरह मैं तो दाखिल न करूँ, ऐसा स्वयंसेवक मदद करने के बरते अङ्गुली करने वाला ही होता है, यह सिद्ध है, मैदान में लड़े हुए शैनिक कवायती (शिक्कि) सिपाई की हार में एक विन कवायती (शिक्कि) विन अनुभवी नये सिपाई की कल्पना कर दोगो, एक क्षण भर में ही वह समस्त सेना को गड़बड़ में डाल देगा ।

इस अवसर पर पूज्य श्री की वृद्धार वृत्ति का संख्यावद्ध भाषकों को परिचय हो गया था। मायश्रित लेकर संभोग किये हुए साधुओं में पुनः भूल करने वाले साधुओं को योग्य आलोचना करने पर सम्प्रदाय में लिया, रत्ननाम के वयोवृद्ध सखारी वेप में ही साधु जीवन बिताने वाले सेठजी अमरचंदजी पीताम्बीया और राय सेठ चादमनजी रीया वाले ने इस मामले में पूज्यश्री को समयोचित सलाह दी थी । पूज्यश्री ने श्रोताओं को समझाया था कि, धीम का सरत ताप और त्याग की दीन्य जोति आलोचना से ही देदीप्यमान हो जाती है । गफ़ज़त करने से, आलसी रहने से विद्या विदा होने लगती है और विद्या-दीनता से विवेक भ्रष्टता होते आत्मिक अर्कप को अतराय लगती है ।

साधु-जीवन को स्वीकार करने वाली श्रुतियाँ जो संयम के आदर्शों के प्रतिकूल और संस्कृति की विघातक हों वे दूर करने की जगह उन्हें पुष्टि देने से तो असह्य अनर्थ उत्पन्न होता है। पुष्टि देने वाले और ऐसे साधनों की सरलता करने वाले श्रावक अपने कर्तव्य पथ से गिर पड़ते और साथ में ही ऐसे शिथिल साधुओं को भी ले पड़ते हैं। कर्तव्य-बुद्धि की बेपरवाही, सहृदय हिम्मतवान श्रावकों की शिथिलता और ऐसी बातें टालने वाले बेफिक्र संसारी ऐसे समुदाय को सुधारने का मौका देने की जगह बिगाड़ते हैं परिणाम में पत्थर के साथ आप भी दूबते हैं।

‘ चलने दो ’ अपने को क्या करना है, ऐसे मंद विचारों और लापरवाही से समाज सड़ जाता है और फिर सड़े हुए समाज में हृदय को दर्प या तृप्ति न मिलने से छोटा समाज निचोड़ा चला जाता है खेत के पाक को पूर्ण रीति से फनने देने के लिये पास ही उत्पन्न हुए कचरे का नाश करना ही चाहिये। समाज को सड़ाने वाले सड़ों का नाश होना ही चाहिये।

भारत की धर्म भोली प्रजा ‘ साधुओं को ’ ईश्वर अंश समझने वाली है। यह दृढ़ता, यह पूज्य भाव, प्राचीन समय से प्रचलित है और इस दैवी अधिकार की मान्यता ने प्रजा में इतने गहन मूल रोपे हैं कि, इस दैवी हक की, खुमारी में समय २ पर असह्य व्यवहार के लिये भी आंख के ओंठें कान करने में धर्मभाव ससम्मान

जाता है । जयपुर में ऐसे दृष्टान्त प्रत्यक्ष देखकर लेखक घबड़ा जाते हैं ।

हिन्द अत्यन्त श्रद्धालु, धर्म प्रेमी-और आस्तिक देश है उसमें भी सब कौमों की अपेक्षा पोर्चीसे पोर्चा वनिक बंधुओं की करपोक आस्तिकता तो अजब गजब में डाल देती है । प्राचीन समय के साधुओं के शुभ संस्कार जो बरा परम्परा से गंभीर होखे आये हैं वन्हींका यह परिणाम है । ये पवित्र संस्कार आजवर्तमान बने रहें ऐसा अपन अंतःकारण पूर्णक चाहते हैं परन्तु अरनी इस भावना को भोलेपन या संदेह के वेगमें बहाने से 'देवारी हक' का दावा करने वाले एक तरह से समाज को नीचा दिखाने जैसा काम कर बैठते हैं ।

बहुत समय से स्थित रहे ये संस्कार वर्तमान समय में आब-रवक हैं ऐसे गहन विचार में बैठनेसे दिल् घबड़ा जाता है परन्तु यह बात तो सत्य है कि, यह मान्यता जब प्रारंभ हुई होगी तब तो सबके आरित्र अत्यन्त ही पवित्र और इस 'देवारी हक' को पूर्ण योग्यता सिद्ध करने वाले होंगे ऐसा प्राचीन साहित्य विश्वास देता है परन्तु मायही साथ उसी साहित्य में यह बात भी मिलती है कि, इन हकों का दुुरुयोग करने वालों को असाधारण अपराधी से विशेष सजा मिलनी थी । एक अध्यान मनुष्य और एक सब कानून का ज्ञाता वही गुन्हा करता है तो

अज्ञान मनुष्य की अपेक्षा कानून जानने वाले को विशेष सजा मिलती है और वही अधिक तिरस्कृत होता है ।

अपने समाजिक नियमों (Social Contract) के अनुसार नहीं चलने वालों के सामने सख्त कदम भरने की परवानगी है कारण इस दृष्टान्त से दूसरों को चलत सुलत चाल चलने की जगह मिलती है एक दो को माफी दे देने से दूसरे बाईस जनोंको इस हक की खुमारी में समाज में विपैता जल फैलाने तक का अधिकार मिलता है । योग्य को योग्य मान देने में अपन अपनी श्रद्धा की सीमा नहीं उलांघते । संयम और साधु-धर्म की बहुमान्यता निभाने में अपने को विनय-धर्म आदरना चाहिये परन्तु इस विनय से ऐसा अर्थ न निकालना चाहिये कि, इस समुदाय की चाहे जैसी चाल हो निभालेना या प्रसन्नता, बड़ाई, करनी चाहिये अपने दैवी हक की कुञ्जों के सहारे व्यर्थ घूमते हुए नामधारियों को कर्म के अचल नियमों का अभ्यास करना चाहिये । सत्य सनातन धर्म जिनमें तो देव जैसे उच्च सात्विक गुण हों उन्हे ही दैवी हक प्रदान करना पसंद करता है । साधु-वर्ग और श्रद्धालु-समुदाय अपने २ कर्तव्य में अपनी २ जवाबदारी समग्र समय और भाव को सन्मुख रख जीवन सार्थक करेंगे ऐसी लेखक की हार्दिक भावना है ।

अध्याय २० वाँ ।

राजस्थानों में अहिंसा धर्म का प्रचार ।

अजमेर से बिहारकर राह में अनेक भव्य जीयों की धर्मोप-
देश देते स. १६६६ का चातुर्मास पूज्य भी ने बड़ी सादगी मेराइ
में किया । बड़ा जीवरया वे महान् उपकार हुए । माधुनार्गी जैन
कान्कलस के सेवाइ प्रति के प्रातिष्ठ सेवेइरी नामध निवासी
भीमान् सेठ नथमलजी चोरडिया ने इन उपकारों की मरिस्तुत दीप
साव तरिक ज्ञापना के साथ छपाकर प्रसिद्ध की है उभे को
प्राप्त बातें नीचे दी गई है ।

विशेष आनन्ददायक समाचार यह है कि, जिन तरह भीमान्
गोरवी नरेश मर बावजी बहादुर जी० सी० अ.ई० ई० तथा
भीमान् लीवडी नरेश भी दोनतमिंदजी बहादुर श्री जिन प्रणीत
अहिंसा धर्म की पीनिपूर्वक सजना करते हैं और साधु महात्माओं
क आगमन के मरप धर्मोपदेश श्रम करने के निर व्याख्यान में
पधारकर सभा को सुशोभित करते हैं वही तरह यहा भीमान् बड़ी
सादगी राजधरा मादिव भी हुनेइसिंदजी जिनकी पीढी दर पीढी
से इस धर्म की संरक्षा होती अ ई है पूज्य श्री महाराज की अघर

कारक वाणी-अमृतधारा-वृष्टि से तृप्त हो अपने राज्य में नीचे लिखे अनुसार जीव दया का प्रबंध किया है ।

(१) नवरात्रि में जो आठ भैंसे तथा १० बकरों का वध होता था वह हमेशा के लिए बंद किया ।

पाड़ा, हिंगलाज माता को पाड़ा १, पंडेड में पाड़ा १— गाजन देवी पाड़ा १, लक्ष्मीपुर में पाड़ा १, वरदेवरा कुजू में पाड़ा २, उदपुरा फाचर में पाड़ा दो यों कुल पाड़े आठ ।

बकरा १, पालाखेड़ी में बकरे ४, बागला के खेड़े में बकरा १, रणावतों के खेड़े में बकरे ३, भेंतरडी में बकरा १, और वरिया खेड़ी में १ यों बकरे कुल १० ।

कुल जानवर अठारह का वध प्रतिवर्ष होता था वह बन्द कर दिया गया ।

(२) कसाई खाना बंद, (३) तालाब में मच्छी मारना बन्द
(४) कस्बे में अगते मंजूर.

श्रीमान् रावराणा साहिब की ओर से कसाईखाना बंद और तालाब में मच्छी मारने की मुमानियत हुई इसके सिवाय ठाकुर सरदारसिंहजी ने शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का हमेशा के लिये त्याग किया । ठाकुर दलेशसिंहजी ने अपनी जागीर के गांवों में जो पाड़े प्रतिवर्ष मारे जाते थे वे बंद कर दिये तथा कितने

अध्याय २० वाँ ।

राजस्थानों में अहिंसा धर्म का प्रचार ।

अजमेर से बिहारकर राह में अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हैं। १८६६ का चातुर्मास पूज्य श्री ने बड़ी सादर में सेवा में किया । बड़ा जीवदया के महान् उद्धार हुए । साधुमार्गी जैन कान्करन्ध के मेवाड़ प्रात के प्रातिक संकेदरी नीमच् निवाधी श्रीमान् सेठ लधमलजी चोरडिया ने इन उपकारों की सन्निवृत्त दीप्ति सार तरिक ज्ञानावना के साथ ज्ञाकर प्रसिद्ध की है उनमें की ग्रास बातें नीचे दी गई है ।

विशेष आनन्ददायक समाचार यह है कि, जिन तरह श्रीमान् मोरवी नरेश नर बावजी बहादुर जी० सी० आई० ई० तथा श्रीमान् लीडडी नरेश श्री दोलतसिंहजी बहादुर श्री जिन प्रणोत अहिंसा धर्म की प्रीतिपूर्वक सेवना करते हैं और साधु महात्माओं के आगमन के मनन धर्मोपदेश अर्पण करने के लिए उदात्तमान में पधारकर सभा को सुशोभित करते हैं उभी तरह यदा श्रीमान् बड़ी खादडी राजराणा माहिब श्री दुनेइसिंहजी जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी से इस धर्म की संरक्षा होती आई है पूज्य श्री महाराज की अक्षर

की तरफ से इस चातुर्मास में कसाईखाना बन्द, बाहर वाले को मवेशी बेचना बन्द किया गया ।

ठिकाना लूणदा-के श्रीमान् रावतजी साहिब श्री ५ जवानसिंहजी की तरफ से चातुर्मास में कसाईखाना बन्द, बाहर वाले को मवेशी बेचना बन्द, ग्यारस और अमावस को शिकार बन्द, पट्टादस्तखती ३३ नं० भेट करमाया ।

ठिकाना साटोला-के श्रीमान् रावजी साहिब श्री ५ दत्तपत-सिंहजी की तरफ से उपरोक्त सिवाय श्रावण-कार्तिक और वैशाख में जानवरों का मारना बन्द, किया और पट्टा नं० ३३ भेट किया गया ।

ठिकाना बंबोरी-के श्रीमान् ठाकुर साहिब के यहां समस्त कुम्हार बगैरह में ११ व अमावस का व्यापार बन्द हुआ, इस चातुर्मास में शिकार बन्द किया और पट्टा नं० १६

ठिकाना जलोदिया-के ठाकुर साहिब श्री दौलतसिंहजी ने चंद तरह के जानवरों का शिकार करना छोड़ा ।

उपरोक्त ठिकानों के उमराव मुल्क मेवाड़ ने अपने २ इलाकों में जो परोपकार के कार्यों में सहायता की है इसका कोटिश; धन्यवाद है व प्रभु से प्रार्थना है कि, इन नामदारों की दार्ढ्यायुष्य व सर्व्व ऐसे परोपकारी कार्यों में उदारवृत्ति बनी रहे ।

धी जानवरों के शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया, सिवाय उनकी रियासत के छद्दीदार, हवालदार, दरोगा इत्यादि ७२ अम्तामियों ने शिकार करना तथा मांस भक्षण करना छोड़ दिया ।

कस्बे के लोग यानी समस्त सेलियों ने एक मास में ६ दिवस पानी करना बंद किया । समस्त सुतार, लुहार, कुम्हार, कलाल, नाई, धोबियों ने एक मास में लियी ५ यानि ग्यारह २ चवदस २ अग्रावस १ हमेशा के लिये अपना २ आरंभ त्याग कर दिया ।

राजस्थानों के ठिकानदारों की तर्फ से जीव-दया के प्राथमिक पट्टे परवाने ।

ठिकाना बान्सी-के श्रीमान् रावतजी श्री ५ खखालसिंहजी ने अपने इलाके में श्रावण कार्तिक और वैशाख महीनों में जानवर और शिकार वास्ते छुराक मारने की हरमास की ग्यारह व अमावस में जीव मारने की सुमानियत की व सन १ परवाना नम्बरी ३८२ भेद करमाया ।

ठिकाना गेदसर-के श्रीमान् रावतजी श्री ५ भोपालसिंहजी ने भी अपने इलाके में उपरोक्त हुक्म निकालकर पट्टा नम्बरी १२ भेद करमाया ।

ठिकाना बोरड़ा-के श्रीमान् रावतजी सादिव श्री ५ नाहरसिंहजी

की तरफ से इस चातुर्मास में कसाईखाना बन्द, बाहर वाले को मवेशी बेचना बन्द किया गया ।

ठिकाना लूणदा--के श्रीमान् रावतजी साहिब श्री ५ ज्वानसिंहजी की तरफ से चातुर्मास में कसाईखाना बन्द, बाहर वाले को मवेशी बेचना बन्द, ग्यारस और अमावस को शिकार बन्द, पट्टादस्तखती ३३ नं० भेट करमाया ।

ठिकाना साटोला--के श्रीमान् रावजी साहिब श्री ५ दत्तपतसिंहजी की तरफ से उपरोक्त सिवाय श्रावण-कार्तिक और वैशाख में जानवरों का मारना बन्द, किया और पट्टा नं० ३३ भेट किया गया ।

ठिकाना बंबोरी--के श्रीमान् ठाकुर साहिब के यहां समस्त कुम्हार बगैरह में ११ व अमावस का व्यापार बन्द हुआ, इस चातुर्मास में शिकार बन्द किया और पट्टा नं० १६

ठिकाना जलोदिया--के ठाकुर साहिब श्री दौलतसिंहजी ने चंद तरह के जानवरों का शिकार करना छोड़ा ।

उपरोक्त ठिकानों के उमराव मुल्क मेवाड़ ने अपने २ इलाकों में जो परोपकार के कार्यों में सहायता की है इसका कोटिशः धन्यवाद है व प्रभु से प्रार्थना है कि, इन नामदारों की दार्पण्युष्य व सर्वत्र ऐसे परोपकारी कार्यों में उदारवृत्ति बनी रहे ।

इलाके वड़ी सादड़ी के जागीरदारान की तरफ से जीव-दया के पट्टे परवाने ।

१ गाव तलाउदे-के ठाकुरसाहिब अमरसिंहजी ने अपने गाव में सदैव के लिये कार्तिक, वैशाख व चार महीने चातुर्मास में शिकार करना या गुराफ के लिये जानवरों का वध करना बंद किया ।
२ ठाकुर गिरधरसिंहजी ने सदैव के लिये शिकार करना, मांस भक्षण करना व मदिरा पान करना त्याग दिया ।

२पालखेडी-के ठाकुर साहिब श्रीचतुरसिंहजी ने नवरात्रों में जीव हिंसा बंद की, नदी में मझनिया मारना बंद का हुक्म जारी किया ।
ठाकुर श्री ज्ञानमसिंहजी व दूसरे लोगों ने शराब पीने व चन्द तरह के जानवरों का वध व शिकार करना छोड़ दिया व जो २ बकरे मारे जाते थे वतको अमरया करने का हुक्म दिया ।

३ नागेली-के ठाकुर साहिब श्रीमोकुसिंहजी ने नवरात्रों की जीव-हिंसा बंद की और बाहर वालों को अपने यहां से मवेशी बेचना बंद किया ।

४ गुडली-के ठाकुर साहिब श्री प्रतापसिंहजी ने अपने गाव में चातुर्मास में जानवरों का शिकार व वध बिल्कुल बंद व वैशाख व चार तथा कार्तिक तीनों मासों में गुराफ बोरह के लिये प्राणी वध बिल्कुल बंद किया ।

५ हड़मतिया-के ठा. श्रीसरदारसिंहजी ने अपने ग्राम में क चातुर्मास में जानवरों का शिकार व वध बंद किया व चंद तरह के जानवरों का शिकार खुद ने छोड़ा ।

६ हिंगोरिया-के ठाकुर श्रीमोड़सिंहजी,

७ करमद्या खेड़ी-के ठाकुर श्री निर्भयसिंहजी,

८ उम्मेदपुरा-के ठाकुर श्री भभूतसिंहजी, इन तीनों नामदारों ने चंद तरह के जानवरों का शिकार बंद किया व औरों को भी अपने शरीक किया ।

९ खेड़े-के ठाकुर साहिब श्रीकरनसिंहजी ने चातुर्मास में जानवर अपने यहां न मारने का व चंद तरह के जानवर सदैव के लिये मारना बंद किया ।

१० रणावतखेड़े-के तथाआकोला-के ठाकुर साहिब श्री दलेल सिंहजी ने हमेशा के लिये मांस भक्षण व जानवरों का शिकार बंद किया व नवरात्रों में होती हुई जानवरों की कुरबानी को मौकूफ किया ।

११ नहारजी खेड़ा-के ठाकुर लालसिंहजी ।

१२ खां खरिया खेड़ी-के ठाकुर मोड़सिंहजी ने ताजिदगी अपने यहां चातुर्मास में जानवर जवा न होने देने का हुकम जारी किया व चन्द तरह के जानवरों का शिकार व मांस भक्षण बंद किया ।

१३ कीरतपुरा-के जागीरदार मीर मोहम्मदखांजी ने मय अपने रिश्तेदारों के जानवरों का शिकार छोड़ दिया उसके सिवाय

इलाके मेवाड़ के अन्य ग्रामों की तरफ से जीवरचा की तफसील ।

१ सरतला २ लीकोडा ४ चैनपुर ४ खीतोड ५ मूजर जिला (ग्रामवारा) ६ सरदारपुर ७ करारण = खोदीय ८ खर-वेवरा १० करजू ११ उम्नेशपुर १२ नाहोली १३ खेड़ा १४ कर्बू-परा १५ अताई १६ देवरी १७ सतीराखेड़ा ग्राम ४ १८ भाणुजा १९ उदपुरा २० फतेहसिंहजी का खेड़ा २१ पारड़ा २२ बरया-खेड़ा २३ भेंचरडीननाथा २४ काचर २५ बादक्या २६ चांदखेड़ी २७ तलाहरेड़ा वगैरह कुल ६५ ग्रामों में पांचसौ पचीस (५२५) सत्री, हिन्दू, मुसलमान, जागीरदारों ने पूज्य श्री महाराज के सदुपदेश के प्रभाव से अनेक जात के परोपकार व दया के कार्य किये, जिससे सहासों मूंगे गरीब प्राणियों को दुःखजनक मृत्यु के मुक्त से बचा अभयदान दिया गया है और भी किसान यानी खेती लोगों ने जगन में दब लगाने (लाय लगाने) व बहुत से लोगों ने मदिरा नाश का त्याग किया है ।

व्याख्यान में स्वमति अन्यमति हजारों की संस्था में एकत्रित होते हैं महाराज श्री के अमूल्य शास्त्रोक्त वचन श्रवण करने से जो इस साल उपकार हुए हैं वे सचित्त में ऊपर लिखे हैं तदुपरात रक्षा-विक्रय, बाल-लग्न, आतिथवाजी इत्यादिकी तथा व्यर्थ खर्च

न करने की कई लोगों ने प्रतिज्ञा ली है । इस आनन्दोत्सव में शामिल होने तथा महाराज साहिब के अमूल्य व्याख्यानो का लाभ लेने के लिये बाहर गांवों से हजारों श्रावक श्राविकाएं आये थे ।

तपश्चर्या साधुओं में—भीमान् पूज्यजी महाराज के १ अठाई १ पचोला १० तेला तथा एकांतर मास २ की । अन्य मुनिराजों में भी बहुत ही तपश्चर्या हुई थी ।

तपश्चर्या श्रावक श्राविकाओं ने:—

२७	१७	१६	११	१०
१	१	१	१	५

६	८	७	६	५	४	३	२	१	दया
४	२५	६	३१	१२१	१६१	२६६	३३१	१५०५१	३७१

संवत्सरी के	पौषघ	एकान्तरउपवास	एकांतर वेला	स्कंध
	५५१	८१	३५	३०१

पचरंगी तपश्चर्या की, पचरंगी दया पौषघ की,

२५

१७

कानोड़ निवासी भाई धनरामजी को पूज्य श्री के सद्गुणदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ और सं० १६६६ के मगसर वद १ के रोज सादकी स्थान पर श्रीजी महाराज के पास उन्होंने दीक्षा ली उस समय भी बाहर ग्राम के सैकड़ों स्वधर्मी बंधु जन पधारे थे और दीक्षा उत्सव बड़ी धूमधाम से किया गया था ।

वहां से शेष काल उदयपुर पधारे बहुत धर्मोन्नति हुई ।

इलाके मेवाड़ के अन्य ग्रामों की तरफ से जीवरक्षा की तफसील ।

१ सरठला २ लोकोड़ा ४ चैनपुर ४ चातोड़ ५ मूजर
जिला (माभारा) ६ सरगारपुर ७ करारण ८ खोदीय ९ सर-
देभरा १० करजू ११ कम्नेदपुर १२ नांदोली १३ खेड़ा १४ कचू-
दरा १५ गताई १६ देवरी १७ सतीराजेंडा माम ४ १८ भाण्णमा
१९ ऊदपुरा २० फतेहसिंहजी का केड़ा २१ पारड़ा २२ बरया-
रोड़ा २३ भंवरहीमनाणा २४ काचर २५ बादक्या २६ चांदखेड़ी
२७ तलाइरोड़ा बगैरह कुल ६५ ग्रामों में पाचसौ पचीस (५२५) क्षत्री,
हिन्दू, मुसलमान, जागीरदारों ने पूर्य भी महाराज के सदुपदेश के
प्रभाव से अनरु जात के योग्यकार व दया के कार्य किये, जिससे
सहस्रों मृगे गरीब प्राणियों को दुःखजनक मृत्यु के मुक्त से बचा
अभयदान दिया गया है और भी किमान यानी अद्विती लोगों ने
जगत् में दब लगाने (लाय लगाने) व बहुत से लोगों ने मदिरा
पाव का त्याग किया है ।

व्याख्यान में स्वमति अन्यमति हजारों की संस्था में एकत्रित
होते हैं महाराज श्री के अमूल्य शास्त्रोक्त वचन अवश्य करने से जो
हस साल उपकार हुए हैं वे सक्षिप्त में ऊपर लिखे हैं उदुपरात
रक्षा-विक्रय, बाल-लग्न, आतिसवाजी इत्यादिकी तथा न्यर्थ खर्च

अध्याय २१ वाँ

एक मिति को पांच दीक्षा ।

व्यावर— (चातुर्मास) सं० १९६७ का चातुर्मास श्रीजी ने व्यावर (नयेशहर) में किया । साधुमार्गी जैनों की वृहत् संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री स्वयं अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आज तक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये व्यावर के श्रावकों की तरफ से अत्याग्रह पूर्वक की गई विनय को स्वीकारकर इस वर्ष पूज्य श्री ने व्यावर पर अनुग्रह किया । पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी वधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया । यहां के श्रावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसनीय था फिर आचार्य श्री के आगमन से अत्यंत अभिवृद्धि हुई, बहुत धर्मोन्तति हुई, अति तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम, और ज्ञान ध्यान की धूम मच गई । देशावरों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे ।

पूज्य श्री की इच्छा कुछ निवृत्ति प्राप्त कर संस्कृत के अभ्यास करने की थी, उस समय भीनाय वाले पं० बिहारीलाल शर्मा कि, जिन्होंने आठवर्ष तक काशी में रहकर बिद्धांत कौमुदी वगैरह का व्याख्यान

यहा से अनुक्रम विहार करते आचार्यश्री १३ ठायों के गगापुर हो कपासन पधारे, यहा श्रीजी के चार व्याख्यान हुए। जैन, वैष्णव, मुसलमान इत्यादि सब धर्म वाले मिलाकर प्रायः २००० मनुष्य व्याख्यान में उपस्थित होते थे, जीव-दया का पूज्य श्री के मुँह से सपदेश सुनते २ वहा के श्री संघ के दिल में दया आई और जीवों को अभयदान देने के लिये एक स्थायी कठ कायम करने का प्रयत्न किया- तुरन्त ही उस फंड में १०००) रु० एकत्रित हो गए, व्याख्यान में कोठारीजी बलवत्सिंहजी साहिब तथा हाकिम साहिब जोधसिंहजी तथा चित्तौड़ के हाकिम श्री गोविन्दसिंहजी प्रभृति भी पधारते थे।

बड़ीसादड़ी का चातुर्मास पूर्ण किये पश्चात् आचार्य महाराज तलाम की ओर पधारे। वहा श्री जैन ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी भाई मोहनलाल मोरवी वाले ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के तमीप दीक्षा ली, जिनका दीक्षा-महोत्सव रतलाम आसघ ने अत्यन्त ही हर्षोत्साहपूर्वक किया वहा से विहारकर मार्ग में अगणित उपकार करते हुए पूज्य श्री मालवा मारवाड़ को पावन करते विचरने लगे। कितने ही भव्य जीवों ने वैराग्योत्पन्न होनेसे दीक्षा ली।

अध्याय २१ वाँ

एक मिति को पांच दीक्षा ।

व्यावर- (चातुर्मास) सं० १६६७ का चातुर्मास श्रीजी ने व्यावर (नयेशहर) में किया । साधुमार्गी जैनों की बृहत् संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री स्वयं अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आज तक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये व्यावर के भावकों की तरफ से अत्याग्रह पूर्वक की गई विनय को स्वीकारकर इस वर्ष पूज्य श्री ने व्यावर पर अनुग्रह किया । पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी वधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया । यहां के भावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसनीय था फिर आचार्य श्री के आगमन से अत्यंत अभिवृद्धि हुई, बहुत धर्मोन्तति हुई, अति तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम, और ज्ञान ध्यान की धूम मच गई । देशावरों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे ।

पूज्य श्री की इच्छा कुछ निवृत्ति प्राप्त कर संस्कृत के अभ्यास करने की थी, उस समय भीनाय वाले पं० बिहारीलाल शर्मा कि, जिन्होंने आठवर्ष तक काशी में रहकर सिद्धांत कौमुदी वगैरह का अभ्यास

किया था, वे व्यावरही में ये और पूज्य श्री के पास जाते भी थे, उन्होंने महाराजश्री को संस्कृत पढ़ाना अत्यंत हर्ष पूर्वक स्वीकार किया और महाराज श्रीने भी पूर्ण जिज्ञासा पूर्वक संस्कृत-व्याकरण का अभ्यास प्रारंभ किया और चार मास तक अभ्यास कर सारस्वत की तीन वृत्ति पूर्ण की उपरोक्त पंडितजी गत भावण मास में कमेटी के समय हमें बीकानेर में मिले थे, वहा पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे और संघ के आमद से चातुर्मास दरम्यान वहीं रहकर महाराज श्री की सेवा की थी, पंडितजी कहते थे कि, पूज्य श्रीलालजी महाराज की जितनी स्मरणशक्ति और कुराम बुद्धि थी वैसी दूसरे व्यक्ति की आज तक मैंने नहीं देखी । नित्यनियम, व्याख्यान, शास्त्र पढ़ना, शास्त्र पर्यटन, स्वाध्याय, प्रति-नेहना, प्रतिक्रमण आदि २ प्रवृत्तियों में से उन्हें थोड़ा ही समय बहुत कठिनाई से मिलता था । दूर २ के कई भावक उनके दर्शनार्थ जाते उनके साथ धर्म सम्बन्धी वार्तालाप करने में तथा जिज्ञासु भावकों के साम्य ज्ञान खर्चा करने में भी कितनाही समय व्यतीत होता था । इतने पर भी उन्होंने चार महीने में सारस्वत-व्याकरण की तीन वृत्तियां सम्पूर्ण सीख ली, यह देखकर क्या मुझे आश्चर्य नहीं हुआ । पंडितजी कहते कि, मुझे उनकी दिव्य शक्ति देख बड़ा आश्चर्य होता और समय २ पर ऐसा भान होता था कि, वह कोई मनुष्य है या देव है । अपने को अभ्यास करने के लिये विशेष समय नहीं

मिलने से वे कई बार लाचारी दिखाकर कहते कि “मेरी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अन्तराय मुझे दिवाल की तरह बाधक मालूम होती है” पूज्य श्री के ये वाक्या कहकर पंडितजी उनके अतिशय निरभिमान-वृत्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे थे ।

राजकवि कलापी यथार्थ कहते हैं किः--

कीर्तिने सुख माननार सुखथी कीर्ति भले मेलवो ।
 कीर्तिमा मुजने न कांइ सुख छे ना लोभ कीर्ति तणो ॥
 पोलुं छे जगने नकी जगतनी पोलीज कीर्ति दिस ।
 पोलुं आ जग शुं धतां जगतनी कीर्ति सहेजे मले ॥

इस चातुर्मास के दरम्यान एक ही मिति को पांच जनों ने प्रबल वैराग्य पूर्वक पूज्य श्री के पास दीक्षा ली थी इन पांचों में सेवार तो एक ही ग्राम के निकले हुए थे जोधपुर स्टेट के बालेशर ग्राम के ओसवाल गृहस्थ १ हंसराजजी २ मेघराजजी ३ किशनलालजी और ४ गुलाब चंदजी ये चार तथा ऊंटाला (मेवाड़) निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत पन्नालालजी यों पांचों जनों ने दीक्षा ली जिनका दीक्षा-महोत्सव अत्यंत ही समारम्भ सहित करने में आया था और उसमें व्यावर संघ ने अत्यंत ही उदारता दिखाई थी ।

पूज्य श्री हुकमीचंदजी महाराज के पास बीकानेर एकही मिति पर पांच जनों ने दीक्षा ली थी पश्चात् एकही साथ पांच दीक्षा लेने

का यह प्रथम ही अवसर था इनके सिवाय सं० १६६७ के कार्तिक शुक्ल ८ के रोज एक दूधरी दीक्षा भी हुई ।

पूज्य भी के ठग्यास्थान का लाभ स्वमति अन्यमति लोग बहुत बड़ी संख्या में लेते और उनके फल स्वरूप महान् उपकार होते थे । कई लोगों ने हिंसा करने का तथा मान भक्षण और मदिरा पान करने का त्याग किया था । उरालत सैकड़ों पशुओं को अभयदान मिला था । भ्रायुत घीसुलालजी चोरदिया तथा भ्रायुत सतीशानजी गोलेन्द्रा ने जीवरक्षा के कार्य में पूज्य भी के सदुपदेशों के कारण भारी कामभोग किया था ।



अध्याय २२ वाँ

सौराष्ट्र की तरफ विहार ।

काठियावाड़ के केन्द्रस्थान राजकोट शहर के श्री संघ की ओर से काठियावाड़ में पधारने के निमित्त पूज्य श्री से विनंती करने के लिये बारह व्रतधारी शुश्रावक सेठ जयचंद भाई गोपालजी* वडाली वाले वषावर आये और उन्होंने पूज्य श्री की सेवा में अत्याग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि, राजकोट संघ और काठियावाड़ के कइ श्रावक आप के दर्शनों के लिये तड़फ रहे हैं कितने ही उत्तम साधु मुनिराजों की इच्छा भी ऐसी है कि, पूज्य श्री सौराष्ट्र की भूमि पावन करें तो बड़ा उपकार हो इत्यादि २ ।

*सेठ जेचंद भाई की राजकोट तथा अंदन कैम्प में बड़ी भारी दुकानें थीं परन्तु केवल धर्म परायण जीवन बिताने के लिये उन्होंने हजारों की आमदनी का प्रत्यक्ष धन त्याग दिया और प्रतिमाधारी श्रावक हो ज्ञानाभ्यास, धर्मानुष्ठान, समाजसेवा, प्राणिरक्षा और उत्तम साधु सन्तों के सत्संग प्रभृति पारमार्थिक प्रवृत्तियों में ही अपना समय, शक्ति और द्रव्य का सद्व्यय करने लगे थे । अभी

छेठ जयचंद भाई पहिले भी एक समय विनम्रता करने के लिये स्वयं आये थे । वही तरह सं० १९६० में मोरवी निवासी देसाई वनेचंद राजपाल तथा लेखक पूज्य भी के दर्शनार्थ तथा मोरवी कान्करम्स में पधारने का उद्यपुर भी संच को आमन्त्रण देने के लिये उद्यपुर गए थे । तब भी काठियावाड़ में पधारने की विनय की थी, सिवाय अजमेर कान्करम्स के समय काठियावाड़ से आये हुए कई आधकों ने पूज्य भी की असाधारण प्रभावशाली वक्तृतासे मुग्ध हो काठियावाड़ को पावन करने की पूज्य भी से बहुत ही आग्रह के साथ प्रार्थना की थी, उसमें श्रीमान् मोरवी तथा लीबडी नरेश भी शामिल थे । हर एक समय भी जी महाराज ने कुछ न कुछ आश्वासन रूप ही उत्तर दिये थे । इसलिये इस समय भी युव जयचंद भाई की प्रार्थना स्वीकृत हो गई ।

व्याघर का चतुर्मास पूर्ण होने के बाद आचार्य महाराज क्रमशः विहार करते मरु भूमि को पावन करते पात्नी पधारे वहां पर फागुण वर्षा १३ को भी मनोहरलालजी की दीक्षा हुई । और पात्नी से

थोड़े वर्ष पहिले ही उन्होंने दीक्षा ले ली है और वर्तमान समय में वे एक उत्तम साधु हो काठियावाड़ को पावन करते हुए विचरते हैं । वे अत्यंत आत्मार्या और उत्तम आचारवान् साधु हैं । संसारावस्था में प्रत्येक चातुर्मास में वे पूज्य भी की सेवा करते थे ।

सं० १६६७ के फाल्गुण शुक्ला १४ के रोज २० ठाणों से उन्होंने गुजरात काठियावाड़ की ओर बिहार किया। साधु क्षेत्रों का प्रतिबंध त्याग देशांतरों में विचरते रहें तो परस्पर विचार विनिमय और ज्ञान की ध्वजा से अत्यंत लाभ हो और श्रावक समुदाय को भी भिन्न-२ सम्प्रदाय के और पृथक् २ देशों के साधुओं की सेवा का और उनके विविध विषयों पर प्रकाश डालने वाले व्याख्यान श्रवण करने का अमूल्य लाभ मिलता रहे ऐसी श्रीजी महाराज की मान्यता थी इसलिये प्रथम वे स्वयं गुजराज काठियावाड़ में जा वहां के विद्वान् मुनिराजों को मालवा मारवाड़ की ओर आकर्षण करना चाहते थे और काठियावाड़ में पधारने के बाद उन्होंने कितने ही मुनिराजों को इसके लिये आमंत्रण भी किया था।

पाली से जल्द २ बिहारकर और राह के अनेक विकट परिसह सहवे करता ० १३ $\frac{३}{११}$ के रोज पालनपुर पधारे राह विकट होने से साधु के कितने ही साधु मुसाफिरी के कष्टों से घबड़जाते, तो उनको पूज्य श्री समयोचित शास्त्र वचनों से कर्तव्य का भान कराते और प्रोत्साहन देते थे। पालनपुर में पूज्य श्री २२ दिन ठहरे थे। दिल्ली दरवाजे के बाहर पालनपुर के भूतपूर्व दीवान महैतार्जी श्री पीताम्बरदास हाथीभाई की धर्मशाला के अति विशाल मकान में पूज्य श्री विराजते थे, वहां जैन जेनेतर प्रजा ने पूज्य श्री की दिव्य लाणी भवण करने का सम्पूर्ण लाभ उठाया था। सैयद कौम के एक

सेठ जयचंद भाई पहिले भी एक समय विनम्रता करने के लिये स्वयं आये थे । वही तरह सं० १८६० में मोरवी निवासी देसाई वनेचंद राजपाल तथा लेखक पूज्य भी के दर्शनार्थ तथा मोरवी कान्फरन्स में पधारने का उदयपुर भी संध को आमन्त्रण देने के लिये उदयपुर गए थे । तब भी काठियावाड़ में पधारने की विनय की थी, सिवाय अजमेर कान्फरन्स के समय काठियावाड़ से आये हुए कई आदकों ने पूज्य भी की असाधारण प्रभावशाली वक्तृतासे मुग्ध हो काठियावाड़ को पावन करने की पूज्य भी से बहुत ही आग्रह के साथ प्रार्थना की थी, उसमें भीमान् मोरवी तथा लीवड़ी नरेश भी शामिल थे । हर एक समय भी जी महाराज ने कुछ न कुछ आश्वासन रूप ही उत्तर दिये थे । इसलिये इस समय भीरुतजणचंद भाई की प्रार्थना स्वीकृत हो गई ।

व्यापार का चतुर्मास पूर्ण होने के बाद आचार्य महाराज क्रमशः विहार करते मरु भूमि को पावन करते पाली पधारे वहां पर फागुण वर्षा १३ को भी मनोहरलालजी की शीला हुई । और पाली से

थोड़े वर्ष पहिले ही उन्होंने शीला ले ली है और वर्तमान समय में वे एक उत्तम साधु हो काठियावाड़ को पावन करते हुए विचरते हैं । वे अत्यंत आरमार्थी और उत्तम आचारवान् साधु हैं । संसारावस्था में प्रत्येक चतुर्मास में वे पूज्य भी की सेवा करते थे ।

सं० १९६७ के फाल्गुण शुक्ला १४ के रोज २० ठाणों से उन्होंने गुजरात काठियावाड़ की ओर बिहार किया। साधु क्षेत्रों का प्रतिबंध त्याग देशांतरों में विचरते रहें तो परस्पर विचार विनिमय और ज्ञान की ध्वजा से अत्यंत लाभ हो और श्रावक समुदाय को भी भिन्न-२ सम्प्रदाय के और पृथक् २ देशों के साधुओं की सेवा का और उनके विविध विषयों पर प्रकाश डालने वाले व्याख्यान श्रवण करने का अमूल्य लाभ मिलता रहे ऐसी श्रीजी महाराज की मान्यता थी इसलिये प्रथम वे स्वयं गुजराज काठियावाड़ में जा वहां के विद्वान् मुनिराजों को मालवा मारवाड़ की ओर आकर्षण करना चाहते थे और काठियावाड़ में पधारने के बाद उन्होंने कितने ही मुनिराजों को इसके लिये आमंत्रण भी किया था।

पाली से जल्द २ बिहारकर और राह के अनेक विकट परिसर सह-वे करता ० १३ $\frac{3}{4}$ के रोज पालनपुर पधारे राह विकट होने से साक्ष के कितने ही साधु मुसाफिरी के कष्टों से घबड़जाते, तो उन्हो पूज्य श्री समयोचित शास्त्र वचनों से कर्तव्य का भान कराते और प्रोत्साहन देते थे। पालनपुर में पूज्य श्री २२ दिन ठहरे थे। दिल्ली दरवाजे के बाहर पालनपुर के भूतपूर्व दीवान महैताजी श्री पीताम्बरदास हाथीभाई की धर्मशाला के अति विशाल मकान में पूज्य श्री विराजते थे, वहां जैन जैनेतर प्रजा ने पूज्य श्री की दिव्य लाणी भवण करने का सम्पूर्ण लाभ उठाया था। सैयद कौम के

शिक्षित मुसलमान युवक ने मास भक्षण करने का सर्वथा त्याग किया था तथा दया, पौषध और तपश्चर्या भी बहुत हुई थी।

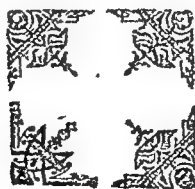
वर्तमान की विलास-प्रिय प्रजा वैराग्य और भक्ति के नाम से भड़क भागती है। वह तरंगवशा अमन चमन करने में ही अपना जीवन सकल समझती है उसको वैराग्य, भक्ति और परोपकार की माना देने में पूज्य श्री अनुभवी वैद्य थे।

इन अरुचिकर दवाओं में असरकारक और उपदेशकारक सत्य दृष्टान्तों, काव्यों, श्लोकों, और श्री महावीर की आशाओं, को देखी रीति से कहते कि, लोग नौसुरी पर मुग्ध नाग की तरह नाचने लग जाने लगे, लोगों को रुचिकर दृष्टान्त भक्तजन करने में वे पूर्ण कुशल थे और यह तथ्य पथ्य अनुपान वाली कटु दवा भी पूर्ण भद्रा से कंठ तक चतार देते थे, भोक्ताओं पर भारी प्रभाव गिरने से लाखों मन लोह लोह-चुम्बक की ओर लुंचाता था। गुजरात की पवित्र भूमि पर पाव देते ही महाराज श्री का उचित आतिथ्य श्री पालनपुर सच ते किया और Well begun is half done 'शुभ प्रारंभ अर्द्ध सफलता सु-प्ताता है यह सत्य अंत में सफल हुआ ऐसा आगे पाठक देखेंगे।

पवित्र समय में आरोपित भक्ति के इन बीजों ने अपूर्व फल उत्पन्न किया। पालनपुर आज भी शुद्ध संयमी और आत्मार्गी साधुओं को

हृदय मे सन्मान देता है पूज्य श्री श्रीलालजी की जीवन पर्यन्त पालनपुर ने सेवा की है चाहे भित्तों २ दूर पूज्य श्री के चातुर्मास होते परन्तु पालनपुर के श्रावक वहां जाने से नहीं रुकते उनमें जोहरी गानिकलाल जकशी, जोहरी मोहनलाल रायचंद, जोहरी श्र-मृतलाल रायचंद इत्यादि तो भिन्न मकान ले सपरिवार एक दो मास पूज्य श्री के सदुपदेश का लाभ देने को वहां ठहरते और अब भी यही रीति कायम रख वर्तमान पूज्य श्री की ओर ऐसे ही भाव से कृतज्ञता प्रताते रहे हैं । दुनिया को सिर्फ बताने के लिये ही यह ज्ञान नहीं है परन्तु भक्ति-भाव के प्रत्यक्ष और अनुकरणीय दृष्टांत हैं । नवचेतन के लिये 'नवजीवन' निम्नांकित मंत्र सिखाता है ।

“ स्वधर्म अग्नि के समान है इसके सहवास से अपने दुर्गुण (एव) जल जाते हैं और फिर वह अपने को अपने समान ही तेजस्वी बना देता है आज इस अग्नि पर कुसंस्कार की चार दक गई है तो भी उसकी परवाह न करते उस पर पानी डालते अपने स्वतः के प्राणों से फूँककर उसे जागृत करो ” ।



अध्याय २३ वाँ

काठियावाड़ के साधु मुनिराजों ने
किया हुआ स्वागत ।

पालनपुर से निहारकर छिदपुर, मेसाणा, बीरमगाम, और
 लखतर हो भीजी महाराज चैत्र माह में बड़वाण पधारे । उस समय
 बड़वाण शहर में डोछा घोरा के उपाधय में लॉबड़ी सम्राट्य के
 सुप्रसिद्ध मुनि भी उत्तमचंदजी महाराज ठाणा ५ सुंदर घोरा के
 उपाधय में मुनि भी मोहनलालजी लक्ष्मीचंदजी ठाणा ७ तथा द-
 रियापुरी उपाधय में मुनि भी अमीचंदजी ठाणा ५ कुल मिलाकर
 १७ मुनिराज विराजमान थे. ये सब मुनिराज पूज्य श्री के व्याख्यान
 में पधारे थे । श्रोतृवर्ग में देरावासी आबक, गिराशिया, माझण
 प्रभृति सब जानि और सब धर्म के लोग दृष्टिगत होते थे । अजमेर
 के सुप्रसिद्ध करोड़पति सेठ गण्डमलजी लोढ़ा तथा भीयत चाहीलाल
 मोतीलाल शाह इत्यादि यहां पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे । पूज्य
 श्री पालनपुर निराजते थे तथा राजकोट में सेठ जयचंद गोपालजी
 इत्यादि आबक पूज्य श्री को राजकोट तरफ पधारने की विनय करने
 आये थे और चातुर्मास राजकोट का मंजूर हुआ था ।

बड़वान से राजकोट जाने की जल्दी थी, परन्तु श्रीमान् पंडित प्रवर मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज के अत्याग्रह से श्रीजी महाराज, लीबडी पधारे. इन दोनों महापुरुषों के इतने अल्प समय में, परस्पर, इतना अधिक धर्म स्नेह होगया था कि, मानो एक ही सम्प्रदाय के दोनों गुरु भाई हों, इतना ही नहीं परन्तु लीबडी सम्प्रदाय के पूज्य श्री मेघराजजी स्वामी तथा पं० मुनि श्री उत्तमचंदजी स्वामी इत्यादि ने खास तौरपर अग्रेसर श्रावकों द्वारा ऐसा प्रबंध कराया कि, इस देश में मारवाड़ी मुनि पधारे हैं तो इस सम्प्रदाय के चातुर्मास करने के क्षेत्रों में (काठियावाड़, कच्छ इत्यादि देशों में अपने मुनियों में ऐसी रस्म प्रचलित है कि, किसी ग्राम में किसी सम्प्रदाय के कोई मुनि चातुर्मास में विराजते हों तो वहां दूसरे सम्प्रदाय के मुनि चातुर्मास नहीं कर सकते) चाहे जिन स्थानों पर इन मुनियों को चातुर्मास करने की छूट है इतनाही नहीं परन्तु श्रावकों ने भी इन्हें दूसरी सम्प्रदाय के समान भेदभाव न रखना चाहिये और सब तरह से उचित सेवा करनी चाहिये । इस प्रकार लीबडी सम्प्रदाय के समय के जानकार मुनिराजों ने भेदभाव त्याग भाव बढ़ाने की अनुपम और अनुकरणीय आज्ञा की कि, शीघ्र ही बड़वान में, विराजते लीबडी संघवी सम्प्रदाय के महाराज श्री मोहनलालजी तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के महाराज श्री अमीचंदजी ने भी ऐसा ही उद्धोषणा अपने क्षेत्रों में कर दी ।

वदवान से पंडित उत्तमचंदजी महाराज आदि लॉबडी पधारे और उसके दो डेढ़ घंटे बाद ही पूज्य भी भी लॉबडी पधारे थे । उस समय लॉबडी संघ का उत्साह अपूर्व था । पूज्य श्री के सामने स्टेशन मिलने दूर भी उत्तमचंदजी स्वामी प्रभृति कई मुनि तथा श्रीसंघ के सैकड़ों श्री पुरुष गए थे ।

लॉबडी हाईस्कूल के बृहत् हाल में पूज्य भी विराजते थे । वहां पूज्य भी को गत सैकड़ों की समय सम्प्रदाय की तमाम हुई इकीकत (दौलतरामजी महाराज तथा अजरामरजी महाराज की जो हम गुर्बाबजी में लिख चुके हैं) भी उत्तमचंदजी महाराज ने पढ़ सुनाई । भीजी महाराज ने कहा कि, दौलतरामजी महाराज छठों पीढ़ी में मेरे गुरु हैं । उन्होंने गुजरात काठियावाड़ में पांच चातुर्मास किये थे । लॉबडी में उन्होंने प्रथम चातुर्मास सं० १८४६ में किया था, पश्चात् लॉबडी के सुप्रसिद्ध सेठ करमसी प्रेमजी उन्हें अश्यामढ़ से सं० १८५१ में लॉबडी लाये थे और फिर सं० १८५८ में उन्होंने तृतीय बार लॉबडी चातुर्मास किया था । इन तीनों चातुर्मासों में भी दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी महाराज साथ ही विराजते थे और दौलतरामजी महाराज के आग्रह से अजरामरजी महाराज ने एक चातुर्मास जैपुर किया था और उस समय जैपुर में अपूर्व आनन्द मंगल छा गया था ।

लीबडी में भी बड़बान की तरह दूसरे व्याख्यान खंद थे और सब मुनि पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे। नामदार ठाकुर साहिब (लीबडी नरेश) दीवान साहिब, अधिकारी समुदाय इत्यादि श्रीजी महाराज के व्याख्यानों का लाभ ले अत्यन्त संतुष्ट हुए थे। श्रोतृवर्ग पर श्रीजी महाराज के व्याख्यान का ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ा कि हमेशा व्याख्यान के लाभ लेने की तीव्र जिज्ञासा हर एक को हुई। इस से नाथ दरबार साहिब ने ऐसा ठहराव किया कि "गरमी के दिनों में कोर्ट में सुबह का समय है इसलिये अधिकारी वर्ग को व्याख्यान में आने में तकलीफ होती है इस कारण कोई तथा स्कूल का समय थोड़े दिनों के लिये दुपहर का रखा जाय" उपरोक्त आज्ञा से सबको व्याख्यान सुनने का समय मिलने के लिये जबतक पू० श्री लीबडी-विराजते रहे, कोर्टों का दायम दोपहर का रहा। ठाकुर साहिब दीवान साहिब तथा अन्य अमलदारों के साथ हररोज व्याख्यान में पधारते थे। नामदार श्री को आपके उपदेश से अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हुआ और प्रतिदिन उपदेश अवगण करने की जिज्ञासा की वृद्धि होती रही। नामदार के साथ उनके गादीवर कुंवर श्री दिग्विजय सिंह जी भी पधारते थे। पूज्य श्री के समय लुकन और सर्वमान्य उपदेश से हर एक धर्म वाले अत्यन्त आनंदित होते थे।

व्याख्यान में अर्थ-विद्या और अनार्थ-विद्या की समानता, गौरक्षा पर विशेष विवेचन, गौरक्षा से देश को होते अनेक लाभ

इत्यादि दृष्टांतों के साथ समझाने से तथा विद्यादान और उससे इस लोक और परलोक में प्राप्त होने वाले महान् सुखों से सम्बन्ध रखने वाले अमरकारक उपदेश से महाराजा साहिब बड़े प्रसन्न हुए और कई मनुष्यों ने अनजान मनुष्य के हाथ गाय, भैंस वगैरह बेचने की प्रतिज्ञा ली। सिवाय रोने कूटने से होते हुए गैर लाभ दिखाने से लौपट्टी के भी संघ ने जनरल मीटिंग बुना सर्वानुमत से रोने कूटने का रिवाज बड़े अरा में बंद करने वाला ठहराव पास किया था यहा नौ दिन ठहर कर पूज्य भी चूड़े पधारे। महाराज श्री उत्तमचन्द्रजी क विशाल सूत्र ज्ञान और कितनी ही कुजियों से श्रीजी ने लाभ उठाया और अपनी कई शंकाओं का समाधान किया। महाराज श्री उत्तमचन्द्रजी पर पूज्य श्री की आदर बुद्धि होने से समय २ पर ज्ञान प्रभोत्तर होते रहते थे।

ता० १३-५-१६११ के रोज पूज्य भी चूड़े पधारे और दरबारी कन्या-पाठशाला में ठहरे ता० ठाकुर माहिब कि, जो जालंधर की अपनी कान्कान्म में पधारे थे वे दीवान माहिब तथा अमलदार र्गों के साथ उपाध्याय में पधारते थे उपाध्याय में अनेक धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टांत आने से और मनुष्य कर्म-व सम्बन्धी अमूल्य उपदेशों से लोगों को अत्यंत रम जाता था गुणगुनागी होना बैरभाव गायना, उल्लास न करना, समभाव करना सीखना, सब धर्मों पर सा। दृष्टि रखना आदि उपदेशों से सबको बहुत आनन्द होता था।

अध्याय २४ वाँ

राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास ।

पूज्य श्री रास्ते के विहार में बीमार होगये थे, पाँच में वायु की व्याधि बहुत बढ़ गई थी परन्तु वे समय २ पर कहते कि, मुझे चातुर्मास राजकोट करना है यह मेरा निश्चय है बाकी तो कंवलीगम्य है । आत्मबल बहुत काम करता है । अष्टावक्र जिनके आठों अंग टेढ़े थे तोभी वे आत्मबल से कितने प्रभावशाली हुए यह सुप्रसिद्ध ही है । आत्मश्रद्धा, आत्मबल के प्रमाण से ही कार्यसिद्ध होता है यह अनुभव सत्य है कि, भाग्य के भोगी होने के बदले अपन भाग्य को बदल सकते हैं और आगे क्या होगा उसका निर्णय भी कुछ अंश में अपन कर सकते हैं । श्रीयुत मार्टन सत्य का समर्थन करते हुए कहते हैं कि “शिथिल महत्वाकांक्षा अथवा ढीले उद्योग से कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, कार्य को सिद्ध करने वाली शक्ति के साथ अपना निश्चय दृढ़ होना चाहिये ।

दूसरे कोई होते तो ऐसे समय विहार की तकलीफ न उठाते, ‘यहीं द्वारिका’ कर लेते, परन्तु राजकोट में व्याप्त जडवाद को शिथिल करने का प्रकृति का निश्चय था । उस प्रकृति ने पूज्य श्री को

राजकोट की ओर प्रयाण कराया। चूड़ा से सुरामडा, धांधलपुर, चोटीला और कुवाडवा दो राजकोट पवारे, जिसके दूर से ही मुँह निकाले छप्पर दृष्टिगत होते थे।

राजकोट से चार पाँच गाऊ दूर पूज्य श्री के पधारने की ब-
धाई मिलने पर इन महँगे यजमान का आतिथ्य करने के लिये
राजकोट ऊँचा मीठा हो रहा था। राजकोट के द्वर्ष की प्रतिष्ठाया
उनके मुख मंडल पर प्रकाशित होने लगी। राजकोट शहर के ऊपर
स्वच्छ आकाश में प्रभात की सूर्य किरणों ने सुनहरी रंग पंता
फिलोल करके, पोंसले से उड़कर आते हुए पश्चिमोने बधाई दी और
लम्बे समय से लगी हुई आशा सफल हुई समय भी संप सरकार
के लिये प्रभुत हुआ। सूर्योदय होते ही जैसे कमल के वन प्रकु-
ञ्जित होते हैं वैसे ही श्रीजी महाराज के पदार्पण से राजकोट के
भावकों के हृदय कमल प्रकुञ्जित होगए।

शहर के सभी पब्लिक भोजनशाला के मकान में आप बतरे।
स० १९६८ का चातुर्मास पूज्य श्री ने कितने ही संवों के साथ
राजकोट में किया। दूसरे मुनिराजों को मूली तथा बोटाद चातुर्मास
करने की आज्ञा दी और वहाँ भेजे। व्याख्यान भोजनशाला में ही
होता था और निवास जैन पाठशाला में रक्खा।

महाराज श्री का यह चातुर्मास राजकोट के इतिहास में बल्कि
समस्त काठियावाड़ के इतिहास में सुवर्णचरों से आकित रहेगा,

सं० १९६८ का चातुर्मास निष्कृत जाने से बड़ा दुष्काल पड़ा, प्रारंभ से ही मेघराज की कृपा देख, दुष्काल संभव सम्भव, दया और परोपकार विषय पर महाराज श्री ने अपनी अमृत तुल्य वाणी का अमोघ प्रवाह रूप उपदेश देना प्रारंभ कर दिया। महाराज श्री के हर एक रोज के व्याख्यान में स्थानकवासी, देरावासी, जैन भाइयों के उपरांत दूसरे धर्म के भी संख्याबद्ध मनुष्य उपस्थित होते थे और राजकोट बकील बरिस्टर्स से भरपूर और सुधरे हुए देशों की पंक्ति में है, तो भी अमलदार वर्ग या दूसरे अग्रेसर गृहस्थों में शायद ही ऐसा कोई निकलेगा कि, जिसने व्याख्यान का लाभ न लिया हो। पूज्य श्री सरल परन्तु शास्त्रीय पद्धति से ऐसा सचोटे उपदेश फरमाते कि, मध्य में किसी को कुछ प्रभ करने की आवश्यकता ही न रहती थी। अनेक शंकाओं का समाधान होता और अनेक प्रश्नों का निराकरण होता था।

पूज्य श्री के प्रभाव का डंका समस्त काठियावाड़ में बहुत दूर तक बज चुका था और राजकोट काठियावाड़ का केंद्र स्थान होने से बाहर से आये हुए अमलदार दरबार इत्यादिकों को व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिलता था। नामदार लीबडी के ठाकुर साहिब राजकोट पधारे तब व्याख्यान में उपस्थित हुए थे। पूज्य श्री के दर्शनार्थ बाहर से आने वाले स्वर्धी बन्धुओं का आतिथ्य सरकार करने का खास प्रबंध किया गया था। भिन्न २ स्थान उतरने के

लिये और भिन्न २ भोजनालय भोजन के लिये थे, इनके सिवा
उनको भिन्न २ आवकों की ओर से टी पार्टी मिहमानी इत्यादि
दी जाती थी। पूज्य श्री के वचनामृतों का पान करने, संतोषकार
आतिथ्य होने और व्याख्यान की घूमवाम तथा ज्ञानचर्चा
प्रबल धूम होने से आने वाले मन में धार कर आये हुए दिनों
भी दो चार दिन सहज ही उपादा ठहरते थे। संस्कार के उत्साह
कार्यकर्ता भाई श्री खुर्शीलालजी नागजी बोहरा और सुप्रसिद्ध
आर्टिस्ट छोटा लाल तेजपाल ससत अम उठाते रहते थे।



अध्याय २२ वाँ

परोपकारी उपेक्ष का भारी प्रभाव ।

गोंडल के भूतपूर्व दीवान साहिब मरहुम खान बहादुर बेजनजी मेहरवानजी भी महाराज के व्याख्यान में पधारे थे, उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक न होने से एक साथ प्रंद्रह मिनिट भी वे बैठ न सकते थे, तौभी महाराज श्री के व्याख्यान में उन्हें इतना अधिक रस उत्पन्न हुआ कि, वे क़रीब पौन तास तक ठहरे और महाराज श्री का दया तथा परोपकार विषय पर जिसमें "खासकर दुष्काल पड़ने के डर से उस समय किस तरह दया करनी चाहिए और मनुष्य के साथ कितने अंश तक हर एक मनुष्य को अपना कर्तव्य अदा करना चाहिये " इस विषय पर विवेचन सुनकर तो उन पारसी गृहस्थ की आँखों से दड़दड़ आँसू बहने लग गए ।

पूज्य श्री सूत्रों के सिद्धांत समझा मनुष्य जन्म की महत्ता दिखा विशेष समयमें कीहुई सहायता साधारण समय से सहस्रों गुणी विशेष फल देने वाली है यह उदाहरण दलील और फिलौसोफी के सिद्धांत पर घटित कर प्रस्तुत समय को किस धैर्य से निभा लेना चाहिये यह वृद्ध अनुभवी से भी अधिक प्रभावोत्पादक रीति से श्रोताओं के हृदय में बिठा देते थे ।

अपने संयम को प्रतिपालते, सम्प्रदाय की सीमा न टाँसते ।
 मोताओं को उनके कर्तव्य का भान भाषित करने वाली श्री जी की
 कुरात मुद्रि राजकोट जैसे सुधरे हुए क्षेत्र में विजय प्राप्त करे यह
 पूज्य श्री की योग्यता का सब से बड़ा प्रमाण है । श्री महाश्वीर प्रभु के
 वचनानुसार अक्षररस अनुमोदन देने वाले विद्याप्रभुशनि आरम
 का एक काव्य इस मौके पर पाठकों को अति रस देगा काव्य बड़ा
 आशी है परंतु यहां पर बसका थोड़ासा अनुवाद दिया जाता है ।

“द्वेषद्वेष—सत्य है । मृत्यु लोक यही स्वर्ग लोक का द्वार है जो
 साधा जाना पछंद करते हों—तो मेरे दूतों ने तुम्हें कभी मृत या लप
 करते नहीं देखा, तुम्हें बड़े २ दान भी न किये, यात्रा करके तुम्हें
 देह को सार्थक नहीं किया, प्रभु मंदिर में कभी पांव भी न रखला, ऐसे
 जीवन को क्या मैं अपने प्रभु के पास ले जाऊं ? नहीं २ ऐसा तो कभी
 नहीं हो सता ।

दीनचन्द्र—इयालुदेव ! दिव्य नयनों से देखो यों मैंने अपना कल्याण
 न भी किया हो परन्तु जगत् के दुःखी अज्ञान और दिल के दर्दि-
 यों का दर्द दूर करने में मैंने अपना भाग दिया है, मैंने मृत, लप
 करके देह द्रमन न किया हो, परन्तु प्रभो ! शरीरों के लिये मैंने
 अपनी देह सुखादी है, मैं पाप धोनेवाली गंगा में नहाया नहीं
 परन्तु दोनों की मीठी दुआओं से मैंने अपनी आत्मा का मूल

धोया है, मैं पैसे का (अब वस्त्र की शक्ति न होने के) दान न किया परन्तु समस्त समाज को अपनी देह दान में दे चुका हूँ। मैंने सिर्फ मंदिर में ही प्रभु को नहीं देखा, परन्तु अखिल विश्व में प्रभु की दिव्य प्रतिमा मैंने पूजी है। अन्य भक्तों ने पत्थर के पुतले में प्रभु माना, मैंने हर एक मनुष्य में माना, दुनियाँ में दयानिधि देखे हैं और सेवा की है। मैंने उन तीर्थों की तीर्थ यात्रा नहीं की परन्तु गरीब-यात्रा दुःखी-यात्रा मनुष्य-यात्रा की है, अर्थात् गरीबों की दीनता का, मनुष्य की मनुष्यता का, दुःखियों का दुःख का विचार किया है भगवान् की भजन के बदले मैंने अपने मोले भाईयों का भजन किया है, भक्तों ने एक ही भगवान् माना होगा, मैंने तो अनेक भगवान् माने हैं। प्रत्येक मनुष्य में एक २ प्रतिमा विराजमान है। मनुष्य के हृदय में जान्दवी है व्रत, तप की शान्ति है तीर्थ-यात्रा महिमा है, और मोटाई है मालिक के दान का अनंत गुण पुण्य भार है। दूसरों ने पापियों के लिये धिक्कार बरसाया होगा परन्तु वे भी मेरी दया के पात्र बने हैं..... अन्य के अश्रु पूछना ही मेरा धर्म है। सत्य मेरी शक्ति है और सेवा मेरी भक्ति है।

प्रभुजी—(दीन बन्धु के सिर पर हाथ रख कर) मेरे भक्त! तेरी सेवा सच्ची सेवा है तेरी भक्ति सच्ची भक्ति है। मुझे रामचंद्र या कृष्णचंद्र के रूप में देख, भक्ति करने की अपेक्षा एक दीन

दर्दी अज्ञानी या कपी के स्वरूप में देख भक्ति करना अधिक पसंद है, गरीब या अनाथों का अनादर वह मेरा ही अनादर है, उनका सरकार वह मेरा सच्चा सरकार है। मेरा तमाम ऐश्वर्य प्रभु के ऐसे भक्तों के ही चरण में समर्पण है।

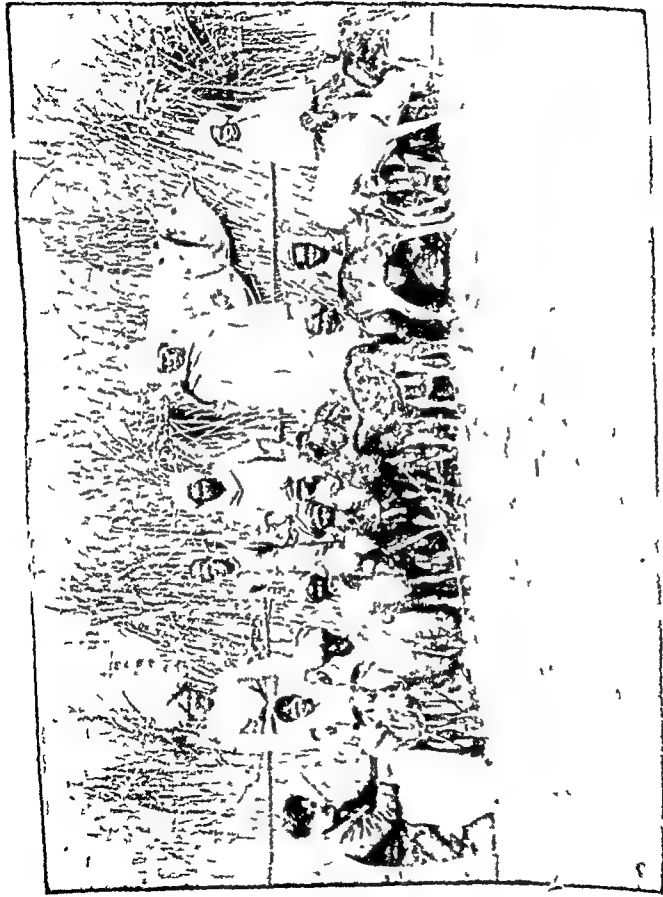
इस काव्य के पृष्ठ २ विचार भी पूज्य श्री के सदुपदेश को जानुमोहन देते हैं कि, जगत् में कल्याण का एक भी आस लिया होगा, दया से एक भी अभु गिराया होगा, तो वही दिन साफल्य है आज किसीका भत्ता न किया हो तो प्रायश्चित्त कर और है जीव ! बेरी बेपरवाही का बदला देने प्रस्तुत हो। कल गरीब का-समाज का द्विप २ कर काम करना अर्थात् आज का देना चुकता हो जायगा जो जीवन अपने पश्चात् कोई चिन्ह न रख सके जिस जीवन की उन्नति से अंधकार विलीन न हुआ, जिस जीवन ने भूत-प्राणी को संतोष न दिया वह जीवन सचमुच बेला हो पान पर ऋतु के जैसा ही व्यतीत हुआ समझा जाता है।

मंत्रसूरी के दिन ढोरो के निभाने के लिये फंड करते समय अपने चेत भाईयों से ही रु० पांच हजार की रकम इकट्ठी की थी और राजकोट के नामदार ठाकुर साहिब के सभापतित्व में जो उद्दद् जाहिर सभा द्वार संकट निवारण फंड के लिये की गई थी उसमें वह रकम न आते ना. ठाकुर साहिब ने उसी समय

रु० ७००० सात हजार की रकम उस फंड में दे फंड का कार्य प्रारंभ किया था और सब जाति की एक-कार्यकरिणी कमेटी मुकर्रर की थी। दुष्काल में दुष्काल पीडित मनुष्यों को मदद करने, उसी तरह ढोरों की रक्षा करने में दूसरों के साथ जैन भाईयों ने भी अ-प्रेमर हो भाग लिया था, मारवाड़ खारियों को खास सस्ते भाव से, उधार या मुफ्त घास और अनाज दे अपने जानवरों को निभाने के लिये सरलता की थी, राजकोट के प्रसिद्ध वकील रा. रा. पुरु-पोत्तम भाई मावजी ने दुष्काल के दस महिनों में अपना काम भंघा बिल्कुल त्याग महाराज श्री के पास दुष्काल सम्बन्धी कामकाज ही करने की प्रतिज्ञा ली थी। इस दुष्काल में मनुष्यों एवम् ढोरों के लिये उन्होंने बड़ा श्रेष्ठ कार्य किया था। राजकोट के प्रसिद्ध जैन भाईयों रा० रा० जयचंद भाई गोपालजी (वर्तमान जयचन्द्रजी स्वामी) रा० रा० बेचरदास गोपालजी, रा० रा० भाईदास बेच-रदास, रा० रा० न्यालचन्द सोमचंद, रा० रा० पोपदलाल केवलचन्द शाह को साथ ले वे उस समय के दुष्काल के लिये गान्धे, धरमपुर, रतलाम, इन्दौर, उज्जैन, जावरा, मंदसौर, अजमेर, बीकानेर और उदयपुर इत्यादि स्थानों पर ढोर संकट निवारण के लिये फंड जमा करने गये थे। उस फंड में लगभग रु० ५०००० पचास हजार एकत्रित कर ढोरों का अच्छी तरह बचाव किया था, उक्त गृहस्थों ने मुसाफिरी खर्च अपने पाससे दिया था और फंडछाते से एक पैसा भी न लिया था।

राजकोट में इस समय सेवाधर्म का सिद्धान्त पूर्यसाहिब ने इतनी अत्यन्त अस्तरकारक रीति से समझाया था कि उनके व्याख्यान सुनने वाले वृद्धा प्रयत्न अनुभव लेने के लिये गतिस्थिति छोड़ देते उस समय सन्धावद्ध द्वार बिना मालिक के खिस्ते थे। पजिरापोल उपरान्त राह के भिन्न २ स्थानों पर खास 'केटलकेन्व', पशुगृह खोजकर स्वयं सेवकों ने बड़ी किन्न के साथ सेवा की थी। सेठ और गृहस्थ इसी किन्ने कपड़ों वाले अपने हाथों से बीमार जानवरों को बिठाते, उनको दवा लगाते और उन्हें पुचकारते थे।

सेठ, गृहस्थ और युवा मित्र मङ्गल के साथ मौज उड़ाने, खर में या हवा खोरीपर जाने के बदले या गन्ध सत्त्व मारने, मिथ्या हवा उड़ाने के बदले, अवकाश का समय 'सेवाधर्म' में व्यतीत करें यह वर्तमान समय के लिये अत्यावश्यक है। कमीज की बहल खड़ा कर एक मनुष्य जानवर का मुँह पकड़े। दूसरा मित्र नाल से उस क मुँह में दूध डाले। तृतीय मित्र हठे में से दवा ले सककेलगावे और चौथा मित्र बेशर्पी कमाल से पशु की धाराओं पर बैठती हुई मक्खिया उड़ावे। यह दृश्य दूसरों को सेवाधर्म में लगाने के लिये काफी है। राजकोट 'केटल केन्व' का एक फटो मिल गया है वह पात्र के पृष्ठ पर देखें जिस में सानी मोहनलाल केरावजी, कधारा ठाकुरजी केशवजी इत्यादि स्वयंसेवकों का परिचय मिलेगा।



राजमोट दुष्काल केटल केम्प.

परिचय-प्रकरण २५.



राष्ट्रकर्मियों छात्रांनी स्वतंत्रता

परिचय-प्रकाश २५

राजकोट में ही मनुष्य जाति की सहायता में तथा ढारों के रक्षार्थ लगभग रु० १२५००००) एक लाख पच्चीस हजार खर्च हुए थे।

काठियावाड़ में 'छाछ' खाने का रिवाज दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। छाछ करने के लिये कई जगह कुटुम्बों में गाय भैंस रखने की पद्धति प्रचलित है। अगर ऐसा प्रबन्ध नहीं हुआ तो सगे सम्बन्धी या अड़ोसी पड़ोसियों के यहां से लाने का रिवाज है। दुर्काल जैसे समय 'छाछ' की तकलीफ होने के कारण लोगों को छाछ की सुलभता कर देने से बड़ी मदद मिलती है। राजकोट के सोनी मोहनलाल इत्यादि स्वयंसेवकों ने छाछ का भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। बम्बई की एक पारसी बाई ने 'छाछ' कितने ही माह तक अपने खर्च से ही देने की इच्छा प्रकट की थी, इस लिये बहुत सी छाछ बनती थी। छाछ बांटने की संस्था का पास का चित्र देखने से पाठकों को जरा खयाल होगा।

ता० १०।६।१९११ के रोज पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ लेने के लिये नामदार राजकोट के ठाकुर साहिब पधारे थे, और ढेढ़ घंटे तक सावधानी के साथ पूज्य श्री के प्रवचन श्रवण किये थे। उस समय २००० से ३००० श्रोताओं की उपस्थिति में पूज्य श्री ने 'मनुष्य कर्तव्य' समझाया था।

प्रथम लोक में प्रभु स्तुति किये बाद देवता मनुष्य तिर्यक और तारकी इन चार गतियों में मनुष्य क्यों विशेष उत्तम है और इन

चार गतियों में से मात्र एक मनुष्य की गति ही से क्यों मोक्ष प्राप्त हो सकता है वह समझाया । मनुष्य जन्म की दुर्लभता समझाई और जब मनुष्य जन्म द्रष्टा पोलों सहित प्राप्त हो गया है तो उसे किस तरह सफल कर सकते हैं इस पर विवेचन किया । अहिंसा शास्त्र, आश्रमेय, ब्रह्मचर्य और परिमह इन पाँचों धर्मों के विषय पर महाभारत के शांतिपर्व में से कितने ही उदाहरण दे मनुष्य के कर्तव्यों में से किस रीति से गिने गए हैं यह समझाया । माध्व, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों के धर्म समझाते हुए क्षत्रिय राजाओं का चारित्र्य कैसा निर्मल होना चाहिये यह समझाया । एक धर्म के आचार्य दूसरे धर्म के आचार्य पर हमला करें तथा धर्म का भिन्न स्वरूप किस हेतु से घटित किया है यह न समझ अनेक शाखा, मतों ने लोकों में जो भ्रान्ति उत्पन्न कर दी है और विषवाद बढ़ाया है जिससे अपने को कितनी हानि पहुँची है यह समझा कर सम्यक् मनुष्य के कर्तव्य की श्रेणी में बिठा उसके कितने ही उदाहरण दे फिर निम्न श्लोक पर विवेचन कर सत्त्व, रज, ताम और वाणी इन चिग्यों पर विरोध विवेचन किया ।

शुद्धेः फलं तत्त्वविचारणञ्च

देवस्य सारं व्रतधारणञ्च ।

दत्तस्य सारं करपात्रदानं,

वाचां फलं गीतिकरं नराणाम् ॥ १ ॥

गोरक्षा ❀ तथा प्रजा के चारित्र की सुधारण की तरफ अधिक लक्ष देने के कारण ना. ठाकुर साहिब की योग्य बड़ाई कर सब श्रोताजनों को जीवरक्षा सम्बन्धी असरकारक उपदेश दे अपना व्याख्यान पूर्ण किया था । ना. ठाकुर साहिब ने व्याख्यान समाप्त होने के बाद ही अपनी जगह छोड़ी । उपस्थित सज्जनों ने नामदार का उपकार माना, फिर सब लोग उपरोक्त व्याख्यान की अत्यन्त तारीफ करते हुए बिखर गए ।

गोंडल संघाणी संघोड़े की पवित्र पुण्यशाली तपस्विनी महासतीजी जीवी बाई महासती ने मंदवाड़ में आचार्य श्री के श्रीमुख से धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की, वह श्रीयुत पोपटलाल केवलचंद शाहने आचार्य श्री से विनन्ती निवेदन की, तब पूज्यश्री वहां पधारे परंतु उपाश्रय में बैठने की इच्छा न की । परम्परा अनुसार उन्होंने ऐसा कहा, परन्तु इससे बीमार महासतीजी के तकलीफ में अधिकता होगी ऐसा हमें समझा अंत में दूसरे दरवाजे पर महासतीजी का पाट तनिक उठालाया गया था और वहीं से आचार्यश्री ने उन्हें

❀ राजकोट नरेश गादी पर बैठे तब आपने अपने समस्त राज्य में तथा राजकोट सिविल स्टेशन के एजन्ट हुदी गवर्नर को लिख कर गोवध हमेशा के लिये बंद कर दिया था ।

Acharya in direct succession to Mahavira. Many sub-
sects have risen amongst the Sthankwasi Jaina and
each of these has its own Acharya but they unite in
honouring Shrilalji as a true Ascetic.....when the
writer for instance had the pleasure in Rajkot of meet-
ing Shrilalji Maharaja (who is considered the most
learned Sthankwasi Acharya of the present time)
he had travelled thither with 21 attendants "Sadhoos"

भाषार्थः—लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य
श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था । जिन्हें भी
महावीर के गार्दी के ७२ वें आचार्य उनके अनुयायी मानते हैं,
स्थानकवासी जैनों में जो कि, कई शाखाएं हैं वो भी श्रीलालजी
महाराज को एक सच्चे त्यागी समझ बहुत से उन्हें मान देते हैं...
श्रीलालजी महाराज जिन्हें वर्तमान समय के बहुत से विद्वान् स्था-
नकवासी आचार्य गिनते हैं उनसे राजकोट में मिलना हुआ तब वे
२१ मुनिओं के साथ पधारे थे ।

इसके सिवाय गुर्जर भाषा के आद्वितीय कविवर जय जयंत
इंदु कुमार आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान्
श्रीमान् न्हाणालाल दलपतराम कवीश्वर M.A जिन्होंने इस पुस्तक
की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके

सन्मित्र अनेक लोकप्रयोगी ग्रंथों के कर्ता साधुचरित श्रीयुत
 अमृतलाल सुंदरजी पढियार आदि जैनेतर विद्वान् भी मुनिराज
 के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व
 आनंद आता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के
 उत्तर आचार्य श्री अत्यंत बुद्धिमत्ता पूर्वक और जैन-शास्त्र के अनु-
 कूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्नकर्ता सानंदश्चर्य में हो जाते।
 श्रीकृष्ण जन्म इत्यादि पूज्य श्री के श्री मुख से सुनते समय श्रीकृष्ण
 वासुदेव को जैनों ने कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया है वह
 समझाया था। कवि श्री न्हाणालाल भाई कहते हैं कि, मुझे और
 सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पढियार को ये महा-
 त्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान् अधिक उदार और
 अधिक क्रियापात्र, अधिक तपस्वी एवम् अधिक वैराग्यवंत मालूम
 होते थे। सुनने के अनुसार पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री
 कितना ही समय साथ बिताते और कठिन क्रिया एवम् संयम के
 कायदों की धारीकी देख आनंदित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवानजी श्रीमान् अनंतरामजी साहिब एल.
 एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ हैं वे काश्मीर राज्य से
 एक डेपुटेशन ले किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनंत-
 रामजी के सभापतित्व में आये हुए इस डेपुटेशन में कितने ही राज-

पूत, अमौर तथा घर्जर भी थे । चार दिन के उनके मुकाम में वे हररोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे ।

पंजाब में उस समय विचरते पूज्य श्री की सम्प्रदाय के महाराज भी मुन्नालालजी के सम्बन्ध से पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बातचीत की थी, बीमार मुनिराजों की सुख साता पुछाई थी और मुनियों की मदद की आवश्यकता हो तो मैं भेजने के तैयार हूँ ऐसा कहा था परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुँचने पर, किसी मुनि को सहायता के लिये भेजने की आवश्यकता नहीं ऐसे समाचार आजाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा था ।

राजकोट इत्यादि स्थलों में एक जाति के नहीं परन्तु अनेक जाति के स्त्री पुरुष उनके व्याख्यान में आते परन्तु यों मालूम नहीं होता था कि, हमारा ही धर्म हमें समझा रहे हैं ।

आरम—कल्याण की ही बातें कह रहे हैं ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम, धर्म का अखंडपालन हृदय की विशालतार से सब सद्गुण जन—समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे ।

सैकड़ों अनपढ़ माम् वालों की सभा को कथा, कविता, या अशक्य गप्पों से रिक्का लेना सरल है परन्तु वाक्य वाक्य शब्द २ पर.

विवेचन और अंशका करने वाले शक्तिशाली मनुष्यों को समझाकर उनके कंठ उतारना बिना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता । अंग्रेजी, फारसी तो क्या परन्तु जिन्होंने मातृभाषा की भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी ऐसे पूज्य श्री को गुरुगम और अनुभव से प्राप्त शास्त्रीय और ऐतिहासिक ज्ञान से वैरिस्टर्स और विद्वानों का भी संतोष होता था यह पूज्यश्री के उत्कृष्ट संयम और पदवी का प्रभाव था ।

राजकोट संस्थान के डेप्युटी एज्यूकेशनल इन्स्पेक्टर श्रीयुत पोपटलाल केवलचन्द शाह अपना अनुभव लिखते हैं कि:—

आचार्य श्री जब धर्मध्यान में चित्त लगाकर बैठते तब वे काया को सचमुच घोसरा ही देते थे, जब वे एकान्त में समाधि चित्त में रहते तब बहुत ही थोड़ों को उनके दर्शन का लाभ मिल सकता था । कारण कि, उनके शिष्य द्वार को रोककर इस तरह बैठते कि, आचार्यश्री के एक चित्त में किसी तरह से कोई खलल न पहुंचे । मुझपर आचार्य श्री की कुछ कृपादृष्टि थी उनके एकाग्र धर्मध्यान में विक्षेप नहीं डालूंगा ऐसा मेरा उन्हें पूर्ण विश्वास था जिससे किसी २ समय मुझे ऐसी स्थिति में भी उनके दर्शन का लाभ मिलता था । कितने ही कहते हैं कि, जैन में सिर्फ उपवासादि तपस्या रही है परंतु योग-समाधि तो उनके यहां प्रायः लुप्त है परंतु इन आचार्य ने एवम् एक दूसरे सुपात्र साधु महात्माने मेरे दिलमें यह विश्वास

बिठा दिया है कि, जैनियों में भी योग निष्ठ महात्मा पुरुष हैं ।

दिवाली के दिन वे छठ (दो उपवास) करते । एक अहोरात्रि धर्मध्यान में बिताते, व्याख्यान सिवाय बाकी दिन के समय में और विशेष रात को वे योग समाधि में रहते थे । राजकोट में दिवाली की पिछली रात को संवर चौपथ में रहे हुए तथा दूसरे भोताजनों को श्री उत्तराध्ययन सूत्र पूर्ण तीन घंटे में श्री मुख से सुनाया था । दिवाली का दिन श्री भगवान् महावीर प्रभु के निर्वाण का पवित्र दिन है । उन महावीर प्रभु ने शिष्यों को निर्वाण के समय जो उपदेश दिया था, सोलह प्रहर तक जो धर्मदेशना दी थी उस देशना को गूँथ कर गणघरों ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र की रचना की है जिससे दिवाली के पिछली रात्रि को समर्थ पवित्र आचार्य के श्री मुख से उत्तराध्ययन सुना जाय तो ठीक हो—इस इच्छा से जब उनका दूसरा चातुर्मास मोरबी हुआ तब दिवाली के दिन मैं मोरबी गया, वहाँ मेरी समझ में आया कि, आचार्य श्री भावकों को भी उत्तराध्ययन सुबह अर्थात् कार्तिक शुक्ला १ को सुनाने वाले हैं इससे कुछ २ निराश हुआ, क्योंकि, भगवन्त दिवाली की पिछली रात्रि को निर्वाण पाये थे, वह उत्तराध्ययन पिछली रात्रि को पूर्ण आया था जिससे उस समय सुना जाय तो सामयिक गिना जाय । तबसे मैंने अपनी निराशा आचार्य श्री से निवेदन की । आचार्य श्री समझाया कि, राजकोट के भावकों को मालूम हो गया था कि,

पिछली रात्रि को उत्तराध्ययन को सुनाया जावेगा जिससे कितने ही श्रावक वर से शीघ्र उठ एकन्द्रियादि जीवों की घात करते उत्तराध्ययन सुनने मेरे पास आये थे, इस लिये दूसरे दिन गुलाबचंद्रजी ने टीका की थी कि इसमें तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है। गुलाबचंद्रजी की टीका मुझे योग्य जची, इसलिये यहां मैंने श्रावकों से स्पष्ट कह दिया कि मैं सुबह व्याख्यान के समय ही उत्तराध्ययन सुनाऊंगा, परंतु हां तुम राजकोट से खास, इसी लिये आये हो तो संवर या पौषध करना और धर्म जागरण करते हुए जगो तब ऊपर आकर करीब ३ बजे चांदमलजी को कहना, फिर मैं अपने ध्यानसे निवृत्त होकर तुम्हे तुरंत बुलाऊंगा। इस उत्तर को सुनकर मैं बहुत खुश हुआ, परन्तु कहे बिना न रहा कि, पूज्यजी साहिब इससे आप को दो वक्त उत्तराध्ययन सुनाना पड़ेगा और दूना श्रम होगा। तब पूज्य श्री ने फरमाया कि “ मुझे स्वाध्याय का दुंगुना लाभ होगा। हमेशा की रीत्यनुसार दिवाली की पिछली रात्रि को उत्तराध्ययन स्वाध्याय रूप मुंह से कहूंगा और श्रावक श्राविकाओं को सुनाने के लिये फिर सुबह याद करूंगा।

दिवाली के संध्या समय मोरत्री में निर्मला बहिन ने महाराज साहिब के गुणगान की कविता परिपट्ट में गाई। मैंने शास्त्री जी के श्लोक गाये और मेरी ओर से महाराज श्री के जीवन चरित्र की कुछ रूप रेखाएं दिखाने वाली कविता गाये बाद श्रीयुक्त भगनलाल दफ्तरी, भाई दुर्लभजी

जोहरी और मैंने समयानुसार कुछ विवेचन किया पश्चात् आचार्य श्री के काठियावाड़ में और खासकर दालार में चार्तुमास करने से कितना उपकार हुआ यह बताया । पिछली रात्रि को मुझे वो उत्तराध्ययन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सुबह भी लाभ मिला । सुबह जब कितने ही अध्यायों का स्वाध्याय हो गया तब मैंने अपने समीप बैठे हुए श्रीयुक्त जोहरी से कहा कि महाराज साहिब यह दूसरी वक्त स्वाध्याय कर रहे हैं इसीलिए दूसरे वक्त के भक्त को मान देने के लिये ममस्त परिपक्व खड़ी हो गई और जब महाराज ने सुना कि, अरे २ सुनने का यह कारण है तब वे भी शिष्यों सहित खड़े हो गए, जिस तरह तर्किक भी "नेमोतिस्थसः," कह चतुर्विध संघ को मान देते हैं उसी तरह खड़े होकर पूज्यश्री ने मुख्यत्वे पूर्ण उत्तराध्ययन सुनाया, इतनी सी हकीकत ही आचार्य श्री के कितने गुण सिखावेगी ।

गोंडज, जेतपुर, जामनगर, पोरबंदर जैसे शहरों में या योराज्ज जैसे ग्रामों में जहां २ में महाराज साहिब के बिहार में उनके दर्शनार्थ दूसरों के साथ २ में गया, वहां २ हिन्दू मुखजमान सबकी ओर से पूज्य श्री के लिये जो मानवाचक और पूज्यता प्रदर्शक शब्द बोले जाते थे उन्हें सुनकर मुझे बड़ा आनन्द होता और चाहता था कि, अपना जैन-समाज में ऐसे प्रभाविक महापुरुष अधिक हों तो क्या ही अच्छा हो ! अहिंसा धर्म का कितना अधिक प्रचार हो जाय, पोरबंदर से हम राजकोट पितरपोल के लिये चन्दा इकट्ठा

तरने को मारवाड़ की तरफ गए थे तब पोरबंदर के भाइयों ने तथा मार्ग मालनपुर के भाइयों ने उसी तरह मालवा मेवाड़ मारवाड़ में जो हमारा आदर सत्कार हुआ वह अबतक कृतज्ञता से स्वीकार करता हूँ । यह आदर सरकार और मिली हुई आर्थिक मदद यह सब निर्लोभ महानुभाव आचार्य श्री के प्रभाव का ही प्रताप है ऐसा कहूँ तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी ।

राजकोट जैन-वणिक बोर्डिंग हाउस के स्थानकवासी विद्यार्थी हमेशा पूज्य श्री के दर्शनार्थ और छुट्टी वगैरह की अनुकूलता से व्याख्यान सुनने आते थे । पश्चिम के जडवाद की शिक्षा लेते युवा वर्ग में स्वधर्म-प्रेम प्रेरने वाले सद्गुण त्रिभुवन प्रागजी पारेख का यहां स्मरण हुए बिना नहीं रहता । सच्ची दिली इच्छा से गुपचुप परोपकार के कार्य करने वाले ऐसे नर थोड़े ही होंगे । अपने परोपकारी जीवन से उत्तम दृष्टांत छोड़ जाने वाले पूज्य श्री के इस भक्त के जीवन पर प्रकाश डालना यहां अनुचित नहीं होगा ।

अन्य ग्रामों से राजकोट में पढ़ने के लिये आने वाले विद्यार्थियों की तकलीफ का अनुभव कर राजकोट में वणिक जैन बोर्डिंग प्रारंभ करने वाले यही गृहस्थ हैं उन्होंने जीवन पर्यंत इसके लिए श्रम उठाया है । इतना ही नहीं, परन्तु साढ़े तेरह हजार वार जमीन बोर्डिंग के मकान के लिये अभी दी है और अब उसपर रु० २५०००) खर्च कर बोर्डिंग

अध्याय २६ वाँ

सौराष्ट्र का सफल प्रयास ।



राजकोट का पातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् संवत् १८६८ के मगसर वद्य १ के रोज विहार कर पूज्य श्री गौडल पधारे । गौडल में भीजी महाराज के व्याख्यान में बहुत से मुसलमान भाई भी आते थे । पूज्य श्री के सदुपदेश का सुंदर असर उनके हृदय पर इतना अधिक हुआ था कि, जीवदया के लिये जो फंड किया गया था उसमें मुसलमान भाईयों ने भी अच्छी रकम दी थी । पूज्य श्री ने गौडल से विहार किया तब मुसलमान भाईयों ने गौडल में और ठहर कर आपकी अमृतमय वाणी श्रवण करने का लाभ देने की बहुत आप्रह पूर्वक अर्ज की थी ।

गौडल से विहार कर गोमटा, वीरपुर, पीठड़िया, जेतपुर, और जेवलसर हो धोराजी पधारे । यहा दशाश्रीमांसी जाति के भव्य मकान में पूज्य श्री विराजते थे । और व्याख्यान में स्वपरमति हिन्दू मुसलमान तथा अमलदार इत्यादि हजारों की संख्या में उपस्थित होते थे । धोराजी से जल्द ही विहार करने का पूज्य श्री का विचार था परन्तु पग में तड़लीफ होमाने से एक माह धोराजी में

रुक्ता पड़ा था । जिसके फल स्वरूप वहां बहुत ही धर्मोन्नति हुई थी । बाहर से भी लोग बड़ी संख्या में पूज्य श्री के दर्शनार्थ आते थे ।

कंठाल के श्रावक श्राविकाओं का अत्यन्त आग्रह देख एवं उनके धर्मानुराग की प्रशंसा सुन पूज्य श्री की इच्छा कंठाल (वेरावल, मांगरोल और पोरबंदर) में विचरने की थी । इसलिये धोराजी से विहार कर जूनागढ़ पधारे । वहां भी धर्म का बहुत उद्योत हुआ । वहां से अनुक्रम से विहार करते २ श्रीजी महाराज वेरावल पधारे और वहां बहुत उपकार हुआ ।

वेरावल विहार कर चोरवाड़ हो श्रीजी महाराज महावदी १० के रोज मांगरोल पधारे । उस समय मांगरोल में गोंडल सम्प्रदाय के मुनी श्री जयचन्द्रजी स्वामी विराजते थे । वे आचार्य श्री के पधारने के समाचार सुन बहुत आनंदित हुए और लेने के लिये मांगरोल शहर के बाहर कितने ही दूर तक आये । श्रावक भी बड़ी संख्या में सन्मुख आये थे । यहां भी स्वमति अन्यमति लोग बड़ी संख्या में पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ उठाते थे और मुनि श्री जयचन्द्रजी स्वामी इत्यादि भी आपके व्याख्यान में पधारते थे । पूज्य श्री यहां १५ दिन ठहरे थे ।

यहां से विहारकर श्रीजी महाराज पोरबंदर पधारे थे और अपने अमूल्य सदुपदेश से पोरबंदर वासी जैन अजैन प्रजा पर

सुंदर असर डाला था । मांगरोल, पोरबंदर और बेरावल के लोगों के धर्म-प्रेम की पूज्य श्री ने अत्यन्त प्रशंसा की थी । और श्राविकाओं का ज्ञानाभ्यास बहुत संतोषकारक देख उन्हें सानंदप्रसन्न हुआ था । श्री शिक्षा की ओर विशेष लक्ष्य देना चाहिये और उन्हें जैन-धर्म के रहस्य बहुत सुंदर रीति से समझाने चाहिये ऐसी पूज्य श्री की मान्यता थी ।

पोरबंदर से अनुक्रमशः बिहार करके भाखवड़ हो श्रीजी महाराज जामनगर पधारे और, वहाँ एक मास तक स्थिर रहे । जामनगर के शास्त्र के ज्ञाता श्रावकों के साथ की चर्चा में पूज्य श्री को बड़ा आनन्द आता और पूज्य श्री के प्रताप से श्रावकों के ज्ञान में भी बहुत अभिवृद्धि हुई थी ।



(२७३)

अध्याय २७ वाँ ।

मोरवी का मंगल चातुर्मास ।

हुँए में हाथी ।

मोरवी के नामदार महाराज साहिब और श्रावकों के बहुत समय के अत्याग्रह और इच्छाएं बहुत दिनों में सफल हुई । संवत् १९६६ का चातुर्मास मोरवी में हुआ, पाईलेट की तरह पहिले कितने ही शिष्य पधारे थे जो जैनशाला में ठहरे थे । पूज्य साहिब का स्वागत संख्यावद्ध श्रावक श्रविकाओं ने सन्मुख जाकर किया था, वे मंदिर-मार्गी भाइयों की धर्मशाला में ठहरे थे । जैनशाला के मकान में तथा एक दूसरे भव्य मकान में मेरे लिये कुछ रिपेअर-काम हुआ यह सुन पूज्य श्री बड़े दिलगीर हुए और उसमें उतरे हुए शिष्यों को प्रायश्चित्त दिया, ये दोनों मकान चातुर्मास के लिये अकल्पनिक होने से वे सेठ सुखलालजी बोनजी के मकान में पधारे, परंतु श्रीजी के प्रभावशाली व्याख्यान और दर्शनार्थ बड़ी भारी गिरदी होने लगी ।

मोरवी में पधारते ही पन्चवीस लाख गाथाओं का स्वाध्याय करना उन्होंने धारा था, बहुत समय तक पूज्य श्री एकांत में स्वाध्याय करने में ही मस्त रहते थे । मोरवी के दो हजार तो संघ के ही मनुष्य इस

के उपरांत मंदिर मार्गों तथा अन्य जैनेतर प्रजा भी व्याख्यान के लिये आतुर थी, इन सबको लाभ मिले इसलिये बड़े मकान की आवश्यकता थी जो रा० रा० हेमचंद्र दामाजी भाई महेश एल० सी० ई० इंजिनियर के स्कूल भ्रम से सफल हुई, उन्होंने महाराज साहिब से भर्ज कर दरबारगढ़ के पास के स्कूल के विद्यार्थियों को दूसरे मकान में भिजवाया। और स्कूल में पूज्य श्री ने चातुर्मास किया।

यह चातुर्मास इतना सफल हुआ कि, बृद्ध से बृद्ध भावकों के भ्रातृ से मैने सुना कि, ऐसा चातुर्मास हमारी भिदगी में लगने नहीं देखा। इन बृद्धों में से एक सभवी साकलचंदजी कि, जो रतलाम युवराज पटवई के महोत्सव के समय भी हाजिर थे, वे समय २ पर कहते थे कि, 'कुँए में हाथी किसने डाल दिया' अर्थात् मोरवी जैसे छोटे में पड़े हुए भ्राम में पूज्य साहिब जैसे प्रसिद्ध विदेशी मुनिराज का चातुर्मास कैसा सफल हुआ ? विशेष आनंद की बात तो यह थी कि, दर्शन निमित्त आने वाले वनाम भावकों का स्वागत करने का वनाम लक्ष्य एक ही सद्गृहस्थ* सेठ मुखलाल मोनजी ने उठा लिया था दूर दशावरो से आने वाले स्वधर्मियों की स्वयंसेवक सब सहूलियत कर देते थे, इतना ही नहीं, परंतु मोरवी के नगर-सेठ स्वयं दूसरे सेठा के साथ हमेशा भिदमानों के निवास स्थानों पर उनकी खबर लने पधारते और भिन्न २ गृह का निमंत्रण दे कृतार्थ होते थे।

सर्वत १९६८ के आपाठ में मोरवी में कालेरा का उपद्रव प्रारंभ हुआ। कितने ही श्रीमंत ग्राम छोड़ कर बाहर जाने की तैयारी में थे, परन्तु पूज्य साहिब के पधारने से यह बीमारी नरम होगई थी। एक दिन संध्या समय खिड़की के पास स्वाध्याय करते पवन वदजा हुआ देख, ऐसे प्राकृतिक परिवर्तन का अनुभव रखने वाले पूज्य साहिब ने समीप में बैठे हुए मनुष्यों को तुरंत समझाया कि, यह पवन का परिवर्तन सुधरने की आशा दिलाता है ऐसे समय श्री शांतिनाथजी के जाप से कई जगह शांति हुई है भिन्न-मंडल के साथ युवावर्ग बहुत रात तक पूज्य श्री के पास धर्मचर्चा कर धर्मज्ञान बढ़ाते थे। दूसरे दिन सोमवार की रक्षा होने से श्रीशांति जाप की योजना की गई और ५१ छत्ताहियों से उसी स्कूल में नीचे के शांत भाग में बरोबर बजे १२ सामायिक ग्रहण कर जाप करने की खानगी सूचना इस पुस्तक के लेखक को मिली। परिणाम स्वरूप बारह का डंका लगते ही श्री शांतिनाथ का जाप प्रारंभ हुआ सवालास जाप होने के पश्चात् सब साथ मिल कर पूज्य श्री के पास मंगलिक सुनने गये। इस जाप के समय की शांति और अलौकिक दृश्य तथा पवित्र आंदोलन के फव्वारों ने उपस्थित रुज्जनों के मस्तिष्क को इतना अधिक तर कर दिया कि, वे अपनी जिंदगी में ऐसा समय प्रथम ही है और अंपूर्व है ऐसा कहते थे। शुभ शकुन, समझ, सब साधकों को नारियल दिये थे, पूज्य श्री के अनुमान मुता-

मिक पवन बसलते बीमागी शांति हो गई और उच्च वर्ण से तो एक भी भोग लिये बिना बीमागी भग गई ।

अपनी जन्मभूमि में सद्भाग्य से प्रारंभ हुए उपदेशामृत का पान करने को लेखक भी चातुर्मास दान्यान् मोरवी रहा था देश देश के रिवाज मुताबिक मुझे बाकिफ करने के लिये पूज्य भी ने बिताया था, उस मुताबिक पूज्य भी प्रसंगोपास से की हुई वित्त की सहर्ष स्वीकृति देते थे । पूज्य भी की बाखी इतनी मिष्ट और सरस थी कि, बोली हिन्दी होती हुए भी अपढ़ बाइयां भी बराबर समझ सकती थी एक समय गोचरी के समय एक दरजी ने पूज्य भी को अपने वहाँ पधारने याचत आपह किया, मोरवी कि, जहाँ पर छः सो घर बनिये के उपरांत बाणियां सीनी बाणियां कंदोई और ग्राहणों इत्यादि के प्रकी संख्या बली होने से दरजी के वहाँ अपने धर्मगुरु बहरने जाय या और इम तरह गौरवपूर्वक ल गिना जाता है ऐसा समझ पूज्य ने फिर ऐसे बख की गोचरी स्थापक न की, राजकोट में भी वर सम्बन्धी महज अर्ज की थी । हमके कन स्वरूप में शुद्ध वैष्णव भूष्य भी के पास बैठ उनके कपड़े का स्पर्श करने में नहीं हिचकते थे ।

मोरवी की अनुकूलता अनुमार सुबह साढ़े छः बजे एक गुं व्याख्यान प्रारंभ कर देते थे और पूज्य सभा सात से नौ बजे तक अष्टोपचारा उपदेशामृत बरसाते थे, जैन और जैनेतर मजा व्या-

व्यान में से अपने ग्रहण करने योग्य बहुत ले जाते और सोच मुककंठ से कहते थे कि, यहां तो अभी 'चौथा आरा' बर्तता है। भी जम्बूवरिज के ऊपर का पूज्य श्री का व्याख्यान हमेशा थोड़े बहुत मनुष्यों की आंख तो गीली कराता ही था, चलती मां चीलती, झांडो पापद, उदयपुरता राणाओ, जोधपुर के महाराजाओ, जैपुर के महाराज पर एक कवि की लिखी हुई हुंडी, कच्छ के लाखा फुलाणी इत्यादि असरकारक तथा ऐतिहासिक दृष्टांतों से श्रोताओं पर बड़ा भारी असर होता था और व्याख्यान का लाभ चूकने वाले अपने अंतराय कर्म के लिए दिलगीर होते थे ! श्रावकों की दुकानें तो व्याख्यान बाद ही खुलती थीं ।

घनावटी और कल्पित कथाओं के वे कायर नहीं थे, सत्य कथा या बने वहां तक अपने अनुभव में आई हुई या ऐतिहासिक दृष्टांतों से ही पूज्यश्री अपने सिद्धान्तों को पुष्टि देते थे । उन्होंने अपने काठियावाड़ के प्रवास में इसके प्राचीन अर्वाचीन इतिहास का अभ्यास किया था, भिन्न २ राज्य के अनुभवी अमलदार और विद्वानों से काठियावाड़ की कीर्ति का पान किया था । मैं हमेशा एक घंटे भर पूज्यश्री को इतिहास पढ़कर सुनाता था- प्रसिद्ध वक्ता रा० रा० दफ्तरी मगनलाल 'साधना, नामक पुस्तक समझाते और देशाई वनेचंद राजपाल जैसे श्रीमन्त श्रावक दोपहर की निद्रा को एक तरफ रख दोपहर को १२ से २ बजे तक इतिहास इत्यादि के पुस्तक पढ़कर सुनाते थे । जो

हमेशा स्वस की टट्टी के पवन में दोपहर में विमानित होने वाले निद्रा को याद न कर पूज्यभों के प्रताप से, सारी दोपहर में पढ़ने में लीन हो जाते थे, उनकी सुपरती अ० सो० नानूबाई तथा उनकी विद्या-पिलायी पुत्रियां भी पूज्यभों की सेवा कर विविध रीति से ज्ञान की श्रद्धा करती थीं, गोंडल सम्प्रदाय की आर्याजी मण्डीबाई ने पूज्यभों का सूत्र सिखाये थे, मारवाड़ी भावक भाविका दर्शन करने आती उनके लिये पूज्यभों के सामने प्रथम पंक्ति में ही जगद् रिम्बवें रखी जाती थी और देशाई वनेचंद भाई जैसे आने वाले भावकों का स्वये हो सम्मान कर आगे बिठाते थे, श्रीमती नानूबाई ने निडर हो पूज्यभों से कह दिया था, कि " मारवाड़ी भावकों को आप चाहे जितने दृढ़ सम्यक्त्व धारी गिनो परंतु उनमें सैकड़ा ६० तो गले में या हाथ में या किसी जगह छोरियों या तालीज धारण करने वाले हैं, श्री जिनेश्वर देव की भट्ठा या सम्यक्त्व के मादलिये ही धारण किया तो हमें कुछ कहना नहीं है परंतु जो दूसरों के हों तो स्वयं पर उनकी पूर्ण भट्ठा या विश्राम नहीं है ऐसा हम मानेंगे। श्रीमती नानु बाई की पुत्रियां प्रसंगोपात्त पूज्यभों की स्तुति संस्कृत काव्य बना कर कहतीं और जितना लाभ लूट सकती थीं लूटती थीं। पूज्यभों साहिब ने उनके शास्त्रों के पाठ से मुनिभों चांदमलजी इत्यादि को संस्कृत का अभ्यास कराया था।

... पूज्यभों पंद्रह साधुओं सहित चातुर्मास रहे थे। पूज्यभों का शिष्य संदेज स्वाध्याय और ध्यान में इतना अधिक लीन रहता था कि;

उनमें से दो चार को भी कभी एकत्रित हो गप्प सप्प मारते या व्यर्थ हंसी दिलायी करते हमने नहीं देखा। स्वाध्याय और शास्त्र वचनों की धुन लगी रहती थी। संख्या को प्रतिक्रमण किये बाद ज्ञान चर्चा और प्रश्नोत्तरों की धूम मचती थी। प्रतिक्रमण पूर्ण होते ही जैनशाला के विद्यार्थी पूज्य श्री को बंदना करते और सब हाथ जोड़ स्तुति बोलते थे। पूज्य श्री को प्रिय नीचे की स्तुति हमेशा की जाती थी। उस समय पूज्य श्री नयन मूंद उसमें-तल्लीन हो जाते थे। पूज्य श्री ने उसे कंठस्थ याद किया था और पूज्य श्री के साथ वाले मुनि मण्डल ने भी इस स्तुति को कंठाग्र करालिया था।

शुणवंती गुजरात (यह राग)

जयवंता प्रभु वीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर ।

शासन-नायक धीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर ।

शास्त्र सरोवर-सरस आपनुं, तत्त्व रसे भरपूर ।

तेमां न्हातां तरतां नित्ये, शुद्ध थाय अम जर । अमारा

सात्विक भावे जेह प्रकाशयुं, वास्तविक तत्त्व-स्वरूप ।

आस्तिकतामां रमिये एथी, आनन्द थाय अनूप । अमारा

आप प्रकाशित ज्ञान-वगीचे, सीलिया छें बहु फूल ।

सुगंधी वायुनी सरस लहरथी, अमे छीए मशगूल । अमारा

आप विराल-विचार भूमिए, उद्धर्या कल्प अंकूर ।
 रत-भर तेना फल चासीने, रहीशु आप हजूर । अमारा-
 नाम आपनुं निशिदिन प्यासूं, रबी रह्यु अम ऊर ।
 तेवी सातर प्राण अर्पवा, अपने छे मंजूर । अमारा-
 मार्ग बतावा अम ऊपरजे, कयों महा उपकार ।
 अर्पण करिये सर्व तथापि, थाय न प्रत्युपकार । अमारा-
 चरख आपनां शरण हमारे, मरण जन्म भय दूर ।
 (रत्नचन्द्र) जेम लोभी धातक, तम दर्शन आतुर । अमारा
 —राधावधानी पं० रत्नचन्द्रजी

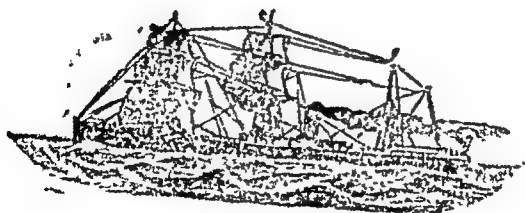
जैन शाला के विद्यार्थी कि जिनपर पूज्य श्री का बड़ा भाव
 था वे विद्यार्थी पाठ के भिन्न में देख सकेगें ।

नामदार मोरवी महाराज साहिब के समीप के सम्बन्धी शिष-
 सिंहजी व्याख्यान में समय २ पधारते थे उनका निम्न द्विव काम्य
 उनके भाव की छात्री देगा ।

कवित्त ।

मालवदेश पवित्र करी श्री मुनीशवी, मोरवी मांहि पधार्या ।
 मोरवी सभ तणी जोड़ लागणी दीनदयाल दिले हरपावा ।

भालालजी स्वामी छो विद्या विशारद शास्त्र नखा प्रभु पारने पण
 अथम उधारी करीने कृपा मुनि आशिर्वाद अनेक पाया ।
 महान् आभार 'मयुरपुरी' संघ आपतणो स्वामी दिलमां माने-
 दर्शन आप तणां शिष्य-मंडली सहित भयां घणें पूरव दावे ।
 एवा ग्रहरूप शिष्य संघाते चन्द्र-तुल्य गुरु पूर्ण-प्रकाशी ।
 मोरवी संघ हृदय कुमुदो दर्शन थी प्रभु धाय विकारी ।
 वावन करी भूमि पाद—पद्मथी सहज दयालु दया दिले लाकी
 नमो कुरो करो जीवित, उपदेशमृत—वारि वरसावी ।
 राज इच्छ आगमनथी आपना कल्याण-कारक अम उर भावी ।
 संसार-सागर तारो 'शिव' कहे अरिहंत अरिहंत मुख भजावी ।



अध्याय २८ वाँ ।

मोरवी में तपश्चर्या-महोत्सव ।

मोमवार या रजा (अवकाश) के दिन मोरवी में विराजमानियों के पास जैन और जैनतर विद्वान् बर्काल और अमलदार मि कर ज्ञान चर्चा पलाते थे और हेडमास्टर तथा राज वैद्य उपरान्त महामां पाष्याय साक्षरोत्तम श्रीयुक्त राकरजाल साहेब्र भी प्रसंगोपात्त पूर श्री के पास आते थे ।

पूज्य भा के पधारने से हेजा विरुद्ध बद्द होगया इसलिये समाम नगर निवासियों की पूज्यभा की ओर पूज्य-सुद्धि होगई और आधान वृद्ध सबकी यह मान्यता थी कि, महात्माओं के पधारने से ही या दुःख दूर हुआ । मार्ग में निकलते तब राजा महाराजाओं को भी न मिले ऐसा आन्तरिक मान सब कौम और सब धर्म के अनुष्ठानों की ओर सब आपकी मिलता था । तपस्वी मुनि भी ज्ञानजालजी ने ६१ उपयाम किये से ऐसी तपश्चर्या मोरवी में प्रथम ही होने से भावकों में भी आर्यत उत्साह था । सुबह और दुपहर दोनों व्याख्यान के समय लगा तार ६१ दिनतक प्रभावना अखण्डित शुरु रही जिसमें सत्त्वा प्रभाव तो यह था कि, प्रभावना के लिये किसी को कुछ कहना न पड़ता था ।

पारण के दिन पूज्य भी तपस्वीजी के साथ गोचरी पधारे थे और चार घंटे तक फिरकर बीच में किसी गृह को न टालते सूक्तता मिला वह आहार पानी ले सबको लाभ पहुंचाया था। कितने ही मनुष्यों ने पारण का प्रथम लाभ मुझे मिले तो मैं अमुक प्रतिज्ञा करता हूं ऐसी पूज्य श्री से विनय की थी परंतु पूज्य श्री तो पक्षपात त्याग कर रंक श्रीमंत सबके यहां पधारे थे ।

तपस्वीजी के दर्शन करने के लिये देशावारों से कई श्रावक एक-त्रित हुए थे । उनका योग्य स्वागत हुआ था, तपश्चर्या के पूर अंतिम दिन संवर पौषध अनेक हुए थे, और पारण के दिन उत्सव जैसा दृश्य था । जीवों को अभय-दान दिया गया लूने लंगड़े जानवरों को गुड़ खिलाया गया और अनेक प्रकार के दान पुण्य हुए । जीव-दया का फंड हुआ था जिससे कई जीवों को शांति पहुंचाई थी ।

पूज्य श्री का शिष्य—मंडल हमेशा संयम से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओं और स्वाध्याय में तल्लीन रहता था और परदेश में पत्र व्यवहार करना अकल्पनिक होने से ज्ञान चर्चा के सिवाय अन्य प्रवृत्ति में पड़ने का कोई कारण ही न था ।

प्रतिक्रमण किये पश्चात् खास दोष या पाप के प्रायश्चित्त के लिये साष्टांग नमन हुए बाद दोनों हाथ जोड़ शुद्ध हृदय से आत्म वि-शुद्धि की ओषधी की याचने होती थी और पूज्य श्री उपवास,

पेसा, सेला, इत्यादि प्रायश्चित्त फरमाते थे, तब इन पदवी का प्रभाव और शिष्यों के विशुद्ध होने की चिन्ता आखों से देखने वाले का राजा महाराजाओं से भी निरोप प्रभाव शाली पूर्वपदवी की ओर पूज्यभाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था—घासी से मर्चा पाठ लेने आने वाले और प्ररत पूजने वाले का मन संतुष्ट हो ऐसा पूज्य भी समाधान कर देते थे और अपने नित्य नियम में मशगूल रहते थे। पूज्यभी के सुबह के चार बजे से रात की ११ बजे तक के कार्य—कर्म की प्रतिलिपि जितने मुनिराजों ने करली होंगी वे चौधे आदरे की धानगी की बहाई किये बिना नहीं रहेंगे। इस पवित्र आरस-भूमि में अनेक धर्मात्मा होंगे परंतु श्रेष्ठ स्था० जैन समाज में पूज्य भी की सम्मानता में खड़े रहने वाले उस समय बिरल मुनिराज ही होंगे, ऐसा होते भी पूज्यभी की खास सूची यह थी कि, व्याख्यान में या वाचसीत में कभी किसी साधु की आचार शिथिलता या निर्वा का एक अक्षर भी पूज्य भी के मुंह से न निकलता था, गुण प्रादक बुद्धि यह उनका आदर्श गुण उनकी ओर हरएक को आकर्षण कर लेता था। आहार लेते समय वे खास चेतावनी देते थे और मुखा शिष्यों को कई दिन तक रूखा सूखा आहार ही खाने देते थे। इंद्रियों को शव करने के लिये भोजन की अत्यंत संमाल रखने का उनका आदेश था। काठियावाड़ और खासकर मोरवी में गरमागरम बाजरी का रोटला और उफद की दाज वे बहुत पसंद करते थे और कहते थे

कि, आवश्यक स्वतः पेट में नहीं खाते हैं परंतु मुनिराजों के पात्र चीं दूब से या मिष्ठान की पौष्टिक खुराक से भर देते हैं यह उनका साधुओं की ओर स्तुत्य भाव है परंतु परिणाम हमेशा बिचारते रहना चाहिये ऐसा पौष्टिक आहार करना आलसी हो लेटना और फिर इंद्रियां मस्ती करें तब अपने वेष को भूल इंद्रियों का दास होना इसकी अपेक्षा प्रथम से ही सात्विक-सादा भोजन करना साधुओं का प्रथम धर्म है और कदाचित् पौष्टिक भोजन कर लिया गया तो तपश्चर्या प्रभृति से उसका वेग कमकर देना चाहिये ।

जो स्वतः ही तपश्चर्या नहीं कर सकता है तो उसकी ओर से दूसरों को यह उपदेश कैसे मिल सकता है ? प्रथम आप ऐसा न करें और अपना वर्तान वसके अनुसार रखें तब ही उपदेश दिया जा सकता है पाठ पर बैठ ललकारने वाले तो लाखों हैं परंतु कहने जैसे रहने वाले ही घन्य हैं । वे ही वंदनीय हैं, उन्हीं का संयम सफल है ।

पूज्य श्री फरमाते थे कि, रोगियों को सुवारने की औषधियों के बंदजे इस जड़वाद के समय में अनीतिवान्, आलसी, व्यर्थ जीवन बिताने वालों को सुवारने की संस्थाएं कायम होनी चाहिये शास्त्र सदुपदेश के अवश रूपी औषध सह नीतिमय जीवन का अनुपान चाहिये ।

मोरवी के उस समय के नगर सेठ अमृतपाल बड़मान की
 नम्रता और कार्य-दक्षता की पूज्य श्री तारीफ करते और मोरवी के
 सम्प्रदाय का अनुकरण करने के लिये वे सबको उपदेश देते हैं । सब
 पाप छोड़ कर का गृह भी संघ फक्त एक ही अगेमर की आज्ञा में
 बने सका अनुभव पूज्य श्री को मोरवी में ही हुआ । नगरसेठ की
 प्रमुखता के नीचे दूसरे चार मध्य श्रीसंघ की ओर से चुने हुए
 रहते हैं इन पापों को सब खता दे रखी है ये पंच जो करते हैं
 वह सकल संघ (पाप छोड़ ही) मान्य करता है ।

अचमेल के राय बहादुर सेठ जगनमलजी भा मोरवी में पूज्य
 श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और अपनी तरफ से स्वामी वरुण फर
 एक ही स्थान पर सब भाईयों के दर्शन का लाभ लिया था । उस
 समय सेठ बड़मानजी की तीर्थागत्य भी वहाँ उपस्थित थे उन्होंने भी
 नगर की लड़ाई कर लाभ लिया था । दर्शन करने आने वाले दूसरे
 २ भाईयों ने भी जीव-दया इत्यादि में अच्छा खर्च किया था ।

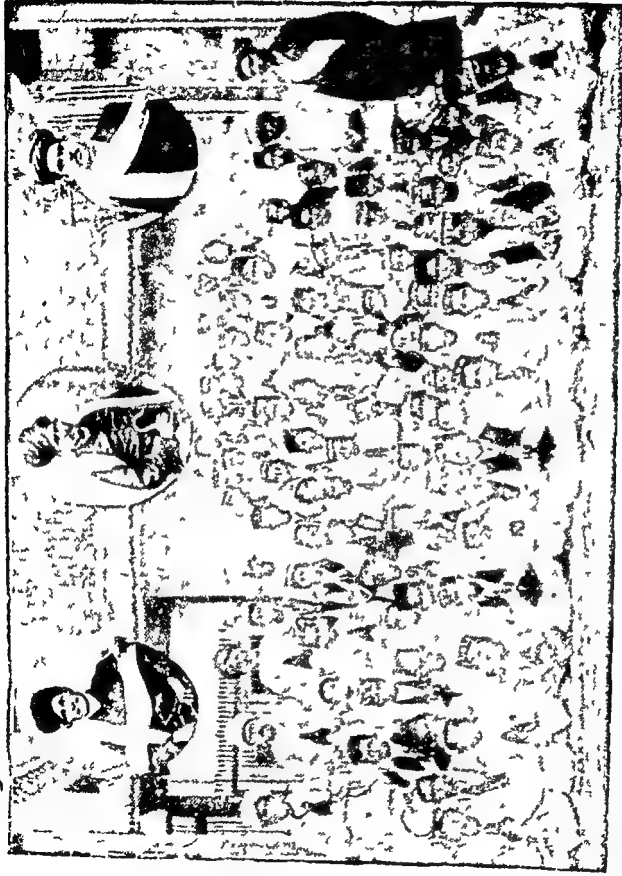
पूज्य श्री ने एक दिन 'जुमार के मोती बनने' का दृष्टांत दिया
 था । उस समय का लाभ से मेरे रिश्तेदार ने सजोद शीलप्रद का
 स्फुट लिखा था और इस धार्मिक वृत्ति की गुरुती में 'नवदादरी'
 का जीवन करने का हमें अवसर मिला था पूज्य श्री को प्रातःकाल
 के समय आज्ञा देने का मुर्क सोमाग्य प्राप्त होता था और इसी

कारण कुछ न कुछ त्याग व्रत का भी लाभ मिलता था पूज्य श्री ने चातुर्मास में चारों स्कंध मुझे कराये थे और आत्म प्रशंसा के लिये मुझे माफी दी जायतो मुझे यहां कहना ही पड़ेगा कि, पूज्य श्री ने मुझे विशेष प्रवृत्तियां त्याग निवृत्तिमय जीवन बिताना सिखाया था। विस्तार वाला कुटुम्ब और विशाल व्यापार होने से दौड़ादौड़ करनी पड़ती थी, परन्तु पूज्य श्री की अभिदृष्टि से इस चातुर्मास में आराम के साथ आनन्द का अनुभव लिया था। पूज्य श्री के व्याख्यान में हमेशा कुछ न कुछ नया ज्ञान मिलता था। शास्त्रों के अर्थ सरल कर खूबी से समझाते और बीच २ में काव्य और दृष्टान्तों से ऐसा अद्भुत रस-उत्पन्न होता था कि, चाहे जितनी देर होजाय तो भी उठने की इच्छा न होती थी।

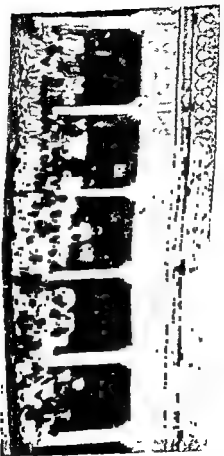
पूज्य श्री के विहार के समय का दृश्य मुझे जीवन पर्यंत याद रहंगा, बाजार में उच्च स्वर से 'जय २' के गगन भेदी आवाज और 'घणी खम्मा' के मारवाड़ी पुकार जो बड़े २ महाराणाओं की सवारी में भी न सुने जाय पूज्य श्री की कीर्त्तिको प्रसारित करते थे। मारवाड़ी स्त्रियाँ जहां पूज्य श्री के पांव गिरे हों वहां की रज श्रोत्र में ले सिर चढ़ाती और मानो वह अमूल्य प्रसाद हो साथ ले जाने के लिये कमाल में बांधती थीं, पूज्य श्री ने मोरवी को इतना अधिक अपने में लीन बना दिया था कि, पूज्य श्री से से विदा होते समय संख्या बद्ध समर लायक श्रावक आंखों से अश्रुपात करते थे। नगरसेठ के भाई दुर्लभजी

वर्तमान को तो मूर्खों तक आगई थी, मेरे पिता दो चार दिन
भीमे भी न थे और पीछे २ सनाला, टंकारा, तथा भामनगर ।
गये थे । स्वर्गवत्सी शंभिनियर गोकुलदास भाई भी सनाले में पुरुष
से विदा होते होते लग गए थे । इन—सरलस्वमायी भोजे भक्तों
फिर से लाभ देने के लिये काठियावाड़ में विशेष ठहराने की स
ही इच्छा थी परन्तु वह पार न पड़ी ।





श्री मोरवी जैनशाळा—मास्तरो अने कार्यवाहको पूज्यश्री पांसं धर्मशिक्षण श्रद्धा करे छे. परिचय—प्रकरण २७.



श्री उदयपुर भ्या. जैन पाठशाला तथा कार्यवाहको.
पत्थर-प्रमाण १५.

अध्याय २६वाँ।

परिचय।

लेखक-शतावधानी पं० रत्नचन्द्रजी महाराज।

प्रवर पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज काठियावाड़ में पधारे तब हम कच्छ में थे। परन्तु वहां उनकी स्तुति सुन उनसे मिलने के लिये मनमें उत्कंठा जगी। सं० १९६८ के साल में कच्छ का रण उतर कर भालावाड़ में आये। लीबडी साधु परिषद् का कार्य पूर्ण हुए पश्चात् हमारा चातुर्मास धोराजी ठहरा था, इसीलिये उस तरफ प्रयाण किया। तब श्रीलालजी महाराज बाँकानेर विराजते हैं ऐसा समाचार सुन सं० १९६९ के आषाढ वद्य १३ के रोज महाराज श्री गुलाबचन्दजी स्वामी, महाराज श्री वीरजी स्वामी आदि ठाणें चार से बाँकानेर पहुंचे। वहां पूज्यपाद के दर्शन हुए। हम उपाश्रय में ठहरे वे भी ठाणें १० से उपाश्रय के पास दशा श्रीमाली की धर्मशाला में ठहरे थे। तमाम दिवस तथा रात्रि के दस बजे तक इधर उधर की ज्ञानचर्चा चलती थी उपाश्रय और धर्मशाला एक दूसरे के इतने समीप थे कि, रात्रि को भी खिडकी में से आमेन सामने एक दूसरे की बातचीत सुनी जा सकती थी।

पाटियावाड़ के दूसरे शहरों की तरह यहाँ भी पूज्यपाद दो व्याख्यान दें, यह पहिले दिन ही ठहराव हो चुका था इसीलिए घर्मशाला में व्याख्यान होता था। उहाँ हम पूज्यपद की वाणी को सुने प्रस्थित रहते थे। किसी समय जब पूज्य श्री मुझे परमाते, तब मैं भी वाक्पिप पर बोलता था। सभा में वाइयों और भाइयों से हाव-बूब भर जाता था। लोगों का पूज्यश्री की वाणी इतनी रम दे रही थी कि, दो तीन घंटे तक या इससे भी अधिक समय तक व्याख्यान होता रहता था। तोभी किसी को इच्छा जान की न होती थी और भी अधिक व्याख्यान होता रहे तो ठक, देखी प्रत्येक को जिज्ञासी रहती थी। व्याख्यान में शास्त्रीय तार्किक उपदेश ने पञ्चानु-ऐनेहासिक स्पष्ट बड़े प्रमाण में आते, उनका शास्त्रीय विषयों के साथ ऐमा मिलान किया जाता कि, श्रोतृगण सब सम्यक् तत्त्वज्ञान घन जाते और कर्णारम समय में अश्रुप्रवाह करने लग जाता था, तथा बीर रम के समय रोमांच गड़गड़ श्रेष्ठ होते थे। व्याख्यान का इस शैली से क्या जैन क्या अजैन सब इतने किश होते कि, दूसरे दिन सुबह कब हो कि, फिर से व्याख्यान प्रारम्भ हो। व्याख्यान का समय हम एक आतुरता से देखता था, सत्रह दिन हम साथ रह, उनमें प्रथम से अतवक वृद्धिगत ठोस देखने में आया था।

- १ ।

दशगण नहीं दिन पूज्यश्री ने परमाया कि, मुझे पत्रपत्रित रूप पढ़ना है। मैंने कहा आपको पढ़ाने, योग्य मैं नहीं। न हों

कहा तुमने गुरुमुख से सुना है तो मुझे पढ़ाओ । मेरा यह निश्चय है कि, कोई भी सूत्र एक समय किसी से पढ़ फिर स्वतः पढ़ूं जिसमें भी चंद्रपन्नति जैसा शास्त्र गुरुगम से ही पढ़ना ऐसा मेरा ईश्वरदा है । तब मैंने कहा, बेशक, आपका आग्रह है तो आप और हम दोनों साथ पढ़ेंगे । उसी दिन से पढ़ना प्रारंभ किया । शास्त्र की एक २ प्रति तो उनके पास रखते दूसरी एक प्रति टीकावाली लेकर दोपहर को एक बजे से संध्या के पांच बजे तक पढ़ना प्रारंभ रखते थे । लगभग पन्द्रह दिन में चंद्रपन्नति सूत्र पूर्ण किया । पूज्यश्री की समझ और प्रज्ञा इतनी तो सरस कि, चंद्रपन्नति से भी कदाचित् कोई गहन विषय हो तो भी वे स्वतः अच्छी तरह समझ लें, और दूसरों को समझा दें, परन्तु एक साधारण सूत्र भी आप खनः न पढ़ें यह भावना कितने अधिक विनय और विवेक से भरी हुई है यह सहज ही ध्यान में आजाता है इसीलिये उनकी स्तुति में कहा गया है कि-

“ विद्याविवादरहिता विनयेनयुक्ता ”

“ प्राचीन या अर्वाचीन अच्छा हो सो मेरा १ । ”

कितने ही वृद्ध प्राचीन पद्धति को ही मानते हैं तो कितने ही युवा नया २ ही उसे स्वीकारते हैं, संचयन में ये दोनों खजाने भूल से भरे हुए हैं । जूना या नया चाह जो हो अच्छा हो उसे स्वीकार और

स्वराज ही उसे त्याग देना यह समझदार मनुष्य का लक्षण है
 पाद पुरानी या नई पद्धति का आग्रह करने वाले न थे, परन्तु
 'मो मेरा' इस मंत्र को स्वीकारने वाले होने से वृद्ध
 युवावर्ग दोनों को एकसे प्रिय हो गए थे। राजकोट के
 का बड़ा भाग धर्म की ओर अभ्रष्टा रखने वाला गिना जाता है
 पूज्यभी के राजकोट के चातुर्मास में नास्तिक कीर्ति में
 युवावर्ग पूज्यपाद की ओर आकर्षित हो आस्तिक बन गया था, ऐसे
 जनों के मुँह से सुना है। बॉकानेर में तो मुझे स्वतः को आ
 हुआ है बॉकानेर की पब्लिक (प्रजा) की ओर से पब्लिक-व्याप
 के लिये जब मुझ से आग्रह हुआ तब बॉकानेर के जैन युवाव
 स्कूल में आम व्याख्यान देने के लिये व्यवस्था की। बॉकानेर
 राज साहिब को भी आमंत्रण दिया। तब दरबार अपने स
 सहित वहाँ पधारे। तमाम असलदार तथा प्रत्येक वर्ग के लोगों
 सभा खूब भर गई। इस तरह कुछ अंश में और मारवाड़
 विशेष अंश में जूने विचारवाले आम व्याख्यान की पद्धति
 नई कहकर ट्रेकेल डेते हैं जब पूज्यपाद उस रास्ते से निकले व
 * खे स्कूल में पधारने की प्रार्थना की गई, आप स्वयम् वहाँ पध
 गए इनका ही नहीं परन्तु चालू विषय को संजीवन बनाने के लि
 आप इतने सरस बोले थे कि, उसे सुनने वाली सभा एक तार ली
 हो गई थी। पुराने शास्त्रीय विषय की नई शैली से चर्चा करने।

वनमें ऐसी खूबी थी कि, पुराने तथा नये दोनों वर्गों को वह रुचि-
कर हो जाती थी । दरबार तथा अन्य श्रोताओं ने दूसरे दिन किङ्
व्याख्यान के लिये आमंत्रण दिया, तब दूसरा व्याख्यान वीसा श्रीमाली
की धर्मशाला में दिया गया था । दोनों व्याख्यानों का असर आम
प्रजा पर अद्भुत हुआ । सारांश सिर्फ इतना ही कि, पूज्य श्री रुढि
को चाहे मान देवे तोभी आंतरिक योग्यायोग्य का विचारकर
रुढि से आत्मा के भेदाभेद विचार को अधिक मान देते थे । इसी
लिये नये और पुराने दोनों पद्धति को पसंद करने वाले जल्दी अनु-
कूल हो जाते और पूज्य श्री जिसमें अधिक भेद हो उसका अनु-
करणकर लोगों को लाभ देते थे ।

पूज्यपाद का साहित्य पर शौक ।

पूज्य श्री जैन-शास्त्र के समर्थ विद्वान् थे । बहुसूत्री, गीतार्थी,
शास्त्रवेत्ता, आगमवेत्ता जो २ उपनाम उन्हें लगाये जाँय वे उनके योग्य
हैं । मारवाड़ की ओर मुनिवर्ग में संस्कृत का अभ्यास करने की प्रथा
प्रचलित होती तो आचार्य श्री संस्कृत के समर्थ पंडित होते, परंतु
उस तरफ इसका रिवाज न होने से उनकी यह इच्छा मन में ही
रह गई थी । वाँकानेर में थोड़े दिन के परिचय पश्चात् पूज्य श्री ने
निवेदन किया कि, अपना भावी चालुर्मास साथ हो तो तुम्हारे पास
बने तो चांदमलजी लोते माघ को संस्कृत का अभ्यास कराऊँ

और मैं भी संसृति के न्याय के पुस्तक सुनूँ तथा उन पर विचार करूँ। पूज्य श्री की इस दरखवास्त से मेरे मन में अत्यंत सत्साह बढ़ा परंतु हमारे साम्प्रदायिक कितनी ही रूढ़ियाँ और भावकों की रूढ़ियों का मध्यन न होता तो एक चातुर्मास तो क्या परंतु प्रतिवर्ष साथ रह कर शास्त्र-विचार और साहित्य-सेवा का लाभ परस्पर लेते दे। परंतु वर्तमान समस्या के बावजूद तीन कठिनाइयों का विचार करना था। एक तो धोराजी और मोरवी के चातुर्मास में हेरफेर करना कि, जिसके लिये समय बहुत बड़ा रहा या दूसरा इसमें लांबई के बीच की और पूज्य श्री की सम्मति प्राप्त करना। तीसरा जिस प्राम में रहना बड़ा के भावकों की भी सम्मति लेना चाहिये। मध्य के कारण के लिये तो पूज्य श्री ने यहाँ तक कहा था कि, मैं अपने दो साधु लांबई भेज कर मंजूरी माँगाऊँ और मुझे विश्वास है कि, लांबई सच के अपेक्षित मुझे जात देने के लिये जरूर मंजूरी देंगे तो यह, कठिनाई दूर हो जायगी, परंतु बीच में एक तकलीफ यह थी कि, धोराजी खाली न रहे और सबके पातु मास मुकरर होगए थे, इसलिये बड़ा जाने वाला काई न था, तब पूज्य श्री ने कहा कि, तुम्हारे चार ठाणों में से दो ठाणों धोराजी पधारें और दो ठाणा मोरवी चलें। मोरवी का चातुर्मास फिर सके ऐसा न था, इसलिये एक तीसरी कठिनाई दूर करने की थी, जिसके लिये कोशीश की गई परंतु अन्ततः के योग से इच्छा पार न

पड़ी । चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् एकत्रित हो और अमुक्त समय तक साथ रह अभ्यास करना ऐसा विचार मन में धार प्रथम आपाद वद्य १ को पूज्य श्री ने मोरवी चातुर्मास करने के लिये, वाँझनेर से विहार किया और हमने धोराजी की ओर विहार किया । मोरवी का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् कितने ही कारणों से पूज्य श्री का मारवाड़ की ओर पधारना होगया । अंतराय के योग से फिर संगम न हुआ सो नहीं हुआ । मनकी इच्छा मन में ही रह गई । इस पर से पूज्य श्री का विद्या की ओर कितना शोक था उसका कुछ खयाल हो सकेगा ।

मिलनसार वृत्ति ।

इस वृत्ति के लिये इस तरफ के कई मनुष्यों के मुह से मैंने सुना है और स्वयं भी अनुभव किया है कि । चाहे जैसा अनजान मनुष्य आया हो तो भी वह मानो पूर्व का परिचित ही है उसी तरह उसके साथ पूज्य श्री बातचीत करते थे । आचार विचार में चाहे जमीन आकाश जितनी भिन्नता हो तो भी दोनों के बीच में मानो तनिक भी भिन्नता न हो बिल्कुल कपट रहित उसके साथ बातचीत करते कि, वह मनुष्य अपने मन में रही हुई भिन्नता का दूर करना अपना कर्तव्य ही समझने लगता था ।

गुण-प्राप्तता ।

इस तरह मारवाड़ के कितने ही साधु आते हैं परन्तु उनमें अपने आपार की विशेषता बताने के साथ दूसरों की निन्दा करने का रोग विशेषता से देखा जाता है । पूर्य भी में आपार इत्यादि की विशेषता होते भी अपने मुँह से बड़े दर्शाना या उसकी समानता कर दूसरों की हलकाई या शिथिलता बताना या किसीकी निन्दा करने का स्वभाव बिरुद्ध भी नहीं पाया गया । इसके प्रति-कूल उनकी गुण-प्राप्त वृत्ति का कई बार परिचय हुआ है व्याख्यान के समय भी अपने परिचित साधु ब्राह्मी भावक या अन्य कोई गृहस्थ के गुणों का आपको परिचय हुआ हो तो उस गुण के कारण आप अपने मुककंठ से उसकी प्रशंसा करते थे, चाहे वह अन्य रीति से अपने से हलके हों तो भी वे उसके उस गुण को ले उसकी प्रशंसा करने में तनिक भी न हिचकते थे । यह गुण-प्राप्त वृत्ति सचमुच प्रशंसनीय है । इस वृत्ति को हमारे मुनि और भावक मान दें तो समाज के क्लेश कितने ही अंश में दूर हो जाँच इन सब गुणों के कारण हमारा सहवास इतना रसमय होगया कि, विशा होते समय दोनों के हृदय मरगपये और सहवास रूप आनन्द वाग में आभय खेने का फिर कब समय उपस्थित होगा उसकी सोच करते थे । उस समय थोड़े ही दिनों में फिर मिलने की आशा का आभासना या परन्तु “ दैवी विचित्रा गतिः ” मनुष्य

क्या भारता है और क्या होता है उसी तरह हुआ। विदा होने पर स्थूल शरीर रूप से तो इकट्ठे न हुए परन्तु “ गिरौ मयूरा गगने पयोदा ” इस कहावत के अनुसार जिसका जिस पर प्रेम है वह उससे दूर नहीं है अर्थात् आंतरिक गुण स्मरण रूप सानिध्य ही था। फिर कभी संगम होगा यह भी आशा अवशिष्ट थी, परन्तु अंतिम समाचार ने यह आशा भी निराशा में परिणित कर दी। अब सिर्फ उनके गुणों का स्मरण कर उनके लगाए बीजों का सिंचनकर उन्हें फलने फूलने देना है। उनकी यादगार में सब से पहिले तो यह काम करना है कि, सम्प्रदाय में फैला हुआ क्लेश किसी भी तरह भोग दे दूर करना चाहिये। संयुक्त बल बढ़ा उन-के लगाये ज्ञान और आनन्दरूपी बाग में से सुवासित पुष्पों की परि-मल सुगंध दिगंत पर्यंत प्रसरती रहे उसमें हाथ बटाना है। पूज्य पाद के गुण अनेक हैं मुक्त में वे सब वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं। अवकाश भी कम है अर्थात् इतने ही से संतोष मान पूज्य पाद की आत्मा को परम शांति मिले, ऐसी इच्छा करता हुआ यहां विराम लेता हूँ, ‘सुष्टेपु किं बहुना’ ॐ शांतिः।



अध्याय ३० वाँ।

काठियावाड़ के लिये दिया हुआ
अभिप्राय।

काठियावाड़ में अनुक्रम से विहार करते हुए आचार्य श्री भाषा-
नगर पधारे। रास्ते में अनेक ग्रामों में अत्यन्त उपकार हुआ। भोजन-नगर
में उस समय लीवड़ी सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध ब्रह्मा-पं० मुनि श्री
नागजी स्वामी भी विराजते थे। परस्पर ज्ञानधर्मों और वार्तालाप
से आनन्द होता था, व्याख्यान एक ही स्थान पर होता था। और पं०
श्री नागजी स्वामी वहाँ पधारते थे। तब उनको योग्य आसन-आदि
का सम्कार तथा परस्पर विनय बहुत रखा जाता था। कई समय
पूज्य श्री अपना व्याख्यान बन्दकर पं० नागजी स्वामी का व्या-
ख्यान सुनने की आतुरता दिखते और उन्हें व्याख्यान देने के
लिये आमन्त्रित करते थे। पंडितजी नागजी स्वामी लिखते हैं कि, हमने ऐसे
गुणप्राप्त साधु दूसरे नहीं देखे। व्याख्यान में दृष्टांत देने और
सिद्धांत के साथ उन्हें घटित करने को उनमें आश्चर्यजनक
शक्ति थी और जिससे लोग अत्यन्त आकर्षित होते थे। तथा उस
का गहन प्रभाव गिरता था, सबमुख कड़ा जाय तो इस सम्बन्ध में

उनका अनुभव और सामर्थ्य अधिक थी। दोपहर के समय शान्त चर्चा होती। उत्तराध्ययन, भगवती, सूयगन्धर्व, इत्यादि मंत्रों सम्बन्धी अनेक गहन चर्चाएं होतीं। तब वे कहने कि, हमें यह ज्ञान नहीं मालूम हुई है, इसलिये आपकी आज्ञा हो तो हम आग्रह करें। हमेशा आग्रह करते कि, आप मालव्या मारवाड़ में पधारो, मैं रणलाम तक सामने आऊँ और साथ २ घूम कर देश का अनुभव कराऊँ, मुझे विद्वानों के लिये अत्यन्त मान है। हम दस दिन साध रहे, पूज्य श्री अपने विहार का समय किसी को न बताते थे, परन्तु मुझे (जगजी स्वामी), बताया था। मैं पौन कोस तक उन्हें पहचाने गया था। वहां थोड़े समय तक वैठ प्रेम पूर्वक बहुत बातें कहीं और जिततरह अधिक समय से पास रहने वाले विदा होते हैं उस तरह गद्गद होते विदा हुए थे। अंत में बतलाना यह है कि, उनके सहवास से हमें अत्यन्त आनन्द हुआ। उनकी मिलनसार शक्ति और दूसरे मनुष्य को आकर्षित करने की शक्ति कोई अलौकिक ही थी, इत्यादि २।

काठियावाड़ के प्रवास में आचार्य महाराज को अत्यन्त संतोष मिला। वे व्याख्यान में कई बार फरमाते कि, काठियावाड़ के लोग सरल-स्वभावी हैं। शिक्षा में आगे बढ़े होने से वे शास्त्र के गहन विषयों को अत्यन्त सरलता से समझ सकते हैं, यह देख मुझे अत्यन्त आनन्द होता है और मेरा श्रम सफल होता है, आ

और का अभ्यास देख मुझे अस्यन्त संतोष हुआ है। दूसरे देशों की अपेक्षा काठियावाड़ में जीव-हिंसा बहुत कम होती है और मांसा-शर का प्रचार भी कम है, यह संतोषदायक है। काठियावाड़ में विपरीत वाले साधु, विद्वान्, मायालु, अवसर के ज्ञाता और विवेकी हैं, वे मारवाड़ की तरफ विचरें तो वे देश को अत्यन्त लाभ पहुंचा सकते हैं। पूज्य श्री मारवाड़ मेवाड़ के लोगों से कहते हैं कि, काठियावाड़ इत्यादि वैरयात्रों से दूर रहने वाले देश में बसेन वाले गृहस्थों के आंगन बालकों के कज्जोन से शोभा बढ़ा रहे हैं। इसलिये वहां दत्तक या गोद लेने के रिवाज या कानून की आवश्यकता नहीं है। भाग्य से ही सैकड़ों पाच मनुष्य कम नसीब वाले संतान रहित होंगे अपने देश की तरफ और मारवाड़ की ओर देखि डालो। स्वपुत्र कितने हैं और दत्तक कितने हैं ! यह सब अनर्थ वैरयात्रों ही बुद्धि का आभारी है। लग्न जैसे शुभ प्रसंग में भी तुम्हारे परमाणु उन कुतदाओं के नाच के अपवित्र पुद्गलों से अपवित्र होते रहेते हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते कोमल बालकों के समीप ही उनका नाच कराने में तुम बरपोड़े और महप की शोभा समझते हो। इसलिये तुम विष-शुद्ध रोपकर सबका सिंचन करते हो। यह भूल जाते हो।

संगीत का शोक हो तो घर की स्त्रियों को, बालिकाओं को सिखाओ कि, तुम्हें गुलामगीरी में इतना तो आराम मिले और जीवेजी जेल जैसी जन्म कैद में सुख प्राप्त समझो। संगीत का सचा

शौक हो तो प्रभु-भक्ति और परोपकारादि जीवन-कर्तव्य के काव्य क्या कम हैं ? कि, तुम भ्रष्ट, नीच और सड़े हुए परमाणु वाली नीच नारियों को मकान तथा मंडप में बुलाकर तुम स्वतः अपने और अपनी स्त्रियों के जीवन तक बिगाड़ते हो ? भाइयो ! चेतजो, मेरे जैसी सच्ची कहने वाले थोड़े मिलेंगे । बहुत पुण्योदय से मनुष्य-जन्म मिला है । उत्तम क्षेत्र उत्तम गोत्र, और नीरोगी काया ये सब व्यर्थ न गमाते—एक क्षणमात्र भी प्रमाद न करते, महंगे मनुष्यभव को सार्थक करना याद रखियो” ।

पूज्य श्री के प्रभाव से काठियावाड़ में बहुत से सज्जन श्रीजी के अनन्य भक्त बन गए थे । जहां २ श्रीजी महाराज ने पदार्पण किया वहां २ के श्री संघ ने अत्यंत हर्षोत्साह से पूज्य श्री की सेवा-भक्ति की जिससे पूज्य श्री के चित्त में अत्यंत प्रसन्नता हुई, परंतु सम्प्रदाय का परिवार मालवा मारवाड़ में होने से उस और प्रधारने की पूज्य श्री को आवश्यकता जची तथा मारवाड़ में विचरने वाली आर्याजी ❀ श्री नानीवाई की तबीयत अत्यंत खराब

❀ वे इस जमाने में एक लब्धिसम्पन्न आर्याजी थीं । उन्होंने संसारावस्था में संसार की विचित्रता अनुभव की थी इस लिये उनके हाड २ की मीजी बैराग्य रंग से रंगी हुई थी । वे हमेशा तपश्चर्या में ही लीन रहती थीं, एक माह में भाग्य से ही चार पांच

हो जाने से एवम् पूंज्य भी के दर्शन की तथा उनके पास से आ-
लोचना प्रायश्चित्त लेने की प्रबलतर अभिलाषा है ऐसी रात्रि मिलने

दिन आहार पानी लेती और वह भी नीरस सूत्रों के स्वाध्याय में
ही हमेशा तल्लीन रहती थी। मुझे इनका स्वाध्याय महामंदिर में
धुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। कितनी ही आर्याजी की बीमारीय
बन्धोंमें हाथ फिंगकर मिटाई थी। परंतु यह बात वे प्रकाशित न
करने देती थी, एक आर्याजी की आखें अनुभवी डाक्टर भी अच्छी
न कर सके थे वे आखें आर्याजी ने भट्टाई के पारण्य के दिन फक्त
अपनी जिह्वा केर कर दीपतुल्य कर दी थी और उसी आख में
वे आर्याजी व्याख्यान वाचने लग गई थी। ऐसे २१ अनेक समारंभ
अनुभव किये हैं परंतु वे तमाम यहा प्रकाशित कर देने में भोला
मध्यजन वर्ग प्रतिकूल अर्थ लगावेगा और शुद्ध संयम से धातवध्या
के फलस्वरूप ऐसी लब्धियों की इच्छा में रुककर अरुता सीध
चूकेगा। इन आर्याजी की संस्मरणस्था के पति के पूर्व कर्मानुरूप
'पत' का रोग लग गया था और इसीसे उनकी मृत्यु हुई थी। इस
कुप्रवृत्ति मुझे के शरीर को रमशान में ले जाने के लिये उनके सगे
संबंधी भी न आये थे। नानूवाई ने केइयों से प्रार्थना की परंतु जब
किसी को दया न आई तब मुझे में असंख्य जीव उत्पन्न होने के
अव से आपने हिम्मत धारण कर कष्टों लेंगे करने प्राणप्रिय

से पूज्य श्री ने मारवाड़ की तरफ विहार किया और भावनगर से बहुत थोड़े दिनों के मार्ग से वे थोलाका धंधुका हो अहमदाबाद पधारे ।

अहमदाबाद में शहर से १-१॥ माईल दूर सेठ कचरा भाई लेहरी भाई का बंगला है वहां पूज्य श्री ठहरे थे, परन्तु व्याख्यान में लोग अधिक संख्या में उपस्थित होने लगे तब सेठ केवलदास त्रिभुवनदास के विशाल बंगले में पूज्य श्री महाराज व्याख्यान देने लगे । व्याख्यान में मंदिरमार्गी भाई भी अधिक संख्या में हाजिर होते थे और महाराज श्री को अत्यन्त भाव युक्त आहार पानी वहगते थे । अहमदाबाद में आचार्य महाराज के दर्शनार्थ मारवाड़ प्रभृति देशान्तों से सैकड़ों स्वधर्मी आये थे । जिनका स्वागत सेठ जेसिंग भाई इत्यादि ने प्रेम पूर्वक किया था ।

मखियाव के ठाकुर सरदार देवीसिंहजी रायसिंहजी जो चावेली, गरासिया और ठाकुर हैं वे दर्शनार्थ आते । और व्याख्यान सुन अत्यन्त संतुष्ट होते थे तथा कई गरासीयों से वे पूज्य श्री की तारीफ करते थे ।

पति को पीठ पर उठाकर स्वतः अग्निदाग दे आई थी । उत्कृष्ट वैराग्य इस अनिवाये अनुभवका महाभारी कृतज्ञ था ।

अहमदाबाद तथा गुजरात में अपने श्वे० मूर्तिपूजक भाइयों की धर्मशालाएं अधिक हैं । स्थानकवासी तथा देरावासी भाइयों के बीच वहां जैसा चाहिये वैसा भ्रातृभाव न होने पर भी आचार्य श्री जब अहमदाबाद, पाटण, सिद्धपुर, मेसाणा इत्यादि शहरों में पधारे तब अपने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक भाइयों ने भी उनकी हर एक रीति से सेवा शुभूषा की थी और भक्ति पूर्वक आहार पानी आदि पहराने का काम उठाया था । इतनाही नहीं परन्तु सैकड़ों मूर्ति पूजक भाई व्याख्यान भवण करते थे कदाचित् कोई आवश्यक योग्य वर्तमान न रखते तो उन्हें उनके अन्य स्वामी बन्धु वपाक्षम दे पूज्य श्री के सन्मुख करते थे ।

अहमदाबाद में श्रीजी पिराजमान थे तब पालनपुर सुभाषकों का सत्याग्रह होने से पूज्य महाराज पालनपुर पधारे और लगभग २० दिन रहे । इस समय भी मेहताजी साहिब की धर्मशाला में ही पूज्य श्री ठहरे । उस समय पालनपुर के नेक नामदार खुदाबंद नवाब साहब बहादुर सर शेरमहम्मद खानजी साहिब बहादुर जी, सी. आई. ई. कि, जिनका सब धर्मों पर अचल प्रेम था वे स्वयम् अपने २ मुसादियों के साथ तथा स्टाफ को साथ ले पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और वे हर एक घरे का रहस्य जानने वाले थे इस लिये लगभग दो घंटे तक धर्म-चर्चा की थी ।

और फिर पूज्य श्रीजी की अत्यन्त तारीफ की थी। थोड़े दिनों बादही दूसरे वक्त दर्शनों के वास्ते पधारकर बहुत सदुपदेश सुना था और दोनों वक्त वहां के ज्ञान खाते में अच्छी रकम दे मदद की थी।

पूज्यश्री महाराज का पवित्र धार्मिक उपदेश और सामाजिक शिक्षा तथा व्यावहारिक ऐतिहासिक उपदेश से पालनपुर की जैन-जाति में पूज्य-भाव की पूर्णता छा गई थी और बाद पूज्य श्री के अवसानतक कायम रही थी इतना ही नहीं परन्तु वर्तमान पूज्यश्री की ओर भी ऐसा ही भाव कायम है और जहां पूज्य साहिब चातुर्मासमें होते हैं वहां २ पालनपुर के श्रावक अधिक दिन ठहरकर उनके उपदेशामृत का पान करते हैं।

पालनपुर से अनुक्रमशः विहारकर मारवाड़ की भूमि को अपने मंदरज से पावन करते हुए श्रीजी महाराज पाली पधारे वहां पर श्री चातुर्मासहजी की दीक्षा हुई और वहां जोधपुर संघ की विनन्ती पर से पूज्य श्री ने सं० १६७० का चातुर्मास जोधपुर किया। इस चातुर्मास में महान् उपकार जोधपुर में हुए वे अवरुणनीय हैं।



अध्याय ३१ वां

मौलवी जीवदया के वकील

जोधपुर (थातुमांस) पूज्य श्री के व्याख्यान में स्वमंती अन्य-मंती बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे । सरकारी वीपखाने के कार्यकर्त्ता माली नानूरामजी कि जो पूज्य श्री के परम-भक्त हैं उन्होंने करीब २०० राजपूत लोगों को उपदेश दे उनमें से कितनों से जीवन पर्यंत शिकार छोड़ा था और कइयों से अमुक वर्षों तक तथा कइयों से अमुक २ दिनों के लिये शिकार बंद कराया था ।

जोधपुर के मौलवी सा० सैयद आसदुल्ला M. R. A. S (लंडन) F. T. C. कि जो राज्य में बड़े मोहदेवार थे वे भीयंत नानूरामजी माली के साथ पूज्य श्री के पास आये । व्याख्यान सुन कर बड़ा आनंद हुआ और एक ही व्याख्यान से ऐसा अद्भुत उत्तर हुआ कि, उन्होंने जिंदगी भर के लिये मांस-भक्षण करने का त्याग किया तथा परखी का त्याग किया और घर की स्त्री के लिये मर्यादा की । मौलवी साहिब के साथ दूसरे भी पांच मुसलमान भाइयों ने जीवन पर्यंत मांस खाना छोड़ दिया था । मौलवी साहिब के तथा श्री नानूरामजी साहिब के संयुक्त प्रयासों से करीब १५० मनुष्यों ने

पूज्यश्रीना मुसलमीन भक्त.



मौलवी सैयद आसद अली M. R. A. S. (लंडन)

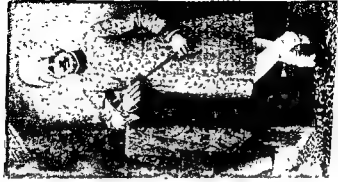
F T S नोपण

कलिका — — —



श्री पंचिड
ठाकोर साहेब.

परिवय
प्रकरण १६.



ठाकोर श्री चैनसिंहजी साहेब.

स्व. ठाकोर साहेब श्री दानार्थसिंहजी.

पूज्य श्री के पास आ कितने ही महीनों के लिये मांस खाना छोड़ा था और दूसरे भी कितने ही लोगों ने मांस भक्षण करना सर्वदम के लिये त्याग दिया था ।

मौलवी साहिब ने एक जैन-मुनि के पास से मांस खाने के सौगंध लिये यह इकीकत उनके ज्ञातिवाजों ने सुनी तो उन्हें उन्होंने जाति बाहर निकालने की धमकी दी । पूज्य श्री ने भी यह बात सुनी फिर तब वे पूज्य श्री के पास आये तब पूज्य श्री ने कहा कि “भाई ! आप आपकी प्रतिज्ञा पर अटल रहेंगे तो न्याय हो जायगा” मौलवी साहिब अपनी प्रतिज्ञा पर मेरु की तरह डट रहे और जिसका फल यह हुआ कि, जो उनके आदि में विरोधी थे वे ही उनके प्रशंसक बन गए इतना ही नहीं परंतु मौलवी साहिब की सत्प्रेरणा से उन्होंने भी मांस खाना त्याग दिया यों अपनी ज्ञाति के कई मनुष्यों को आपने अपने पक्ष में कर लिया और उन्हें भी मांस खाने का त्याग कराया । मौलवी साहिब हमेशा पूज्य श्री के पास आते थे वे अब भी विद्यमान हैं और उन्होंने *जीवरक्षा के महान् कार्य किये हैं और कर रहे हैं इन गृहस्थ के किये हुए उपकारों का वर्णन “परिशिष्ट” में पाँछे किया है ।

* मौलवी साहिब एक समय रेवाड़ी गए । वहां बहुत सी गायें फटती थीं यह देख उन्हें बहुत दुःख हुआ । यहां रेवाड़ी में उनके एक भानेज डाक्टर थे । उन्होंने कहा कि ‘हम आपकी क्या

यहां चातुर्मास करने को पूज्य भी पथारे इसके पहिले पूज्य भी शेषकाल में भी पथारे थे। उस समय जोधपुर के धर्म-परायण सुभावक

न्यातिर तबजो करें ? तब सैयद आसदखली साहिब ने कहा कि, यहाँ सैकड़ों गाये कटती हैं उन्हें देख मेरा दिल बहुत पचड़ाता है किहीं भी तरह इनका कटना बंद हो जाय वो अच्छा हो। उनके मायेज ने कहा कि, मैं बच कराने की कोशिश जरूर करूंगा। इस समय में बहा सेग खला और एक अमेज अमलदार ने सेग की खत्याति का कारण डाक्टर से पूछा जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि, यहाँ सैकड़ों गाये कटती हैं, इनके परमाणु बहुत अशुद्ध रहते हैं इसलिये उनके अनेक प्रकार के विप्लवे जीव जंतुओं की खत्याति होजाना संभव है, वरिष्क अमलदार ने गोबध बंद करवा सब कसाइयों की सही स्ती सुना है कि, ये महाराज भी कलौदी में भी श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे जोधपुर में गोशाला न होने से माली नानूरामजी ने रु० १०००) की जगह गोशाला के लिये अर्पण कर दी थी "महाराज सुमेर गोशाला" नाम रख फंड प्रारंभ किया गया और पूज्य भी के दर्शनार्थ आये हुए गाम पर गाम के मिल प्राय, २००० इकठे होगये, जोधपुर कौंसिल के मेम्बर श्रीमान् श्यामविहारी मिश्र आदि कई सज्जन गोशाला के कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लेते थे—इसके सिवाय इस चातुर्मास में करीब दो हजार बकरों को अन्न दान दिया गया था।

फिरतमलजी मूथा (बंदनमलजी साहिब के पिता) वे जोधपुर बाहर के शनिश्चरजी के मंदिर में संथारा किये बैठे थे। एक समय पूज्य श्री फिरतमलजी मूथा को दर्शन दे पीछे फिरते थे तब जगत सागर तालाब पर एक मुसलमान हाथ में बंदूक लिये पत्नी को मारने की तैयारी में था उसे श्रीजी महाराज ने दूर से पत्नी की ओर बंदूक तानते देखा तब पूज्य श्री ने बड़े आवाज से बुलाया "ओ अल्ला के प्यारे ! खुदा के प्यारे ! खुदा के प्यारे ! खामोश ! खामोश ! वह आवाज सुन । वह मुसलमान इधर उधर देखने लगा दूरसे साधु को आता देख उसने संतोष पकड़ा। पूज्य श्री त्रिलोक समीप पहुँचे तब उसने नमस्कार कर कहा कि ' महाराज ' मेरी स्त्री बीमार है और उसकी दवा के लिये इस धनंतर पत्नी का मांस हकीमजी ने मंगाया है इसलिये उसे मैं मारता था । उस समय बहुत थोड़े में परंतु बड़े प्रभावोत्पादक बोध वचन श्री जी महाराज ने उस मुसलमान से कहे इसलिये इससे उसका कुछ हृदय पिघल गया परंतु उसने कहा कि, इस पत्नी को तो मैं अवश्य मारुंगा कारण न मारुं तो शायद मेरी स्त्री के प्राण न बचें । तब पूज्य श्री ने कहा कि " हम फकीर हैं हमारे वचनों पर विश्वास रख तुम इस पत्नी की जान बचावोगे तो अच्छे कार्य का अच्छा बदला तुम्हें मिले बिना न रहेगा । दूसरों को सुख देने से ही आप सुखी हो सकता है। इसपर से यह मुसलमान महाराज श्री की

आशा सिर बढ़ा पछो को अमय दान दे अपने घर गया और बिना दवा किये ही उसकी खाँ की तनियत सुघर गई. जिससे उसे अपार आनंद हुआ । और महाराज भी के पास आकर रहने लगा कि, आपकी कृपा से मेरी स्त्री को आराम हो गया है—आप सबे कधीर हैं फिर वह सुप्रलमान जीव मारने की सौगंध महाराज से में कृतकृत्य हुआ ।

इस चातुर्मास में तपस्वीयों भी, बहुत हुई. तपस्वीजी श्री छगनजालजी महाराज ने ६५ उपवास पञ्जालालजी महाराज ने ४९ उपवास किये वे सती श्री सौभाग कुवरजी ने ३९ उपवास किये वे तपस्वीजी सतीजी श्री नानकुंवरजी ने चार माह में १० दिन आहार लिया था पूज्य श्री ने तथा अन्य साधियों ने एकान्तर आदि विविध प्रकार की तपस्वीयों की थी ।

तपस्वीजी महाराज छगनजालजी के ६५ उपवास के पारणा के दिन पूज्य श्री मरुचन्दजी भंडारी के घर गोबरी गद भंडारीजी का पुत्र गौरीदासजी चार वर्ष से बाने के दर्द से पीड़ित थे उनसे बिल्कुल चला भी नु जाता था । दो मनुष्य उसकी मुजार् पकड़ पूज्य श्री के पास मेढी पर से नीचे लाये, गौरी-दासजी को पूज्य श्री के दर्शन करते बड़ा प्रेम सञ्चल हुआ मद्गद कद से वे पूज्य श्री के दर्शन कर कहने लगे महाराज । मैं चार २

घर्ष से दुखी हूँ मेरे लिये मेरे पिताने दवाई में हजारों रुपये खर्च कर दिये हैं परन्तु आराम नहीं हुआ। तब पूज्य श्री ने कहा कि, दवाई त्याग दो नवकार मंत्र गिनो और श्रद्धा रखो। उसी दिन से उन्होंने दवाई छोड़ दी और नवकार मंत्र गिनना आरंभ किया। थोड़े ही समय में उन्हें बिल्कुल आराम होगया और वे पूज्य श्री के व्याख्यान में पाँच २ चलकर आने लग गये थे। पहिले वैष्णव-धर्म पालते थे परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से सब कुटुम्ब जैन-धर्म पालने लग गया।

इस तरह जोधपुर के चातुर्मास में अनेक उपकार हुए। जोधपुर के इस चातुर्मास का ध्यान दिलाने के लिये कायस्थ ज्ञाति के एक अजैन डाक्टर रामनाथजी कि, जो अभी गढ़मालोर में हैं अपने स्वतः के शब्दों में लिखते हैं।

पूज्य श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास मारवाड़ के मुख्य नगर जोधपुर में हुआ, उस समय इस दास को भी आपके दर्शन व सत्संग और उपदेश सुनने का गौरव प्राप्त हुआ। आपकी कांति, चित्त-शुद्धि और तपश्चर्या के परमाणु का आभास इतना जबरदस्त पड़ता था कि, श्रोता लोग हर्षरूपी सुधा-समुद्र में लहराते हुए मानों तुरियावस्था का आनंद प्राप्त करते थे।

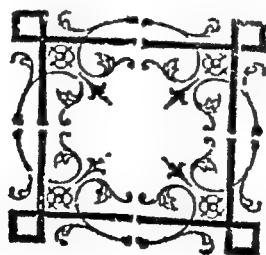
आपके सदुपदेश का लाभ उठाने की आकांक्षा के लिये नियत समय से पहिले ही राज्य के उत्साही कर्मचारी, पंडित लोग और व्यापारी समूह का भेला प्रातःकाल और सायंकाल संचालन भर जाता था शरीर में खेद भी उन दिनों या परंतु इसका पचभूति पुतला व्याख्यान के समय तनिक भी विचार न कर आप समय पर बराबर उपदेश करमाते आपने उपदेश अर्थार्थ केवल हिन्दू ही नहीं किन्तु कई मुसलमान भाई भी लाभ उठाते और जीव-हिंसा पर घृणा प्रकटकर “भाईसा परमोधर्म” के अटल सिद्धान्त पर विनय करते और अंगीकार कर स्वयं लाभ उठाकर देते, परोपकारी योगीजनों के गुणाऽनुवाद गाकर धन्यवाद देते थे। आपके जोधपुर विराजने से जो २ लाभ देश को, सी पुरुषों को हुए हैं उनका प्रकट करना सुख लेखनी की शक्ति के बाहर है किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि:—

(१) कई अधिकारी आरमाओं का संशय दूर होकर जीव-ध्या पर परिपूर्ण विश्वास हुआ और कई पुरुषोंने विना छाया जल, रात्रि भोजन और जमीरुद इत्यादिओं को निशिद्ध समझ उनके त्याग का लाभ उठाया।

(२) कई मासाहारी चित्रियों और अन्यमती लोगों ने मांस अंगीकार करना छोड़ दिया।

(३) इस दास को भी श्री श्री श्री १००८ श्री पूज्य धैकुंठ-
भासी महाराज के उपदेश में उस साल ५१ मांस खाने वालों से
(जो इलाज में आये) मांस के दोष दिखाकर उसका बुरा अवसर
उनके हृदय व कलेजे पर होता है ऐसा समझा छुड़ाने का शुभ
अवसर प्राप्त हुआ ।

(४) मेरे मित्र सैयद अमदअली साहिब एम. आर. ए.
एस. (जो जोधपुर में मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं में सर्व
प्रिय हैं और खुद भी मांस भक्षण नहीं करते) ने भी महाराज के
उपदेश से कई मुसलमानों का मांस छुड़वाया और उन दिनों घास
की कमी में जो लूली, लंगड़ी, दुःखित गौ माताएं बिना रक्त के थीं,
एक स्थान मुकर्रर कर उनके कण्ठ मिटाने का प्रबंध किया



अध्याय ३२ वाँ ।

विजयी विहार ।

जोधपुर से अनुक्रमशः विहार करते पूज्य श्री नयेनगर पधारे वहाँ मुनि श्री देवीलालजी स्वामी का मिलाप हुआ जब काठियावाड़ में पूज्य श्री विचरते थे तब जाकरा वाले संतों के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया कि, मानवा में पधार आप उचित निर्णय करें परन्तु जयपुर के भावकों ने भाँजो महाराज से जयपुर पधारने की प्रार्थना की थी इसके उत्तर में उन्होंने जयपुर पधारने के लिए कुछ आश्वासन दिया था इसलिए उन्होंने जयपुर ही फिर भाले की ओर पधारने का विचार दराया तब देवीलालजी महाराज ने भी जयपुर पधारने की इच्छा प्रकट की ।

नयेनगर में कुछ समय पूज्य श्री के पधारने से अपूर्व आनन्दोत्सव छा रहा था पूज्य श्री तथा देवीलालजी महाराज के सिवाय पूज्य श्री चर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री नंदलालजी महाराज उ था ५ तथा श्री पन्नालालजी के बलचंदजी महाराज ठाण्डा ७ तथा आचार्य श्री के मुनिवरों में से मुनि श्रीलालचंदजी सोमलालजी आदि कुल ५४ मुनिराज तथा ३३ भार्याजी वस

समय वहां विराजती थीं पूज्य श्री की विद्वत्ता विचक्षणता तथा भिन्न २ सम्प्रदाय के छोटे बड़े सब मुनियों के साथ यथोचित वात्सल्यता और सम्मान पूर्वक सबको संतोष देने की अपूर्व शक्ति के कारण परस्पर जो आनन्द की वृद्धि और धर्म की उन्नति हुई वह अवर्णनीय है ऐसे मौकों पर भिन्न २ मस्तिष्क के संख्याबद्ध साधु होने पर परस्पर वात्सल्यता रहना और एक ही स्थान पर व्याख्यान होना यह सत् परम प्रतापी आचार्य महाराज की विचक्षणता और पुण्य वाणी का ही प्रताप है ।

तपस्वीजी श्री मुजवानचंदजी महाराज के तपश्चर्या के पूर पर पूज्यश्री के अपूर्व वैराग्य युक्त सदुपदेश से तपश्चर्या स्कंध, दया, पौषध, त्याग, प्रत्याख्यान, जीव-रक्षा आदि अनेक उपकार हुए । चार आवश्यक भाइयों ने जोड़े से ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकृत किया दूसरे भी अनेक नियम व्रत स्वंधादि हुए ।

उस समय एक मुनि ने २१ दो मुनिराजों ने १५ एक के १४ उपवास थे और तीन पचरंगी तपश्चर्या की हुई थी एक मुनिराज लगभग २० सहीनों से रात्रि में शयन न कर ध्यान में बैठ रहने वाले और चाहे जैसी भी शीतलु हो तो भी एक ही पड़ेवड़ी ओढ़ने वाले थे ।

उस मौके पर खल्ला निशासी भाई भीसूनालजी सचेती ने पूर्ण वैराग्य पूर्वक श्री पूज्यजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की उस दीक्षा-महोत्सव के समय करीब ४ से ५ हजार मनुष्य उपस्थित थे ।

श्रीमान् गच्छाधिपति के दरौनाय पंजाब, राजपुताना, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि देशों के सैकड़ों मनुष्य आये थे, जिनका तन, मन, धन से नयेनगर वासी ने कतम हाँसि से आतिथ्य सरकार किया था ।

पूज्य श्री के पधारने छे अवसर उस समय एक तीर्थस्थान की नाई होरहा था ।

पूज्य श्री नयेनगर से अजमेर पधारे और जयपुर पधारने की जल्दी होने के अजमेर नगर के बाहर ही सेठ गुमानमलजी जोड़ा की कोठी में बिराजे । परन्तु उनका पुण्य प्रभाव तथा आकर्षण-शक्ति इतनी अधिक प्रबल थी कि व्याख्यान में साधुमार्गी भावकों के सिवाय सैकड़ों हजारों की संख्या में जैन अजैन सज्जन उपस्थित होते थे और सेठ गुमानमलजी साहिब की बिरात कोठी के बाह्य के विशाल आंगन पर के थोक में भी पाँछे से आने वाले को बैठने तक का स्थान न मिलता था । इस समय प्रसंगोपात् पूज्य श्री ने प्राणिरक्षा के सम्बन्ध में उपदेश दिया उस पर से श्रीमान् रायसेठ, पान्दमलजी साहिब की प्रेरणा से रा० ब० सेठ सोमागमलजी दठा

सथा श्रीमान् दी० घ० उम्मेदमलजी साहिब लोढ़ा इत्यादि ने विचार कर एक पशुशाला स्थापन की जिसमें आज भी कई अनाथ पशुओं का प्रतिपालन होता है ।

इसके सिवाय पूज्य श्री ने बाल लग्न नहीं करने का उपदेश दिया जिसके असर से कई लोगों ने १६ वर्ष के पहिले पुत्र के और १३ के वर्ष पहिले पुत्रि के लग्न नहीं करने की प्रतिज्ञा ली ।

अजमेर में पांच छः दिन ठहरकर पूज्य श्री जयपुर पधारे वहां बहुत धर्मोन्नति हुई जयपुर के श्री संघने चातुर्मास करने के लिये अत्यग्रह पूर्वक अर्ज की उत्तर में पूज्य श्री ने फरमाया कि जैसा अवसर ।

जयपुर से विहार कर श्रीजी महाराज टोंक पधारे वहां सं० १६७६ के फल्गुन शुक्ला २ के रोज उनके सदुपदेश से उनके संसार पक्ष के भाणेजा और भाणेजीपति श्रीयुत मांगीलालजी शुगलिया ने ३० वर्ष की भर युवावस्था में सर्वथा ब्रह्मचर्य श्रव जोड़ी से अंगीकृत किया । पश्चात् उन भाई ने (पूज्य श्री के सं० पं० के भाणेजी से) रात्रि भोजन हरी तथा कच्चे पानी पीने का भी थावज्जीव के लिये त्याग कर दिया । इसके उपलक्ष में टोंक में उत्सव किया गया । बहुत से मुखेलमान लोगों ने पूज्य श्रीके सदुपदेश के प्रभाप से जीव-हिंसा करने तथा मांस खाने का त्याग

किया । कितने ही शुद्ध लोगों ने मदिरा पान का त्याग किया । टोंक में पूज्य श्री के व्याख्यान में हिन्दू मुसलमान बड़ी संख्या में आते और व्याख्यान का कई समय इतना प्रभाव गिरता था कि, ओठाओं की आँख से अश्रु भी बहने लग जाते थे ।

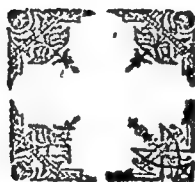
यहाँ से अनुक्रमशः बिहार करते भीमजी महाराज रामपुरा पधारे वहाँ शेषकाल लगभग एक माह तक ठहरे । बहुत उपकार और बहुत त्याग प्रत्याख्यान हुआ वहाँ से बिहार कर कंजारवा (होलकर स्टेट) पधारे वहाँ संवत् १९७० के चैत्र १-३ के रोज प्रियुत गन्नुलालजी नाम के एक ओसवाल गृहस्थ ने छोटी वय में ही वैराग्य प्राप्त कर पूज्य श्री के पास दाँड़ा मँदण की ।

यहाँ से कोटा तथा शाहपुरा तरफ होकर पूज्य श्री मेंवाड़ पधारे वहाँ उदयपुर के आदकों ने चातुर्मास के लिये भीमजी महाराज से बहुत प्रार्थना की जाबरा के भीसंघ ने भी बहुत आमह किया परन्तु पूज्य श्री की इच्छा रतलाम चातुर्मास करने की थी इसलिये उधर बिहार किया ।

पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशावली के पान करते मंदमौर निवासी पोरवाल गृहस्थ सूरजमलजी तथा उनकी स्त्री चतुरबाई को वैराग्य चन्द्रिका दिया और उन्होंने सं० १९७१ के वैशाख मास में सजोड मंदपर्यं प्रवृत्त अंगीकार किया । उस समय सूरजमलजी को वय २८

(३१६)

वर्ष की थी । और उनकी स्त्री की उम्र फक्त २५ वर्ष की थी । वे जद भर युवावस्था में ऐसी भीषण प्रतिज्ञा लेने के लिये व्याख्यान व्याख्यान में परिपक्व के खड़े हुए तब उपस्थित सज्जनों में से बहुतों की आंखों से अश्रु बहने लगे थे । और कई स्त्री पुरुषों ने इन दम्पती का अद्भुत पराक्रम और वैराग्य जनक दृश्य देख फुटकर स्कंध तथा तपश्चर्या और विविध प्रकार के व्रत नियम किये थे । बाद चतुरवार्ष ने सं० १६७४ में और सूरजमलजी ने सं० १६७६ में प्रवक्तृ वैराग्य पूर्वक दीक्षा की थी ।



किया । कितने ही शूद्र लोगों ने मदिरा पान का त्याग किया । टोंक में पूज्य श्री के व्याख्यान में हिन्दू मुसलमान बड़ी संख्या में आते और व्याख्यान का कई समय इतना प्रभाव गिरता था कि, श्रोताओं की आस से अभु भी बहने लग जाते थे ।

यहां से अनुक्रमशः बिहार करते श्रीजी महाराज रामपुरा पधारे वहां शेषकाल लगभग एक माह तक ठहरे । बहुत उपकार और बहुत त्याग प्रत्याख्यान हुआ यहां से बिहार कर कंजाड़ा (होलकर स्टेट) पधारे वहां सन् १९७० के चैत्र १-३ के रोज श्रीयुव गङ्गूलाजी नाम के एक ओसवाल गृहस्थ ने छोटी वय में ही वैराग्य प्राप्त कर पूज्य श्री के पास दाँचा ग्रहण की ।

यहां से कोटा तथा शाहपुरा तरफ होकर पूज्य श्री नेवाह पधारे वहां उदयपुर के आवकों ने आतुर्मास के लिये श्रीजी महाराज से बहुत प्रार्थना की जाकरा के भीसब ने भी बहुत आग्रह किया परन्तु पूज्य श्री की इच्छा रतताम आतुर्मास करने की थी इसलिये उधर बिहार किया ।

पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशागृह के पान करते मंदमौर निवासी पोरवाल गृहस्थ सूरजमलजी तथा उनकी स्त्री चतुरबाई को वैराग्य पट्टा दिया और उन्होंने सन् १९७१ के बैसाख मास में सजोड मलबये प्रव अर्गीकार किया । उस समय सूरजमलजी को वय २८

इसलिये सम्प्रदाय को चार विभागों में विभक्त कर योग्य संतों को उनकी योग्यतानुसार अधिकार देना चाहिये ऐसा विचार कर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय की सुव्यवस्था करने का यथोचित प्रबन्ध करना ठहराया थोड़े दिन तो पूज्य श्री के पांव में इतनी अधिक प्रबल वेदना हुई कि तनिक भी चलने फिरने की शक्ति न रही । उत्तम पुरुषों की आपत्ति चिरकाल तक नहीं रह सकती, इस न्यायानुसार थोड़े ही दिन में आराम होने लगाया । पग में दर्द तो अस्थंत था, परंतु पूज्य श्री की सहनशीलता जबरदस्त होने से वे वेदना को बहुत थोड़ी वेदते थे । ता० १५-११-१६१४ के रोज श्री जी महाराज वेदना को नहीं गिनते हुए धीमे पांव से चलकर व्याख्यान में पधारे । श्रीजी के दर्शन कर श्रावकों के आनंद की सीमा न रही, उस समय श्रीजी महाराज ने व्याख्यान में फरमाया कि मेरा विचार ऐसा है कि सम्प्रदाय के संतों की सार संभाल तथा उन्नति करना उन्हें योग्य उपालंभ या धन्यवाद देना तथा संयम में सहायता देना इत्यादि आवश्यक काम सम्प्रदाय के कितने ही योग्य संतों के सुपुर्द करदूं ।

पश्चात् श्रीजी महाराज की आज्ञा से तथा रतलाम श्रीसंघ तथा जाबरे से पधारे कितने ही अग्रेसर श्रावकों की सम्मति से श्रीयुत् मिश्रीमलजी वोराना वकील ने आचार्य श्री के हुक्म मुतानिक तैयार किया हुआ ठहराव उच्च स्तर से परिपद में पढ़ सुनाया जो निम्नांकित है--

अध्याय ३३ वाँ।

सम्प्रदाय की सुन्यवस्था ।



रवत्ताम (चातुर्मास) सं १६७१ इस समय भी पूज्य श्री के पधारने से रवत्ताम में आनन्दोत्सव हो रहा था, व्याख्यान में लोगों की मंडलियों की मरडलियां आने लगी थीं । श्रीमान् पंचेद ठाकुर साहिब पंचेद। से आस पचार कर व्याख्यान का लाभ उठावे थे उपरांत राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू मुसलमान बड़ी संख्या में व्याख्यान भवण करते और उसके फल स्वरूप रवत्ताम में अचरणीय उपकार हुए त्याग प्रत्याख्यान रक्षं वगैर्या इत्यादि बहुत हुई ।

इस मुताबिक चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ परंतु वेदनीय कर्म की प्रबलता से कार्तिक शुक्ला १० के रोज पूज्य श्री के पांव में एकाएक दर्द जोर बढ़ गया. इसलिये मगधर बंद १ के रोज पूज्य श्री बिहार न कर सके । जिससे श्रीजी के दिल में ऐसा विचार हुआ कि, मेरा शरीर पग की व्याधि के कारण बिहार करने में अक्षम्य है इसलिये सम्प्रदाय के संख्याबद्ध संतों की संभाल जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकेगी और एक आचार्य को उनकी संभाल से शुद्ध संयम पताने की पूरी आवश्यकता है ।

इसलिये सम्प्रदाय को चार विभागों में विभक्त कर योग्य संतों को उनकी योग्यतानुसार अधिकार देना चाहिये ऐसा विचार कर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय की सुव्यवस्था करने का यथोचित प्रबन्ध करना ठहराया थोड़े दिन तो पूज्य श्री के पांव में इतनी अधिक प्रबल वेदना हुई कि तनिक भी चलने फिरने की शक्ति न रही । उत्तम पुरुषों की आपत्ति चिरकाल तक नहीं रह सकती, इस न्यायानुसार थोड़े ही दिन में आराम होने लग गया । पग में दर्द तो अत्यंत था, परंतु पूज्य श्री की सहनशीलता जबरदस्त होने से वे वेदना को बहुत थोड़ी वेदते थे । ता० १५-११-१६१४ के रोज श्री जी महाराज वेदना को नहीं गिनते हुए धीमे पांव से चलकर व्याख्यान में पधारे । श्रीजी के दर्शन कर श्रावकों के आनंद की सीमा न रही, उस समय श्रीजी महाराज ने व्याख्यान में फरमाया कि मेरा विचार ऐसा है कि सम्प्रदाय के संतों की सार संभाल तथा उन्नति करना उन्हें योग्य उपालंभ या धन्यवाद देना तथा संयम में सहायता देना इत्यादि आवश्यक काम सम्प्रदाय के कितने ही योग्य संतों के सुपुर्द कर दूं ।

पश्चात् श्रीजी महाराज की आज्ञा से तथा रतलाम श्रीसंघ तथा जाधरे से पधारे कितने ही अग्रेसर श्रावकों की सम्मति से श्रीयुत् मिश्रीमलजी वोराना वकील ने आचार्य श्री के हुक्म मुतानिक तैयार किया हुआ ठहराव वच्च स्वर से परिपद में पढ़ सुनाया जो निम्नांकित है--

अध्याय ३३ वाँ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था ।



रत्नलाम (चातुर्मास) सं १६७१ इस समय भी पूज्य श्री के पधारने से रत्नलाम में आनन्दोत्सव हो रहा था, व्याख्यान में लोगों की महिलाओं की मण्डलियाँ आने लगी थीं । श्रीमान् पंचेद ठाकुर साहिब पंचेद से खास पचार कर व्याख्यान का लाभ उठावे ये उपरात राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू सुसज्जमान बड़ी संख्या में व्याख्यान श्रवण करते और उसके फल स्वरूप रत्नलाम में अवर्णनीय उपकार हुए त्याग प्रत्याख्यान स्कंध तथा अर्घ्य इत्यादि बहुत हुई ।

इस मुताबिक चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ परंतु वेदनीय कर्म की प्रचलता से कार्विक शुक्ला १० के रोज पूज्य श्री के पाँव में एक एक दर्द जोर पड़ गया, इसलिये मगसर बद १ के रोज पूज्य श्री विहार न कर सके । जिससे श्रीजी के दिल में ऐसा विचार हुआ कि, मेरा शरीर पग की व्याधि के कारण विहार करने में असमर्थ है इसलिये सम्प्रदाय के संख्याबद्ध संतों की संभाल जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकेगी और एक आचार्य को उनकी संभाल से शुद्ध संन्यास पलाने की पूरी आवश्यकता है ।

इसके सिवाय जे कोई संत निचले के गणों से सबंध पाकर
महाराज होकर पूज्य श्री के समीप आवे तो पूज्य महाराज श्री को
जैसी योग्य कार्यवाही मालूम होवे वैसी करें अखितयार पूज्य
महाराज श्री को है और पूज्य महाराज श्री का कोई संत चला
जावे तो वे अग्रेसर बिना पूज्य महाराज श्री के उर्से संभोग न
करें इसके सिवाय आचार गोचार श्रद्धा परंपरा की गति है वह
गच्छ की परम्परा मुताबिक सर्वगण प्रतिपालन करते रहें ।

यह ठहराव शहर रतलाम में पूज्य महाराज श्री के मरजी के
अनुकूल हुआ है जो सब संघ को इसका अमलदरामद रखना
चाहिये ।

गणों के अग्रेसरों की खुलावट नीचे मुताबिक है ।

(१) पूज्य महाराज श्री के हस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज
श्री की खास सेवा करने वालों की सार सम्भाल पूज्य महाराज श्री करेंगे ।

(२) स्वामीजी महाराज श्री चतुर्भुजजी महाराज के परि-
वार में हाल वर्तमान में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज बड़े हैं आदि दाने
जो सन्त हैं उनकी सार सम्भाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्ना-
लालजी महाराज की रहे ।

(३) स्वामीजी महाराज श्री राजभलजी महाराज के पति

ठहराव की अचरसः प्रतिलिपि ।

श्री जैनदया धर्मावलम्बी पूज्य श्री स्वामीजी महाराज श्री भी १००८ श्री हुक्मचंदजी महाराजा के पाचवें पाट पर जैनाचार्य पूज्य महाराजाधिराज श्री भी १००८ श्री मल्लालजी महाराज वर्तमान में विद्यमान हैं, उनके आशानुयायी गच्छ के साधु एकसौ भांगेरा के करीब हैं उनकी आज तक शास्त्र व परम्परायुक्त सार सम्भाल आचार गाचरी बगैरह की निगरानी यथाविधि पूज्य श्री करते हैं, परंतु पूज्य महाराज श्री के शरीर में व्याधि बगैरह के कारण से इसने अधिक सतों की सार सम्भाल करने में परिश्रम व विचार पैदा होता है इसलिये पूज्य महाराज श्री ने यह विचार पूर्वक गच्छ के सत मुनिराजों की सार सम्भाल व हिराजत के वस्त्रे याग्य सतों को मुक़रर कर प्रायः करतालुक सतों को इस तरह सुपुर्दगी कर दिये हैं कि वह अग्रेसरी सत अपने गण की सम्भाल मन तरह से रखें और कोई गण की किसी तरह की गलती हो ना ओलम्मा बगैरह देकर शुद्ध करने की कार्यवाही का इन्तजाम करें फलतः कोई बड़ा दोष होवे और उसकी खबर पूज्य महाराज श्री का पहुँचे तो पूज्य श्री को उसका निकाल करने का अस्तिथार है सिनाय इसके जो जो अग्रेसरी हैं वे थोड़ा आशा चातुर्मासादिक को पूज्य महाराज श्री से अवसर पाकर ले लें ।

इसके सिवाय जे कोई संत निचले के गणों से सबव पार्कर नाराज होकर पूज्य श्री के समीप आवे तो पूज्य महाराज श्री को जैसी योग्य कार्यवाही मालूम होवे वैसी करें अखितयार पूज्य महाराज श्री को है और पूज्य महाराज श्री का कोई संत चला जावे तो वे अग्रेसर बिना पूज्य महाराज श्री के वसर्से संभोग न करें इसके सिवाय आचार गोचार श्रद्धा परूपणा की गति है वह गच्छ की परम्परा मुताबिक सर्वगण प्रतिपालन करते रहें ।

यह ठहराव शहर रतलाम में पूज्य महाराज श्री के मरजी के अनुकूल हुआ है सो सब संघ को इसका अमलदरामद रखना चाहिये ।

गणों के अग्रेसरों की खुलावट नीचे मुताबिक है ।

(१) पूज्य महाराज श्री के हस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज श्री की छास सेवा करने वालों की सार सम्भाल पूज्य महाराज श्री करेंगे ।

(२) स्वामीजी महाराज श्री चतुर्भुजजी महाराज के परिवार में हाल वर्तमान में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज बड़े हैं आदि दाने जो सन्त हैं उनकी सार सम्भाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्नालालजी महाराज की रहे ।

(३) स्वामीजी महाराज श्री राजमलजी महाराज के परि-

सार में श्री रत्नचन्दजी महाराज के नेत्राय के सन्तों की सुपुर्दगी भी देवीलालजी महाराज की रहे ।

(४) पूज्य श्री चौधमलजी महाराज साहिब के परिवार के सन्तों की सुपुर्दगी भी झालचन्दजी महाराज की रहे ।

(५) स्वामीजी श्री राजमलजी महाराज के शिष्य श्री आसीरामजी महाराज के परिवार में जवाहिरलालजी सार सम्भाल करें ।

ऊपर प्रमाण गण पाच की सुपुर्दगी अमेसरी मुनिराजों को हुई है सो अपने २ सन्तों की सार सम्भाल व व्रतका निभाव करते रहें ।

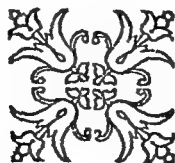
यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय मुताबिक हुआ है सो सब सच मजूर कर के इस मुताबिक बर्ताव करें ।

उपरोक्त ठहराव मुत्त कर भी सच में हर्षोत्साह की अधिक वृद्धि हुई थी । उस समय रवलाम में मुनिराज ठाणा २५ तथा आर्याजी ठाणा ६० के करीब विराजमान थे ।

इस चातुर्मास में श्री० मूर्तिपूजक जैनों के अमेसर सुप्रसिद्ध साहिब सेठ केसरीसिंहजी कोटावाला भी श्रीजी की सेवा में तीन सार वक्त आये थे और वार्त्तालाप के परिणाम स्वरूप अत्यंत आनंद

प्रदर्शित किया था दूसरे भी कितने ही मंदिरमार्गी भाई आते थे और प्रभोत्तर तथा चर्चा वार्ता कर आनंद पाते थे ।

पूज्य श्री के पांव में कुछ आराम हुआ । सं० १९७१ के मार्ग-शिर शुक्ला ५ के रोज दोपहर को भीजी ने रतलाम से विहार किया वहां से जावरे पधारे । उस विहार के समय इस पुस्तक का लेखक उपस्थित था, रतलाम से एक कोस दूरी के ग्राम में पूज्य श्री ठहरे थे और संख्याबद्ध श्रावक वहां दर्शनार्थ पधारे थे और सुबह को उपदेश श्रवण करने के लिए रात भर वहीं ठहरे थे । छोटे ग्राम में मकान की तो व्यवस्था थी रात को ठंड होते भी भविजन श्रावकों की लम्बी कतार की कतार श्रद्धा के स्थान में आनंद से निद्रा लेती हुई सो रही थी सौभाग्य से यह दृश्य मुझे देखने का अवसर प्राप्त हुआ और अश्रुओं से नेत्र भीज गए । तुरंत वकील मिश्रीलालजी के साथ गाड़ी में रतलाम पीछे आये और तीन चार बड़ी जाजमें ले गांवड़े गए और जीव जंतु या ठंड की परवाह न करते खुली शैया, शरिरों में सोई हुई कतार को जाजमों से ढांक ठंड से संरक्षा की थी ।



अध्याय ३४ वाँ ।

आत्म-श्रद्धा की विजय ।

जावरा के भावकों की चतुर्मास के लिए बार २ अत्याग्रह पूर्वक अर्ज करने पर भी उनकी विशिष्टि मजूर न हो सकी थी इसलिये वहा के भावक जनों के संवत्करण बड़े दुःखित हुए थे, उनको प्रफुल्लित करने के लिये इस समय आचार्य महाराज जावरे में एक मास शेष काल बिराजे थे ।



जावरे में जिस समय पूज्य श्री महाराज व्याख्यान फरमाते थे तब एक भावक ने खबर दी कि नवाब साहिब ने सब कुर्षों को बंदूक से मार डालने का पुलिस को आर्डर दिया है उदनुसार बाजार में एक दो कुत्ते मारे भी गए हैं और अभी तक सिपाही मारने की क्रिा में बंदूक लिए घूम रहे हैं । श्रीजी महाराज ने अपने व्याख्यान में यह विषय उठा लिया और अत्यन्त असरकारक उपदेश दिया तथा भावकों से फरमाया कि तुम इस हिंसा के रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं करते हो ? अमसर भावकों ने कहा कि महाराज ! हमने बहुत प्रयत्न किये परन्तु सब विफल हुए, उस समय पूज्य श्री ने फरमाया कि जो तुम में दृढ़ आत्मबल हो, तुमने

मचल आत्मश्रद्धा, आत्मशक्ति का विश्वास हो और तुम परोपकार
 के लिए आत्मभोग देने को तैयार हो तो तुम्हारा प्रयत्न क्यों न सफल
 हो ? अवश्य हो । अभी ही तुम यह दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि जबतक
 यह हिंसा न रुकेगी हम अन्न पानी ग्रहण न करेंगे, सिपाही जब
 तुम्हारे सामने कुत्तों पर गोली चलावें तब तुम निडर हो कह दो
 कि प्रथम हमारे शरीर को गोली से बाँध दो और फिर हमारे कुत्तों
 पर गोली भाड़ो, अगाध मनोबल और अखूट आत्मबल वाले इन
 महान् पुरुष के मुखारविंद से निकले हुए इन शब्दों ने श्रोताओं के
 हृदय पर अद्भुत प्रभाव जमाया, पूज्य श्री के सदुपदेश से ऐसी
 सचोट असर हुई कि उसी समय कई श्रावकों ने खड़े हो महाराज
 श्री के पास यह हिंसा न रुके वहाँ तक अन्न पानी लेने का त्याग
 कर दिया व्याख्यान के पश्चात् कई श्रावक इकट्ठे हो नवाब साहिब
 के पास गए और अर्ज की कि हमें जीवित रखना चाहते हो तो
 हमारे आश्रित इन कुत्तों को भी जीने दो और हमारे प्राण की
 आपको परवाह न हो तो हम भी कुत्तों के लिए प्राण देने को तैयार
 हैं इस हमारी विनय पर गौर फरमा कर जैसा आपको योग्य लगे
 वैसा करो, नवाब साहिब के पास व्याख्यान की हकीकत प्रथम ही
 पहुँच चुकी थी, वे अत्यन्त प्रभावित थे, उन्होंने महाजनों की अर्ज
 शांतिपूर्वक सुन जल्द ही न मारने का आर्डर निकाल दिया ।

कलकत्ते की खास कांग्रेस में लाला लाजपत राय ने अध्यक्ष की हैसियत से जिन शब्दों की गर्जना की थी वन शब्दों का स्मरण यहा हो आता है “ आप अपनी आत्मा में दृढ़ भ्रष्टा रखें अपने हृदय में कितना ज्वलन हो रहा है इसके ऊपर कितने अमेसर बलिदान होने को तैयार हैं, आम लोगों में से कायरता कितने अंश में भरी है । शुद्ध भाव से अमेसर होने और शुद्ध भाव से दौड़ने वाले अमेसरों के पीछे चलने की शक्ति अपने में कितने अंश तक आई है वन सब बातों पर अपनी विजय का आधार है । ”

जावरा की यह बात जो कि बिलकुल छोटी थी वो भी छोटी छोटी बातों से आत्मभ्रष्टा की सीढ़ियां चढ़ने लगे वो मौका आने पर परमात्मा के संदेश को भी केत सकेगे । एक विद्वान् का कथन है कि—आत्मभ्रष्टा द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक कठिनाई जीत सकता है । आत्मभ्रष्टा ही रंक मनुष्य का महान् मित्र और उनकी सर्वोत्तम सम्पत्ति है । पाई की भी बिना सम्पत्ति वाले आत्म भ्रष्टावान् मनुष्य महान् से महान् कार्य कर सकते हैं । और बिना आत्मभ्रष्टा के करोंहों की पूंजी भी निष्फल गई है ।

पूज्य श्री जावरे में विराजते थे तब समय श्री देवीलालजी महाराज भी जावरे पधारे और भीजी महाराज से मंदबोर पधारने का आमद किया, परन्तु उनके अमुक कौल करार को पकड़ कर

मंदसोर पधारना श्रीजी ने नामंजूर किया । उस समय श्रीमान् सेठजी अमरचंदजी साहिब पीतलिया पूज्य श्री की सेवा का अंतिम लाभ लेने जावरे पधारे थे । उन्होंने मौका देख इन साधुओं को शुद्धकर आहार पानी इत्यादि व्यवहार पुनः प्रारंभ करने की विज्ञप्ति की । और मंदसोर पधारने के लिये पूज्य श्री से आग्रह किया । तब पूज्य श्री वहां से विहार कर मंदसोर पधारे और जैनशास्त्र की रीत्यनुसार आलोचना कर प्रायश्चित्त लेने के लिये फरमाया, परन्तु पूज्य श्री के मनको संतोष हो उस अनुसार संतोषकारक रीति से उन साधुओं ने स्वीकृत नहीं किया । इसलिये पूज्य श्री ने वहां से विहार कर दिया । परन्तु धन्य है इन महापुरुष की गंभीरता को कि इतनी अधिक बात होते भी पूज्य श्री ने उक्त सम्बन्ध में किसी तरह प्रकट निंदा स्तुति न की, इसी तरह इन साधुओं को सम्प्रदाय से अलग किये हैं इसलिये इन्हें आव आदर न देने वास्तव भी कुछ कहा सुनी न की, न उनका घुरा चाहा । पूज्य महाराज श्री का इतना ही खयाल था कि वे भी किसी प्रकार का ममस्व त्याग शास्त्रानुसार समाधान कर अपना आत्महित साधें ।

मंदसोर से क्रमशः विहार करते हुए पूज्य श्री मेवाड़ में पधारे और श्री उदयपुर श्रीसंघ की विनन्ती स्वीकृत कर पूज्य श्री ने सं० १६७२ का चातुर्मास उदयपुर में किया ।

अध्याय ३५वाँ।

उदयपुर का अपूर्व उत्साह ।



उदयपुर में पंचायती नोहरे के नाम से प्रसिद्ध एक विशाल मकान है, वहाँ हर वर्ष मुनिराजों के चातुर्मास होते थे परन्तु पूज्य श्री के चातुर्मास की प्रथम वस्मीद न होने से तथा तेरापंथी के पूज्य श्री कालूरामजी का उदयपुर चातुर्मास पहिले से ही मुकदर होजाने से तेरापंथियों ने पहिले से ही पंचायती नोहरे की मंजूरी लेली थी इसलिये पूज्य श्री के चातुर्मास के लिये ऐसा ही कोई दूसरा आलीशान मकान ढूँढने के लिये उदयपुर भी संचने प्रयत्न किया, कई वमराव लोगों ने हमारे मकान में “पूज्य श्री विराजें” ऐसी इच्छा दर्शाई, परन्तु व्याख्यान के लिये चाहिए जैसी सोचदार जगह न मिलने से उदयपुर के महाराणा साहिब कुमलगढ़ विराजते थे । वहाँ उनके चरखारविंद में अर्ज कराई उस पर से कमज पद के महलों के पास जो कराराखाना अर्थात् जूना हास्पिटल है उसके लिये चन्होंने आज्ञा देदी ।

इस आलीशान मकान में श्रीमान् पूज्य महाराज श्री चातुर्मास के लिये पधारे वहाँ पधारते ही व्याख्यान के लिये पूज्यश्रीने कराराखानेके

बाहर की जगह पसंद की कि, जिससे फगशखाने के अंदर तथा बाहर हजारों लोगों का समावेश होसके, यहां पूज्य श्री की अमृत वाणी सुनने के लिये सरे आम रास्ते पर लोगों की इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी होती थी कि राह में चलना फिरना कठिन होजाता था ।

तपस्वीजी श्री मांगीलालजी महाराज ने ४५ उपवास किये थे और दूसरे छः साधुओं ने मास-भक्षण (महीना २ के उपवास) किये थे, एक साधु के ३४ उपवास थे तथा एक साधु ने २१ उपवास किये थे उस समय श्रीमान् हिंदवा सूरज महाराणा साहिब ने कृपाकर श्रावण वद १ के रोज अगते पलाने का हुक्म फरमाया, जिससे कसाईखाने, कलालों की दुकाने, तेली, भड़भूँजे हलवाई, छीपा (रंगरेज) इत्यादि की दुकानें बंद रही थीं.

महाराज ने ४५ उपवास का पारणा किया तब सैकड़ों अश्वगत गरीब दीनों को श्री संध की ओर से भोजन मिठाई इत्यादि खिलाने का प्रबन्ध कर उन्हें संतुष्ट किये थे । तथा कपड़े बांटे थे इसके सिवाय बकरी को अभयदान देने के लिये एक फंड कायम किया था जिससे करीब ४००० (चार हजार) बकरी को अभयदान दिया था, श्रीमान् कोठारीजी बलवंतसिंहजी साहिब ने अपनी तरफ से ८० बकरी को अभयदान दिया था, इस के पश्चात् नाना

प्रकार के व्रत प्रत्याख्यान तथा स्कंध इत्यादि बहुत हुये थे ।

पारणा के दिन बेदला के राखजी श्री नाहरसिंहजी साहिब ने भी अगता पलाया था, पूज्य श्री के सद्गुरुदेश से उदयपुर के श्री संप ने ज्ञातिके जामणवार रात को न करते दिन को करने का ठहराव पास किया तथा पकाभादि बनाना भी दिन को ही ठहरा था ।

इस चातुर्मास में बाहरके देशोंसे वहाँ तरहसे सेवाइ के समीपके मामों से कई लोग नित्य दर्शन को आते थे । आसोज सुदी में करीब ६०००-७००० आदमी व्याख्यान में जमा होसे थे और आने वाले भाषकों के लिये, भोजन तथा बतरने वगैरह का कुल प्रबन्ध उदयपुर संप की ओर से प्रशसापात्र था । इसने अधिक अनुभव कभी भी किसी चातुर्मास में एक साथ जमा न हुए थे । उदयपुर में दशहरे की सवारी अधिक भूमधाम से निकलती है और उदयपुर के तमान सरदार ठाकुर इत्यादि अपने लवाजमे के साथ हानिर होते हैं एक तो पूज्य श्री के चातुर्मास का योग अर्थात् अमृतमय वचनामृतों का लाभ दोनों समय मनोच्छिन्न मिष्टान्न के जीमन और बतरने, पानी वगैरह की सोय, इन कारणों से इस चातुर्मास में आने वालों की संख्या बढ़ गई थी कि ऐसा मौका अगर दूसरे मामों में आता तो लोग घबड़ा जाते, भीमान् कोठारीजी साहिब

की हिम्मत और ऐसे कुशल काटन के नीचे काम करने वालों का अविश्रांत श्रम और पूज्य श्री का प्रभाव इत्यादि कारणों से वे अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा रख सकें, एक ही पंगत में इतनी अधिक जनसंख्या को गरमागरम रसोई जिमा स्वागत करने में उदयपुर के श्रावक व्याख्यान का लाभ भी छोड़ देते, राज्य की कचहरीयों में काम काज मंद रख श्रीमान् कोठारीजी साहिब को शिकारिश से मिहमानों को उतरने का प्रबंध भी अच्छा हुआ था । लोग कहते थे कि पूज्य श्री का चातुर्मास कराना मानों हाथी बांधना है, खर्च से भी श्रम अधिक, इसलिए छोटे गांव वाले विचारे हिम्मत भी न करते थे ।

दर्शन करने के लिये बहु संख्यक जनों का आना और पंचायती भोजनगृह में भोजन कर घूमते रहना इस महंगाई के जमाने में कठिन हो जाता है, कांगड़ी दरद्वार और दूसरे स्थानों में गुरुकुल इत्यादि के उत्सवों पर या महात्मा के दर्शनों की अभिलाषा से लोग बड़ी संख्या में इकट्ठे होते हैं, परंतु आप अपनी रसोई का शंतिजाम स्वयं ही कर लेते हैं, स्थानिक स्वधर्मियों को भाररूप नहीं होते हैं । हां ! स्वामी वात्सल्य का अमूल्य लाभ लेनेको श्रावक ललचाते हैं, परन्तु सब सीमांतर्गत ही ठीक लगता है । अति योग का परिणाम अनिष्ट होता है । आने वाले के उतरने की व्यवस्था कर देना तथा जिस दिन आवे उस दिन स्वागत कर देना इतना ही

प्रबंध कर बाकी के दिनों की सोय आने वाले ही कर लिया करें तो जहा चातुर्मास हो वहां के भावक भी महामा के यचनामृतों का लाभ ले सकें ।

किसने ही भावक तो यहां पूज्य श्री की सेवा में बहुत दिन तक अलग गठान लेकर रहे थे । श्रीमान् बालमुकुटजी साहिब सठारे-वाले तथा आयुक्त यद्वेभानजी साहिब पीतालिया इत्यादि जानकार भावक पूज्य श्री के साथ स्नानचर्चा कर अलभ्य लाभ उठाते थे, एक समय सेठ बालमुकुटजी साहिब “काशीस समुदाय गुणाविलाम” नाम की एक पुस्तक, कि जो बीकानेर में छपी है, लेकर पूज्य श्री के पास आये और उसकी प्रस्तावना पढ़ सुनाई और भीजी से प्रश्न किया कि क्या यह सब आपकी सम्मति से लिखा गया है ? तब श्रीजी महाराज ने कहा कि यह पुस्तक किसने कग लिखी और किसने छपाई, इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता, सदर पुस्तक की प्रस्तावना में पूज्य श्री क नाम का आशय ले एक यति ने अपनी कितनी ही मानताए पुष्ट करने का प्रयत्न किया है जिस से कितने ही भावकों के चित्त शंकाशील बन गए थे, परंतु श्रीजी महाराज के इतने संतोषकारक रीतिसे सुलाचा करने पर सब लोगों का भ्रम दूर हो गया ।

पूज्य श्री ने नाललग्न से कितनी २ दानिया होती हैं और योग्य वय तक विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करने से कितने महान् लाभ

होते हैं उसका ऐसा असरकारक विवेचन किया था कि, कई श्रावकों ने १८ वर्ष पहले पुत्र के और १३ वर्ष पहिले पुत्री के लग्न न करने की प्रतिज्ञा ली थी ।

इस वर्ष तेरहपंथियों के पूज्य श्री कालूरामजी तथा तपगच्छीय आचार्य श्री विजयधर्म सूरिके चातुर्मास भी उदयपुर में थे । और उनके कितने ही श्रावक हर प्रकार से क्लेशोत्पादक प्रवृत्तियां करते थे, परंतु यह क्षमा का सागर कभी भी न झलका । श्रावक परस्पर अत्यंत ट्रेकटबाजी करते थे, परन्तु आचार्य श्री ने चित्तशांति संपूर्णता से धार रक्खी थी । अपने श्रावकों को भी शांति में स्थित रहने का शतत उपदेश देते थे । अपनी बहादुरी बताने के खयाल को दूर रख पूज्य श्री संयम का संरक्षण करते थे । किसी भी तौर से उन्होंने क्लेश वृद्धि को उत्तेजन न दिया । उनटे ऐसा करने-वालों को समझा प्रतिज्ञा कराते थे । जिससे वे लोग स्वयं तन्म्र हो पूज्य श्री से विनय करने लगे थे, इतना ही नहीं परंतु जब उन श्रावकों को पूज्य श्री का परिचय होता तब वे उन पर भक्तिभाव दर्शाते थे ।

श्रीमान् महाराणा साहिब भी पूज्य श्री की शांतवृत्तिकी प्रशंसा सुन बहुत आनन्दित हुए और कभी २ अपने आफीसर लोगों से प्रश्न करते कि, आज व्याख्यान में क्या फरसाया ।

सं० १९७२ के मंगसर वद १ के रोज पूज्य श्री ने विहार किया उस समय उनके पास १० असह्य वेदना थी, यात्रक लोगों ने ठहरने के लिए अत्यामद पूर्वक बहुत २ अर्जें कीं, परन्तु पूज्य श्री ने फरमाया कि “मेरी चलेगी वहा तक मैं कल्प नहीं तोड़ूंगा” उस दिन वे अत्यन्त कठिनाई से चलकर सूरजपोल महंतजी की धर्मशाला में विराजे और वहां लराकर तरफके एक अमवाल अर्थात् ब्रजमोहनलाल ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की, ये महाराय दिगम्बर मत नुयायी थे सं० १९७२ के चातुर्मास में उन्हें पूज्य महाराज का परिचय हुआ था, दक्षिण बहुत धूमधाम से हजारों मनुष्योंकी उपस्थिति में हुई थी, सन् १९७५ में ब्रजमोहनलालजी का स्वर्गवास हो गया है ।

• उत्पञ्चात् महाराज श्री ने वदयपुर से चार कोस दूर गुरुद्वीकी तरफ विहार किया, गुरुद्वी की ओसवाल समाज में दो तहें थीं पूज्य श्री के उपदेश से तहें मिट एकता होगई ।

वहा से पूज्य श्री ऊटाले पधारे वहा ४० बकरों को ऊटाला पशों ने तथा १०० बकरों को अटाले के पटैल दला भागड़ी वाड़ी वाले १० अमय-दान दिया ।

सं० १९७२ के वदयपुर के चातुर्मास दरम्यान एक अमेज अमलदार काटा वाले डेलर साहिब, कि जो कमस्त मेवाड़के ओपियम

एजेन्ट थे वे पूज्य श्री के दर्शनार्थ कई समय आये थे और पूज्य श्री का व्याख्यान बहुत प्रेम-पूर्वक सुना करते थे, इतना ही नहीं परन्तु व्याख्यान के पश्चात् दूसरे समय भी वे पूज्य श्री के पास आते और तात्विक विषयों पर प्रश्नोत्तर तथा धर्म-वर्चा चलाते थे, इस मशानुभाव अंग्रेज ने पक्षी वगैर जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा ली थी ।

दूसरे एक अंग्रेज पादरी खेरंड डो जेम्स शेपर्ड एम. डी. डी. डी. कि जो वयोवृद्ध और समर्थ विद्वान् हैं और अभी जो विलायत गए हैं वे भी महाराज श्री के दर्शनार्थ आये थे । महाराज श्री के साथ वार्तालाप करने से उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे अपने पास की एक पुस्तक महाराज श्री को भेंट करने लगे, परन्तु महाराज श्री ने उसका स्वीकार न किया । साधु के कड़े नियमों से साहिब आश्चर्य चकित हो गए ।

इस चातुर्मास में एक दिन पूज्य श्री ने धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता दिखाते हुए बहुत असरकारक उपदेश दिया और लघु-वय से ही बालकों के हृदय पर धर्म की छाप गिराने की आवश्यकता दिखाई । उपदेश के असर से उदयपुर के सब बालकों को शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला खोली गई । भाई रतनलालजी मेहता के परिश्रम से यह पाठशाला वर्तमान समय में अच्छी तरह

चलती है । इस पाठशाला में धार्मिक के साथ व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती है इसलिए मा बाप अपनी संतानों को ऐसी पाठशाला में भेजने के लिए तलचाते हैं ।

शिक्षाक्षेत्र में कितना ही व्यर्थ भार इतना बढ़ गया है कि, खास धार्मिक शिक्षा देनेवाली शालाओं में भी विद्यार्थियों का मन आकर्षित नहीं होता और उतना समय भी नहीं मिलता । काठियावाड़ की जैन शालाएँ सम्पूर्ण सफल नहीं होती उसका यही कारण है ।

धार्मिक व्यावहारिक और राष्ट्रीय शिक्षा एक ही स्थान पर प्राप्त हो ऐसी पाठशालाएँ स्थापित की जाय तब ही अपना आशय सिद्ध होगा, तो भी धर्म के सरस्वर बालक्य से ही सत्तानों में सौचने की लापरवाही न रखनी चाहिए ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, देश कालानुसार व्यावहारिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा की योजना होने से उच्च भावना की लहर रंग २ में प्रसर जाती है । गारहनतादि जैन नियम जो व्यवहार वैयक्त और नीति शास्त्र के अनुसार ही योजित हुए हैं उनका सत्य रहस्य समझाने एवं इस अनृत के पाग के कराने वास्ते जमाने के अनुकूल और आकर्षक शिक्षापद्धति बावी जाय तो अपने अभिप्य-रतन वमने अचुरत करने को अजरय ललचायगे । श्रीयुत देशाई सत्य कहते हैं कि मनुष्य उत्पत्तिपाकर पशु आदि प्रवृत्तियों से निवृत्त

मनुष्य-जीवन में दाखल हुआ है उसे दिव्य जीवन कैसे बिताना और उस दिव्य जीवन को बिता सिर्फ आनन्दमय जीवन सत्चिद् घनानन्दमय जीवन अंतमें किस रीतिसे प्राप्त करना, यही सिखाना धर्म है ” ।

धर्म-ज्ञान प्रचार की प्रभावना में महान पुण्य समाया हुआ है इसलिये एक लेखक योग्य उद्गार निकालता है कि “ It is the duty of the thoughtful among the Jains to see that a healthy knowledge of the valuable and basic principles of Jainism is spread liberally.” सर नारायण चन्दावरकर लिखते हैं कि “सिर्फ बुद्धि के खिलने की क्रीमत नहीं, अंतःकरण भी खिलना चाहिये । समाज, देश तथा जगत्की शांति के लिये हृदय की शिक्षा हृदय के विकास की आवश्यकता है और जबतक भजा के हृदय विकसित न होंगे वहांतक सच्ची महत्ता कभी नहीं आसक्ती ।

यूरोप में जड़-बल का जोर और आध्यात्मिक बल की अनु-पस्थिति लड़ाई के समय प्रकट होजाती है.....जड़बल पर आध्यात्मिक बल का प्रभुत्व होना अवश्य जरूरी है, जब तक इस बल की सत्ता न झुकेगी वहां तक कायम की सुलह शांति दृष्टि-गोचर नहीं हो सकती ।

अध्याय ३६ वॉ ।

शिकार बंद ।



मयेनगर के आसपास का पहाड़ी प्रदेश, कि जो मगरे जिले के नाग से प्रसिद्ध है वहा के बैकड़ों प्रामों के बाशिंदे मेर लोग, जमीनदार और पशुमालक तथा अन्य जाति के हजारों मनुष्य होली के रयादों में शिकार करते और तीन दिन तक पहाड़ों में घूम निरपराधी पशु पक्षियों को मारते थे । सब दिन भर समान पहाड़ियों में इधर वधर दौड़ते और छोटा या बड़ा, भूचर या खेचर, जो प्राणी नजर आता उस जान से मार डालते थे । वे जंगल में इधर वधर दौड़ने तो माह मादियों से इनका शरीर भी लोही लुप्त हो जाता था । यह पावकी और जंगली रिवाज बहुत समय से इन लोगों में प्रचलित था और जिसके कारण प्रश्वपे लाखों निरपराधी जीवों का रुशर हो जाता था ।

स० १९७२ के फागुन मास में पूज्य श्री नयेशहर पन्नारे, तब मगरे निसे क कितने ही जमीनदार भी भीजी के व्याख्यान में आये । मौका देख पूज्य श्री ने जीविका के सम्बन्ध में ऐसा पसरकारक और हन्य विदारक उपदेश दिया कि निसे सुनकर

पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाय, इस उपदेश का उपस्थित जमींदारों के हृदय पर भी बहुत भारी असर हुआ और उन्हें अपने अपकृत्यों के कारण बहुत २ पश्चात्ताप होने लगा। व्याख्यान समाप्त होने पर महाराज श्री ने तथा महाजनों के अग्रेसरों ने इन लोगों को यह पापी रिवाज बंद करने की कोशिश करने के लिए समझाया, तब कितने ही लोगों ने तो ऐसा करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक हां कहा, परन्तु कितने ही जमींदारों ने महाजनों से ऐसी दलील की कि आप महाजन लोग हमारे परतनिक भी दया नहीं करते, उधार दिये हुए रुपयों के व्याज में एक के दूने तिगुने दाम ले लेते हो और जय कर्जा वसूल करना हो तब भी दया नहीं रखते।

यह सुन उपस्थित महाजन लोगों ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि हर मास प्रति सैकड़ा १॥) रुपया से ज्यादा व्याज हम कदापि तुमसे न लेंगे। इसके उत्तर में जमींदारों ने वचन दिया कि हम भी शिकार नहीं करने का बंदोबस्त करेंगे। दूसरों को उपदेश देने के पहिले अपना आचार शुद्ध होना चाहिए, 'परोपदेशे पांडित्य' इस जमाने में नहीं चल सकता, पहिले अपने पांवपर घाव सहन करना सीखो।

पश्चात् उन जमींदारों तथा महाजनों में से कितने ही उत्साही सज्जनों के संयुक्त प्रयत्न से थोड़े दिन बाद कई ग्रामों के मिल करीब ३०० जमींदार व्यावर में आये, उन्हें महाजनों की तरफ

से प्रीतिभोज दिया गया, पूज्य श्री के अर्पूव उपदेश के अक्षर से उन लोगों ने जीवहिंसा न करने तथा शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली और तत्सम्बन्धी दस्तावेज भी महाजन की वही में कर दिये और महाजनों ने भी डेढ़ रुपये से अधिक व्यय न लेने का दस्तावेज उन्हें लिख दिया ।

पञ्चात् ' म्नाक ' नामके एक म म को उवाचर से भीयुत पत्र-
लानजी का करिया, भीयुत केसरीमलजी राका इत्यादि २० गृहस्थ
गए और वहा के जमोनदारों के हृदय में भीमान् पूज्य महाराज के
उपदेश का अक्षर पहुँचा ऐसा ठहराव किया कि मौज ' म्नाक ' के
पटेल, नम्बरदार, ठाकुर, पन्ना, दल्ला, घोरा, इत्यादि तीन शिकारों
में से एक शिकार आवु ओलाद (पीछी दर पीछी) नकन चढ़े, मौजे
म्नाक के साथे में शामगढ, लुजवा इत्यादि करीब १०० ग्राम हैं उन
सम में इसी अनुवार ठहराव हुआ उसके बदले में एक इवाई
(चयूतरा) बंधा देने तथा अकाम, तम्बाकू, ठडाई एक दिन के लिए
देने सम्बन्ध महाजनों ने स्वीकार किया और परस्पर दस्तावेज कर
सही दी ली गई ।

॥ स० १९७६ में भीमान् आपार्य महाराज रायकाल व्या-
घर में पधारे थे, तब शिकार की निगरानी के लिये आहेंद के पाच
दिन पहिले महाजनों में से करीब ४०-५० स्वयंसेवक गृहस्थ

उपरोक्त वंदोषस्त होने से हजारों लाखों जीवों को अभयदान मिलने लगा और सैकड़ों लोग पाप की खाति में गिरते कई अंश में बच गए ।

इस मुजिब पूज्य महाराज श्री के यहां पधारने से अत्यन्त उपकार हुआ । तथा यहां के ओसवाल भाइयों में कुसम्प थी जिससे तीन तईं होगई थीं और साधुमार्गी मंदिरमार्गी भाइयों में भोज सम्बन्ध में मतभेद हो परस्पर मत दुखित होगया था, परन्तु श्रीमान् आचार्यजी महाराज के पधारने से उनके व्याख्यान का लाभ शाह उदयमलजी तथा शाह धूनचंदजी कांकरिया इत्यादि कितने ही मंदिरमार्गी सज्जन लेते थे । महाराज श्री के सदुपदेश के प्रभाव से विरादरी में एकमत हो तीन तईं इकट्ठी होगई और छोटे बड़े सब ऋगड़ों का परस्पर समाधान पूर्वक अंत हो विरादरी में कुसम्प की जगह सुसम्प स्थापित होगया ।

मौजे काक गए और उन्होंने जमीनदारों से कहा कि तुम हताई बनवालो और उसमें जो खर्च लगे वह हम से लेओ, तब लोगों ने कहा कि हमने हममें से चन्दा कर हताई बनाना ठहरा लिया है इसलिये महाजनों से इसका खर्च न लेंगे और जो आहिड़ श्री पूज्यजी महाराज के उपदेश से हम लोगोंने छोड़ी है उसका हम बराबर अमल करते हैं और कराते रहेंगे ।

अध्याय ३७ वां ।

मारवाड़ में उपकारी विहार ।



व्याघर से पूज्य श्री अजमेर पधारे और मुजानगढ़ की तरफ
 बीकानेर के आसक पोखरमलजी कि ओ हजारों रुपयों की छती
 सम्पत्ति त्याग प्रथम वैराग्यपूर्वक पूज्य भी के पास दीक्षित होने
 वाले थे, उन्हें दीक्षा देने के लिये उधर पूज्यश्री जलद पधारने वाले
 थे, परन्तु श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नचंद्रजी महाराजकी सम्प्रदाय
 के आचार्य भी विनयचंद्रजी महाराज का स्वर्गवास हो गया था,
 उनकी जगह आचार्य स्थापित करने थे, इसलिये श्रीमान् पंडित-
 राज श्री चन्दनमलजी महाराज ने यह कार्य श्रीमान् की सहानु-
 भूति से प्रकृत करनेकी अर्ज की, इसलिये भीजी महाराज अजमेर
 रुके और हजारों मनुष्यों की भीड़ में श्रीमान् शोभाचंदजी महाराज
 को विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ करने की क्रिया में उपस्थित रह
 चतुर्विध संघमें अपूर्व आनंद मंगल बरसाया। दोनों सम्प्रदायों के
 साधुओं में परस्पर इतना अधिक प्रेमभाव देखा जाता कि उसे
 देख अपना हृदय आनंद से उभराये बिना न रहता। इस अव-
 सर पर श्रीमान् आचार्य भी श्रीलालजी महाराज ने आचार्य भी की

जवाबदारी, दीर्घदृष्टि और कर्तव्य विषय पर समय के अनुकूल अत्यन्त उत्तम रीति से विवेचन किया और श्रीमान् शोभाचंदजी महाराज ने स्थविर मुनि श्री चंदनमलजी महाराज द्वारा आचार्य की पञ्चेवड़ी ओढ़े बाद समयोचित व्याख्यान दिया था । उसमें पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के अनुपम उदार गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी । आचार्य श्री शोभाचंदजी महाराज ने स्वयं पूज्य श्री श्रीलालजी का ऋणी रहूंगा ऐसा कहा था । हम आशा करते हैं कि पूज्य श्री शोभालालजी साहिब तथा उनकी सम्प्रदाय के साधु और श्रावक अपने वचनानुसार पूज्य श्री के परिवार पर ऐसा ही भाव रखेंगे ।

अजमेर से उग्र विहार कर श्रीजी महाराज बीकानेर होकर सुजानगढ़ पधारे । और वहां सं० १९७२ के फाल्गुन शुक्ला ६ को शुक्रवार के रोज श्रीमान् पनेचंदजी संघवी के बनाये हुए मंदिर में बीकानेर निवासी श्रीयुत पोखरमलजी को दीक्षा दी । आपकी उम्र उस समय सिर्फ २० वर्ष की थी । आपका ज्ञान बढ़ा चढ़ा था तथा वैराग्य भी अत्यंत उत्कृष्ट था । दीक्षा लेने के पहिले उन्होंने बहुत सा द्रव्य दान पुण्य में खर्च किया था । और दीक्षा महोत्सव में भी हजारों रुपये खर्च किये थे । बीकानेर के भी बहुतसे भाई इस अवसर पर पधारे थे और मंदिरमार्गी भाइयों ने भी अनुकरणीय भावभाव दर्शाया था । इस समय

सुजानगढ़ में साधुओं के २५ ठाणें बिराजमान थे और दिल्ली, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, बीकानेर आदि शहरों के करीब ४००० मनुष्यों द्वारा महोत्सव में भाग लिया था। एक अपरिवर्तित क्षेत्र में इस मुक्ति दिला महोत्सव की सफलता हुई तथा धर्मोत्तति हुई यह पूज्य श्री के आतिथ्य का ही प्रभाव था।

सुजानगढ़ से श्रीमान् ने थली की तरफ बिहार किया। थली के प्रदेश में साधुमार्गी भाइयों का बस्ती न होने से और तेरहपथी भाइयों का बहुत जोर होने से पूज्य श्री का उस तरफ का बिहार इनक हृदय में शत्रु के समान खटकने लगा। तेरहपथी * कितने ही साधुओं तथा आचर्यों ने पूज्य श्री के मार्ग में अनेक विघ्न डाले, इनक जिये अनेक प्रकार की कल्पित तथा मिथ्या गप्पें बिघ्न-स-तोपियों ने फैलाना प्रारंभ की और किसी भी तेरहपथी भाइयों ने उन्हें उतरने को स्थान न देना तथा आहार पानी न बहाना ऐसी हीलवान प्रारंभ की। उपायक रीति से तेरहपथी भाइयों ने पूज्य श्री को परिपह देने में कमी न की, परन्तु पूज्य श्री परिपह से तनिक भी डरने वाले न थे। उन्होंने अपना बिहार आगे प्रारंभ ही रक्खा और लाडनू खादीसर, राजलदेसर, रतनगढ़, सरदार

* साधुमार्गी स्थानकवासी सम्प्रदाय में स भिन्न हुए साधुओं न यह पथ चलाया है। जीवदया इत्यादि बातों में वह समाम जैन सम्प्रदायों से भिन्न मत वाला है।

शहर आदि अनेक ग्रामों में विचर पवित्र दयाधर्म की विजय-पताका फहराई। बीकानेर के सुप्रसिद्ध सेठ हजारीमलजी मालू इत्यादि धली में पूज्य श्री के दर्शनार्थ गए थे और कितने ही दिन उन की सेवा में रह अनेक ग्रामों में फिरे थे।

धली के विहार में महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण इत्यादि वैष्णव भाइयों ने बहुत ही पूज्यभाव दर्शाया था और आहार पानी इत्यादि बहरा कर अलभ्य लाभ उठाया था, वे पूज्य श्री के सदुपदेश से उन्हें अपने साधु हों ऐसा मानते थे और तेरहपंथी साधुओं की उत्सूत्र प्रख्याता से जैनधर्म के विषय में उन्हें तथा धली के कई लोगों को ऐसी शंकायें थीं कि जैन लोग जीवोंको मृत्यु के पंजमें से छुड़ाना पाप समझते हैं, दान देने में पाप मानते हैं और गौशाला जैसी पारमार्थिक संस्थाओं को कसाईखाने से भी अधिक पापलाता समझते हैं। ऐसी २ शंकाओं के कारण वहां के निवासी जैनधर्म की ओर घृणा की दृष्टि से देखते थे, परन्तु श्रीजी महा-राज के सदुपदेश से उनकी भ्रमनाएं दूर होगईं। सब शंकाएं भाग

※ तेरहपंथी साधु ऐसा उपदेश देते हैं कि एक जीव के मारने में सिर्फ एक पाप (प्राणनाशपातका) ही लगता है। परन्तु उसे बचाने में अठारह पापस्थानक सेवन करने पड़ते हैं।

गई और जैसी ही प्राणीरक्षा के पूर्ण हिमायती हैं वेगल दृष्ट नि-
 श्रय पूज्य श्री ने उन्हें शास्त्रीय दृष्टांत दे करादिया ।

प्रतापमलजी की अपील ।

फई तेरहपंथी भाई भी पूज्य श्री के शास्त्रानुसार उपदेश से
 उनके परामर्श और दयाधर्म के अनुयायी बन गए. इनमें से कि-
 तने ही सङ्गदय जनों को पूज्य श्री के साथ आने स्वधर्मी बंधु
 और साधु को अघटित वर्ताव करते थे, बड़ा दुःख होता था और
 इनमें से एक सद्गुरुद्वय मुवासर निवासी श्रीयुव प्रतापमलजी ना-
 हटा ने एक विज्ञापन पत्र छपाकर अपने स्वधर्मी भाइयों को मुस्त
 बाद उन्हें सत्य हाल से परिचित किया था ।

सदर विज्ञापन के सिर्फ़ थोड़े शब्द यहाँ दिये गए हैं, किसी
 भी सम्प्रदाय या व्यक्ति की निंदा को इस पवित्र पुस्तक में जगह
 देने का लक्ष्य का विचार न होने से समस्त विज्ञापन जो कि तेरह-
 पंथी भाइयों की भूल बताता है तो भी इसमें प्रसिद्ध नहीं किया गया ।

प्यारे भाइयों से निवेदन ।

प्रिय सज्जनों को ज्ञात हो कि हमारे तेरहपंथी और पाईस
 सम्प्रदाय के साधु आर्यों में मतभेद है, आज तक मैंने भाईस सम्प्र-

दाय के किसी साधु को न देखा था परन्तु सुना था । आज अपने (तेरहपंथी के) साधु श्रावकों के सामने उनके सम्बन्ध में इस लेख द्वारा मैं कुछ कहना चाहता हूं, इसपर से कोई यह न समझे कि मैं अन्यधर्मी हूं, अबतक मैं तेरहपंथी ही हूं और इसीलिए निम्नांकित इक्कीकत समक्ष पेश करता हूं ।

ता० ७ वीं मई १९१६ के रोज सरदारशहर निवासी बालचंदजी सेठिया प्रथम 'आडसर' आये और हमारे तेरहपंथियों के साधु श्रावकों द्वारा बाईस टोले के साधुओं को उतरने के लिए मकान न देने का प्रबंध किया । फिर वहां से रवाना हो 'मुंवासर' आये और संध्या के छः बजे साध्वीजी के पास आये । वहां मैं भी हाजर था और अन्य भी २०-२५ गृहस्थ तेरहपंथी बैठे थे । तब बालचंदजी सेठिया साध्वी को कहने लगे कि "बाईस टोले के साधुओं का आचार ठीक नहीं होता, वे यहां आयेगे उन्हें उतरने वास्ते मकान न मिले तो ठीक हो" । तब साध्वीजी बोले कि उनके आचार विचार के कुछ हाल सुनाओ, तब बालचंदजी बोले कि वे दोपीला आहार पानी लाते हैं अर्थात् जबरदस्ती से आहार मांग लेते हैं और उन्हें कोई प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर भी नहीं देते और उत्तर न देने का कारण पूछते हैं तो कहते हैं कि अभी अवसर नहीं है । तब हम पूछते हैं कि आपको अवसर कब मिलेगा ? तो बोलते भी नहीं, फिर बालचंदजी बोले कि 'सरदारशहर में तो कालूरामजी चंडालिया ने चालीस हजार

या मकान उतरने के वास्ते दिया, जो वे मकान नहीं देते तो वे कहाँ उतरते ? उन साधुओं के वाप दाहों ने भी वैसा मकान न देखा होगा । ऐसी २ अनेक बातें रात के छः बजे से साढ़े आठ बजे तक होती रहीं और साधुजी तथा भावक सब उसे सुनते रहे । वे सब बातें लिखी जायें तो एक छोटीसी पुस्तक बन जाय । परन्तु मैंने छद्मपत्र में लिखी हैं । फिर मैं तो उन सबको बातें करता छोड़ अपने मकान पर जा सोया । तत्पश्चात् पा० १४ के रोग २२ सम्प्रदाय के साधु मुवासर आये । मालचन्दजी तथा मालचन्दजी ने जो बातें वही थीं वे मरुथी हैं या झूठी, उसके परीक्षण मैं गोचरी पानी में उनके साथ रहा और देखा तो गोचरी में कोई किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं करत । दोपीले आहार पानी न लेते । परिचय से ज्ञात हुआ कि मालचन्दजी इत्यादि की सब बातें मिथ्या हैं । इन साधुओं को लोग स्थान २ पर आकर प्रभू पूजते थे और वे सब को यथार्थ उत्तर भी दे देते थे, परन्तु गोचरी के समय कई लोग राह में उन्हें रोकते तो वे कहते कि अभी मौका नहीं है ।

अब मेरे दिम में जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें जाहिर करता ॥ । सब तरहपैरी भाइयों से प्रार्थना करता हू कि इस तरह कदाग्रह करना, साधुओं को मिथ्या कलक देना, उन्हें उतरने के लिये मकान न देना, लड़ाई मगड़े करना, चातुर्मास न करने देना, ये भले आदमियों के काम नहीं हैं । अपने तरहपैरी के साधुओं को तो भादाम

इत्यादिके हलुके बहराना और दूसरे साधुओं पर मिथ्या दोषारोपण करना यही क्या अपना धर्म है ? यह बात सोचना चाहिये, नहीं तो उसका फल यह होता है कि परस्पर द्वेष भाव बढ़ता जाता है और साथ ही अपनी मूर्खता प्रकट होती जाती है । आप लोगों को तो ऐसा चाहिये कि सब से प्रेम रखें और अनुचित प्रवृत्ति से साधु आत्रकों को रोकें । तेरहपंथी साधु साध्वी कहते हैं कि तुम्हारे घर से तो दूसरी सम्प्रदाय के साधु आहार पानी ले गए तो तुमने क्यों बहराया ? इसलिये अब हम तुम्हारे यहां गोचरी न आवेंगे, जो अब तुम ऐसी प्रतिज्ञा लो कि तेरहपंथी साधु के सिवाय अन्य किसी को दान न देंगे, तभी हम तुम्हारे यहां आवेंगे । ऐसा कह कइयों को प्रतिज्ञा देते हैं । पाठक ! विचार करें कि जो साधु पंच-महाव्रत लेकर भी राग द्वेष नहीं त्यागते और उलटे उसकी वृद्धि करते हैं तो फिर गृहस्थी का तो कहना ही क्या है ? इसलिये आप लोगों से यह विनती है कि कुछ दिल में विचार करो गृहस्थी का अभंग द्वार है और दया दान से ही गृहस्थाश्रम की शोभा है, कल्याण है । महावीर भगवान का दया दान पर ही परम उपदेश है । उसे वंदकरना जिन-वचनों की उत्थापना करने के समान है । इसलिये भविष्य कालका विचार कर सब भाई सम्प रखें और विद्याकी उन्नति करें और जो मिथ्या चाल पड़ गई है उसे सुधारलें यह काम जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी सभा को हाथ में लेना चाहिये ।

प्रतापमल नाहटा, मुंवा नर

राज्य श्री बीकानेर (मारवाड़)

पूज्य श्री का परिचय करानेवाला चाहे जितना उनके विरुद्ध हो तो भी प्रशंसा करने लग जाता था । यली में अपने स्वधर्मियों की वस्ती न होने से पूज्य श्री को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था उनके यहा विचरने से जैनधर्म का अपार उद्योत हुआ *

सरदारराहर तथा रत्नगढ़ में अम्रवानों के हजारों घर हैं वे पूज्यश्री के उपदेशामृत का अत्यानन्दपूर्वक पान करते थे और ऐसा कहते थे कि हमारे अहोभाग्य हैं कि ऐसे महान पुरुषोंने हमारे देश में पदार्पण कर हमें पावन किया है ये केव ? ओसवालों के हा नईं, हमारे भी साधु हैं ।

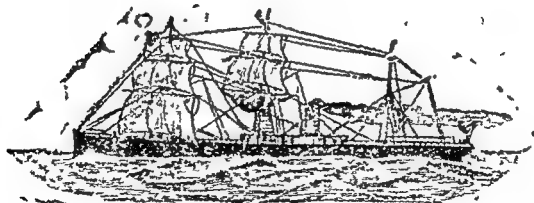
रत्नगढ़ में पूज्यश्री के सदुपदेश से जीवदयाके लिये रु० ८०००) का फंड हुआ था ।

* पूज्य श्री के यली के विहार दरमियान कई जगह तेरापथी साधु तथा भावकों के साथ ज्ञानचर्चा तथा सवाद हुए, उस समय पूज्य श्री ने अकाश प्रमाणों द्वारा दशधर्म की स्थापना की । वे प्रभाकर मिश्रान नामक हमने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु अतक वे न मिल सके । वह प्रस्तावली प्राप्त कर बीकानेर के आवक प्रसिद्ध करेंगे तो जीवदया सम्बन्धी यलीमें भराया हुआ भूत भग निकलेगा, साधुमार्गी मुनिराजों को भी यली की तरह विहार कर जीव दया के लगाये हुए वस्कारों को सजीवन रखना चाहिये ।

थकी के त्रिहार दूरम्यान बीकानेर के सैकड़ों श्रावक तथा अजमेर से राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा दी० ब० उम्मेदमलजी लोढा इत्यादि दर्शनार्थ आये थे ।

बड़े २ करोड़पतियों को इन महापुरुष की पदरज मस्तक चढ़ाते देख उनको अपमानित करने वाले कितने ही तेरहपंथी भाई अत्यन्त लज्जित हुए थे ।

महापुरुषों के तो ऐस कष्ट ही कीर्ति कोट की दिवाल टूट करने में सीमेंट के समान है ।



अध्याय ३८ वाँ ।

श्री संघ का कर्तव्य ।

पूज्य श्री जय भली में इस प्रकार जैन-धर्म की विजयध्वजा फहराते हुए विचर रहे थे, तब जाबरा बाले साधु जोधपुर में एकत्रित हुए और अपने में से किसी को आचार्य पद देने का विचार किया, परन्तु जोधपुर संघ इस कार्य में सहमत न हुआ। तब उन साधुओं ने सात कलम लिख जोधपुर भी संघ को दी। वे लेकर जोधपुर के भावक सरदारशहर में पूज्य श्री के पास आये। पूज्य श्री ने शुद्ध अत-करण से करमाया कि शास्त्र के न्याय से और सम्प्रदाय की रीत्यनुसार बात तो क्या परन्तु सातवीं कलमें मुझे मजूर हैं। इस पर से उस समय जोधपुर के संघ ने यह कार्य बंद रखाया। इसी तरह श्री संघ के अन्य अनेक भावक महाराजों ने भी सम्प्रदाय में फूट न हो तथा पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय का गौरव पूर्वात् जाय्यल्पमान रहे इस हेतु से जोधपुर संघको और जोधपुर में दकठे हुए संतों को हित सलाह दे अपन कर्तव्य बजाया था।

एक विद्वान् अनुभवी के वाक्य इस समय याद आते हैं समुद्र तान रहता है तब जहाज लेजाने में अत्यंत होशियारी अथवा अनु-

भव की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु जब जेहोज भर समुद्र में आता है और डूबने की तैयारी में रहता है तथा बैठने वाले भयभीत रहते हैं तब ही कप्तान के कार्य कौशल्य की सच्ची कसौटी होती है सच्चे कटाकटी के मामले में ही मनुष्य की चतुराई, अनुभव और विवेकता की परीक्षा होती है और ऐसे समय ही मनुष्य अपनी महान् शक्ति दिखा सकता है जबतक हम कसौटी पर नहीं चढ़े, जबतक गुप्त शक्ति सामान्य संजोगों के समय प्रकट नहीं होती तबतक हमें अपने आंतरिक बल का वास्तविक भान भी नहीं होता । यह शक्ति आपत्तिकाल में ही प्रकट होती है क्योंकि वह शक्ति सम्पादन करने के लिए हमें अंतरगहनमें पैठने की आवश्यकता है हर एक कार्य में परिणाम को प्रमाण में ही कार्यकी अपेक्षा है ।

जोधपुर के संघ के मार्फिक व्यावर-नयेशहर के श्री संघ ने भी जावरे वाले संतों को समाधान की ही सलाह दी और जब चन्होंने दूसरी पूज्य पदवी प्रकट की तब चतुर्विध संघ की सम्मति न थी ऐसा व्याख्यान में ही प्रकट होगया था और समस्त श्री संघ के संख्या बन्ध मनुष्यों की सही से हमें यह मंजूर नहीं ऐसा, लिख भेजा था ।

मालवा मेवाड़ से बहुत दूर पंजाब में पूज्य श्री की आज्ञा से बिचरते और जम्मू कश्मीर में एक संत बीमार होजाने से वहाँ

बहुत दिनों से ठहरे हुए महाराज भी मन्नालालजी स्वामी जो सत्य हकीकत के पूरे ज्ञाता न थे और सरल स्वभावी होने से दूसरों की युक्ति प्रयुक्ति में भुला जाने जैसे हलुधर्मी हैं, वे दूर के अपरिचित क्षेत्र में आसपास के संजोग बिना जाने और पूज्य भी की आज्ञा में विचरते होने से उन्होंने पूज्य भी की बिना आज्ञा लिये ही यह पद स्वीकार करने का साहस किया ।

इस पर विचार करने से सिर्फ ममत्व ही मालूम होता है । छद्मस्त मनुष्य भूल कर बैठते हैं, इसलिये दीर्घदर्शी शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्त की विधि बतलाई है । प्रबल क्लृप्त होने पर जिन्होंने आज्ञायणा नहीं की तब शास्त्र की आज्ञा अनुसार उन्हें अलग किये परन्तु पूर्व परिषय के कारण कई संत और कई भावक उनके पा में पड़ गए ।

सं० १९७३ का चातुर्मास आचार्यजी महाराज ने बीकानेर में किया । अपार अवर्णनीय, धर्मोद्योत हुआ । शहर के जैन अजैन मनुष्य तथा देशावर के दर्शनार्थ बड़ी संख्या में आने वाले भावक भाविकाओं की हज़ारों मनुष्य की भीड़ व्याख्यान में इकट्ठा हो गई थी । पूज्य श्री के सद्गुणदेश द्वारा वरिष्ठमु की वाणी का दिव्य प्रकाश जनसमूह के हृदय में व्याप्त अज्ञानाम्बुकार को दूर करत था । बीकानेर सभ में अपूर्व आनन्द छारहा था । ज्ञान, ध्यान,

तप, जप, दया, परोपकार और अभयदान के मांगलिक कार्यों से बहुत ही धर्मवृद्धि तथा जैन शासन की प्रभावना हुई ।

इस वर्ष खाधुओं में भी खूब तपश्चर्या हुई । श्री हरकचंदजी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री नंदलालजी महाराज ने ७२ उपवास किये थे और श्री गेनचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि श्री केवलचंदजी महाराज के शिष्य मुलतानचंदजी महाराज ने ८२ उपवास किये थे । ये दोनों तपस्वी एक ही दिन पारणा करने वाले थे । सेठ चांदमलजी डट्टा सी, आई. ई., कि जो बीकानेर के श्रेष्ठ मूर्तिपूजक जैन भाइयों के अग्रेसर हैं उनके सुप्रयास से राज्य की तरफ से उस रोज कसाईखाने बंद रक्खे गए थे तथा भटियारों, कंदोई, सोनी, लुहार इत्यादि के हिंसा के कार्य तथा अग्नि के समारंभ बंद रक्खे गए थे । इसके सिवाय केवलचंदजी महाराज के शिष्य सिरेमलजी महाराज ने ३१ उपवास किये थे । चातुर्मास के बाद बिहार कर मारवाड़ तथा जोधपुर स्टेट के ग्रामों में विचरते-रूजू श्री जय जोधपुर पधारे तब जयपुर श्रीसंघ ने चातुर्मास जयपुर करने कावत्त विनय की, तब उसे मंजूर कर नयेनगर अजमेर होकर पूज्य श्री आपाढ़ शुक्ला २ को जयपुर पधारे । उस समय अजमेर नगर में महामारी-लेग का उपद्रव प्रारंभ था, परन्तु पूज्य श्री के अजमेर में पदार्पण करते ही शांति होगई थी ।

अध्याय ३६ वाँ ।

जयपुर का विजयी चातुर्मास ।

सं० १९७४ का चातुर्मास पूज्य श्री ने जयपुर किया । जयपुर में भर्मेभ्यान तपस्वी, त्याग, प्रत्याख्यान तथा चर्मोपनिषि अत्यन्त हुई । बाहर ग्राम से संख्याबन्ध आकर दर्शनार्थ आते थे । रतलाम, बिकानेर, जापुरा और व्याख्यानगर के कितनेक आकर पूज्य श्री के सत्संग और बाणी भवषादि का लाभ बठाने को खास मकान लेकर रहे थे । भीमती नानूबाई देशाई मोरवी वाली तथा मुम्बई, गुजरात और काठियावाड़ के कई आकर दर्शनार्थ आये थे और बहुत दिनोंतक व्याख्यान का लाभ बड़ाया था । व्याख्यान में कभी २ नानूबाई जी-उपयोगी महत्व के प्रश्न पूज्य श्री से पूछती थी और उनके संतोषदायक उत्तर पूज्य श्री की और से मिलने पर ओतागण सानेदाश्चर्य होते थे ।

जयपुर स्टेट की तरफ से बकरिबों का बंध करना मना था, परन्तु बकरी का बंध होता है, ऐसी खबर पूज्य श्री को मिलते ही एक समय व्याख्यान में पूज्य श्री ने प्राणीरक्षा पर असरकारक विवेचन कर भाषकों को उत्तक कर्तव्य बताते हुए कहा कि, उदयपुर के आकर

तथा नंदलालजी मेहता जैसे सत्साही कार्यकर्ताओं ने महाराजश्री के उदार आश्रय से हिंसा रोकने के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किया है और हिंसा बराबर रुकी रहे और राज्य के हुक्म का बराबर अमल होता रहे उसकी पूर्ण निगाह रखते हैं इसलिये वहां कोई भी मनुष्य राज्य की आज्ञा के विरुद्ध जीवहिंसा करने का साहस नहीं कर सकता । जो नंदलालजी मेहता उदयपुरवाले यहां होते तो राजकी आज्ञा उल्लंघन कर बकरियों का बध करने वालों को ज़रूर रुकाने की कोशिश करते, इस बात की खबर उदयपुर नंदलालजी मेहता को मिलते ही तुरन्त वे और केसूलालजी ताकड़िया जौहरी उदयपुर से रवाना हो जयपुर आये और कई दिन ठहर कर बकरियों का बध रोकने का प्रयत्न किया । नामदार महाराज तक खबर पहुंचा कर सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की । इस चातुर्मास से बकरी का बिलकुल बध होना बन्द होगया । श्रीमान् रायबहादुर खवासजी बालावत्तजी साहिब ने कसाईखाने की तपास करने वाले डाक्टर साहेब को सख्त फरमाया था कि जो कोई शख्स बकरीयों का बध करे उन के पास से कानून अनुसार ५०) रुपये दण्ड मात्र ही नहीं लो, परन्तु उन्हें सख्त सजा कराओ । इस कारण खवासजी भी धन्यवाद के पात्र हैं ।

इस चातुर्मास में दर्शनार्थ आनेवाले स्वधर्मी बंधुओं का स्वागत करने का सन्मान सुप्रसिद्ध जौहरी काशीनाथजी वाले

जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। वे स्वतः तथा उनके भाई जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे पर खड़े रहते और महमानों को हाथजोड़ अपना मकान पवित्र करने वास्ते अर्ज करते तथा खड़े रह कर सबको आमह से जिमाते थे। रतलाम में युवराज पदवी के उत्सव पर जयपुर से सास जौहरी मुन्नीलालजी रतलाम पधारे थे और अपने प्रात की ओर से इस पदवी वास्तु हार्दिक अनुमोदन दिया था।

मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने वाले सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे और श्रीविभोजन के स्वधर्मियों से भेट करने का अवसर प्राप्त किया था।

जयपुर चातुर्मास में देश परदेश के कई सावक जयपुर में होने से धर्म का बड़ा उद्योत हुआ था। जागीरदार और अमलदार तथा राव-महादुर डाक्टर दुर्जनसिंहजी इत्यादि ज्ञानवर्षा के लिए पूज्य श्री के पास आते और उनके मनका सरल रीति से समाधान होजाने पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य श्री टोंक पधारे, उस समय टोंक की ओसवाल जाति में कुसम्प था। शांति में दो सप्ते होगई थी, परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से कुसम्प दूर हो पूर्ण एकता होगई थी।

टोंक से क्रमशः विहार कर पूज्य श्री रामपुरा पधारे और स० १६७४ के फाल्गुन शुक्ल ३ के रोज सजीत वाले भाई नंदरामजी ने पूज्य श्री के पास रामपुरा मुक्ताम पर दीक्षा ली।

अध्याय ४० वाँ ।

सदुपदेश का प्रभाव ।

रामपुरा से भीजी महाराज कुकदेश्वर पधारे । व्याख्यान में स्व-परमती बड़ी संख्या में आते थे । स्कंध तथा व्रतादि बहुत हुए । जड़ाव-चन्दजी पोरवाड़ ने ४५ वर्ष की अवस्था में सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगी-कार किया । यहां दो रात ठहर कर पूज्य श्री कंजारड़ा पधारे, वहां जावद-बाले भाई कजोड़ीमलजी ने दीक्षा ली, वहां से पूज्य श्री भाटखेड़ी पधारे, वहां श्रीयुत नानालालजी पीपलिया ने सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था तथा वहां के रावजी साहेब ने शिकार खेलने का त्याग किया । वहां से श्रीजी मनासा पधारे । वहां महेश्वरी (वैष्णव) भाई भावभक्ति सहित व्याख्यान का लाभ लेते थे । यहां के न्यायाधीश, मुन्सिफ साहिब इत्यादि सरकारी कर्मचारीगण भी व्याख्यान का लाभ उठाते थे । मनासासे महागढ़ हो पूज्य श्री पीपलिया पधारे । वहां मंदिरमार्गी भाइयों के घर होने से २२ सम्प्रदाय के साधु वहां नहीं जाते थे तथा उन्हें आहार पानी व उत्तरने चास्ते मकान भी नहीं देते थे । श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उनकी द्वेषाग्नि शांत होगई और वहांके ठाकुर साहिब ने शिकार खेलने का त्याग किया ।

जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। ये स्वतः तथा उनके भाई जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे पर खड़े रहते और महमानों को हाथजोड़ अपना मकान पवित्र करने वास्ते अर्ज करते तथा खड़े रह कर सबको आमद से जिमाते थे। रतलाम में युवराज पद्मी के उत्सव पर जयपुर से सास जौहरी मुन्नीलालजी रतलाम पधारे थे और अपने प्रात की ओर से इस पद्मी वास्तु हार्दिक अनुमोदन दिया था।

मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने वाले सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे और प्रीतिभोजन के स्वधर्मियों से भेट करने का अवसर प्राप्त किया था।

जयपुर चातुर्मास में देश परदेश के कई आबक जयपुर में होने से धर्म का बड़ा उद्योत हुआ था। जागीरदार और अमलदार तथा राय-महादुर डाक्टर दुर्जनसिंहजी इत्यादि ज्ञानवर्षा के लिए पूज्य श्री के पास आते और उनके मनका सरल शक्ति से समाधान होजाने पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य श्री टोंक पधारे, उस समय टोंक की आसवाल जाति में कुसम्प था। शांति में दो वर्षें होगई थीं, परन्तु पूज्य श्री क सदुपदेश से कुसम्प दूर हो पूर्ण एकता होगई थी।

टोंक से क्रमश विहार कर पूज्य श्री रामपुरा पधारे और स० १६७४ के फाल्गुन शुक्ल ३ के रोज सजीव वाले भाई नदरामजी ने पूज्य श्री के पास रामपुरा मुकाम पर दीक्षा ली।

अध्याय ४० वाँ ।

सदुपदेश का प्रभाव ।

रामपुरा से श्रीजी महाराज कुकड़ेश्वर पधारे । व्याख्यान में स्व परमती बड़ी संख्या में आते थे । स्कंध तथा व्रतादि बहुत हुए । जड़ाव-चन्दजी पोरवाड़ ने ४५ वर्ष की अवस्था में सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया । यहां दो रात ठहर कर पूज्य श्री कंजारड़ा पधारे, वहां जावद वाले भाई कजोड़ीमंजजी ने दीक्षा ली, वहां से पूज्य श्री भाटखेड़ा पधारे, वहां श्रीयुत नानालालजी पीतलिया ने सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था तथा वहां के रावजी साहेब ने शिफार खेलने का त्याग किया । वहां से श्रीजी मनासा पधारे । वहां महेश्वरी (वैष्णव) भाई भावभक्ति सहित व्याख्यान का लाभ लेते थे । यहां के न्यायाधीश, मुन्सिफ साहिब इत्यादि सरकारी कर्मचारीगण भी व्याख्यान का लाभ उठाते थे । मनासासे महांगढ़ हो पूज्य श्री पीपलिया पधारे । वहां मंदिरमार्गी भाइयों के घर होने से २२ सम्प्रदाय के साधु वहां नहीं जाते थे तथा उन्हें आहार पानी व उतरने वास्ते मकान भी नहीं देते थे । श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उनकी द्वेषाग्नि शांत होगई और वहांके ठाकुर साहिब ने शिफार खेलने का त्याग किया ।

पीपलिया से पूज्य श्री धामुण्ये पधारे । वहां साधुमार्गी के सिर्फ ५-७ पर थे । यहां के जमीनदार मांछा सोम नवरात्रि में देवी को थार बकरे चढ़ाते थे, पूज्य श्री के अमृत तुल्य उपदेश । उनके हृदय पर जादू के समान प्रभाव पड़ा और उन्होंने हमेशा के लिये देवी के सामने बकरे न चढ़ाने की प्रतिज्ञा ली और नीचे लिखा ठहराव कर वन पर खरने अपनी २ राहों की “आगे से बकरों का बच नहीं करते जोखवालों के समस्त पशुओं की ओर से चूरमा बाटी की रसोई का नैवेद्य माताजी को रखेंगे ।”

यहां से श्रीजी महाराज ‘बहेड़ी’ नामक एक छोटे ग्राम में पधारे । वहां के ठाकुर साहिब ने पूज्य श्री के सदुपदेश से अपनी पत्नि के साथ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और शिकार खेलने का त्याग किया । वहां से पूज्य श्री ने जावद की तरफ बिहार किया ।

बड़े २ राहों की अपेक्षा छोटे २ ग्रामों में जहां ऐसे समस्त धर्मोपदेष्टाओं का आगमन कबित ही होता है, वहां के लोग महापुरुषों की अद्भुत वाणी भवण करने का अपूर्व प्रसंग प्राप्त कर किन्तु अभिलाषा दिलाव हैं, और व्रत प्रत्याख्यान करते हैं इसके ये प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

स० १६७४ के कार्तिक वदी ५ के रोज रामपुरे से ही पूज्य

श्री जावद पवारे । जावद में लेग का उपद्रव था, परन्तु पूज्य श्री के पदार्पण करते ही उनके पवित्र चरणकमल से पवित्र हुई भूमि में से लेग भगगया । और शांतिदेवी ने अपना साम्राज्य जम । दिया । जावद निवासियों पर इसके इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जैनधर्मी और अन्यधर्मी पूज्य श्री की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे ।

रामपुरा से जावद पधारते समय पूज्य श्री के सदुपदेश से राई के अनेक ग्रामों में तथा जावद में जो जो उपकार हुए, उनका संक्षिप्त सार निम्नांकित है:—

- १ संस्थान बहेड़ी के ठाकुर साहिब प्रतापसिंहजी बहादुर ने कई प्रकार के शिकार के सौगंध लिये तथा उनकी बड़ी ठकुराइन साहिबा ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया ।
- २ ग्राम मोरवण में ओसवाल जाति में तीन तढ़ें थीं, वे श्रीमान् के उपदेशाश्रित के सींचने से कुसम्प मिट सम्पूर्ण एकता होगई और कितने ही कुव्यसनों का त्याग हुआ ।
- ३ मोही ग्राम के राजपूत लोगों ने जीवाहिंसा तथा मादक द्रव्य पान न करने के त्याग किये ।

४ जावर में पूज्य भी के दर्शनार्थ लैकड़ों ग्राम पर--ग्राम के मनुष्य नित्य दर्शन को आते थे, सबका उत्तम रीति से स्वागत होता था, अमीरान् लगभग एक माह तक वहां बिराजे, खंभ का उत्साह हर-रोज बढ़ता जाता था । १६ वर्ष के पहिले पुत्र तथा १२ वर्ष के पहिले पुत्री का ब्याह न करने बाबत तथा ४५ वर्ष से ज्यादा उमर वाले घर को कन्या न देने बाबत बहुतों ने प्रतिज्ञा ली । तथा रक्तपादि बहुत हुए ।

स० १६७५ के बैशाख बड़ी ३ को बालेश्वर निवासी श्रीयुक्त करनूरचंदजी ने प्रबल वैराग्यपूर्वक जावर में दीक्षा ली । दीक्षा उत्सव में करीब ४००० मनुष्य की उपस्थिति थी । वहां से स्वामीजी ने निम्नाहंसा की तरफ बिहार किया ।



अध्याय ४१ वां ।

डाकन की शंका का निवारण ।



निम्बाहेड़ा में बहुतसी स्त्रियों के ऊपर डाकन होने का मिथ्या कलंक बहुत समय से था । वहीमी लोग उनसे डरते और कोई भी स्त्री उनके साथ खानपानादि का व्यवहार नहीं रखती थी । पूज्य श्रीके निम्बाहेड़ा पधारने पर उक्त बात पूज्य श्री को ज्ञात हुई और 'किसी प्रकार इन पर से यह कलंक छूटे तो ठीक हो' ऐसा उन्हें जचा । ग्राम के लोग कहते कि कदाचित् आकाश में से देवता साक्षान् प्रकट हो भूमि पर आ यह कहें कि ये बाइयां डाकण नहीं हैं तो भी डाकन का जो कलंक उनके सिरपर है, वह कदापि दूर नहीं हो सकता, । परन्तु परम प्रतापी पूज्य श्री की अपूर्व उपदेशामृत की धारा ने यह कलंक धोडाला ।

व्याख्यान में साधुमार्गी, मंदिरमार्गी, वैष्णव इत्यादि स्त्री पुरुष बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे, तब श्रीजी महाराजने मौका देखकर ऐसा उत्तम और प्रभावोत्पादक भाषण दिया कि उसका अद्भुत असर तत्काल लोगों पर हुआ और उसी दिन से सब स्त्रियों ने उन बाइयों के साथ खानपानादि का व्यवहार

पूर्ववत् प्रारम्भ कर दिया और सब झगड़ा मिट गया, उस समय प्रथम श्री ने निम्नांकित एक दृष्टांत दिया था—

“ एक सेठ के यहां कई गाये और भैंसें थीं । सेठानी बहुत भली और दयालु थी, जिससे ग्राम के लोगों को पोले हाथ छाछ देने लगी । एक दिन सब छाछ सुख गई, बाद एक बाई छाछ लेने आई, तब सेठानी ने निरुधाय हो उसे इन्कार किया । फिर दो बार दिन बाद भी यही हाल हुआ । जिससे वह श्री सेठानी पर कोपित हो बोली कि ग्राम के सब जनों को छाछ देती है एक मुझे ही तुम्हारे बारबार निराश कर पीछा लौटने को कहती है, परन्तु अब बाद रत्नना ऐसा कहकर क्रोधावेश में वह चली गई और फिर कभी छाछ लेने न आई ।

इस बातको थोड़े ही दिन बीतते होंगे कि एक दिन वह श्री पानी का बेवड़ा लिये हुये नदी की ओर से घरको आ रही थी जब सेठ की दुकान के समीप आई तब माथे पर का बेवड़ा केंक दिया और स्वर जोर से छिर धुनने और होहा करने लगी । बाजार के इशारों लोग इकट्ठे होगये । मंत्रवादी, भोपे प्रभृति आये और उभे पूजने से यह कहने लगी कि मैं कक्षा सेठानी हूँ, गाय भैंस इत्यादि हैं, ये तो भरे पति (सेठ की) की लाई हुई हैं, मैं उनकी स्वामिनी हूँ किसी को छाछ देना न देना मेरी इच्छा की वान है, यह राज (स्वयं) मेरे

यहां छाछ लेने आई और मैंने इनकार कर दिया तो मुझे कई गालियों और आप दे चली गई अब मैं इसे जीवित नहीं छोड़ूंगी " सेठ भी उस भीड़ में थे अपनी स्त्री पर ऐसा कलंक आता देख वे शर्मिंदा होगए। विचारी भली सेठानी इस बात से बिलकुल अज्ञात थी वह बिलकुल निर्दोष थी, छाछ लेने आने वाली बाईका ही यह सब प्रपंच था, तो भी सब ग्राम में वह सेठानी डाकन के सदृश गिनी जाने लगी और सबने उसके साथका व्यवहार बंद कर दिया। इस तरह अज्ञान और संशयी मनुष्य विचारे निर्दोष व्यक्ति पर मिथ्या आल चढ़ा उसकी जिंदगी बर्बाद कर देते हैं, परन्तु बदकाम का नवीजा बद ही होता है, आज तुम्हारे पर किसी ने मिथ्या कलंक चढ़ाया है तो तुम्हें कितना दुःख होगा, इसका विचार कर उसके साथ ऐसा व्यवहार रखो कि जैसा व्यवहार दूसरों से तुम अपने साथ रखवाना चाहते हो। 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' * यह मंत्र खूब याद रखो। इसका यह मतलब है कि जो २ बातें कृपाएं चेष्टाएं तुम्हारे प्रतिकूल हैं दूसरों के द्वारा जो व्यवहार होता है वह तुम्हें नापसंद हो, उसे अहितकर दुःखदाई समझते हों तो तुम वैसा व्यवहार दूसरों के साथ भी मत करो। इस उपदेश

* Do unto others what you wish to be done unto you. दूसरों का तुम अपने साथ जैसा व्यवहार चाहो वैसा ही व्यवहार करना तुम दूसरों के साथ प्रारंभ करो। (बाईचल)

और सेठानी के दृष्टांत का लोगों पर पूर्ण प्रभाव पड़ा । इसी तरह 'शत स्वन्धा' में कितनी ही वाइयों के शिरपर हाकन का कलक था वह पूज्य श्री के वहाँ पधारने पर उनके उपदेश से प्रयाण कर गया था ।



अध्याय ४२ वां ।

उदयपुर महाराज-कुँवार का आग्रह ।



यहां से विहार करते २ पूज्य श्री भीलवाड़े पधारे । वहां शेष काल फलिप्त दिन ठहरे । भीलवाड़े के हाकिम पंडितजी श्री भवानीशंकरजी श्रीमान् का सदुपदेश श्रवण करते थे । यहां ओसवालों में २७ वर्ष से भिन्न २ तीन तर्कें कुसम्प के कारण हो रही थीं । श्री जी महाराज के अमूल्य उपदेश से सब क्लेश दूर हो गया और तीनों तड़वाले दकट्टे होगये । चातुर्मास के लिये बहुत नम्रता के साथ प्रार्थना की परन्तु उदयपुर से श्रीमान् कोठारीजी साहिब चातुर्मास की विनन्ती वास्ते स्वयं पधारे और चातुर्मास उदयपुर करने वाद्यत बहुत आग्रहपूर्वक अर्जकी, इसलिये भीलवाड़े का चातुर्मास स्वकृत गर्हीं हुँआ ।

तत्पश्चात् श्रीजी महाराज चित्तौड़ पधारे । वहां भी ओसवालों में दो तर्कें थीं, वे पूज्य श्री के सदुपदेश से एक होगई । यहां भी श्रीमान् कोठारीजी साहिब दर्शनार्थ पधारे थे और चित्तौड़ के ओसवालों में एकता कराने में उनका मुख्य हाथ था । महेश्वरी और ओसवालों के बीच भी कलह था, वह पूज्य श्री के उपदेश से दूर होगया ।

इस वर्ष पूज्य श्री के चातुर्मास के लिये नयेशहर के श्री संघ को अत्यन्त अभिलाषा थी, जिससे नयेनगर के भावकों ने जावद इत्यादि स्थानों पर श्रीजी की सेवा में उरस्थित हो प्रार्थना की थी और उन्हें कुछ आशा भी होगई थी, परन्तु जब दूसरी ओर उदयपुर संघ का भी सम्पूर्ण आरपण था और सुद नामदार महाराज-कुमार साहिब की भी पूज्य श्री का चातुर्मास उदयपुर कराने की प्रबल आकांक्षा थी। श्रीमान् महाराजकुमार साहिब बहुत ही धर्म-प्रेमी गुणमाही, तत्वजिज्ञासु और दयालु दिल वाले हैं, सच्च भावनाओं में ऐसा बल रहता है कि उन्हें उत्तम वस्तुओं का योग मिल ही जाता है, कुछ न कुछ निमित्त आ मिलता है। गये चातुर्मास में पूज्य श्री जब जयपुर बिराजते थे तब उदयपुर के एक सुयोग्य भावक श्रीयुक्त कन्हैयालालजी चौधरी ना० महाराणा श्री के हांगोछे तथा कमरबंद छपाने वाले जयपुर आये थे तब उन्होंने श्रीजी महाराज के दर्शन तथा बानी श्रवण का लाभ लिया था और सं० १६७४ के कार्तिक शुक्ल ११ के रोज वे पीछे उदयपुर गए और श्रीमान् महाराजकुमार साहिब को सब हकीकत निवेदन की, पूज्य श्री के अमृतमय उपदेश की यथायथ प्रशंसा की, तब महाराजकुमार साहिब ने फरमाया कि भविष्य का चातुर्मास पूज्य श्री का यहा करना कल्पता है या नहीं, उत्तर में चौधरीजी ने अर्ज की कि, हा हुजूर कल्पता है, यह सुन महाराजकुमार ने

चौधरीजी से कहा कि तुम, आगामी चातुर्मास पूज्य श्री यहां करें, इस वाक्यत अभी से पूरी-२ कोशिश करो ।

चैत्र माह में पूज्य श्री मनासा विराजते थे, तब पन्नालालजी रात्रि को विनन्ती करने के वास्ते भेजे थे । पूज्य श्री जावद पधारे वहां भी उदयपुर के कई श्रावक विनन्ती करने वास्ते आये थे और अर्ज की थी कि महाराजकुमार की भी प्रबल आकांक्षा है कि आगामी चातुर्मास उदयपुर में हो तो बहुत ठीक हो, परन्तु पूज्य श्री की तरफ से स्वीकृति का उत्तर न मिला । चैत्र शुक्ल ११ के रोज कोठारी जी साहिब उदयपुर आये और चौधरीजी कन्हैयालालजी को जावद विनन्ती के वास्ते भेजे । उन्होंने उदयपुर पधारने से बहुत उपकार होना संभव है, ऐसा विश्वास दिलाया । तब श्रीजी महाराज की तरफ से कुछ आशाजनक उत्तर मिला । महाराजकुमार जब उदयपुर पधारे और उनके पूछने पर सब हकीकत निवेदन की गई । पूज्य श्री चित्तौड़ पधारे तब महाराजकुमार साहिब की आज्ञा से श्रीयुक्त कन्हैयालालजी चौधरी चित्तौड़ विनन्ती के लिये गए और फिर भीलवाड़े भी गए थे ।

पूज्य श्री भीलवाड़े पधारे तब उदयपुर से घेरालालजी खमे-सरा, केशूलालजी ताकड़िया, पन्नालालजी धरमावत तथा नंदलालजी मेहता इत्यादि ने वहां जाकर पूज्य श्री से अर्ज की कि चातुर्मास समीप आता है और आप के पांव में व्याधि रहती है, इसलिये

आप उदयपुर की ओर विहार करो तो बड़ी कृपा हो, पण्डित
 पूज्य श्री ने फरमाया कि नयेराहर के आवकों को जाबद मुकाम
 पर उनकी विनन्ती पर से नयेराहर शेषकाल फरखने के लिये
 मैं उन्हें आशाजनक वचन दे चुका हूँ और मेरे पाव में तकलीफ
 होगई है, ऐसी स्थिति में ज्यादा होकर उदयपुर आना कठिन है ।
 इस पर से उदयपुर से आये हुए आरों भाई ज्यादा गए और वहाँ
 के साथ से सब हकीकत निवेदन की, तब ज्यादा के श्री संप ने
 कहा कि जो महाराज साहिब का ज्यादा चातुर्मास न होता हो तो
 इतना चक्कर खाकर ज्यादा पधारने की तकलीफ वे न उठावें यही
 अच्छा है, कारण कि उनके पाव में बहुत ज्यादा रही है ।



अध्याय ४३ वाँ ।

आर्याजी का आकर्षक संथारा ।



यहां से विहार कर पूज्य श्री ज्येष्ठ माह में राईमी पधारे । वहां पूज्य श्री को खबर मिली कि रंगूजी आर्याजी की सम्प्रदाय के संतो-जी श्री राजकुँवरजी ने उदयपुर में संथारा किया है और आपके दर्शन की उनके दिल में पूर्ण अभिलाषा है इसलिए पूज्य श्री ने उदयपुर की ओर विहार कर दिया । संवत् १६७५ के आपाढ़ वही ८ के रोज उदयपुर शहर के बाहर दिल्ली दरवाजे से निकल आगे जाते जो कोठारी साहिब बलवंतसिंहजी की बगीची है वहां ठहरे ।

बाड़ी में थोड़े समय विश्राम ले श्रीजी महाराज आर्याजी को दर्शन देने के लिए शहर की ओर जाने लगे । बाड़ी के बाहर निकलते ही हीरा नामक एक उदयपुर का खटीक १३१ बकरोँ को लेकर मारने के लिए जा रहा था । पूज्य श्री के साथ उस समय लाला केशरीलालजी तथा मेहता रतनलालजी इत्यादि थे । राह सकड़ी और बकरोँ की संख्या अधिक होने से पूज्य श्री राह के एक ओर खड़े होगे । उस समय पूज्य श्री के पास से जाते हुए बकरे दीनतामय दृष्टि से पूज्य श्री की ओर देखने लगे, मानो कुछ विनय कर कृपा

प्राप्त करना चाहते हों या अभयदान दिलाने की भिक्षा चाहते हों, ऐसा भास होता था। उन्होंने उस खटीक से प्रश्न किया कि इन बकरों को तू कहाँ ले जावेगा। खटीक ने घूँजते २ उत्तर दिया कि "महाराज क्या करूं मेरा यह धंधा है इसलिए इन्हें मारने ले जा रहा हूं।" यह सुनकर महाराज का हृदय बहुत कष्टाग्नि होगया और एक लम्बी साँस निकल गई, लालाजी केसरीमल जैसे प्रसिद्ध भावक उनके पास ही खड़े थे वे पूज्य श्री की मुख मुद्रा पर से उनके मनोगत भाव समझ गए और मेहता रतनलालजी से कहा कि इन सब बकरों को अभयदान मिलाना चाहिए और इसमें जो खर्च होगा वह मैं भूंगा। यह सुन श्रीयुत रतनलालजी मेहता ने खटीक को रुपये ५२५ देना ठहरा कर सब बकरों को छुड़ा दिये और दूसरों का आग्रह होते भी आप अकेले ने ही कुल रकम दे महान लाभ उठाया। इस तरह पूज्य श्री के बदयपुर में पदार्पण करते ही १३१ पशुओं के प्राण बचने पाये।

पश्चात् सतीजी श्री राजकुंवरजी कि जिन्होंने जावज्जीव का संघारा कर दिया था उनके पास आये और तबियत के हाल पूछे। पूज्य श्री के दर्शन से उन्हें परम ह्लास प्राप्त हुआ और उन्होंने कहा, कि आपके पधारने से मैं कृतार्थ हुई, आर्याजी की समता और बढ़ते परिणाम देख भीभी महाराज सानेदाभ्यं हुए।

आर्याजी का संधारा बहुत दिनतक चला । पूज्य श्री भी नित्य उन्हें धर्माभूत का पान कराते थे । उनकी सेवा में १६ आर्याजी थीं । उनको निरंतर शास्त्रों की स्वाध्याय करने का सतीजी श्री राजकुंवरजी ने फरमा रक्खा था और आप स्वयं बहुत ध्यान से स्वाध्याय श्रवण करते थे । उनका उपयोग इतना शुद्ध था कि कोई भी आर्याजी उच्चारण में एक अक्षरकी भी भूल करदेती तो तुरंत वे उसे सुधारती थीं ।

एक दिन रात को खूब वृष्टि होरही थी । जिस मकान में सतीजी ने संधारा किया था उसकी छत प्रथम से ही खुली पड़ी थी । और जब वर्षा होती थी, तब उस मकानमें पानी भर जाता था, इसलिये श्रावकों को रातभर चिंता हुई कि सतीजी को बहुत परिश्रम पड़ता होगा, परन्तु सुबह तपास करने पर ज्ञात हुआ कि पानीका एक बूंद भी छतमें से न गिरा ।

संधारा किये बाद ३४ वें दिन पूज्य श्री सतीजी की सात्ता पूछने हमेशा की नाई गए और तनियत के समाचार पूछे । तब उत्तर में सतीजी ने यह दोहा कहा—

मरने से जग डरत है, मुक्त मन बड़ा आनंद ।

कब मरस्यां कब भेटस्यां, पूरण परमानंद ॥

अर्थात् जग सब मरने से डरता है, परन्तु मेरे मन में तो बड़ा आनन्द है कि कब मरूंगी और कब पूर्ण परमानन्द से मिलूंगी (प्राप्त करूंगी) ।

देखावर से हजारों लोग पूज्य श्री के तथा सतीजी के दर्शनार्थ आते थे, और सतीजी के अखूट धैर्य की देख आनन्द पाते थे । दिनोदिन उनकी कांति और मनके परिणाम बढ़ते ही गए । अंत समय तक शुद्धि रही, किसी समय मुंह से एक शब्द भी ऐसा न निकला कि जिससे उनकी कायरता प्रतीत हो ।

छथरे में श्रीमान् कोठारीजी साहिब को सतीजी ने कहा कि श्रीदेववार को एक सिंह को अमयदान देने बाबत अर्ज करना उस मुआफिक श्रीमान् महाराणा साहिब की सेवा में कोठारीजी ने अर्ज की थी और महाराणा साहिब ने बहुत खुशी से वह अर्ज मंजूर की और याद रखकर पूर्ण कर दी और छथारे की सब इकीकत कोठारीजी से सुन उन्होंने सतीजी की बहुत प्रशंसा की थी ।

छथारा १६ दिन चला, भादण बंद १० के रोज रात को नी बजे के करीब छथारा समाप्त। उस समय एक तारा आकाश में से गिरा, उस पर से पूज्य श्री ने अनुमान किया और पास बैठे दूये भावकों से कहा कि सतीजी का छथारा इस समय सीमक गया हो ऐसा मालूम होता है, इसके थोड़े मिनट बाद ही सतीजी के स्वर्ग गमन की खबर मिली ।

अध्याय ४४ वां ।

राजवंशियों का सत्संग ।



उदयपुर के इस चातुर्मास में भी पूज्य श्री पंचायती नोहरे में विराजते थे और व्याख्यान में हजारों मनुष्य आते थे । राज्य के अमलदार वैष्णव तथा मुसलमान इत्यादि बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे ।

श्रीमान् महाराणा साहिब के ज्येष्ठ भ्राता बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब कई समय पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और उनके उपदेशों से पूर्ण संतुष्ट हो पूज्य श्री के पूरे भक्त बन गए थे । बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब एक धर्मात्मा और तेजस्वी पुरुष थे । कई वर्षों तक उन्होंने अन्न का परित्याग किया था, सिर्फ फल, दूध और दूध की बनी हुई चीजें पेड़े, बरफी इत्यादि के ऊपर ही निर्वाह करते थे, बहुत वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन किया था । जीव दया की ओर उनका पूर्ण लक्ष्य था । बहुत वर्षों से उन्होंने मांस, मदिरा का त्याग कर दिया था, इतना ही नहीं, परन्तु श्रीमान् कोठारीजी साहिब के मारफत कई समय बकरो को अभयदान दिलाया था और यों जीवों को अभय दान दे अपने द्रव्य का सदु-

पयोग करते थे । संवत्सरी के दिन बाबाजी मूरतसिंहजी साहिब ने पूज्य भीजी से अर्ज की कि आज बड़ा भारी संवत्सरी का दिन है और बाई, भाई वृद्ध संख्या में व्याख्यान में इकट्ठे होंगे, जो मनुष्य के लार एक २ बकरा अभयदान पावे तो सैकड़ों को अभयदान मिलेगा । इन पुण्यात्मा पुरुष की हितसलाह उदयपुर के भावक भाविकाओं ने तत्काल स्वीकृत की और प्रायः दो, दार्द हजार बकरों को अभयदान देने का प्रबंध किया । बाबाजी साहिब अब तो स्वर्ग सिधार गए हैं । पास के पृष्ठ पर आपका चित्र दिया गया है । येदला के रावजी साहिब श्रीमान् नाहरसिंहजी साहिब भी पूज्य भी के दर्शनार्थ पधारे थे ।

उदयपुर के नामदार श्री कुंवरजी बाबजी श्री भी १०५ श्री भूपालसिंहजी साहिब जो पूज्य श्री की अपूर्वता से पूर्ण ज्ञात थे, उन्होंने पूज्य भी का दर्शन व उपदेश सुनने भी इच्छा दर्शाई । सं० १६७५ भावण सुदी ८ के रोज सज्जननिवास बाग के नवलखा महल में (जिसकी पूज्य भी ने चातुर्मास पहले ही रियासत से आज्ञा लेली थी) समागम हुआ । दूर से देखते ही भीमान् महाराज कुमार साहिब पग में से बूट निकाल पूज्य भी के समीप आगे आ नमस्कार कर महाराज के सम्मुख बैठ गए । उस समय उन के साथ कितनेक राजकीय गृहस्थ भी थे । उस समय पूज्य श्री ने समयोचित उपदेश देते हुए कहा कि:—

आप सूर्यवंशी हैं, दिलीप से गोपालक, हरिश्चन्द्र से सत्यवादी और रामचंद्रजी के समान धर्मधुरंधर महात्माओं ने जिस वंशको पावन किया था उसी वंश में आप उत्पन्न हुए हैं। अभी आप रामचंद्रजी की गादी पर हैं इसलिए आपको धर्मकी पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। जीवों की रक्षा करना यह आपका परमधर्म है। जैनधर्म की ओर, जैन साधुओं की ओर आप प्रेम तथा बहुत मानकी दृष्टि से देखते हैं यह देख मुझे बड़ा आनंद होता है। आपके पूर्वज भी जैन धर्म की ओर हमेशा सहानुभूति रखते थे और आपके पिता श्री वर्तमान नरेश) दयाधर्म की ओर पूर्ण ध्यान रखते हैं। महाराणा साहिब के दयामय कार्यों की मैंने बहुत २ प्रशंसा सुनी है उन्होंने धर्मकी रक्षा कर शिशोदिया के कुल को दिपाया है, आपभी उनका अनुकरण कर धर्म की रक्षा करेंगे। पूर्व धर्म की रक्षा करने से ही मनुष्यदेह, उत्तम कुल और राज्यवैभव मिला है, आप अभी मनुष्यों के राजा हैं, परन्तु धर्म की विशेष रक्षा करने से देवों के राजा (इंद्र) भी हो सकते हैं।

पूज्य श्री ने यह श्लोक विस्तार से समझाया—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम् ।

परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

उपदेश सुन महाराजकुमार बहुत प्रसन्न हुए और कृतज्ञता प्रगट कर शंभुनिवास महल में पधारे।

आसोज सुदी ११ के रोज महाराज कुमार साहिब ने फिर पूज्य श्री के दर्शन और वार्तालाप का लाभ सज्जननिवास बाग में लिया । कुमार साहिब बाग में पधारे थे, उन्होंने पूज्य श्री को दूर से जाते देख गिरधारीसिंहजी (कोठारीजी साहिब के पुत्र) को पूज्य श्री के सामने भेजे और बाग में पधारने बावत अर्ज की । पूज्य श्री पधार और सदुपदेश का लाभ ठाया ।

इस चातुर्मास में तपस्वीजी भी मांगलालजी तथा नरलालजी महाराज ने बड़ी तपश्चर्या की थी । इसके उपलक्ष्य में भीजी हुजूर म अर्ज कर एक दिन अगता रखाया था । और उदयपुर भी संध ने बड़ी जेल तथा छोटी जेल के कैदियों को मिठाई पूड़ी इत्यादि खिलाते वास्ते महाराजा साहिब की मंजूरी ली थी । छोटी जेल के कैदियों को मिठाई खिलाई गई, परन्तु बड़ी जेल के कैदियों में उधर का रोग चलता था इसलिए साहिब ने इन्कार कर दिया, इसलिए फिर महाराजा साहिब की परवानगी से छोटी जेल के कैदियों को दूसरी बत्त मिठाई खिलाई गई ।

मेवाड़ के ओपियम एजेंट टेकर साहिब इस चातुर्मास में भी पूर्ववत् आते थे । एक दिन वे अपने साथ एक अंग्रेज मित्र को भी पूज्य श्री के पास लेते आये । वे भी पूज्य श्री के परिचय से अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने पास से एक

सेकरीन की शीशी पूज्य श्री को भेट करने लगे और कहा कि इस में से थोड़ीसी शकर पानी में डालने से बहुत पानी मीठा होजाता है, और आप को यह शीशी बहुत दिनों तक चलेगी । फिर महाराज श्री ने साधुओं के कठिन नियम की हकीकत कह सुनाई कि हमें खाने पीने की कोई भी चीज सामने न लाईहुई स्वीकार नहीं करनी पड़ती है, इतना ही नहीं, परन्तु पहिले प्रहर का लाया हुआ आहार पानी चौथे प्रहर में हमसे भोगना भी नहीं हो सकता, यह सब हकीकत सुन दोनों अंग्रेज चकित होगए और शीशी महाराज श्री के कार्य में नहीं आई, इसलिये दिलगीर हुए । उन्होंने कहा कि आप शीशी न ले सको तो खैर, परन्तु इस चीज से मिठास का कितना अधिक तत्व है, वह तो आप थोड़ा सा पानी मंगाकर इसमें से थोड़ी सी यह चीज डाल कर पी देखो कि जिससे आप को खात्री होजाय । महाराज ने यह भी स्वीकार नहीं किया, तब साहिब ने कहा कि हम आपके उपकार का बदला कैसे दे सकते हैं ?, महाराज ने कहा—आप कर्तव्यपरायण बने, दया-पालें और धर्म निवाहें । यही हमारे लिये भारी से भारी लाभ का कारण है । टेलर साहिब १६७१ के आतुर्मास में भी पूज्य श्री के पास आये थे, सं० १६७५ में पूज्यश्री चित्तोड़ शेष काल पधार तब भी वे पूज्य श्री के पास आये थे ।

गुणमाटी विदेशियों में सार्विक वृत्ति होती है इस कारण वे जैमा देखते हैं जैमा मर्य कहने में डरते नहीं हैं। गुजरात काठियावाड़ के अनुभवों और पूज्यश्री के व्याख्यान में राजकोट में उपस्थित रहनेवाली गिसेस स्टोवनसन लिखती हैं कि--

" Their standard of literary (405 males and 40 females per 1000) is higher than that any other community save the Parsis and they proudly boast that not in vain in their system are practical ethics wedded to Philosophical speculation for their criminal record is magnificently white "

राज्यकर्त्ता जाति यों कहती है कि जैनों में नियम और तत्त्वज्ञान किलासोफी ऐसी है कि जैन कौम छाती ठोक कह सकती है कि जैनियों में गुन्हेगारों की लिस्ट आश्चर्यपूर्वक विलकुत कोरी है। गुन्हेगारों की लिस्ट में जैनियों का नाम शायद ही दृष्टिगत होगा।

यह प्रमाणपत्र कम आनंददायक नहीं, इस प्रमाणपत्र के निमाने की कुतज जबाबदारी जैन मुनिराजा पर है, जो अभी अंसप स्टीमर के कप्तान गिने जाते हैं।

एक दिन दो बड़े बड़े प्रेमा नाम का खट्कीक पंचायती नोहरे के पाप से ही मिर्हीं की मुराक के लिये ले जाया था। इतने में पूज्य

श्री बाहर जंगल से आगए, उनकी उन बकरों पर दृष्टि पड़ी, इतने में प्रेमा खटोकने कहा कि ये जानवर न मरें तो ठीक हो, यह कहकर प्रेमा दोनों बकरों को ले नोहरे के आगे खड़ा रहा । श्रावकों को खबर मिलते ही श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने आकर प्रेमा से कहा कि इस राह से बकरे ले जाने की मनाई है, तू क्यों लाया ? सरकार की ओर से बाजार में तथा महाजन और ब्राह्मणों की वस्ती वाली गलियों में से किसी भी मनुष्य को बकरे मारने के लिये ले जाना मना है । इस पर से उन दोनों बकरों को छुड़ा कसाई पास से ले नगरसेठ के वहां भेज दिये । जो बकरे नगरसेठ के वहां चले जाते हैं उनके कान में कड़ी डाली जाती है वे बकरे सारे नहीं जा सकते । उन बकरों को अमरे कर दिये ऐसा उधर मेवाड़ मालवा में बोलते हैं । अमरे किये हुये बकरों की रक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता है । श्रीमान् मेदपाटेश्वर ने इनके लिये जमीन, मकान, मनुष्य और खर्च इत्यादि का पूर्ण प्रबन्ध कर रक्खा है । महाराणा साहिब इतने अविक दयालु और प्रजावत्सल हैं कि वे अपने या अपने सम्बन्धी जनों के या राज्य के चाहे जितने बड़े ओहदेशर के लिये कायदे का बराबर अमल हो इसकी पूर्ण चिन्ता रखते हैं । मेवाड़ के रेजीडेण्ट साहिब कर्नल वायली के दो भेड़ उदयपुर की धानमंडी में आगये, उनको भी यहां के महा-जनों ने कायदे मुआफिक छुड़ा लिये और नगरसेठजी के पास भेज

अमरिये करा दिय । ऐसे मुशामले अक्सर कई दफा पेश होते रहते हैं, परन्तु श्रीमान् महाराणा साहिब के धर्म पर पूरी २ निष्ठा हान में इस कायदा का पूरा २ अमल रहता है और कोई खिलाफ करता है वह यथोचित दण्ड पाता है ।

अध्याय ४५ वां ।

नवरात्रि में पशुवध बंद कराया ।

वर्तमान चातुर्मास में एक दिन पूज्य श्री के व्याख्यान में उदयपुर के पास खेरादा नामक एक ग्राम है वहाँ के कई श्रावकों ने आकर अर्ज की कि हमारे ग्राम के पास बाठरड़ा पट्टा का ग्राम मोहनपुरा है और वहाँ चार पांच वर्ष से कालबलिया, वादी और मदारी आदि लोग आ बसे हैं, वे वहाँ सर्प तथा गोयरे इत्यादि जानवर पकड़ते हैं और वहाँ उन्होंने माताजी का एक स्थानक किया है वहाँ आसोज महीने में नवरात्रि के दिन तथा चैत्र महीने की नवरात्रि और भाद्रपद सुद. ६ के रोज माताजी के पास १५ से २० पाड़े तथा ४० से ४५ वक़रों का प्रतिवर्ष बलिदान अंतिम चार पांच वर्ष से देने लगे हैं वह बंद होना चाहिए । इस पर से पूज्य श्री ने फरमाया कि जीवदया के हिमायती यहाँ हैं या नहीं ? तुरंत श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने खड़े होकर अर्ज की कि मैं हाजिर हूँ । पूज्य श्री ने फरमाया कि यह पशुवध बंद होजाय तो बड़ा उपकार हो । पश्चात् श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने श्रीमान् महाराणा साहेब की गणेश ड्योढ़ी पर जा दरखवास्त दी । उसपर से महकमे खास के

द्वारा गिरवा जिले के हाकिम ऊपर हुक्म करवाया गया कि जो यह बलिदान नये सिरे से होना प्रारंभ हुआ हो तो बंद कर दो। यह हुक्म पाकर भावली के यानेदार और गिरवा के गिरदावर ने माता के स्थानक पर जाकर तस्कारा की और बलिदान नये सिरे से होता है ऐसा समूत मिलने से श्रीमान् मेवाकाधीश्वर के हुक्म अनुसार बंध नहीं होने बाबत वहां के लोगों से मुचलका लिखा लिया और जामिन भी ली, तब से माता के पास पादों, बकरी का बलिदान होना बंद होगया। चातुर्मास व्यतीत हुए बाद पूज्य श्री जब खेरादे हो कानोड़ बंधारे तब खेरादे वालों ने अर्ज की कि महाराज आपके प्रयाप और मेहता नंदलालजी के सुप्रयास से पादों, बकरी का बंध होना हमेशा के लिए बंद होगया है।

श्रीपुत्र भांगीलालजी गुगलिया, उनकी पत्नी तथा कुटुम्ब सहित दर्शनार्थ आये थे। वहां इस बार्दे के शरीर में अचानक व्याधि उत्पन्न होजाने से बार्दे की प्रार्थना पर से श्रीजी महाराज ने प्रथम वैधिहार और फिर चउविहार संभारा कराया था। बार्दे ने सम्पूर्ण शुद्धि में आलोचना प्रायश्चित्त किया। दो दिन संभारा रहा और आसोज सुदी १५ के रोज उनके स्वर्गवास होगया। पाठकों को याद होगा कि इस बार्दे ने बालवय से ही ब्रह्मचर्य ग्रथ, तथा चारों स्कंध, करीब ४॥ वर्ष से ऊपर होगय, किये थे और उनके पति ने भी ३० वर्ष का उम्र में सजोड़ शीलव्रत धारण किया था। यह बार्दे पूज्य श्री

की संसार पक्ष की भानजी तथा चाँदकुँवर बाई की पौत्री थीं। धार्मिक संस्कारों की छाप उत्तरोत्तर कैसी प्रबल पैठती है, उसका यह एक उदाहरण है।

चित्तौड़ जिले के ग्राम कणेश के सुभावक छोटमलजी कौठारी पूज्य श्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये। पूज्य श्री के सदुपदेश से उनके हृदय में परिग्रह से मूर्च्छित भाव आये। कुछ अंश में कम करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने उसी समय रुपया दश हजार परमार्थ कार्य में व्यय करना निश्चय किया और व्याख्यान में नंद-लालजी मेहता द्वारा जाहिर किया कि “रु० ५०००) उदयपुर पाठशाला इत्यादि शुभ कार्य में खर्च करने तथा रु० ५०००) अकाल पीड़ित स्वधर्मियों को सहायता देने के लिए मैं अर्पण करता हूँ” इसके सिवाय रु० १२४१) का एक खत भी उदयपुर श्री संघ को उन्होंने उसी समय अर्पण कर दिया।

चातुर्मास पूर्ण होने पर उदयपुर में धर्म का पूर्णतः उदय कर पूज्य श्री ने वहां से विहार किया। वे आखेड़हो गुरुड़ी पधारते जो उदयपुर से ६ माइल दूर है, गुरुड़ी की सीमा में पूज्य श्री पधारते थे इतने में उदयपुर का माणा मोती नामका एक खेटीक ८४ बकरे लेकर मारने के लिये उदयपुर आता था; उस समय पूज्य श्री गुरुड़ी की सीमा में एक आम्रवृक्ष के नीचे विराजते थे। कुल

यहरे पूज्य श्री से तीन चार हाथ दूर उस आश्रम की छाया के नीचे बैठ गए, उस समय पूज्य श्री के साथ उदयपुर के भावक नंदलालजी मेहता, श्रियुक्त प्यारबंदजी बरदिया तथा श्रियुक्त कन्दे-आलालजी बरदिया तथा गुरुजी के भी भावक थे । पूज्य श्री ने माया खटीक को एक हृदयभेदक क़ावनी सुनाई तथा अस्तरकारक उपदेश दिया, जिससे खटीक ने कहा कि मुझे मुदत रक्तम मिलजाय तौभी मैं ये सब बहरे महाजनों के सुपुर् करदूँ। मेरे पास रसीद है तत्काल बहरे छुड़ादिये गये और गुरुजी पोंछापोल कि जो उदयपुर के कोठारीजी श्री बलवंतसिंहजी की, सहायता व प्रयास से चलती है, उसमें रत्नदिये गये ।

सं० १६७५ के चातुर्मास पश्चात् पूज्य श्री कानोड़ भंगसर माह में पधारे । करीब १०० रंघ हुए । बहुत से अन्यदर्शनी भाई सुलभ बोधी हुये और उनमें कितने ही अन्य दर्शनियों ने जैनधर्म अंगीकार किया ।

वहाँ से विहार कर पूज्य श्री बड़ी सादगी पधारे, उस समय बड़ी सादगी के जैनियों और बोहरों में बहुत कुसम्प बढ़ गया था । बोहरे लोगों की ओर से जीवाहिंसा की वृद्धि करने काक्षा मिलता हुआ वसेजन श्री इस कुसम्प वृद्ध का बीज था । बात यक्ष तक बढ़ गई थी कि सादगी के बोहरों के साथ वहा के महाजनों ने लेनदेन व्यापार इत्यादि

सब कार्य बन्द कर दिया था। श्रीमान् आचार्य श्री ने सादड़ी पंधारने पर उस कुसम्प को भगाने और परस्पर भ्रातृभाव बढ़ाने के लिये हमेशा उपदेश देना प्रारंभ किया जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि निम्नांकित शर्तें होकर बोहरे लोगों के साथ समाधान होगया।

१ सादड़ी के तालाब में कोई मछली न पकड़े और न मारे।

२ प्रत्येक एकादशी और अमावास्या के रोज जीवहिंसा न हो।

३ श्रावण, भाद्रपद और वैशाख तथा अधिक मासमें किसी भी दिन जीवहिंसा न हो।

४ आमराह में एवं प्रकटमें मांस ले कोई बाहर न निकले।

उपर्युक्त शर्तें बोहरे लोगों ने सब लोगों के सामने कुरान की शपथ ले मन्जूर कीं। दोनों पक्षों में कुसम्प दूर होने से सब तरफ आनंद छागया और सब पूज्य श्री की अनुकरणीय अनुग्रह बुद्धि की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। उस समय पूज्यश्री यहां एक मास तक ठहरे थे और इस बीच में अनेक उपकार के कार्य हुये थे।

अध्याय ४६ वाँ ।

सुयोग्य युवराज ।

सर्वेसात साल में इन्वल्प्सना नामका भयंकर रोग समस्त भारत में फैल गया था । उदयपुर शहर पर भी आश्विन मास में उसका भयंकर आक्रमण प्रारम्भ हुआ । इस दुष्ट रोगने पूज्य भी को भी अपने पजे में लिया । ऐसे सख्त स्वर में भी पूज्य भी अपना नित्य नियम शुद्धोपयोग पूर्वक करते थे और समभाव से वेदना सहते थे । योद्धा ही दिन में आराम तो होगा, परन्तु व्याधि के दिनों में ही पूज्य श्री ने औदारिक शरीर का क्षणभंगुर स्वभाव समझ पूर्वजों की कीर्ति कायम रखने, सम्प्रदाय की सुव्यवस्था और समुन्नति होने के लिये व्याधिबिनाश, पंडितरत्न भी जवाहरलालजी महाराज को सर्वथा सुयोग्य समझ कर सम्प्रदाय का भार सौंपना निश्चय किया । और अपना यह निश्चय उदयपुर के सच के अमेसर जाबकों एवं रत्नाम, अनेक शहर, ग्राम के आगवानों को, कि जो पूज्य श्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये थे, कह सुनाया । सबने अत्यान्त-दुर्लभ पूज्य श्री के इस सुविचार की प्रशंसा की, कारण कि भीमान् जवाहरलालजी महाराज ने ज्ञान, चारित्र्य,

वस्तुत्व शक्ति में और अखण्ड पद को सुशोभित करें ऐसे उत्तमोत्तम गुणों में ऐसी तो असाधारण उन्नति की है कि आपकी समानता करने वाले वर्तमान समय में कोई विरले ही साधु होंगे।
 आचार्य पद को दिपावें, ऐसे सर्वगुण उनमें विद्यमान है। दक्षिण और महाराष्ट्र में जिन्होंने जैन धर्म की विजयपताका फहराई है, वहां के जैन और जैनेतर लोग उन्हें जैनियों के दयानन्द सरस्वती कहते हैं। स्व० लोकमान्य तिलक ने उनकी असाधारण ज्ञान-सम्पत्ति और अद्वितीय वाक्-चातुर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और स्वरचित गीतारहस्य नामक पुस्तक में जैनधर्म के विषय में किये हुए उल्लेख में उनके कथनानुसार सुधार करने की इच्छा प्रकट की थी। ऐसे पुरुष पूज्य श्री के उत्तराधिकारी हों और श्रीमान् हुक्मा-चंदजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति समुज्ज्वल करते रहें इसमें कौन आश्चर्य है ? इसलिये सबकी सलाह अनुसार पूज्य श्री ने सं० १९७५ के कार्तिक-शुक्ला २ के रोज व्याख्यान में श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पदपर नियुक्त किये, ऐसा जाहिर किया। जिससे सकल संघ में आनन्दोत्सव छागया। यह खबर उदयपुर श्रीसंघ ने डेपुटेशन द्वारा पंडित-प्रवर श्री जवाहिरलालजी महाराज को पहुंचाई और पछेवड़ी की क्रिया तपस्वी स्थेवर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हाथ से करने वाबत आचार्य श्री ने करमाया। जवाहिरलालजी महाराज उस समय दक्षिण में विराजते

ये । उन्हें यह खबर मिलते ॥ आपने पूज्य भी से दूर विचरते बहुत समय हो जाने से पूज्य श्री के दर्शन का लाभ ले उनके करकमल से पद्मेवर्षी धारण करने की अभिलाषा दिखाई । चातुर्मास पूर्ण होने पर उन्होंने दक्षिण से मालवे की तरफ विहार किया और आचार्य श्री मेवाड़ से मालवा की ओर पधारे । रतनाम में दोनों महापुरुषों का समागम हुआ और वहा स० १६७६ के वैश्व वशी ६ के दिन पूज्य श्री ने अपने कर-कमल से पवित्र श्री जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर चतुर्विध सघ के समक्ष नियुक्त किये और अपने मुबारक हाथ से पद्मेवर्षी धारण कराई । इस अलम्य अवसर का लाभ लेने के लिये बाहर प्राम के बहुत भाई उत्सुक थे । रतनाम संघ ने भारतवर्ष के प्रत्येक मुख्य शहरों में खबर पहुँचाई थी, जिससे संख्याबद्ध भावक आविका उपस्थित हुए थे ।

पचेद से ठाकुर श्री चैतसिंहजी इत्यादि भी पधारे थे । लेखक ने अपनी जिदगी भर में ऐसा उत्सव न देखा था । तीर्थंकरों के समवसरण का संस्मरण होवे, ऐसा भव्य दृश्य था । उस समय का वर्णन बहुत लिखा जा सकता है, परन्तु पुस्तक बढ़ जाने के भय से 'काम्प्रेन्स प्रकाश' में प्रछिन्न किया हुआ हाल हा यहा पाठकों के अवलोकनार्थ सङ्घृत कर देते हैं ।

अध्याय ४७ वाँ ।

रतलाम में श्रीमान् पंडितरत्न श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब को युवाचार्य पदकी चादर ओढ़ाने का महोत्सव ।

हिन्द के प्रत्येक प्रांत में से करीब २०० ग्राम के लगभग
सात आठ हजार मनुष्यों का अपूर्व सम्मेलन ।

श्रीमान् महाप्रतापी महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री
हुवमीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के वर्तमान जैनाचार्य श्रीमान्
गच्छाधिपति महाराजाधिराज १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज
साहिब ने उदयपुर में गत साल चातुर्मास में अपने शरीर में व्याधि
आदि अनेक शारीरिक कारणों से परम्परा की रीत्यनुसार सम्प्र-
दाय के गौरव के संरक्षणार्थ तथा मुनि महाराजों की साल संभाल
करने एवं उन्हें ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यादि गुणों की वृद्धि में सहायता
देने इत्यादि सम्प्रदाय रूपी कल्पवृक्ष को यथावत् स्थित रखने के
आशय से महाराष्ट्र देश में विचरते उपरोक्त सम्प्रदाय के जाति-

कुल सम्पन्न विद्वद्भक्त, पंडित-शिरोमणि मुनि महाराज भी श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज को सब तरह योग्य सम्मान सं० १६७६ के कार्तिक शुदी २ के रोज उदयपुर के सर्वसंघ सम्प्रदाय के युवाचार्य जाहिर किये थे । उसकी आदर-पक्षेवकी ओढ़ाने वास्ते (भीमान् महाराज साहिब के पूर्वजों ने भी ऐस महत् कार्यों में रत्नलाम को ही योग्य सम्मान मान दिया था, तदनुसार) भीमान् पूज्य महाराज साहिब ने भी रत्नलाम पधारने की कृपा की और भीमान् युवाचार्यजी महाराज को भी उदयपुर सब के अग्रेसरों तथा रत्नलाम संघ के नेता भीयुत बर्द्धमाणजी पीठाजिया तथा भीयुत बहादुरमलजी बाडिया भीनासर वालों ने शहर मीरी (मिला अहमदनगर) में जाकर मालवे की ओर पधारने के लिये प्रार्थना की । तदनुसार भीमान् युवाचार्य महाराज ने दक्षिण देश के अनेक प्रान्तों के संघ की पक्षेवकी का उत्सव दक्षिण में करने की महती अभिलाषा होने पर भी भीमान् आचार्य महाराज साहिब के दर्शनार्थ तथा भीमान् आचार्य महाराज साहिब के कर-कमल से यह वस्तुसिद्ध लेने वास्ते बहुत पश्चिम लठाकर लग बिहार कर रत्नलाम पधारने की कृपा की । भीमान् आचार्य महाराज साहिब ने फाल्गुन शुक्ल ५ गुठवार के रोज श्री भीमान् रवेवर महारमा तपस्वीजी भी मोतीलालजी महाराज ने मय युवाचार्य महाराज के फाल्गुन शुक्ल १० मंगलवार को रत्नलाम शहर पावन किया, जिनके आदर

करने तथा भक्तिभाव प्रकट करने के लिये रतलाम संघ के सब भावक आविकाएं तथा अन्य धर्म के भी बहुतसे धर्मप्रेमी बन्धु बहुत दूर र जा भक्तिपूर्वक रतलाम शहर में लाये । इन महापुरुषों के आगमन का दृश्य भी बड़ा ही भव्य और चित्ताकर्षक था । श्रीमान् उभय महापुरुषों के पधारने बाद युवाचार्य मदकी पछेवड़ी प्रदान करने का शुभ प्रसंग मिली चैत्र वदी ६ बुधवार ता० २६-३-१६ का ठहराया गया । वहां यह लिखने की आवश्यकता है कि श्रीमान् आचार्य महाराज के करकमल से श्रीमान् युवाचार्य महाराज को चादर रतलाम में बखशी जायगी, यह खबर हिन्दू के प्रत्येक विभाग में फैलजाने से अनेक देशवासी बन्धुओं ने उभय महापुरुषों के एक साथ ही दर्शन करने तथा इस अपूर्व प्रसंग का लाभ लेने के लिए रतलाम श्रीसंघ से बार २ आग्रह किया था, कि युवाचार्य पद महोत्सव के शुभ प्रसंग का लाभ लेने से हम वंचित न रहजाय, इसलिए हमें अवश्य खबर मिलनी चाहिए । इसपर से रतलाम संघ की तरफ से साधारण रीति से कार्ड तथा चिट्ठी द्वारा हिन्दू के प्रत्येक विभागों में आमंत्रण पत्रिकाएं भेजागई थीं जिसे मानदे हिन्दू के प्रत्येक विभाग में से करीब २०० ग्रामों के हजारों भावक भाजिका तथा अनेक प्रतिष्ठित अप्रेषरों ने यहां पधार कर रतलाम की अलौकिक शोभा में अभिवृद्धि की थी । उनके उतरने तथा भोजन के लिए रतलाम भावकों की तरफ से उचित प्रबन्ध किया था ।

कितने ही अति बरसाही बन्धु वों श्रीमान् महामुनियों के पधारने की क्षयर मिलते ही इस शुभ प्रसंग का दिन नियत होने की खबर पहुंचने के पहले ही पधार गए थे । मुंबई संघ के श्रीमान् नेता सेठ मेघजी भाई धोभण तथा हैदराबाद निवासी लाला सुखदेवसहायजी के सुपुत्र लाला बालाप्रसादजी इत्यादि बहुतसे भावक पधारें थे । परन्तु सांसारिक अनेक कारणों से रुकने की प्रवृत्ति बांठा होते भी अधिक दिन के अवकाश न मिलने से वे इस महत् कार्य में अपनी प्रसन्नता प्रकट कर पीछे चले गये थे । चैत्र वदी ५ के रोज से बहुतसे भावक, भाविकाएं आने लगीं और चैत्र वदी ८ तक तो हजारों भावक भाविकाएं उपस्थित होगईं । यह महत् कार्य भारत-वर्ष के सर्व संघकी सम्मति से रीत्यनुसार होना आवश्यक समझ कर चैत्र वदी ८ मंगलवार ता० २५-३-१६ के रोज रातको आठ बजे इनुमान रुहो के भव्य मैदान में प्रत्येक घण्टा से पधारें हुए भावकों के मुख्य २ प्रतिनिधियों तथा रत्नलाम संघ के प्रतिनिधियों की एक समस्त संघ मन्त्री एकत्रित कीगईं । और नवमी के प्रातः-काल को जो महत्कार्य होने वाला था, उसका प्रोग्राम नकी किया गया तथा आवश्यक अनेक कार्यों का निकाल कर अत्युपयोगी ठहराव किये गये ।

ता० २६ मार्च १९१६ मिति चैत्र वदी ९ बुधवार को प्रातः-काल के छः बजे से श्रीमान् आचार्य महाराज विराजते थे, उस

स्थानक में हजारों श्रावक श्राविकाओं की मेदिनी पचरंगी, नाना-विधि पोपाकों से सजी हुई बहुत तेजी से चमकने लगी । उस छटा का दृश्य अपूर्व था । श्रीमान् पूज्य महाराज के पधारने के दिन से ही श्रावक, श्राविकाओं को उस भव्य मकान के कम्पाउण्ड में समावेश न हो सकने से सड़क के आम रास्ते पर शामियाना खड़ा किया गया था । तथा नीचे तरुत बिछाये गये थे, परन्तु इतने में भी हजारों मनुष्य कैसे बैठ सकें ? इसलिये तम्बू फिर बढ़ाया गया तथा आसपास के और सामने के पांच २ सात २ मकानों के तम्बूतरों पर तथा सड़क पर लोगों की अत्यंत भीड़ होगई ।

उस समय श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब (जिला रतलाम) श्री चैनसिंहजी साहिब कि जो रतलाम नरेश के मुख्य सदाय हैं वे इस जल्द को सुशोभित करने के लिये ही पंचेड़ से यहां पधारे थे । तथा शहर के अन्य अग्रेसर भी पधारे थे । करीब ८ बजे श्रीमान् आचार्य महाराज तरुत पर विराजमान हुए । उपस्थित साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर्विध संघ तथा अन्य सभाजनों ने उपस्थित हो भक्तिपूर्वक सत्कार किया, तथा चंदना कर जयजिनेंद्र की ध्वनि आलापते हुये यथायोग्य स्थान पर बैठगये । पश्चात् श्रीमान् आचार्य महाराज ने प्रभु-प्रार्थना आदि मंगलाचरण फरमा कर श्रीनन्दीजी सूत्र की सज्जाय फरमाई । पश्चात् श्री युवाचार्यजी महाराज को कितनी ही अत्युपयोगी सूचनाएं कर अपने शरीर

पर धारण की हुई निज पखेवही (चादर) को प्रसन्नतापूर्वक वप-
 स्थित सब मुनि महाराजों ने हाथ लगाकर चतुर्विध संघ के
 समक्ष " जयजिनेन्द्र " "आचार्य महाराज की जय" "युवाचार्य
 महाराज की जय" "जैन शासन की जय" इत्यादि अनेक हर्ष-
 नाद गर्जना में धारण कराई । निश्चय ही यह दृश्य अलौकिक था ।
 इसे किसी भी रीति से कहने के लिये हमारे पास शब्द नहीं हैं,
 वह चादर धारण कर भीमान् युवाचार्यजी महाराज ने भीमान्
 आचार्य महाराज को तथा भीमान् स्वर्णमुनि जी मोदीलालजी
 महाराजको यथाविधि उठ बैठ कर वंदना की । पश्चात् सर्व मुनिवर्ग
 ने युवाचार्य महाराज को यथाविधि खड़े हो वंदना की ।
 पश्चात् उपस्थित करीब ७५-८० महासत्तियों ने यथा विधि उठ बैठ
 वंदना की । बाद आठ आठिकाओं ने वंदना की । उक्त वंदनानि-
 क्रिया समाप्त हुये बाद भीमान् युवाचार्य महाराज नीचे के पाटपर
 से उठ भीमान् आचार्यजी महाराज के समीप आमनारुह हुये,
 सामान मुनि हरकचंदजी महाराज ने उठ कर सब मुनि महाराजों
 की ओर से उक्त कार्य के लिये अपना संतोष प्रकट किया और
 भीमान् आचार्य महाराज की तरह युवाचार्य महाराज की आज्ञा
 पालन करना स्वीकार किया । उसे भीमान् हीरालालजी महाराज
 ने अनुमोदन दिया, तत्पश्चात् भारतवर्षीय समस्त संघ की ओर भी
 'निम्नलिखित महाशयों ने अपना संतोष प्रदर्शित कर अनुमोदन दिया—

- (१) श्रीयुत उदयपुर नगर के सेठ नन्दलालजी की तरफ से
लालाजी साहिब केसरीलालजी (उदयपुर)
- (२) ,, सेठ चंदनमली पीतलिया अहमदनगर
- (३) ,, जौहरी सेठ मुन्नीलालजी सकलेचा जयपुर
- (४) ,, वर्षभाणजी पीतलिया रतलाम
- (५) ,, सेठ पञ्चालालजी कांकरिया नयानगर
- (६) ,, मास्टर पोपटलाल केवलचंद राजकोट
- (७) ,, प्रतापमलजी चांठिया बीकानेर
- (८) ,, फूलचंदजी कोठारी भोपाल
- (९) ,, नन्दलालजी मेहता उदयपुर
- (१०) ,, कुंवर गाढ़मलजी साहिब लोढ़ा अनमेर

पश्चात् भंडारी केसरीचंदजी साहिब (देवास) ने बाहर
देशावरों के कितने ही अग्रेसरों के, जो अनिवार्य कारणों से न
पधार सके थे, उनके तार तथा पत्र पढ़ सुनाये, उन्हें यहां सविस्तर
न लिखते सिर्फ नाममात्र प्रकट किये जाते हैं—

- (१) श्रीयुत जनरल सेक्रेटरी सेठ बालमुकुन्दजी साहिब
मूधा, सवारा
- (२) ,, वाढीलालजी मोतीलाल शाह मुंबई
- (३) ,, कामदार सुजानमलजी साहिब चांठिया प्रतापगढ़

- (४) राजभो कौठारीजी साहिब श्री बलवंतसिंहजी साहिब
प्रधान रियासत सदयपुर (मेवाड़)
- (५) " जमशेदजी रुन्तमजी साहिब चीफ सेक्रेटरी
रियासत आवरा (मालवा)
- (६) मोयुठ कुंदनमलजी फिरोदिया बी. ए. पञ्जपत्त. बी.
अहमदनगर
- (७) " बख्तराजजी रूपचंदजी पांचोरा (खानदेश)
- (८) " सेठ रतनलालजी दीक्षितरामजी बागजी (खानदेश)
- (९) " परमानन्दजी बकौल बी. ए. कसूर (पंजाब)

इनके सिवाय अनेक दूसरे सद्गृहस्थों से भी अनुमोदन पत्र
आये थे। इन सब पत्रों में मुख्य आशय इस कार्य में अत्यन्त हर्ष
पूर्वक अनुमोदन तथा सुचारिकवादी देने उपरांत स्वयं उपस्थित
न हो सके इसलिये लाचारी दिखाई थी।

पश्चात् मुवाचार्यजी महाराजने उक्त पद का भार स्वीकृत करते
हुए अपने तथा चतुर्विध संघ के कर्तव्यों का अत्यन्त असरकारक
शब्दों में दिग्दर्शन कराया था। फिर पंडित दुःखमोचन भा. मिथिली
निवासी ने समयोचित गायन तथा विवेचन बहुत ही उत्तम रीति
से किया था। उसमें श्री आचार्य महाराज के साथ श्री संघ का
क्या कर्तव्य है, उसका प्रतिपादन उत्तम रीति से किया था।

श्रीयुत सठ वर्द्धभाणजी ने विवेचन करते श्रीमान् आचार्ये महाराज साहिब तथा श्रीमान् युवाचार्य महाराज साहिब ने इतने परिश्रमपूर्वक यहां पधार कर रतलाम पावन किया तथा ऐसे महत्कार्य का लाभ भी रतलाम को ही दिया, इसके लिये श्री संघ की ओर से उपकार जाहिर किया तथा श्रीमान् रतलाम नरेश तथा ऑफीसर वर्ग, जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण सहानुभूति दिखाई है उनका उपकार प्रदर्शित किया तथा श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब तथा पधारे हुए श्राविक, श्राविका तथा अन्य महाशयों का संघ तरफ से उपकार प्रदर्शित किया। इस महान् कार्य में यहां के स्वधर्मी सज्जनों ने तन, मन, धन से लाभ उठाने के वास्ते आये हुए साहिबों का आदर सत्कार, उतरने तथा भोजन कमेटी बनाकर वालण्टियरों के समान जो अपूर्व सेवा बजाई है तथा रतलाम संघ को महान् यश प्राप्त कराया है उन्हें भी धन्यवाद दिया, पश्चात् जयजिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि के साथ व्याख्यानसभा विस्मर्जित हुई। उस समय यहां के संघ तरफ से प्रभावना बांटी गई थी।

दोपहर के दो बजे श्रीयुत जालिमसिंहजी कोठारी इन्दौर राज्य के आवकारी कमिश्नर साहिब का व्याख्यान हुआ, जिसके असर से जैन महाविद्यालय खोलने बाबत कई उदार गृहस्थों की ओर से बड़ी २ रकमों के भचन मिले, परन्तु वे स्कीम मंजूर होने बाद प्रकट किये जायेंगे। उस दिन नयेनगर निवासी सज्जनों ने आत्मभोग

दे रु० १५००) के पंचेन्द्रिय जीव छुड़ाये । समस्त शहर में कसाइयों की दुकानें, भट्टियों, घाणियों इत्यादि आरम्भ तथा हिंसा के कार्य बन्द रखे गए थे । उस दिन रात को भी एक जनरल मीटिंग की गई थी जिसमें विद्यालय, पाठशाला इत्यादि ज्ञानवृद्धि के सम्बन्ध में अनेक भाषण हुए थे । जीवदया के लिये एक फंड हुआ जिसमें रुपये २५००) इकट्ठे हुए ।

ता० २७-३-१६ के रोज व्याख्यान में सभा का ठाढ़ पूर्ववत् ही था, जिसमें फिर नयमलजी चोरदिया का विशालय के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ और उस समय भी कितने ही वक्ता मिले । पश्चात् मीरी जिला अहमदनगर निवासी के अतिथियों ने वहां की गोशाला में दुष्काल में दुःख पाती गायों के लिये फंड इकट्ठा कर उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की जिसमें करीब २०००) की मदद मिली ।

श्रीमान् जैनाचार्य महाराजाधिराज १००८ श्री भालालजी महाराज साहिब के व्याख्यान में 'जैनों की नम्रता कैसे हो सकती है ?' इस विषय पर बहुत ही मनन करने योग्य विवेचन हुआ । आचार्य जी ने फरमाया कि जबतक समाजमें स्वार्थत्यागी स्वयंसेवक उपस्थित हों, गरिब और निराधार जैनियों की संभाल नहीं ले और वे। एक थोड़े दिन सम्मेलन में उपस्थित हो समाज के अमेधर बन

फिर घर चलें जायँ बर्हातक उन्नति होना कठिन है। अधिक नहीं तो सिर्फ पचास ही स्वयंसेवक हमेशा जैनसमाज की सार संभाल कर रहे तो समाज की अवनति होना रुक जाय और थोड़े ही समय में समाजकी दशा निःसंदेह उदय होजाय, परन्तु वे स्वयंसेवक सद्गुणी सदाचारी न्यायी और पक्षपातादि दोषरहित होने चाहिये ।

ऐसे महाशय अवश्य समाज पर असर उत्पन्न कर सकते हैं । फिर कई सज्जनों ने उपरोक्त बातें समझ उपरोक्त निथमानुसार चलना पसंद किया और मेम्बरों में नाम लिखाया ।

यों यहां के आनंद का अविस्तृत वर्णन लिखा जाय तो एक बृहद् पुस्तक तैयार होजाय, परन्तु पेपर में सिर्फ सारांश ही प्रकट किया गया है कि जिससे कार्य कर्ताओं को कंटाला न आवे और वे उसमें से कुछ काट छांट न कर सकें । इति शुभम्

रत्नलाम श्री संघ

(कान्फ्रेंस प्रकाश ता० २२ एप्रिल १९१६)

रत्नलाम में शेषकाल का समय पूरण हुआ था ही कि उस समय एक पत्र जावरा स्टेट के चीफ सेक्रेटरी साहिब का श्रीमान् सेंट बर्द्धभाणजी पर आया, उसमें उन्होंने लिखा था कि मेरी

और से महाराज साहिब को निवेदन करें कि आपका चातुर्मास जावरे में होगा तो बहुत ही उपकार होगा, रसनाम से विहार कर खाचरोद-सज्जैत की ओर पधारे, वहां जावरा के श्रावकों ने चातुर्मास के लिये आपस किया, इसलिये सं० १६७६ का चातुर्मास जावरा किया। किसे खबर थी कि यह पूज्य श्री का अन्तिम चातुर्मास है।

बहुत वर्ष से जावरा निवासी यावकों की अभिलाषा और प्रार्थना थी यह इस वर्ष सकल हुई। आपाठ शुक्ला ३ सोमवार को १२ ठाणों से आप्तार्थ श्री जावरे पधारे। वहां आपाठ शुक्ला १० के रोज जयपुर निवासी आई चौधमलजी ने करीब १७ वर्ष की उमर में दीक्षा ली। दीक्षोत्सव जावरा के संघ में बहुत धूमधाम से अति उत्साहपूर्वक किया, करीब २००० मनुष्य बाहर गांव से पधारे थे। किसी धर्मद्वेषी ने सरकार में इस मतलब की अर्ज की कि चौधमलजी को बलात्कार दीक्षा दी जाती है इसपर से दीक्षा के एक दिन प्रथम जावरा स्टेट के चीफ सेक्रेटरी जमशेदजी शेठ ने चौधमलजी को अपने पास बुलाया, कई श्रावक भी उनके साथ थे, जमशेदजी शेठ ने कई विचित्र प्रश्नों से उनके वैराग्य की कसौटी की, प्रत्येक प्रश्नका उत्तर बहुत ही संतोषकारक मिला, जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये, उनका समाधान हुआ, और दीक्षा की आग्रा वेदी।

जाधरा के चातुर्मास में सागर वाले सैठ चांदमलजी माहर सकुटुम्ब पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे । उनकी पत्नी ने वहां अठाई की थी, इसके उपलक्ष्य में भादवासुदी ३ को उत्सव मनाया गया था, जिसमें ३० ग्राम के करीब २००० मनुष्य बाहर से आये थे ।

पंचेड़ के श्रीमान् ठाकुर साहिब चैतसिंहजी व्याख्यान का खास लाभ लेने के वास्ते पांच वक्त यहां पधारे थे ।

इस चातुर्मास में पूज्य श्री को अनेक उपसर्ग सहन करने पड़े, परन्तु आप स्वयं कभी नाहिम्मत या निराश न हुए, न कभी घबराये, परन्तु सत्यपथ पर कायम रहे । और घबरानेवाले श्रावकों को हिम्मत देते कि असत्य की झलक बहुत समय तक नहीं टिक सकती, सत्य ही की अंत में जय होती है । इसलिये सत्य को ग्रहण करो, सत्य को अनुमोदन दो, फिर स्वयं सत्य प्रकाशित हो जायगा ।

इस समय कान्फेन्स आफिस दिल्ली थी । समग्र श्री संघ की आफिस और प्रकाश पत्र का खास कर्तव्य तो पड़ी हुई छोटी दराड़ जल्द ही मिटाना था । जो उन दिनों का प्रकाश पक्षपात में न पैठता, समाधान करने बाबत अपना सुप्रयास प्रचलित रखता और जलते में घी न होमता दो यह बात इतने से ही बंद हो।

जाती । छोटी २ दराइ से बड़े खोखले न पड़ते और आगरा कमेटी में सब लेख पीछे खींच लेने न पड़ते । सुभाग्य से पीछे प्रकाश में यह विषय न लेने बाबत ठहराव हुआ था ।

लाला लाजपतराय के कलकत्ते की खास कांग्रेस में कहे हुए निम्नांकित शब्दों का यहां स्मरण हो आता है । “ जब लोगों की इच्छा का ज्वालामुखी फटता है तब उसका पाव आंदोलन करने वालों के सिर पड़ता है ।



अध्याय ४८ वाँ ।

सवालाख रुपयों का दान ।



जावरा से मालवा मेवाड़ की ओर के बिहार में छोटीसादड़ी में सेठ नाथूलालजी गोदावत ने सवालाख रुपयों का दान प्रकट किया था । जिस रकम के व्याज में अभी श्रीगोदावत जैन आश्रम छोटीसादड़ी में चलता है । एक तो रास्ते से दूर एक कोने में छोटासा ग्राम, दूसरे आत्मभोगी कार्यकर्ताओं की त्रुटि, इन दोनों कारणों से इस आश्रम का लाभ चाहे जैसा हम नहीं उठा सकते । जबतक स्वार्थत्यागी आत्मभोगी काम करनेवाले नहीं निकलगे वहां तक दान वगैरह का सदुपयोग नहीं होगा ।

इस बिहार में युवराज भी शामिल थे । सब मुनिराज नये शहर पधारे और वहां कल्पते दिन ठहरे । दोनों मुनिराज सूर्य और चन्द्र की तरह जैनधर्म की ज्योति का अपूर्व प्रकाश फैला रहे थे ।

पंजाब में से पीछे आये हुए जावरे वाले संतों की प्रेरणा से आगरा, जयपुर और अजमेर के श्रावकों ने नयेशहर जाकर पूज्य श्री

जाती । छोटी २ दराइ से बड़े छोखने न पढ़ते और भागरा कमेटी में सब लेख पीछे खींच लेने न पढ़ते । सुभाग्य से पीछे प्रकाश में यह विषय न लेने वायव ठहराव हुआ था ।

साक्षात् साजपतराय के कसकले की खास कांग्रेस में कहे हुए मिन्नांकित शब्दों का यहां स्मरण हो आता है । " जब लोगों की इच्छा का ज्वालामुखी फटता है तब उसका पाए आंदोलन करने वालों के सिर पड़ता है ।



विहार के समय एक मुनि ने मध्य बाजार में पूज्य श्री को सनके सामने अविवेकपूर्ण वचन कहे थे, परन्तु मानों आपने सुने ही न हों दिलमें जरा भी क्रोध न लाते आगे बढ़ते ही गए। तबीजी मुकाम पर उस अविवेकी मुनि ने पूज्य श्री से माफी चाही तब पूज्य श्री ने विलकुल निर्मल भाव से जवाब दिया कि तुम्हारे शब्द मैंने एक कान से सुन दूसरे कान की ओर से निकाल दिये हैं इसलिए मुझे माफी की जरूरत नहीं है, परन्तु जब साथ के मुनिराजों ने बहुत अनुनय विनय की, तब मुंह से ही नहीं, परन्तु इतना अपमान करने वाले साधु के सिरपर हाथ रख माफी के साथ स्वधर्म में सुदृढ़ रहने की आशिष दी, तब देखने वालों की आंखों में अश्रु भराये बिना न रहे।

अजमेर में इकट्ठे हुए भावकों ने अजमेर छोड़ते समय सुलह की आशा भी छोड़ दी। ममत्व के पास निष्पक्षपात और शास्त्रानुसार न्याय करने वालों को भी निराश होना ही पड़ता है। यह अजमेर का दृश्य एक पत्र-सम्पादक के शब्दों में ही यहां प्रसिद्ध करते हैं। बहुत से बादल इकट्ठे हुए, गंभीर गर्जनायें भी हुईं; बिजली भी चमकी, वर्षा के सब चिन्ह हुये, परन्तु अंत में यह सब आडम्बर व्यर्थ गया, बादल बिखर गये, तृपातुर चातक निराश हो गये, कक्षापियों ने अपनी कक्षा सिकोड़ ली, ममत्व की चढ़कर आई हुई आंधी के रजकणों से बहुतों की आंखें लाल होगईं। निराशा और

से अजमेर पधारने की प्रार्थना की, जहां जावरे के संतों से मिल कर चारित्र के सम्बन्ध में मतभेद का समाधान होने की आशा दिखाई ।

इस अत्याग्रह को मान दे पाली हो हुंगरास प्रदेश और गर्मी का परिसर सहन कर भी पूज्य श्री अजमेर पधारे । वहां साधु समाचरी के अनुकूल योजनाएं निश्चित की गई । बदयपुर महाराणा साहिब ने श्रीमान् कोठारीजी बलवंतसिंहजी जैसे अनुभवी और कार्यदक्ष पुरुष को सुलह के मिशन में जाने बाबत परवानगी दी थी । पूर्ण कोशिश हुई । पूज्य श्री ने समाधानी के वास्ते कोशिश करने में कमी न की, परन्तु समाधानी की आशा बढ़ जाने से पूज्य श्री ने वहां से विहार कर दिया ।

उस समय लेखक अजमेर हाजिर था । और जैनपथप्रदर्शक वाले भाई पद्मसिंहजी तथा जैनजगत वाले भाई धारसीजी डाक्टर तथा भिन्न २ शहरों के आधकों के समक्ष जो २ प्रयास और बातें कीं वे असफल : यहा लिखी जायं तो सत्यासत्य समझना सरल होजाय, परन्तु मैंने जिनके पवित्र जीवन लिखने के लिए यह कलम उठाई है उन महात्मा के मनोभाव की याद आते ही उनके जीवन-चरित्र में लेप वर्णन का एक बिंदु भी न लिखना ऐसी प्रेरणा हो जाती है ।

शिक्षित-लाचार की पछेवड़ी में ढँकाते हुए साधु शरीर को तो मैं सिंह की चमड़ी में सज्ज हुआ सियाल ही समझता हूँ, विचारे दूसरे जानवरों की तो क्या ताकत परन्तु कुछ म प्रनिविम्ब दिखाकर सिंह को ही वह फंसा देता है। ऐसे सियालों को ढूँढ़ निकालने में श्री संघ जितनी बेपरवाही, आलस्य और टालमटोल करेगा उतना ही समाज का किला पोला होता चला जायगा। किले का एक आघ गुम्मज ढीला होजाय और जल्द ही उसे दुरुस्त कर दिया जाय तब तो ठीक नहीं तो वह गुम्मज ही दुश्मनों को राह दे देता है। ऐसे रोगों को निर्मूल करने की संजीवनी मात्रा एक ही है वह यह कि ऐसे सियालों से समाज को होशियार रखना और इस रोग के चेष का प्रसार फैलाते हुए रोकना।

प्राचीन संस्कृत विभूति और गौरव के अमूल्य तत्वों से प्रकाशित श्री संघ का यह अंग अपनी अस्वस्थता समझ गया है। स्वस्थ बनना चाहता है उठकर खड़े रहना मांगता है, परन्तु पक्षपात के घोंघाट प्रयत्नों की सफलता में विलम्ब करते हैं। अध आलस्य त्याग खड़े हो जागृत होने का जमाना है। सागर पर से वह कर आती हुई लहरें मेलने को तैयार होने का समय है। चारों ओर पर्यटन कर, विहार को राह दे, पक्षपात को निर्मूल कर, आलस्य, अश्रद्धा और कुसम्प का निवारण करने के वास्ते कटिबद्ध

निरुत्साह की श्याम रेखा कड़्यों के बदन पर फिर गई, वत्साह से आये हुए निश्वास छोड़ पीछे फिरे, परन्तु आकाश में ऊँचे चढ़े हुए सूर्य देवता ने आश्वासन दिया कि घेर्ये रक्षो, सत्यकी ही जय है और मैं वर्पित को पकटा कर गर्मों से गभराये हुआ को शांति कराऊगा ।

हरपोक भावकों की सहनशीलता को भी घन्य है । समाज-सेना के सेनापति हो करके समाजसेना का सत्यानाश करें, समाज स्टीमर के कप्तान हो करके जहाज को खराबी में ला क्षिप्त भिन्न करें, धर्म के नाम से ही अधर्म का जाल बिछा निरपराधियों को फासा जाय, ये तो भ्रष्टाचार की अनुमोदना ही है और इसमें सहाय करने वाले भावक समाज के शत्रु गिने जायें ।

एक सज्जन को क्लेश की शान्ति के बारे में लिखा हुआ उसका उत्तर पाठकों के मनन करने योग्य होने से वहाँ के शब्दों में यहाँ लिखा जाता है, आपने लिखा कि “मुनि क्लेश की शान्ति करो, तो मुनि क्लेश दोनों को सहयोगी स्थान कैसे ! मुनिपन में क्लेश नहीं रह सकता और क्लेश में मुनिपन नहीं रह सकता” ।

एक गुणानुरागी मुनिराज ने मुझे लिखे हुए पत्र के नीचे के शब्द पक्षपातियों को अपेक्ष करता हूँ ।

जिन्दगी की दिशा बदलते समय, पवित्रता का क्षेप पहिनते समय, की हुई प्रतिज्ञाओं को याद करो, उस मंगलमुहूर्त में मिले हुए मंत्रों का स्मरण करो जिसके लिये प्राण लगा दिये हैं उसे प्राण की तरह ही समझो, अन्तरात्मा के नाद को बेपरवाह कभी मत करो ।

महात्माओं और अनुभवियों के उपरोक्त शब्द याद कराने की हिम्मत इसलिये हुई है कि सजाज अभी गरम होकर प्रवाही बन गया है, उनके सामने ढाल प्रतिबिम्ब हाजिर हो तो घाट भी बन सकता है । निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो० शाह सत्य लिखते हैं कि “ समस्त दुनियां एक साथ एक सी समझदार कभी न हुई और न कभी होगी, जो थोड़े स्वभाव से शक्तिवान हैं, परन्तु उनकी शक्तियां विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन ‘थोड़ों को’ अपनी जागृति करने की आवश्यकता है इन थोड़ों के वाद लोकगण को अपनी इच्छा शक्ति से पीछे कर लेंगे.....नीचे खड़े रह ऊंचा देखने का अपेक्षा, ऊँचे खड़े हो नीचे देखना सीखना चाहिये बारकी से प्रथक्करण करते इस आंदोलन में अनावश्यक, अमानुषता का मिश्रण अधिक प्रमाण में हुआ है, निर्मल कीर्ति की परवाह करनेवालों की न्यूनता से और हिम्मत से कार्य करनेवालों के कर्तव्य की बेपरवाही ने इस आंदोलन में जोर से पवन फूंक दिया है । इस समय साधु और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और

होना चाहिये । यह उपभोगी और कठिन कार्य है कुछ बच्चों का खेल नहीं है ।

जो चिन्ता हो, इच्छा हो, कर्त्तव्य का भान हो तो शुद्धचारिणी निर्दयी स्वभाव, शान्त जीवन, संयम सार्यक और सतत परिश्रम-शक्तता का सेवन करो ' छोटे तानी छोड़ ' का कलंक धो डालो, समाजोन्नति करने का कलश तुम पर ढोलने दो ।

अपने में रहा हुआ मनुष्यत्व अपने को पुकार पुकार कर कहता है कि—

“ पक्ष छोड़ पारखी निहाल देख नीकी कर ” व्याख्यान में पहिले यह वाक्य हररोज सुनते भी कान बहरे हो जायें तो वनक सार्यकता क्या ? अपने प्रातःस्मरणीय पूर्वजों का स्मरण करो, वनक और तुम्हारा पूज्यभाव हो तो वनकी आज्ञा शिर पर बढ़ाओ वनके सौंपे हुए समाज रक्षा के सुकार्य को हाथ में लो, वे शरीर या भावकों के गुलाम न बने थे ।

शुद्ध सारिषक जीवन व्यतीत करना, आत्मबल शिक्षाता, आध्यात्मिक वृद्धि करना, यह आर्य के प्राचीन संस्कारों का धत्व है । भौतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति के बीच में कभी नहीं आ सकते । समुद्र सागर की जीवन नीका में सोते समय, तुम्हारी

जिन्दगी की दिशा बदलते समय, पवित्रता का वेष पहिनते समय, की हुई प्रतिज्ञाओं को याद करो, उस मंगलमुहूर्त में मिले हुए मंत्रों का स्मरण करो जिसके लिये प्राण लगा दिये हैं उसे प्राण की तरह ही समझो, अन्तरात्मा के नाद को बेपरवाह कभी मत करो ।

महात्माओं और अनुभवियों के उपरोक्त शब्द याद कराने की हिम्मत इसलिये हुई है कि सजाज अभी गरम होकर प्रवाही बन गया है, उनके सामने ढाल प्रतिबिम्ब हाजिर हो तो घाट भी बन सकता है । निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो० शाह सत्य लिखते हैं कि “ समस्त दुनियां एक साथ एक सी समझदार कभी न हुई और न कभी होगी, जो थोड़े स्वभाव से शक्तिवान है, परन्तु उनकी शक्तियां विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन ‘थोड़ों को’ अपनी जागृति करने की आवश्यकता है इन थोड़ों के वाद लोकगण को अपनी इच्छा शक्ति से पीछे कर लेंगे.....नीचे खड़े रह ऊंचा देखने का अपेक्षा, ऊँचे खड़े हो नीचे देखना सीखना चाहिये वारकी से प्रथक्करण करते इस आंदोलन में अनावश्यक, अमानुषता का मिश्रण अविक्रम प्रमाण में हुआ है, निर्मल कीर्ति की परवाह करनेवालों की न्यूनता से और हिम्मत से कार्य करनेवालों के कर्तव्य की बेपरवाही ने इस आंदोलन में जोर से पवन फूंक दिया है । इस समय साधु और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और एक ही शब्द मात्र से दूसरों की बोली बंद कर देने वाले सेठ

अमरचन्दजी पीतलिया का स्मरण हुए बिना नहीं रह सकता । प्रभाव और बनिये की रीति से समझाने और ठिकाने लाने वाले राय सेठ चादमलजी साहिब और समाधान करने में पूर्ण उस्ताद अनुभवी राजश्री गोकुलदास राजपाल, जो इस समय कोठारीजी के साथ अजमेर होते तो आज भी समय सरफा का विजयध्वज फहराता । शात मुद्रा और शास्त्रों की आज्ञा से दूसरों को भाव करने वाले सेठजी बालमुकुन्दजी मूया और भद्रिक स्वभाषी राजा बहादुर सुखदेवसहायजी औहरी हाजिर होते तो प्राचीन प्रतिष्ठा निभाने के लिये मथने वालों को लताप्रहार सहन करना न पड़ता । मरियुत बाड़ीलाल बाप में न पड़े होते तो स्वमान संभालने की शान ठिकाने लगा देते ।

अभी भी समाज में अमेसर पद के योग्य अनेक भावक बिरा जमान है वे निष्पक्षपात दृष्टि से आगे आकर वर्तमान नायक शर्मिन् कोठारीजी की तरह खड़े रह तो चारित्र्य समय की सरफा सरलता से हो सके । बहुरत्ना वसुधरा ।



अध्याय ४६ वां ।

उदयपुर महाराणा के भतीजे ने लग्न
के समय पशुबध बंद किया ।



श्रीमान् आचार्यजी महाराज अजमेर से बिहार कर नयेनगर पधारे और श्रीमान् युवाचार्य जी महाराज ने बीकानेर की तरफ बिहार किया । नये शहर पूज्य श्री कितने ही दिन विराजे । चातुर्मास भी नयेनगर होने की संभावना थी इसके लिये कालक्षेप करने वास्ते आसपास मारवाड़ में पूज्य श्री बिचरने लगें । अनुक्रम से बिचरते पूज्य श्री वावरे पधारे । वावरे के श्रावकों ने पूज्य श्री के सदुपदेश से १००-१५० बकरों को अभयदान दिया । पूज्य श्री जब वावरे विराजते थे तब उस समय महाराणा उदयपुर के भतीजे शिवरती महाराज हिम्मतसिंहजी के कुंवर साहेब की वरात वावरे के समीप राश ग्राम है वहां के ठाकुर साहेब के वहां आई थी । पूज्यश्री वावरे विराजते हैं ऐसी खबर मिलते ही हिम्मतसिंहजी इत्यादि सरदार वावरे पधारे और पूर्व परिचय के कारण अर्ज की हम चार पांच दिन वहां ठहरेंगे इसलिये आप राश पधार ने कि

की कृपा करें तो हमें अत्यंत लाभ हो । श्रीमान् ने फरमाया कि अभी राश आने का अवसर नहीं है सबब कि वहां आप की मिहमाती में पशु पक्षियों के बध होने की संभावना है, तब उन्होंने अर्ज की कि महाराज ! हम हिंसा बिलकुल न होने देंगे ।

आप राश पधारने की कृपा करें । उत्पश्चात् ठाकुर श्रीने राश जाकर आज्ञा की कि 'हमारे लिए बिलकुल जीवहिंसा न करें' । इससे १५० से १७५ बकरों को सहज ही अभयदान मिल गया । पूज्य श्री राश पधारे । वहां व्याख्यान में शीवरथी महाराज श्रीमान् हिंमताईजी साहिब तथा अन्य सरदार, स्वमती और अन्यमती लोग बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे । राशके कामदार ने १०१ बकरों को अभयदान दिया, श्रावकों ने भी बहुत से बकरों को अभयदान दिया । श्रीयुत माव बाके के नीचे के विचार मांसाहारी लोगों को मनन करने योग्य है, सादी जिंदगी और स्वच्छ सुराक यह अपना मुद्रा-लेख होना चाहिए । जैसा खाते हैं वैसा ही अपना स्वभाव बनता है अपनी सुराक में तामस की चीजें बहुत पड़ी हुई हैं अपनी सुराक के लिए अपन मनुष्य तक का जीव ले लेते हैं अपन मांस बगैरा खाने के लिये खून पर चढ़ जाते हैं, जहां तक ऐसे निर्दोषों के खून न रुकें वहां तक अपन में से चोरी, लूटपाट, दगा, फाटका, और बदमाशी का अंत सरलता से नहीं हो सकता ।

दया का धर्म जब अशोक राजा ने स्थापित किया तब हिन्दू-स्थान की वनावट हो सकी । दयाधर्म जब राजकुमार पाल ने स्थापित किया तब गुजरात की आवादी हुई । दयाधर्म जब राणी विक्टोरिया के जमाने में प्रारंभ हुआ तब लोग संतोषी बनने लगे, परन्तु अपना धर्म आज स्वार्थी, क्रूर और अधम बनता जाता है । पहिले अपने को इसका त्याग करना चाहिये, दया से शांति होती है किसी का कुछ गुन्हा हो तो उस पर दया करनी चाहिए, इनकी रक्षा करेंगे जभी भ्रातृभावना का राज्य अपने में जल्द हो सकेगा ।

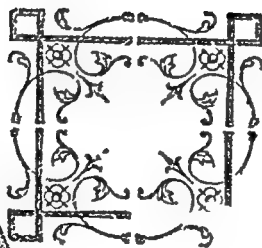
गूंगे, दीन, निर्दोष और मूक प्राणियों पर जुल्म करना या उन पर तेज छुरी चलाना निर्दयता है जिसका त्रास अपने को भी सहना पड़ता है इसलिए अपने को सब जगह दया का प्रचार करना चाहिए ।

राश से पूज्य श्री कोकिन पधारे, वहां वे एक सप्ताह तक ठहरे थे । वहां श्रीजी के दर्शनार्थ निकटवर्ती ग्रामों के सैकड़ों श्रावक आते थे । करीब ४०० बकरों को जसनगर में अभयदान मिला । वहां से विहार कर आपाढ़ वदी १ के रोज पूज्य श्री लांवीया पधारे, वहां के ठाकुर साहिब पूज्य श्री के व्याख्यान में आये । उनके हृदय पर पूज्य श्री के व्याख्यान का अत्यंत ही असर हुआ । ठाकुर साहिब ने कितने ही नियम तथा प्रत्याख्यान किये और चार बकरों को अभयदान दिया । दूसरे भी बहुत से लोगों ने नानाप्रकार की प्रतिज्ञाएं लीं ।

आषाढ़ वरी ३ के रोज पूज्य श्री कालू पघारे । वहां पूंछाला-
राजी फोठारी ने सजोड़ चौथेघरत का स्कंध लिया । सपवास, दया,
पौषय तथा अन्य स्कंधादि बहुत हुए । कालू के कृपिकारों ने हरे पृष्ठ
तथा हरे चने इत्यादि जलाने के सौगंध लिये ।

कालू में महाराज दौलतश्यापित्री (जिन्होंने भी काठियावाड़ में
विचर कर अत्यंत उपकार किया है वे) ठाण्ठा ८ सहित पघारे ।
परस्पर बहुत आनंदपूर्वक ज्ञानपर्चा और वार्तालाप हुआ । व्याख्यान
एक ठिकाने होता था । प्रातःकाल में व्याख्यान दिगम्बरी स्कूल में
होता था । पहिले एक आध घंटे तक दौलतश्यापित्री महाराज को
व्याख्यान करमाने के लिए पूज्य श्री कहते थे और बाद में पूज्य
श्री व्याख्यान परमाते थे । दोपहर को बड़े बाजार में श्री लक्ष्मी-
नारायणजी के मंदिर की तिथारी में दोनों महारवा व्याख्यान कर-
माते थे । परिपद् का जमाव दशमीय था । और दोनों संतों के
अधर्णीय और अद्वितीय उपदेश के प्रभाव से महान् उपकार हुए ।
व्याख्यान में स्वमती और अन्यमती करीब ५०० अनुष्य आते थे ।
कालू से बिहारकर आषाढ़ वरी १३ के रोज पूज्य श्री बालूदे पघारे ।
वहां के धनाढ्य गगारामजी मूया ने, जिनकी दुकानें बंगलौर तथा

मन्नास में हैं, पूज्य श्री की पूर्ण भक्तिभाव से सेवा की । बलूदे में पूज्य श्री पधारे, उसी दिन संध्या समय पूज्य श्री बाहर जंगल से आरहे थे तब एक खटीक की लड़की दो बकरो को ले जा रही थी । सेठ गंगारामजी को यह खबर मिलते ही उन्होंने दोनों बकरो को अभयदान दिला दिया ।



अध्याय ५० वां ।

अवसान ।



आपाद वरी १४ के रोज बल्लूरे से विहार कर पूज्य श्री जितारण पधारे । वहा आहार पानी किये, बाद स्वाध्यायादि नित्य-नियम से निवृत्त हो पूज्य श्री ने दोप्रहर का व्याख्यान करमाया । दूसरे दिन आपाद वरी ३० के रोज नित्यनियम से निवृत्त हो पूज्य श्री ने प्रतिरोहन किया और पूजन प्रमार्जन कर अपने हाथ से ही काजा निकाला तथा पाटिया लगा व्याख्यान करमाने लगे । श्री भगवतीजी सूत्र में से गगिये अणुगार के भागे करमारहे थे । आया घंटा बाजने के बाद महाराज श्री को अचानक चकर आने लगे और आँखों में लकड़ीक होगई । महाराज श्री ने अपने हाथ में से सूत्र के पन्ने सहित पाटी नीचे रख अपने दोनों हाथों से आँखें थोड़े समय तक ढक रक्खी । फिर ऐनक लगाकर सूत्र पढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु नहीं देख सके । तत्काल दूसरी बक चकर आया तथा शिर में असह्य दर्द होने लगा, तब महाराज श्री ने फरमाया कि श्रव्य मरी आँखें पढ़ने का कार्य नहीं कर सकतीं । इसलिये मुह से ही व्याख्यान देता हूँ । पूज्य श्री ने उही समय मुह से सूत्र की गाथा

करमाकर उसका रहस्य समझाना प्रारंभ किया । इतने में फिर चकर आये और दर्द का जोर बढ़ गया । तब दूसरे साधु गच्चू-लालजी को व्याख्यान देने की आज्ञा देकर आप अंदर पधारे और मुनि श्री मनोहरलालजी इत्यादि के समक्ष कहा कि “ मैंने आगे ज्ञानी वृद्ध पुरुषों के मुंह से ऐसा सुना है कि बैठे २ आंख की दृष्टि एकाएक बंद हो जाय तो मृत्यु समीप आ गई है ऐसा समझना चाहिये । इसलिये मुझे अब संथारा करा दो और मुनि श्री हरकचंदजी आजायें तो मैं आलोचना कर लूं ” ऐसा कह पूज्य श्री ने चतुरसिंहजी नामक एक साधु को आज्ञा दी कि तुम अभी नये-नगर की ओर विहार करो । श्रावकों को यह खबर मिलते ही उन्होंने एक शख्स को रेल में नयेनगर की तरफ रवाना कर दिया । वह साधुजी के पहिले शीघ्र पहुंच गया और मुनि श्री हरकचंदजी महाराज की सेवा में सब हकीकत निवेदन की । श्रीमान् हरकचंदजी महाराज यह सुन आपाढ़ सुदी १ के रोज धारह कोस का विहार कर नीमाज पधारे और वहां चिंतामस्त स्थिति में रात्रि निर्गमन की । दिन उदय होते ही नीमाज से विहार कर आठ बजने के समय जेतारण पहुंच गए । उनसे महाराज श्री ने कहा कि “ मेरी आंखें तुम्हारी मुंहपत्ति नहीं देख सकती । अब मुझे शीघ्र संथारा कराओ । जीव और काया भिन्न होने में अब विशेष विलम्ब नहीं है । ” मूलचंदजी महाराज ने कहा कि महाराज ! संथारा

कराने जैसी बीमारी आपके शरीर में नई" "तुम होती है तब हम सधारा कैसे करानें ! शिष्यों के हृदय में बड़ा भारी धक्का लगा, वे डीले होगए । पूज्य श्री उन्हें हिम्मत दे जागृत करते कि 'जो नियम तार्थिकर तक की लागू हुआ वह नियम सब के लिए एकसा है । इस समय तुम से बत सके बतना धर्म ध्यान सुनाओ, यही तुम्हारा कर्तव्य है।'

पूज्य श्री के मस्तिष्क में सौम्यवेदना हो रही थी । दर्द का जोर विजली की तरह बढ़ रहा था । परन्तु उपस्थित साधु दर्द का सम स्वरूप पूज्य श्री की अद्वितीय सहनशीलता से ग सम्म और पूज्य श्री के बार २ कहने पर भी उन्होंने सभारा नहीं कर परन्तु ज्यों २ व्याधि बढ़ती गई, वैसे २ पूज्य श्री के भाव स में स्थित होते गए, ऐसी उज्ज्वल वेदना में भी उनकी शांति और अनुपम भा, कायरता प्रतीत हो ऐसा एक शब्द भी इस समान शूरवीर, धीरपुरुष के मुह से कभी न निकला ।

पूज्य श्री की बीमारी के समाचार अतारण के भावकों ने दे घरो में तारद्वारा अनेक शहरों के मुख्य २ भावकों को पहुँचा थे । वस पर से कई भावक वहाँ आपहुँचे थे । आषाढ शुक्ल के रात्र व्याघर के कई भाई आये और उसी दिन शामको स

से भाई चुन्नीलालजी * कल गजी भी आये । मैं चली था, वहां तार आया, परंतु बिना पंख के इतनी दूर कैसे पहुंचा था । चुन्नीलालजी ने महाराज श्री से वंदना कर सुखसाता पूछी, तब वे बोले कि “ भाई ! मेरा अंतिम समय—संथारे का समय आ गया है पुद्गल दुःख दे रहे हैं । ” इस समय दूसरे भी कई श्रावक और साधु पूज्य श्री के पास बैठे थे । उस समय श्रीजी महाराज ने ‘ धोरा मुहुत्ता अवलं सरीरं ’ इस उत्तराध्ययन जी सूत्र का वाक्य कहकर सबको इसका मतलब समझाया ।

भिन्न २ श्रावक भिन्न २ औपधियां सुचाते थे, परंतु पूज्य श्री ने फरमाया कि ‘ बाह्योपचार करने की अपेक्षा अब आंतरोपचार करने दो और आरंभ समारंभ मिश्रित औपधियां न सुचाओ ’ ।

उस समय युवराजजी हाजिर होते तो पूज्य श्री को विशेष समाधानी रहती, परन्तु हिम्मत बहादुर, महाभटवीर अचानक आई हुई मृत्यु से तनिक भी न डरे । शिष्य—समुदाय को शैश्या के पास

* इन दोनों बाप बेटों ने अभी संयम अंगीकार कर आत्म-साधन जीवन सार्थक करना प्रारंभ किया है, उसकी माताजी और बहिन ने भी संयम लिया है, धन्य है ऐसे वैराग्य और त्याग को ।

बुलाकर सब के मस्तिष्क पर हाथ फिरा मानों अंतिम विदा लेते हो यों कहने लगे — मुनिराजो ! संयम को दिपाना, सब के साथ रहना, पंडित श्री जवाहिरलालजी की आज्ञा में विचरना, वे दृढ़ धर्मी, सुस्तसंयमी और मुझसे भी तुम्हारी अधिक सालसभाएँ रख सकते हैं । मैं और वे एक ही स्वरूप के हैं ऐसा समझना, उनकी सेवा करना, श्री हुक्म महाराज की सम्प्रदाय को जायज मान रखना, शासन की शोभा बढ़ाना, 'सुमाता हूँ' सुमा करना पूज्य भी बोलते रुक गए । पाँच बैठे हुए मुनिमंडल के चतुःश्रु पूर्ण हो गए, एक मुनिराज ने उत्तर दिया “ पूज्य साहेब ! आप की आज्ञा हमें शिरोधार्य है, आप निश्चित रहे ! हम बालकों को आप क्या समझाते हैं ! सच्चा सुमाना तो हमें चाहिये कि आपके उपकार क प्रमाण में हम आपकी किंचित् सेवा का भी लाभ न ले सकें” इसके अधिक बोलना न हो सका ।

समयसूचक पूज्य श्री ने इस शोक के समय जल्द ही श्रीसूत्र की गाथा बोलना प्रारंभ की । शोक को शांति के रूप में बदल दिया और शिष्य भी मदस्वर से उसमें शामिल हो गये ।

दूसरे दिन आषाढ़ शुक्ल २ को सवेरे अजमेर से श्रीमान् गाढमलजी लोढा तथा व्यावर के कई गृहस्थ आ पहुँचे । उस दिन पूज्यश्री के शरीर में व्याधि बहुत बढ़ गई थी और नित्यनियम

भी न हो सका था । पूज्यश्री बार २ फरमाते थे कि 'मुझ से नित्य-नियम न हो उस दिन समझना कि मेरा अंतकाल समीप है इस पर से उनके शिष्यों को बहुत चिंता हुई और द्वितीया के दिन उन्हें सागरी संथारा करा दिया तथा रात को महाराज श्री को जावजीवका संथारा करादिया गया, उही रात के पिछले प्रहर म करीब ५ बजे इस मिट्टी के कच्चे घड़े की नाई औदारिक देह को त्याग पूज्यश्री का अमर आत्मा स्वर्ग सिधाया । जैन शासन रूप आकाश में से एक जाज्वल्यमान सूर्य अस्त होगया । चतुर्विध संघ का महान् आधार स्तंभ टूटगया, उस समय साधुजी के १२ थाने श्रीजीकी सेवा में उपस्थित थे ।

पूज्यश्री के शरीर में रहा हुआ प्राण उनका ही नहीं परन्तु सकल संघ का था । राजा महाराजाओं की भी न होसके ऐसी उनकी चिकित्सा की गई । कई स्थान पर तपश्चर्या प्रारंभ हुई, दान दिया गया, प्रतिज्ञायें ली गई और पूज्य श्री की आराम होने की प्रार्थनाएँ की गई, परन्तु उस आत्मा को परमात्मा के आमंत्रण की वेपरवाही न करना होने से असंख्य श्रावकों को शोकसागर में मूच्छा में डालत समाज का सितारा अदृश्य होगया । संथारा इतना थोड़ा न होता तो इस मृत्युमहोत्सव को दिपाने के लिये लोग उभराते और लाखों रुपये खर्च कर देते ।

निश्चय को घट ' अलौकिक है । प्रारब्ध का वैचित्र्य अगम्य है मृत्यु की बूंदी नहीं, जैनसमाज को देदिप्यमान करनेवाली यह पवित्र आत्मा अनेक कष्ट भेल, दुःखित दिल वालों का ज्वलन्त संदेश भी शासन देव के दरबार में अर्ज करने स्वर्गलोक में पधार गई ।

काठियावाड़ में कोहनूर के समान प्रकाश करने वाले राजपूताने का यह रत्न, मालवा-मेवाड़ का यह मणि जो आत्मा अभी तक इन महात्मा के शरीर में थी वह समस्त भीषण में व्याप्त होगई ।

कौनसा वजूदइस इस वियोग का-अवसान समय का वर्णन कर सकता है ? कौन कवि इस विरह को वर्णन करने की हिम्मत धारण कर सकता है ? एक भक्त के शब्द में ही कहें तो—उनका शरीर गया, मूर्ति अदृश्य होगई, उनका दर्शन दूर होगया, स्थूल दुनियां में स्थूल व्यवहार मस्त दुनियां में उनका स्थूल स्वरूप नारा होगया, परन्तु यशःशरीर अभी तक मौजूद है ।

कौन ऐसा हृदयशून्य होगा कि इस समय लोगों को रोने नहीं देगा । मस्तिष्क की गर्मी कम नहीं करने देगा, परन्तु पक्ष पक्ष हुआ ।

“ रोई रोई आमुझानी नदिओं पहे तोये ।
गपुं ते गपुं, शुं आवी आंसु लुछरानुं शाखा ॥”

जब वे बिराजते थे तब तो वे उनका लाभ न ले सके, और पीछे से रोना यह बिलकुल पाखंड ही है ।

खुले नेत्रों से तो उनके स्मितपूर्ण मुखचंद्र के दर्शन नहीं कर सकेंगे, विशालभालरक्षित मुखकमल में से झरते हुए मधुर प्रोत्साहक अमृत के पान से पवित्र न हो सकेंगे, परन्तु हां, उनका मिशन यही उनकी आत्मा थी । अपन उन श्री के सदाविचारों को ग्रहण करेंगे तो वे हरएक के हृदय-सिंहासन पर आरुढ़ हुए दृष्टिगत होंगे ।

पूज्यश्री के देह का नाश हुआ, परन्तु उन श्री के प्राणरूप उन श्री के आत्मारूप चारत्रधर्म का ध्येय ही विशेष विस्तृत ही होगा । यह ध्येय खूब फैले, पूज्यश्री की अमर आत्मा समाज के कोने-कोने में प्रवेश करे और पूज्यश्री सा जीवनबल सब संतों में स्फुरित हो ।

तीसरे दिन बीकानेर, उदयपुर इत्यादि कई ग्रामों के श्रावक एकत्रित होगए और आचार्य श्री का निर्वाणोत्सव बहुत ही धूमधाम से किया गया ।

चंदनादि लकड़ियों से चिता तैयार की गई । चिता में आग रखने की बहुतों की हिम्मत न हुई । अंत में पूज्य श्री का मानुषीदेह भस्मीभूत होगया । श्रावकों ने मुनिराजों के पास आ आश्वासन दिया और

मंगलिक मुनकर अपने २ स्थान पर गए । भस्मी, इसी व.दाँदे बहुत से श्रावक लेगये ।

भारत की शोचनीय दशा यह है कि अपने नेताओं की वय कम होती है और तन्दुरुस्ती जल्द बिगड़ने लगती है । मृत्यु के समय स्वामी विवेकानंद की आयु ३६ वर्ष, मीयुत केशवचंद्र सेन की आयु ४५ वर्ष, जटिस तैलंग की ४८ वर्ष और मीयुत गोपाल कृष्ण गोखले की ४६ वर्ष की थी । पूज्यश्री का आयुष्य अवसान के समय ५१ वर्ष का ही था । इस वज्र में भी नई २ बातें सीखने का उस्ताद बढ़ता ही जाता था । उस समय ग्लेडस्टन और एबीसन याद आये बिना नहीं रहते थे ।

अंतिम कसाटी तक तपकर शुद्ध कुंदन होने में पूज्यश्री को असह्य परिसह सहन करने पड़े, पूज्य श्री के प्रकाशित कीर्तिदीप का बुझाने के लिए नीच प्रयास हुए, परन्तु सूर्य के सामने धूल खालने वाले की क्या दशा होती है ? पूज्यश्री के शुद्ध संयम के तेज से शर्पांगि पिघल जाती, ईर्ष्या के वेग में पारित्र्यधर्म का खून कर बैठने वालों को वे दया की दृष्टि से देखते और हर बताते थे कि कहीं जैन-शासन के मुख्य स्वरूप साधु धर्म के क्रियाकांड की यह हत्या न कर बैठे ।

श्रीयुत डाह्याभाई के शब्दों में यह प्रसंग पूर्ण करते हैं, जिन्होंने हमारे लिये इतना कष्ट उठाया और हम उन्हें जीतेजी विशेष आराम न दे सके। उनके दुःख में उनके जीतेजी हमने कुछ भाग न लिया, जिनकी तप्त आत्मा को कुछ भी शान्ति न दे सके। उनके गुणगान करने की शक्ति भी हम बाहिर न दिखा सके.....किसी कृतघ्नी ने तो उनकी व्यर्थ ही टोका की। इन महात्मा, इन संत, इन नरम हृदय के दयालु पुरुष का अपना श्रेय करने वाले सुकृत्यों का त्याग कर दिल दुखाया यह सब याद आते हृदय फट जाता हैपरन्तु अहोभाग्य है कि आप महारथी की जगह एक दूसरे संत महात्मा ने स्वीकृत की है। और सम्प्रदाय के सेनापति का जोखिम भरा हुआ पद स्वीकार किया है, उन्हें यश मिले।

लगभग बत्तीस वर्ष तक चारित्र्य प्रवर्ज्या पाल और उसी बीच बीस वर्ष तक आचार्यपद को सुशोभित कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दे पूज्यश्री ने जीवन सार्थक किया; आपका जन्म, आपका शरीर, आपकी प्रवर्ज्या, आपको आचार्यपद यह सब अस्तित्व जनसमूह के कल्याण के लिये ही था, आपने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न करने की प्रतिज्ञा करली थी, परन्तु बहुसंख्यक मनुष्यों को दीक्षा दे उनका उद्धार किया और कई मुनिवरों पर अवर्णनीय उपकार किया। आपका चारित्र्य अत्यंत ही

अलौकिक और आपके गुण अपार अकथनीय हैं। विद्वान् लेखक और शीघ्रकवि वर्षों तक वर्णन करते रहें तो भी आपके चारित्र का यथातथ्य निरूपण होना या आपके गुणसमूह का पार पाना अशक्य है। आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि, आपके अतीत काल में उत्पन्न हुए शुभकर्मों के उदय का अपूर्व प्रभाव, वर्तमान की शुभ प्रवृत्ति, आगामी समय के लिये दीर्घदर्शित इत्यादि इतने प्रबल थे कि जिनकी उपमा देना ही अशक्य है। इस पंचम काल के जीवों में से आपकी समानता कोई कर सकता है। ऐसा व्यक्ति दृष्टिगत नहीं होता। तथापि आश्वासन पाने योग्य बात यह है कि आपके समान ही अनुपम आत्मिक गुण, अद्वितीय आकर्षण शक्ति दिव्य तेज, अपार साहायिकता, आत्मबल, आपकी गादी पर विराजमान वर्तमान आचार्य भी १००८ श्री ५० रत्न भी जवाहिरलाल नेहरू महागज साहिब में अधिक अंश से विद्यमान है। हमारा यह हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र ने पर्याप्तों में समय २ पर अधिक २ अभिवृद्धि होती रहे और वे निरामयी तथा दीर्घ आयुष्य भोग जैनधर्म की उदार और पवित्र भावनाओं का प्रचार करने में अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।



अध्याय ५१ वाँ ।

शोक-प्रदर्शक सभाएं.



मारवाड़, मालवा, मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़, दक्षिण, पंजाब इत्यादि प्रत्येक प्रांतों के अनेक शहरों और ग्रामों में पूज्य श्री के स्वर्गवास की खबर मिलते ही हड़ताल, अगते, पर्व, पाले गए। धर्म ध्यान किया गया और लाखों रुपये जीवदया के कार्य में व्यय किये गये थे * स्थानाभाव के कारण वह सब वृत्तान्त यहां नहीं दिया जा सकता, किन्तु उनमें से मुख्य २ सभाओं का हाल नचि देते हैं:—

मुम्बई संघ की बृहद् सभा, बाज़ार बंद रखे गए ।

तारीख २४-६-२० को चींचपोकली के जैन उपाश्रय में जैनसंघ की एक आमसभा की गई थी। उस समय सैकड़ों जैन

* एक अन्य धर्मी साधु ने कितने ही जीव को अभयदान दिराने का निश्चय किया था, वह भी कोशीश कर के परिपूर्ण किया था ।

वाई, भाई एकत्रित हुए थे और पूज्य आचार्यश्री के स्वर्गवास जैन कौम और धर्म में ऐसी बड़ी भारी कमी हुई है कि, जिस पूर्ति नहीं हो सकती, इस विषय पर कई सज्जनों के व्याख्यान और अत्यन्त शोक प्रदर्शित किया गया ।

अन्त में मुम्बई के जैनसंघ की ओर से बीकानेर में विराजमान युवराज महाराज श्री जवाहिरलालजी महाराज तथा बहादुर शाह पंथ रतलाम के जैनसंघ को शोकप्रदर्शक तार देना निश्चित हुआ ।

पूज्य आचार्यश्री के निर्वाण-महोत्सव के समय जीवों को अन्नदान देने के लिए एक फंड किया गया, जिसमें उपस्थित सज्जनों ने पाच हजार रुपये दिया और बादरा इत्यादि स्थानों के कसबे-खाने बंद रखे गए, फंड अभी शुरू है ।

आज रोज मुम्बई में जोहरी बाजार, सोना, चादी बाजार, रेशम बाजार, मूलजी जेठा मारकीट, मंगलदास कपड़े का मारकीट, कोलावे का रुई बाजार, दाणा बाजार, किरयाना बाजार इत्यादि व्यापारी बाजार बंद रह थे ।

रतलाम ।

ता० २५ ६-२० को बड़े स्थानक में समस्त संघ की एक सभा एकत्रित हुई । जिसमें मुम्बई संघ का शोकप्रदर्शक तार पढ़ा गया ।

तीन चार व्याख्याताओं ने सद्गत् पूज्यश्री का जीवनचरित्र कह सुनाया । पूज्य महाराज श्री के अकस्मात् वियोग से समस्त संघ को अत्यंत खेद हुआ और निम्न ठहराव पास किये गए थे ।

प्रस्ताव पहला ।

श्रीमान् परमगुणालंकृत, क्षमावान्, धैर्यवान्, तेजस्वी, जगद्धाम, महाप्रतापी, आचार्यपदधारक परम पूज्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्रीलालजी महाराज का आपाढ़ शुक्ला ३ शनिवार को सु० जेतारण में अकस्मात् स्वर्गवास होगया, यह अत्यन्त खेदजनक और हृदयभेदक खबर सुनकर इस स्तलाम संघ को पूर्ण रंज व दुःख प्राप्त हुआ है । इन महात्मा के वियोग से सारे हिन्दुस्थान में अपनी समाज के लोगों के अतिरिक्त हजारों अन्य मतावलम्बियों को भी अत्यंत रंज हुआ है । सारी जैन-समाज ने एक अमूल्य रत्न खोया है और ऐसा फिर प्राप्त होना दुर्लभ है । इसलिये यह संघ सभा पूरी रंजी के साथ खेद जाहिर करती है । इसी मजमून का तार मुम्बई संघ का भी यहाँ पर आया हुआ सभा में सुनाया गया । यह सभा मुंबई संघ का उपकार मानती है । और श्रीमान् वर्तमान पूज्य महाराज श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब को और संघ को मुंबई और रतलाम संघ की तरफ से आश्वासन देने के लिये नीकानेर तार दिया जाने का ठहराव करती है व वर्तमान पूज्य महाराज श्री

श्री १००८ श्री नवाहिरलालजी की तेज क्रांति दिन २ बड़े देण
 दण्ड ॥ इन्द्रजी है ।

ग्रस्ताव दुसरा ।

श्रीमान् पूज्य महाराज के स्वर्गवास की खबर सुनते ही तत्काल
 मंथ ने वसी बक्क अपनी २ दुकान बंद करके शोक माना था, तो भी
 मंथ की तरफ से फिर ठहराने में आता है, कि स्वर्गस्थ पूज्य महा-
 राज के शोक-निमित्त फिर भी आपाद सुदी १३ मंगलवार को
 सब व्यापार बंद रक्खा जावे और हलवाई, भकभूजा आदि की
 भी दुकानें बंद कराई जावे व गरीबों को अन्न वस्त्र का दान दिया
 जावे । यह कार्य ४ आदमियों के सुपुर्द किया जावे । इस खर्च में जो
 कोई अपनी सुशी से जो रकम देवे सो स्वीकार की जावे ।

उपरोक्त ठहरावानुसार मिठी आपाद सुदी १३ को रतलाम में
 कई दुकानें बंद रहीं । अन्न वस्त्रादि दान दिये गए और पूज्य महा-
 राज की स्मृति में सब लोगों ने वह दिन पर्व के समान समझा ।

राजकोट ।

ता० २६-६-२० को यहां के तालुका स्कूल के मिडिल हाउस
 में राजकोट स्टेट के में मुख्य दीवान रावबहादुर हरजीवन भवान
 भाई कोटक बी. ए. एलएल. बी. के सभापतित्व में राजकोट के

वासियों की एक जाहिर सभा हुई थी। उस समय सभापति महोदय तथा अन्य वक्ताओं ने पूज्यश्री के राजकोट के चातुर्मास में किये हुए अवर्णनीय उपकारों का अत्यन्त ही असरकारक भाषा में विवेचन किया था और पूज्यश्री के स्वर्गवास से शोक प्रकट करते नीचे सुजिव ठहराव सर्वानुमत से पास किये गए थे:—

ठहराव १ ला.

राजकोट के निवासियों की यह सभा श्री स्था० जैनाचार्य पूज्य महाराज श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के अपक वय में स्वर्गवास हो जाने से अंतःकरणपूर्वक अत्यन्त खेद प्रकट करती है।

सं. १९६७ का चातुर्मास निष्कल जाने से संवत् १९६८ के चातुर्मास में खासकर जानवरों के लिये बड़ा भारी दुष्काल पड़ा, उस समय चातुर्मास में पूज्यश्री के यहां के निवास में पूज्यश्री ने यहां के तथा बाहर ग्राम के लोगों को दया और सेवा धर्म का सच्चा अर्थ समझा कर लोगों में दया का बड़ा भारी जोश पैदा किया था और पूज्यश्री के सद्बोध से राजकोट ने उस दुष्काल में वहां से तथा बाहर देशावरों से बड़ा भारी फंड एकत्रित कर मनुष्यजाति एवं जानवरों के प्रति बड़ा भारी उमदा काम कर दिखाया था, ऐसे एक सच्चे महान् विद्वान् पवित्र

और चरित्रवान् महामुनि के स्वर्गवास से सिर्फ जैन-जाति को ही नहीं परन्तु अन्य सबों को भी एक बड़ी भारी कमी हुई है, ऐसी यह सभा जाहिर करती है ।

ऊपर का यह ठहराव पत्र द्वारा तथा उसका मोढ़ासा सार सार द्वारा बीकानेर तथा रतनाम खंभ को सभापति महोदय के हस्ताक्षर से भेजने का प्रस्ताव करती है ।

सारकी नकल.

Citizens of Rajkot assembled in public meeting express their deep sorrow for the premature demise of Acharya Mahārāj Shri Shrilālji and beg to say that in him not only the Jain Community but a people in general have lost a most learned pious and ideal saint Please convey this message to Acharya Mahārāj Shri Jawāharlālji with our humble requests.

ठहराव दूसरा,

आचार्य महाराज श्री श्रीलालजी महाराज जैसे नमूनेदार सु-खवान् मुनि ने अपने पर किये हुए उपकारों के कारण उनकी और जिवना भी मान और प्राप्ति झगट कीजाय उसनी ही बोदी है, ऐसा इस सभाका विश्वास है । इसलिये यह सभा ऐसी बम्बेद करती है कि कल का

दिन जो जैन तथा कितने ही अन्य शास्त्रों के अनुसार चातुर्मास की परवी का है तथा व्रत-नियम धारण करने का एक पवित्र दिन है, उस दिन महाराजश्री के तरफ भक्तिभाव रखने वाले लोग अपना २ कार्य-धंधा बंद रखें हो सकें तो उपवासादि कर धर्मध्यान में बिताएंगे और इसतरह स्वर्गस्थ महाराज श्री की तरफ अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करेंगे । यह ठहराव भी महारवान सभापति साहिब की सही से पत्रद्वारा बीकानेर तथा रतलाम संघ की तरफ भेजना स्थिर हुआ ।

जोधपुर ।

ता० ३-७-२०

पूज्य महाराज श्री के स्वर्गवास से संघ में बड़ा भारी शोक रहा । पंडित श्री पन्नालालजी महाराज ने उस दिन व्याख्यान बंद रखे और भारी उदासी प्रकट की ।

कलकत्ता ।

तार द्वारा समाचार मिलते ही समस्त श्रावक भाइयों ने मारवाड़ी चैम्बरस की सम्मति के अनुसार बाजार का सब कामकाज बंद रखवा । हटखोला पाट का बाजार भी बंद रहा । संवर पौष, तथा दान पुण्य बहुत हुआ ।

और चरित्रवान् महामुनि के स्वर्गवाम से सिर्फ जैन-जाति को ही नहीं परन्तु अन्य सबों को भी एक बड़ी भारी कमी हुई है, ऐसी यह समा जाहिर करती है ।

ऊपर का यह ठहराव पत्र द्वारा तथा उसका भोड़ासा सार सार द्वारा बीकानेर तथा रवेलाम संघ को सभापति महोदय के हस्ताक्षर से भेजने का प्रस्ताव करती है ।

तारकी नकल.

Citizens of Rajkot assembled in public meeting express their deep sorrow for the premature demise of Acharya Mahārāj Shri Shrilālji and beg to say that in him not only the Jain Community but a people in general have lost a most learned pious and ideal saint Please convey this message to Acharya Mahārāj Shri Jawaharlālji with our humble requests

ठहराव दूसरा,

भाचार्य महाराज श्री भीमलालजी महाराज जैसे नमूनेदार गुणवान् मुनि ने अपने पर किये हुए उपकारों के कारण उनकी ओर जितना भी मान और शक्ति प्रगट की जाय उसनी ही बौद्धी है, ऐसा इस प्रस्तावका विधास है । इसलिये यह समा ऐसी उम्मेद करता है कि कल का

बड़ी सादड़ी ।

सकल संघ में बड़ा भारी शोक छागया । व्याख्यान बंद रहा, धर्म ध्यान, दान, पुण्य, व्रत, प्रत्याख्यान बहुत हुआ । आसपास के ग्रामों में भी यही बात हुई ।

रावलपिंडी ।

जैन सुमति मित्रमंडल के आधीन जितनी संस्थाएं हैं, वे सब बंद रक्तली गई ।

रायचुर ।

यहां पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की स्मृति में एक 'श्रीलाल जैन पुस्तकालय' खोला गया ।

धोराजी ।

व्याख्यान की परिपद् में शतावधानी पं० रत्नचंद्रजी महाराज ने पूज्यश्री के स्वर्गवास के शोक प्रदर्शित करते हुए अपने परिचय के वर्णन के साथ पूज्यश्री के उत्तम गुणों की तारीफ करते ऐसा करुणारसपूरित वर्णन किया कि श्रोताओं का हृदय शोकनिमग्न हो गया और कितने ही की आंखों में से अश्रुप्रवाह बहने लग गया । बहुत व्रत, प्रत्याख्यान हुए । परस्पर बातचीत कर रु० १२५) के कपासिये ले अपंग ढोरों को खिलाये गए ।

भीलवाड़ा ।

आषाढ़ शुक्ला ४ को प्रातःकाल खबर मिलते ही स्वमती अन्यमती इत्यादि में सम्पूर्ण शोक होगया । भर्मध्यान पुण्यदान इत्यादि यथा-शक्ति हुआ । जावेर वाले सेठ श्री देवीलालजी महाराज यहाँ विराजते थे उन्हें एकाएक यह खबर मिलने से बड़ा भारी रंज हुआ । व्याख्यान भी बंद रक्खा, गोशरी करने भी न गए । फिर भी वे सद्गति आचार्यश्री के गुणानुवाद अपने व्याख्यान में समय २ पर गाते रहते थे ।

सादड़ी ।

अवसान की खबर मिलते ही जीवदया के लिये रु० ४०० का फंड हुआ, उनसे जीव छुड़ाये गए । द्वितीय भावण वशी ११ के रोज एक दवाखाना खोला गया ।

रामपुरा ।

श्री ज्ञानचंद्रजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री इन्द्रमलजी ठाना २ यहाँ विराजते हैं । पूज्यभा के स्वर्गवास की खबर सुनते ही उन्हें अत्यन्त खेद हुआ । उस दिन आहार पानी भी न किया, संप में भी बड़ा भारी शोक रहा ।

बड़ी सादड़ी ।

सकल संघ में बड़ा भारी शोक छागया । व्याख्यान बंद रहा, धर्म ध्यान, दान, पुण्य, व्रत, प्रत्याख्यान बहुत हुआ । आसपास के ग्रामों में भी यही बात हुई ।

रावलपिंडी ।

जैन सुमति मित्रमंडल के आधीन जितनी संस्थाएं हैं, वे सब बंद रक्खी गई ।

रायचुर ।

यहां पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की स्मृति में एक 'श्रीलाल जैन पुस्तकालय' खोला गया ।

धोराजी ।

व्याख्यान की परिपद में शतावधानी पं० रत्नचंद्रजी महाराज ने पूज्यश्री के स्वर्गवास के शोक प्रदर्शित करते हुए अपने परिचय के वर्णन के साथ पूज्यश्री के उत्तम गुणों की तारीफ करते ऐसा कण्ठारसपूरित वर्णन किया कि श्रोताओं का हृदय शोकनिमग्न हो गया और कितने ही की आंखों में से अश्रुप्रवाह बहने लग गया । बहुत व्रत, प्रत्याख्यान हुए । परस्पर बातचीत कर रु० १२५) के कपासिये ले अपंग ढोरों को खिलाये गए ।

। भूसावली ।

पत्र द्वारा समाचार मिलते ही आषाढ़ शुक्ला ११ को, तमाम व्यापार आदि बंद रक्खा गया और, आवकों ने दया, पौवध कर समस्त दिन धर्मध्यान से बिताया ।

। अमृतसर ।

युवराज श्री केशीरामजी महाराज ने एक दिन व्याख्यान बंद रख बड़ा भारी शोक प्रदर्शित किया । समस्त संघ में बड़ा भारी शोक रहा ।

हर्षिणघाट ।

साधुमार्गी तथा मंदिरमार्गी भाइयों ने मिलकर आषाढ़ शुक्ला ११ के रोज बाजार बंद रक्खा ।

कपासन ।

तपस्वीजी हजारीमलजी ठाणा ३ वहां विराजते हैं, स्वर्गवास को खबर मिलते ही साधु, आवकों में भारी शोक छा गया । दूसरे दिन व्याख्यान बंद रहा । महाराज ने उपवास किया । पंजरापोत कोलने का प्रबंध हुआ ।

जावद ।

समस्त श्रावकों ने दुकानें बंद रखीं और उपाश्रय में एकत्रित हुए, कसाइयों की दुकानें बंद रखी गईं गरीबों को वस्त्र तथा भोजन, पशुओं को खल तथा घास, कबूतरों को जुवार तथा कुत्तों को पूड़ियाँ डाली गईं, जिसमें रु० २००) खर्च हुए । कई तैलियों ने अपनी ओर से ही कई पशुओं को खल खिलाई ।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त उदयपुर, बीकानेर, दिल्ली, आकोला, शिवपुरी, सिन्दुरणी, जावरा, मोरवी, जयपुर इत्यादि अनेक शहरों और ग्रामों में सभाएं इत्यादि दान-पुण्य, संवर, पौषध हुए, परन्तु स्थल-संकोच से तथा कितने ही स्थानों का सविस्तृत हल न मिलने से यहां दाखिल न किया गया ।



अध्याय ५२ वाँ ।

सम्पादकों, लेखकों इत्यादि के शोकोद्गार

हमारी निराशा ।

साखी ॥

अंतरनी आशाओं सघली अतरमांज समाखी.

रक्षा मनोरथो मनना मनमां कहैवी कोने कहाखी.

न्होती जाखीके आम थशे हाखी. ॥१॥

पूज्य महाराज श्री भीलालजी महाराज के शोकदायक अव-
सान के समाचार थोड़े ही समय के पहिले मैंने मुने तब मेरे हृदय
को बड़ा भारी धक्का लगा, स्वर्गस्थ महारमा भी के उम्दा गुणों का
गुणानुवाद पहिले मैंने कई जनों के मुँह से सुना था और तब से तनछे
मिलने की मेरी प्रबल इच्छा रह्यी, परन्तु दुर्दैव ने यह अभिलाषा
निर्मूल करदी। जब पूज्यजी का यहां पधारना हुआ तब मेरा वि-
हार कच्छ के प्रदेशों में था और मैं जब लौटदी आया तब मैंने
पूज्यजी से फिर से इस तरफ पधारने के लिए बीनती कराई,
परन्तु वे नहीं पधार सके, और मैं अपने गुरु की सेवा में लगा रहने

छे उन दिनों लांबड़ी न छोड़ सका, इसलिये मेरी यह अभिलषा अपूर्ण ही रही ।

मेरा उनके साथ प्रत्यक्ष परिचय नहीं होने से मेरे मन पर जिन गुणों की छाप पड़ी है वह मात्र परोक्ष है ।

लांबड़ी में पूज्य महाराज का आगमन संवत् १९६७ के वैशाख शुक्ल ६ गुरुवार को २१ ठाणों से हुआ । तब वे वहाँ के हाईस्कूल में ठहरे थे । उनके व्याख्यान में वहाँ के ठाकुर साहिब प्रतिदिन उपस्थित होते थे । ऑफिस के लोग सब व्याख्यान का लाभ ले सके, इसलिये कोर्ट का मोर्निङ्ग टाइम बदल दिया था, जिससे ऑफिस के या ग्राम के अन्य इच्छुक समुदाय का जमाव खूब होता था । पूज्यश्री के व्याख्यान की शैली अत्यंत आकर्षक शास्त्रानुसार और देश, काल की वर्तमान भावनाओं की पोषक थी । उनकी प्रकृति अत्यंत सरल और निर्मल थी । प्रत्येक जाति के मनुष्य श्रवण-सत्संग का लाभ लेते थे और उन्हें उनके अतिशय के कारण सब अपने ही धर्मगुरु के समान मानते थे । व्याख्यान में अनेक प्राचीन कवियों के काव्य, सुमधुर कंठ से शिष्यवर्ग के साथ इस तरह घोषित करते थे कि जिससे श्रोताओं पर अजब असर पड़ता था । मारवाड़ की वीरभूमि के इतिहास के दृष्टांत और उन पर सिद्धांतों की ऐसी मजेदार घटना घटित करते थे कि श्रोतालोग रस

में बिलकुल निमग्न बन जाते थे । व्याख्यान से उठने का इच्छा
 तो होती ही नहीं थी, कारण मधुरी शैली से बुलंद आवाज द्वारा
 श्रोताओं को सन्हालते रहते थे । उस समय यहां पंडितराज बहु-
 भूषी स्वर्गेश्वर सहाराज भी उत्तमर्चदजी स्वामी अपने समुदाय सहित
 बिराजते थे और वे भी व्याख्यान में हमेशा पधारते थे । उनके
 मुंह से तथा अन्य भावकों के मुंह से यह सब तारीफें मैंने सुनी हैं
 तथा उनकी याणी की महिमा तो मैंने कईयों के मुंह से सुनी है ।

बहुत से अनुष्ठानों ने उनको व्याख्यान सुने हैं उनसे मैंने सुना
 है कि उनका प्रभाव जब भी श्रोताओं पर ऐसा ही-कायम है, ऐसी
 प्रभावोत्पादक शैली और श्रोताओं के मन पर छाप पाड़ने की शक्ति
 इस बात को सूचित करती है कि पूज्यभी जो कथन श्रोताओं के
 समक्ष प्रकाशित करते हैं उसे वे अपने हृदय में सत्य के सदृश
 स्वीकार करते थे और उस सत्य पर उनकी अचल भक्ता और दृढ़
 प्रीति के कारण ही वे श्रोताओं पर ऐसा उत्तम प्रभाव गिरा सकते थे ।

शास्त्रों में फरमाई हुई आज्ञाओं का वे असाधारण धैर्य और
 दृढ़ भक्तापूर्वक पालन करते थे । पूज्यभी जिन भावनाओं को अपना
 धर्म और कर्तव्य समझ स्वीकार करते थे उन्हें वे अपनी आत्मा में
 ऐकात्मभाव में परिणम कर सकते थे, इसके सिवाय वर्तमान साधु-सम्प-
 दाय में दुर्लभ और अनेक उच्च तथा साधु के शृंगार स्वरूपगुणों
 के धारक थे ।

ऐसे एक परम दुर्लभ गुणधारी साधु के देहांतरगमन से हम सब को सचमुच बड़ा भारी खेद है। सद्गति के अनुयायी समाज का यह कर्तव्य है कि वे पूज्य महाराज श्री के गुणों को अपने जीवन में चतारने का प्रयत्न करें और उन गुणों द्वारा उनकी स्मृतिकी संरक्षा करें।

ली० संतशिष्य,

भिक्षु नानचन्द्र.

जैन-हिस्सेच्छु ।

लेश से गोला का जल भी सूख जाता है यह कहावत तद्न मिथ्या नहीं है, जैन समाज का एक कोहिनूर अदृश्य हो गया है, इनके और इनके प्रतिपत्नी के दृष्टिबिंदु में कहां करक या तथा कौन कितने बरजे पर्यंत दोषी था, यह चर्चा मैं बिलकुल पसंद नहीं करता..... आज जब पूज्य महाराज देयांत नहीं है तब इतना ही अवश्य कहूंगा कि दूसरे श्रीलालजी पचास वर्ष में भी न होंगे इनमें और दूसरे साधुओं की पार्टी जमाने में मुख्यतः अग्रेसर ही दोषी थे ।

अब तो पूज्यश्री विदा होगए हैं और सम्प या द्वेष देख नहीं सकते हैं । अब चारित्र, गौरव और महत्ता थोड़े ही काल में अदृश्य होजायगी और इसका पाप सुलह के फरिश्तों के शिर दी प्रड़ेगा । श्रीलालजी महाराज के स्मारक बतौर एक बड़ा फंड कायम

में विलकुल निमग्न बन जाते थे । व्याख्यान से उठने की इच्छा
 को होती ही नहीं थी, कारण मधुरी शैली से जुलुम भावाज द्वारा
 श्रोताओं को सन्हालते रहते थे । उस समय यहां पंडितराज बहु-
 मूर्ती स्वर्गस्थ सहाराज भी उत्तमचंद्रजी स्वामी अपने समुदाय सहित
 बिराजते थे और वे भी व्याख्यान में हमेशा पधारते थे । उनके
 मुंह से तथा अन्य भावकों के मुंह से यह सब तारीफ मैंने सुनी है
 तथा उनकी याणी की महिमा तो मैंने कइयों के मुंह से सुनी है ।

बहुत से मनुष्यों ने उनको व्याख्यान सुने हैं उनके मैंने सुना
 है कि उनका प्रभाव अब भी श्रोताओं पर वैसा ही कायम है, ऐसी
 प्रभावोत्पादक शैली और श्रोताओं के मन पर छाप पा देने की शक्ति
 इस बात को सूचित करती है कि पूज्यभी जो कथन श्रोताओं के
 समक्ष प्रकाशित करते थे उसे वे अपने हृदय में सत्य के सदा
 स्वीकार करते थे और उस सत्य पर उनकी अचल भक्ता और दृढ़
 प्रीति के कारण ही वे श्रोताओं पर ऐसा उत्तम प्रभाव गिरा सकते थे ।

शास्त्रों में फरमाई हुई आज्ञाओं का वे असाधारण धैर्य और
 दृढ़ भक्तापूर्वक पालन करते थे । पूज्यभी जिन भावनाओं को अपना
 धर्म और कर्तव्य समझ स्वीकार करते थे उन्हें वे अपनी आत्मा में
 प्रेमात्मभाव में परिणमि सकते थे, इसके सिवाय वर्तमान साधु-सम्प्र-
 दाय में दुर्लभ और अनेक उच्च तथा साधु के शृंगार स्वरूपगुणों
 के धारक थे ।

समय है, व्याकरण, न्याय, तर्क के अभ्यास का शाक्त राजपूताने की ओर के श्रावकों एवं साधुओं की प्रकृति में न था। वहां सिर्फ निर्दोष चारित्र का शौक था। बुद्धि की लीलाएं चारों ओर पुजाने लगीं और इनमें से कितने ही साधु भी धीरे २ बुद्धि-वैभव की ओर झुकने लगे। पहले तो सब को यह अच्छा लगा। फिर चारित्र और बुद्धि में परस्पर युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध लम्बे समय तक टिकना चाहिये। दोनों एक दूसरे की तपल खा २ कर अन्त में चारित्र बुद्धि में और बुद्धि चारित्र में समा जायगी। अर्थात् बुद्धि और चारित्र से परे ऐसे “आध्यात्मिक भान” में दाखिल हो जायेंगे। हृदय और बुद्धि दोनों एक व्यक्ति के मालिक के समान तो भयंकर हैं परंतु व्यक्ति के साधन-दास के समान उपयोगी हैं। दयालु और विद्वान दुःखी हैं। परन्तु योगी कि जो हृदय और बुद्धि के राज्य में होकर उस सीमा को पार कर गया है वह एक सुखी महाराजा है कि जिसके दोनों तरफ हृदय, और बुद्धि हाथ जोड़ हुक्म की आज्ञा मांगती रहती हैं। इस स्थिति तक पहुंचने के लिये हृदय की मलवान् तरंगें और बुद्धि की चढ़ताई सहन करनी ही पड़ेगी।

वा. मो. शाह.

कर 'जैन गुरुकुल' या ऐसी एक कोई संस्था खोलना जिसका सम्मेलन बीकानेर में इस अंक के निकलने के पहिले ही होगा। मैं चाहता हूँ कि इन पवित्र पुरुष का नाम किसी भी संस्था या फंड के साथ न जोड़ा जाय। समाज की वर्तमान स्थिति देखते कोई संस्था कैसे चलेगी यह अन्दाज लगाना कठिन नहीं और जहाँ हजार तकलॉ होती ही रहेंगी, ऐसी संस्था के साथ इन शीत पवित्र पुरुष का नाम जोड़ने में भक्ति की अपेक्षा अहित होना ही अधिक संभव है। चारित्र के नमूनेदार दो महात्मा काठियावाड़ में जन्मे हुए भी गुनाधचन्द्रजी और राजभूतने में जन्मे हुए भी लालजी दोनों अद्वय होगए हैं। योंही दूसरे भी बहुत से मुनि हुए चारित्र्यी हैं, व्याकरण म्दाय के ज्ञाता भी हैं, परन्तु गुणाध और भीलाल ये दो पुरुष अनोखे ही थे। एक में सत्य के लिये क्रोध (Noble indignation) और दूसरे में आत्मगौरव में से स्वाभाविक उत्पन्न हुआ गुणाध मान दृष्टिगत होता था। परन्तु ये तो उनकी मूल्य बढ़ानेवाले सत्य थे। अधरास्त क्रोध और अधरास्त मान, ये ये विलकुल भिन्न वस्तुएं थीं। संनिय में और संघ के तानेबाने में, प्रशस्त क्रोध और प्रशस्त मान आवश्यक हैं और यह तो उनकी बज्जलता का समूत है।

इस अवसर पर एक आध्यात्मिक सत्य Mysticism का कारण स्फुरित हो जाता है। चारित्र और बुद्धि के सम्बंध का यह

आचार्य्य प्रवर, विद्वान्मण्डली के रत्न, समा के भूषण, दया के सागर, शांति के उपासक, धर्मप्रेमी, निर्भीक, स्पष्टवादी, रात्रिन्दिवा जैन-धर्म का प्रचार करने वाले परमपद प्राप्त पूज्य श्रीजालजी महाराज के आषाढ शुक्ला ३ शनिवार संवत् १९७७ जयतारण शहर राजपूताना में स्वर्गरोहण का समाचार सुनते हैं वब कलेजे के टुकड़े २ हो जाते हैं ।

आषाढ सुदी ३ शनिवार जैन-धर्म के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जायगा । जिस बात की कुछ भी सम्भावना न थी, वही आँखों के आगे घटित होगई । जिस घोर आपत्ति की आशंका मात्र से मन अत्रीर हो उठता है वह अंत में इस दुखिया जैन-समाज की आँखों के सामने आ ही गई । अनेक आशाओं पर पानी फेर कर नमाम स्थानकवासी ही नहीं लेकिन अनेकों जीवों को अथाह शोकसागर में निमग्नकर उस दिन निष्ठुर काल ने स्थानकवासी जैन-वाटिका में वज्रपात करके जिस प्रस्फुटित और दिगन्त तक सौरभ विकीर्ण करने वाले सुमन को उसकी गौरव-शालिनी लता की गोद में से उठा लिया । देखते २ बिना किसीके दिल में पहिले से इस बात का खयाल भी आये हुए और बिना किसी महान् कष्ट के ५१ वर्ष तक औदारिक शरीर की मॉपड़ी में रहकर अपने सुकृत मय जीवन में महाशुभकर्म वर्गणाओं का

जैनपथ-प्रदर्शक, आगरा ।

भीषण वज्रपात

जिस पै सब को दिमाग था हा ! न रहा ।

समाज का एक चिराग था हा ! न रहा ॥

आज चारों ओर से इस जैन-धर्म पर आपत्ति की घनघोर पहलवें धिरी देखकर जिस जैन-धर्म के प्रेमी को दुःख न होता होगा । जिस जैन-धर्म के मुख्योद्देश "अहिंसा परमो धर्मः" के कारण एक दिन सारे नभोमंडल में उसकी सूती बोलती थी, सर्वत्र उसी का प्रचार था, आज वही धर्म-हा शोक है कि उसी के अनुयायी उसका अनुकरण न करके उसको अयोग्यता में पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं ।

धर्म को हीनदशा से बचाने अर्थात् बिना शोक की सुरकी में नूतने वाली नौका को ऊपर उठाने के लिये, उसे पार करने के लिए ही साधु महात्माओं ने अद्भुत प्रयत्न किया, किंतु खेद है कि "अहिंसा परमो धर्मः" का प्रचारक जैन धर्म आज अपने साधुओं से भी वंचित होता जा रहा है । हा ! जब हम जैन-धर्म के स्थम्भ,

कि, जो उन्होंने जैन-धर्म की रक्षा, सेवा और अभिवृद्धि के लिये अपने प्यारे जीवन को तुच्छ वस्तु की तरह उत्सर्ग करने में समर्थ किया। स्वदेश, जाति और समाज की उन्नति एवं योगक्षेम के लिये जो भारी से भारी विपत्ति झेलने और जीवन में सम्पूर्ण सुखों को अनायास ही बलिदान करने को तैयार हुए। मृत्युशय्या पर बेवसी में पड़े हुए भी अपने प्राणप्रिय धर्म की हित कामना के उच्च विचार जिनके मस्तिष्क में घूमते रहे जो दीन दुखियों के अकारण बंधु थे, जिनके पतन पर एक ओर शोक की कालनिशा, दुःख की तरंगें तथा हृदय-विदारक हाहाकार ध्वनि और दूसरी तरफ समस्त नरनारी, बूढ़े बड़े और सर्व साधारण के मुंह से यशः-सौरभ का पटहनाद चारों ओर गूंज रहा है उनका देह और प्राण समयरूपी गड्ढर में चिरकाल के लिए लुप्त-जाने पर भी वे चिरजीवी हैं उनकी मृत्यु किसी प्रकार भी हो नहीं सकती। यमराज का शासन दण्ड उनकी विमल-कीर्ति की अभेद्य चट्टान से टकराकर कुंठित हो जाता है—टुकड़े २ होकर गिर जाता है। मनुष्य चतु से अगोचर रहने पर भी उनकी पूजनीय आत्मा विचरण बराबर करती रहती है। मरने के बाद भी उनका पवित्र और आदर्श जीवन उसपर मनन करने वालों के जीवन को पवित्र और उच्च करने का महान् उपकार करता रहता है।

आज शोकाकुल और निराधार समूह के मुंह से ऐसे वाक्य

बेधकर तेजस और कार्यण शरीर को लिये हुए किसी वैश्विय शुभ शरीर में दीर्घ काल के लिये स्थायी हो गए ।

एक तो योही जैन-धर्म पर आपत्ति की घनघोर घटाएं छारही हैं । लगभग एक माह ही हुआ होगा कि, अमी पंजाब प्रांत के लाहौर नगर में भीमान् अनेक गुणों के धारक जैन-मुनि भी शादीरामजी और दूसरे जैन-नवयुवक पंडित मुनि भी कालूरामजी महाराज का जो बियालफोट में स्वर्गवास हुआ उसको तो हम भूल भी न पाये थे कि, इतने ही में हम जैन-धर्म के प्रचारक कार्यकर्त्ता और उसके माननीय स्तम्भ का दुःखदायी एकाएक समाचार सुनते हैं तब हमें

“फलक तुने इतना हँसाया न था ।

कि जिसके बदले यों रुलाने लगा ।”

वाली लोकोक्ति याद आती है । हा ! जब हम मुनिवर श्रीशालजी महाराज के मिष्टभाषण की ओर ध्यान देते हैं और बिचार करते हैं कि, जिनका मिष्टभाषण जैन-धर्म के केवल स्थानक-वासी ही सुनकर प्रसन्न नहीं होते थे, परन्तु जिस मिष्टभाषण को सुनकर सब ही मधुरभाषण करने की प्रतिज्ञा करते थे, हा ! ध्यान न दें । पूज्यवर श्रीशालजी जिनका नाम सोने में सुगन्ध की कदापि चरितार्थ करता था नहीं है ! यदि रोप दें तो वह ही है

कि, जो उन्होंने जैन-धर्म की रक्षा, सेवा और अभिवृद्धि के लिये अपने प्यारे जीवन को तुच्छ वस्तु की तरह उत्सर्ग करने में समर्थ किया। स्वदेश, जाति और समाज की उन्नति एवं योगक्षेम के लिये जो भारी से भारी विपत्ति झेलने और जीवन में सम्पूर्ण सुखों को अनायास ही बलिदान करने को तैयार हुए। मृत्युशय्या पर बेवसी में पड़े हुए भी अपने प्राणप्रिय धर्म की हित कामना के उच्च विचार जिनके मस्तिष्क में घूमते रहे जो दीन दुखियों के अकारण बंधु थे, जिनके पतन पर एक ओर शोक की कालनिशा, दुःख की तरंगें तथा हृदय-विदारक हाहाकार ध्वनि और दूसरी तरफ समस्त नरनारी, बूढ़े बड़े और सर्व साधारण के मुंह से यशः-सौरभ का पटहनाद चारों ओर गूंज रहा है उनका देह और प्राण समयरूपी गड्ढर में चिरकाल के लिए छुप-जाने पर भी वे चिरजीवी हैं उनकी मृत्यु किसी प्रकार भी हो नहीं सकती। यमराज का शासन दण्ड उनकी निमल-कीर्ति की अभेद्य चट्टान से टकराकर कुंठित हो जाता है—टुकड़े २ होकर गिर जाता है। मनुष्य चक्षु से अगोचर रहने पर भी उनकी पूजनीय आत्मा विचरण वरावर करती रहती है। मरने के बाद भी उनका पवित्र और आदर्श जीवन उसपर मनन करने वालों के जीवन को पवित्र और उच्च करने का महान् उपकार करता रहता है।

आज शोकाकुल और निराधार समूह के मुंह से ऐसे वाक्य

जैसे-अवस्था करें, कुछ सूझता नहीं, ऐसे ही वाक्य निकल रहे हैं लेकिन यह कब तक के हैं ? पाठकगण ! ये तभी तक के हैं जब तक हम और आप अपने विषयरूपी कपायों को छोड़ हुए हैं क्योंकि, यह अनादि काल से नियम चला आया है कि, प्रायः २५ दिनों की अवधि में २ जीव अपने विषयरूपी कपायों में फँसकर शोक से शक्ति पाते हैं त्यों २ जीव अपने विषयरूपी कपायों में फँसकर शोक से शक्ति पाते जाते हैं । इसी प्रकार थोड़े समय के बाद आप भी उन पूज्य श्री की याद तक भी भूल जाओगे । थोड़ी देर के लिए यह हम मान भी लें कि, जिन्होंने पूज्य श्री को देखा है जिनको परिचय है वे कदाचित् न भी भूलें तो भी उनकी भावी संतान को तो नाम भी सुनना एक तरह से कठिन हो जायगा ऐसी अवस्था में हमारा और आपका कर्तव्य है कि, हम स्वर्गीय श्री श्री १००८ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का

सच्चा स्मारक

बनाने को हर प्रांत, देश, शहर और गांव में “श्रीलालजी फण्ड” की स्थापना करके स्मारक के लिये चेष्टा करें ।

जैन-धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो कृतव्रता के दोष से बचा हुआ है इसलिये आईये, भ्रातृगण ! हम अपने माननीय, पूजनीय जैन-धर्म के अनन्य भक्त, निःस्वार्थ-प्रेमी पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के स्मारक रूप में कोई संस्था बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करें । यों तो जैन-समाज में लाखों छोटी मोटी कितनी

ही संस्थाएँ हैं लेकिन हमारी राय में इस पवित्र आत्मा की एक ऐसी आदर्श संस्था होनी चाहिये जैसे वे आदर्श पूज्य, मुनि, आचार्य, प्रभावशाली और जैन-धर्म के स्तम्भ थे ।

आपका जन्म संवत् १६२६ में ग्राम टोंक (राजपूताना) में हुआ था । आपके पिता श्री का नाम चुन्निलालजी ओसवाल था । वे बड़े ही धर्मात्मा थे । आपने संवत् १६४४ माघसुदी ५ को दीक्षा ली थी । पश्चात् संवत् १६४७ में आपको पूज्यपदवी की प्रप्ति हुई । तब से आप अर्हनिश धर्म-चर्चा में ही अपना समय बिताने लगे व सदा अपने जीवनको धार्मिक-जीवन बनाने में ही लगे रहते थे । ऐसे महात्मा के असमय में उठजाने से जैन-धर्म को बड़ी हानि पहुंची है तथा शीघ्र ही इसकी पूर्ति होना भी असंभव है । इस समय में उनके शोक-प्रकाश में सभी जगह सभाएँ हो रही हैं । इसी वैशाख महीने में हम ने आपकी अजमेर में खूब सेवा की तब आपकी बासों से मालूम हुआ कि, जैन-पथ-प्रदर्शक पर आपकी विशेष कृपा थी आप इस पत्र को जैन-जाति को उठाने वाला समझते थे इनके शोक में प्रदर्शक का कार्यालय बराबर तीन दिन तक बंद रहा कार्यालय ने इस शोक संवाद को हर एक के कानों तक पहुंचाया हमने अपने भाईयों से आशा की थी कि, ज्योंही वे इस शोक समाचार को सुनेंगे अपने २ वहां शोक सभाएं करेंगे तथा एक बड़ी भारी सभा संगठित करके 'वे श्रीलाल जैन फण्ड' की स्थापना करेंगे ।

सुम्बई समाचार में से ।

(लेखक—भीयुत धुभीसांख नागजी बोरा, राजकोट) साम्प्रत समय में अशांति, अज्ञान और जीवन कष्ट का कष्ट माघ्राज्य जगत में सब तरफ फैला हुआ है। ऐसे समय में पूज्य महाराज श्री “रण-मां एक बेट समान” थे और संसार के विविध तापों से तप्त जीवों को सिर्फ यह एक ही दिशकी शांति और विश्वास मिलने का पवित्र स्थान था वह भी जैन कौम के हान भाग्य से नष्ट हो गया और जैन-धर्म तथा कौम को बड़ा भारी भया लगा तथा उनकी यह कमी बहुत समय तक पूर्ण होना कठिन है ।

हिन्दू के भिन्न २ भाग—पंजाब, राजपूताना, मारवाड़, मैवाड़, मालवा, कच्छ काठियावाड़, गुजरात, दक्षिण, आदि देशों के निवासी हजारों और लाखों जैनी पूज्य महाराज श्री पर अत्यंत पूज्य भाव रखते थे और तरुतारण रूप जहाज के समान वीतरागी बाधु के नमूने के तुल्य समझते थे। चौधे आरे की प्रसादी के समान भी महावीर स्वामी विचरते थे। उस सुखदाई समय के प्रसाद स्वरूप में पूज्य आचार्य श्री की गिनती होने से उनके शांतिमय सुखमंडल के दर्शनार्थ एवं महाप्रभावशाली दिव्यवाणी और जगत् में सर्वत्र-सुख और शांति फैलाने वाले पवित्र सद्बोधामृत के पान करने के लिये प्रतिवर्ष चातुर्मास में हिन्दू के समस्त भागों में से हजारों

जैन भाई एकत्रित हो इस दुःखद काल में दिव्य सुख की मांकी का लाभ प्राप्त कर अपने को कृतार्थ समझते थे। और दुःख तथा दिल के भार को कम कर सकते थे। यों पूज्य श्री के चातुर्मास वाला स्थल शांति और आनन्द ही आनन्द की जयध्वनि से गूँज उठता था।

पूज्य श्री की वाणी का इतना अधिक प्रबल और हृदयंगम प्रभाव था कि, स्वधर्मी, अन्यधर्मी हजारों लोग सब जगह उनके व्याख्यान का लाभ लेने को एकत्रित होते थे और उनका व्याख्यान जबतक होता रहता था तब तक इस दुःखमय संसार का भान ही भूल जाते और कोई दिव्यभूमि में बैठे हों ऐसी सबके मनपर परम सुख और शांति की प्रतिच्छाया छाई रहती थी और एकचित्त से उनका अलौकिक उपदेश श्रवण करने में समय का भान भी भूल जाते थे।

पूज्य श्री के दो मुख्य गुण, कि जिन गुणों द्वारा जैन-साधु या किसी भी पंथ या धर्म का त्यागी साधु अग्रेसर गिना जाता है वे थे, चैतन्य की स्वतंत्रता का सम्पूर्ण ज्ञान, और इस स्वतंत्रता के प्राप्त होने एवं विकसित होने के तदात्मक उपाय ये दोनों अलभ्य महान् गुण आचार्य श्री के समागम वाले श्री वीर मार्ग के ज्ञाता जो २ व्यक्ति हैं सबको मालूम हैं। जैन-साधु आत्मा में स्वगुण पैदा होने के लिए संयम ग्रहण करते हैं और वे इस

महाम् विघट कार्य को परिपूर्ण करने के लिए सतत परिश्रम करते हैं । कारण कि, आर्यमान्यता के अनुसार भी प्रत्येक जीवात्मा पद् रिपुओं द्वारा अनादिकाल से बंधा है और उनके साथ इसका अनिष्ट सम्बंध है तात्पर्य यह कि, स्वसत्ता को भूला हुआ जीवात्मा पुनः वही सत्ता प्राप्त करने के लिए मार्ग बदलता है और नये मार्ग पर चलने से पूर्वकाल के दूसरे अभ्यास के कारण अनेक व्याघात प्रतिघात उत्पन्न होते हैं । उन्हें हटाने के लिए सतत उद्योग की आवश्यकता प्रधानता से रहती है यह उद्योग और यह विचार पूज्य आचार्य भी में मुख्यतया और अनोखी रीति से भरा हुआ दृष्टिगत होता था । आधुनिक जैन और कई एक जैन-साधु लौकिक और लोकोत्तर धर्म की भिन्नता बिना समझे साधु और भावकों के आचार, व्यवहार और शिक्षा आदि कर्मों में आधुनिक समयानुसार हेरफेर करने की हिमायत करते हैं । उन्हें पूज्य भी ने एक दृष्टांत रूप होकर विश्वास दिलाया कि आत्मा को निज गुण की प्राप्ति में पर्व समय जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी, आजभी वन्हीं की आवश्यकता है और भविष्य में भी वन्हीं की रहेगी जिन्हें अपनी आत्मा का भान करने की तीव्र जिज्ञासा है और जिन्होंने इसीलिये संवम प्रदण किया है ऐसे महानुभाव और शान्ति पुरुष आज भी भी वारप्रभु की आज्ञानुसार राग द्वेष से विरक्त हो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवमात्रकी सच्चा

एकसी समस्त समस्त जीवोंपर समभाव रख स्वकार्य में तत्पर रहते हैं और धर्मान्ध न बन जैन और जैनेतर प्रत्येक जीव कर्मों से हलके हों ऐसा सोचकर उपदेश देते और अपने चारित्र्य को समुत्तम रख लोगों और जगत् पर महान उपकार करने के सिवाय स्वआत्मा के कल्याण करने में भी सम्पूर्ण आराधक होते हैं ऐसे ही उपकारी गुण पूज्यश्री में प्रधानता से थे । यही कारण है कि, पूज्यश्री जैन और जैनेतर वर्ग में अति माननीय और पूजनीय होगये थे ।

‘मा हणो, किसी जीव को मन, वचन और कर्म से दुःख मत दो, यह पूज्यश्री का अतिप्रिय और मुख्य उपदेश था । किसी जीव को तनिक भी दुःख होता देख या सुन वे मन में बड़े दुःखी होते थे और कभी २ उन्हें उनका वह दुःख सहन भी न हो सकता था ।

संवत् १६६७ के साल में पूज्यश्री काठियावाड़ में विचरते थे । उस समय वर्षा न होने से संवत् १६६७ में भयंकर दुष्काल पड़ा; दया और क्षमा की मूर्ति के समान आचार्य श्रीने जब देखा कि, हजारों विचारे प्राणी सिर्फ घास के बिना मरण की शरण में बजा रहे हैं तब उन्हें अत्यन्त दुःख पैदा हुआ । परिणाम यह हुआ कि, दुष्काल पीड़ित दुःखी जानवरों की रक्षा से संचित लाभ और पुण्यपर ऐसा सचोटे उपदेश शास्त्राधार से दिया कि, उसके प्रभाव

शोक !

शोक !!

महाशोक !!!

लेखक—श्रीमज्जैन-धर्मोपदेष्टा माधवमुनिजी महाराज

भीयुक्त श्रीलालभी को स्वर्गवास सुनते ही,
 जैन प्रजा एक साथ शोकाकुल हो गई ।
 है गई हमारी प्रति आर्चण्यन मांही मग्न,
 लिरुयो नहीं आय लेखनी हू दगा दै गई ॥

शांति छवि जाकी देखे संघमें सु शांति होसी,
 अहो ! मनमोहनी वो भूरति कितै गई ।
 रे ! रे ! कूट कुटिल करालकाल ! तेरी चाल,
 हाय ! हाय ! हाय रे ! कलेजा काट लै गई ॥ १ ॥

प्रबल प्रतापी पूज्य अतिशय अमितचारी,
 घोर ब्रह्मचारी उपकारी शिर सेहरो ।
 हुकममुनीश वंशभूषण “ विभूति लाल ”,
 सचपशम संयमादि सर्व गुण गेहरो ॥

विक्रमीय संवत् उचीसौ सिधर,
 आपाढ़ शुक्र तृतीया को पिछान आयु छेहरो ।
 औदारिक देह गद् गेह, ह्य जान हाय,
 जाय-जय तारण जाने धार्यो दिव्य देहरो ॥ २ ॥

ज्ञान जगत जाल इन्द्रजाल को सो ख्याल,
 जाने वालापन ही से मद मोह को हटायो है ।
 सरीश्वर हुकम वंश मांहीं अवतंश समो,
 जाको जश-वाद मत छहूँन में छाया है ॥
 दे दे उपदेश देश देशन में निशेष भांति,
 भव्यों के हृदय में सुबोध बीज बायो है ।
 स्वर्गीय जीवों की सुबोध देन काज राज जाय,
 जय-तारण जगतारण स्वर्ग सिधायो है ॥ ३ ॥

(स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का गुणगान)

लेखक-पंडित लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी रामपुरवाला.

श्रीलालजी महाराज पूज्य अवतारी ।
 हुए जैन जाति में सूर्य असिप्रत-धारी ॥ टेक ॥
 ये चुन्नीलालजी सेठ पिता के घर में ।
 थे हुए वहाँ उत्पन्न सु-टोंक नगर में ॥
 ज्ञान लगा हुए साधु थोड़ी उमर में ।
 पाठको ! हुए एक ही, जो भारत भर में ॥
 जब २ होती है हानि, धर्म की भारी ।
 तब २ लेते हैं जन्म, धर्मध्वज-धारी ॥

श्रीलालजी ॥१॥

से ओतवग में दया की उत्कृष्ट भावना उत्पन्न हुई और राजकोट छोटे शहर में एक ही दिन तीस हजार रुपये का फंड इकट्ठा मया कि, जिससे हजारों जानवरों को अभयदान मिला ।

इस समय यह बात खाम जानने योग्य है कि, संवत् १९६ में काठियावाड़ के बहुत से हिस्सों में पूज्य महाराज भी के उपदेश प्रभाव से जानवरों के रक्षार्थ कंठज केमर लुने थे और इस तरह लोगों का अधिक खयाल रहा, पूज्य आचार्य जी ने इस तरह जीवरक्ष का जो बीज बोया उसका विशेष फल संवत् १९६८ के साज १ पश्चात् के पड़े हुए दुष्कालों में काठियावाड़ के छोटे २ प्रांतों में भी जानवरों की रक्षा के लिये किये हुए प्रयत्न सबके दृष्टिगत हुए ही हैं ।

यों काठियावाड़ की भूमि को पूज्य भी के मंगलमय पद से धवित्र होने का ऐसा अलौकिक स्मरण चिन्ह प्राप्त हुआ है । एक प्रभावशाली व्यक्ति के उपदेश का यह कुछ कम प्रभाव नहीं कहा जा सकता ।

राजपुताना—मालवा इत्यादि में भी अनेक स्थानों पर गोरक्षा के लिये संस्थाएं और ज्ञानशालाएं मुख्यतः पूज्य भी के सद्बोध से ही प्रारंभ हुई हैं इसी तरह छोटी सादड़ी वाले मद्गत भीमान् मेठ नाथूनालजी गादावत ने रुपया सवासाठ की संज्ञावत् प्रकट कर एक जेनात्रम सुजाया है वह भी पूज्य भी के प्रभाव का ही फल है ।

पूज्य श्री चारित्र के एक उमदा से उमदा नमूने थे । उनकी शांतिमय मुखमुद्रा, दयामय हृदय, ज्ञानमय अलौकिक बख्शी और सत्यकथन के प्रभाव से अन्यधर्मी साक्षर लोग भी उन्हें पूजनीय समझते थे । राजकोट के चातुर्मास में श्रियुत न्हानालाल दत्तपतराम कवीश्वर और सद्गत अमृतलाल पड़ियार पूज्य श्री से पक्के परिचित थे और जब २ इन दोनों साक्षरों को प्रकट आम सभा में बोलने का समय मिलता तब २ आचार्य श्री के उत्तम चारित्र, ज्ञान और उपदेश की मुक्तकंठ से तारीफ़ किये बिना नहीं रह सकते थे । उनके कथन मुताबिक “ श्रीलालजी महाराज चारित्र के एक उमदा से उमदा नमूने हैं और इस कलिकाल में उनकी समानता करने वाला मिलना दुर्लभ है । ”

आचार्य श्री इसने अधिक प्रभावशाली, चरित्रवान् और ज्ञानी थे कि, प्रायः तमाम जैन मुनिराज उन्हें आचार्य के समान मान देते थे । अभी वर्तमान में उनकी संप्रदाय में ७२ साधु मुनिराज विचरते हैं । पूज्य श्री के निर्वाण के कारण युवराज मुनि श्री जवा-हिर लालजी महाराज अब आचार्य पद पाये हैं वे भी सर्वथा सुयोग्य हैं ।

स्थानकवासी जैन-समाज के ऐसे एक महान् पूज्य आचार्य श्री के निर्वाण से जैन कौम का एक अनमोल रत्न खो गया है ।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

लेखक—श्रीमज्जन-धर्मोपदेष्टा माधवमुनिजी महाराज

भीयुक्त श्रीलालभा को स्वर्गवास सुनते ही,

जैन प्रजा एक साथ शोकाकुल हो गई ।

है गई हमारी पति आर्चण्यन मांही मग्न,

लिख्यो नहीं जाय लेखनी इ दगा दै गई ॥

शांति छवि जाकी देखि संघमें सु शांति होसी,

अहो ! मनमोहनी वो मूरति कितै गई ।

रे ! रे ! मूर कुटिल करालकाल ! तेरो चाल,

हाय ! हाय ! हाय रे ! कलेजा काट लै गई ॥ १ ॥

प्रबल प्रतापी पूज्य अतिशय अमितधारी,

घोर ब्रह्मचारी उपकारी शिर सेहरो ।

हुकममृनीश वंशभूषण “ विभूति लाल ”,

सत्तपश्चम संयमादि सर्व गुण गेहरो ॥

चिक्रमीय संवत् उन्नीसौ सिचर,

आपाढ़ शुक्र वृतीया को पिछान आयु छेहरो ।

थौदारिक देह गद् गेह, हेंय जान हाय,

जाय-जय वारण जाने पायों दिव्य देहरो ॥ २ ॥

जान जगत जाल इन्द्रजाल को सो खयाल,
 जाने वालापन ही से मद मोह को हटायो है ।
 सरीश्वर हुकम वंश मांहि अवतंश समो,
 जाको जश-वाद मत छहंन में छाया है ॥
 दे दे उपदेश देश देशन में विशेष भांति,
 भव्यों के हृदय में सुबोध बीज बायो है ।
 स्वर्गीय जीवों की सुबोध देन काज राज जाय,
 जय-तारण जगतारण स्वर्ग सिधायो है ॥ ३ ॥

(स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का गुणगान)

लेखक-पंडित लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी रामपुरावाला.

श्रीलालजी महाराज पूज्य अवतारी ।
 हुए जैन जाति में सूर्य असित्रत-धारी ॥ टेक ॥
 ये चुन्नीलालजी सेठ पिता के घर में ।
 थं हुए वहां उत्पन्न सु-टोंक नगर में ॥
 ज्ञान लगा हुए साधु थोड़ी उमर में ।
 पाठको ! हुए एक ही, जो भारत भर में ॥
 जब २ होती है हानि, धर्म की भारी ।
 तब २ लेते हैं जन्म, धर्मध्वज-धारी ॥

श्रीलालजी ॥१॥

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

लेखक—श्रीमज्जन-धर्मोपदेष्टा माधवमुनिजी महाराज.

श्रीयुक्त श्रीलालजी को स्वर्गवास सुनते ही,
 जैन प्रजा एक साथ शोकाकुल हो गई ।
 है गई हमारी मति आर्चध्यान मांही मग्न,
 लिख्यो नहीं जाय लेखनी हू दगा दैगई ॥

शांति छवि जाकी देखि संघमें सु शांति होसी,
 अहो ! मनमोहनी वो मूरति किती गई ।
 रे ! रे ! क्रूर कुटिल करालकाल ! तेरी चाल,
 हाय ! हाय ! हाय रे ! कलेजा काट लैगई ॥ १ ॥

प्रबल प्रतापी पूज्य अतिशय अमितचारी,
 घोर ब्रह्मचारी उपकारी शिर सेहरो ।
 हुकममुनीश वंशभूषण “ विभूति लाल ”,
 सचपशम संयमादि सर्व गुण गेहरो ॥

विक्रमीय संवत् उन्नीसौ सिचर,
 आपाद् शुक्र तृतीया को पिछान आयु छेहरो ।
 भौदारिक देह गद् गेह, हेय जान हाय,
 जाय-जय तारण जाने पायों दिव्य देहरो ॥ २ ॥

प्रेषित पत्र

(लेखक—श्री पोपटलाल केवलचंद शाह)

परम पूज्य गच्छाधिपति महामुनि श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज साहिब के स्वर्गवास के समाचार शोकजनक हृदय से सुने । जैन-संसार व्यवहार की अपेक्षा से जैन-समाज में इनके स्वर्गवास से भारी-जिसकी पूर्ति न हो सके-ऐसी त्रुटि पैदा हो गई यह बहुत बुरा हुआ । जैन साधु-समाज की अपेक्षा से भी उनकी बड़ी भारी कमी हुई जिसकी अभी जल्दी पूर्ति नहीं हो सकती ।

साधु समाज के तो ये नेता, शास्त्रसिद्धांत के पारगामी, वीतराग की आज्ञा का सब साधुओं से पालन कराने वाले, पूर्ण प्रेमी, शासन की रक्षा करने में अडिग, साधु-मंडल में तनिक भी अपवित्रता दाखल न हो जाय ऐसा प्रत्येक पल २ पर देखने वाले, पवित्रता के पालक और समस्त दिन स्वाध्याय में लीन रहने वाले एक महात्मा थे । इनकी खामा तो साधु-समाज को पग २ पर प्रकट होगी ।

जैन-समाज में समय को देख उनके जैसा असरकारक, सचोट, शास्त्र, सिद्धान्त तथा नियमवद्ध एतलन्त उपदेश देने वाले महापुरुष महात्मा विरले ही होंगे और इसलिये जैन-समाज के संसार व्यव-

जहाँ २ किया विहार गाम शहरों में ।
 इन दिया बहुत ही ज्ञान सु-नारी नरों में ॥
 था वपों का जो काम किया पहरों में ।
 शुभ दया धर्म का घोष किया व घरों में ॥
 बहु आश्रम शाला खुला किया हित भारी ।
 नित मिलता विद्या-दान जहाँ शुभकारी ॥
 श्रीलालजी ॥ २ ॥
 जो सज्जन देते परहित तन मन धन हैं ।
 जीवन है साफल्य उन्हीं को धन है ॥
 वे करें सदा उपकार-और ईश भजन हैं ।
 सब छोड़ प्रभूपद-पद्म लगावें लगन हैं ॥
 रहते हैं निश्चय जग में वही सुखारी ।
 नभ फैले कीर्ति, रहे नाम जग—जारी ॥
 श्रीलालजी ॥ ३ ॥
 हा ! अधम कालने उठा उन्हीं को लीना ।
 सब जैन जनेतर जनको शोकित कीना ॥
 हैं पशु, पक्षी, प्राणी भी सभी मलीना ।
 हा ! हा ! नृशंस हे काल ! दारुण दुःख दीना ।
 “ चौबे लक्ष्मीनारायण ” हुआ दुखारी ॥
 हे करे विनय प्रभु, शांति मिले शुभकारी ।
 श्रीलालजी ॥ ४ ॥

को पुष्ट करने वाली कई बातें, कविताएं और कहावतें चाहे जिस धर्म की हों उसे याद रख व्याख्यान में कहते और सब श्रोतृ-समुदाय को आनंदित करते थे ।

एक कवि की भाषा में कहूं तो अहिंसा इनके जीवन का मुख्य मंत्र था और यह उनके जीवन में ताने, बाने, की तरह फैल गया था, सत्य उनका मुद्रालेख था, तप उनका कवच था, ब्रह्मचर्य उनका सर्वस्व था, सहिष्णुता उनकी त्वचा थी, उत्साह जिनका ध्वज था, अखूट क्षमा-बल जिनके हृदय पात्र या कमंडल में भरा था, सनातन योगी कुल का यह योग मालिक था, राग द्वेष के भ्रंशानल से यह अलग था, गेरे तेरे के ममत्व-भाव से परे था, सब जीव क कल्याण का यह इच्छुक था, इतना ही नहीं, परन्तु सबके कल्याण के उपदेश में वह सदा नरकूल था ऐसा जैन भारत का एक वर्तमान महान् धर्म गुरु धर्माचार्य शासन का शृंगार, परोपकारी समर्थ वक्ता, समर्थ क्रियापात्र, कर्तव्यनिष्ठ गच्छाविपति ५१ वर्ष की अपरिपक्व वय में कालधर्म वश हमने एक अनुपम अमूल्य आचार्य खोया है ।

राजकोट और काठियावाड़ में उन्होंने जगह २ जीव-दया की जय घोषणा उच्च स्वर से अवरकारक रीति से की थी । अडसठिये दुष्काल की अपेक्षा छप्पनिया दुष्काल अधिक विषम था, तोभी छप्पनिया में जीव-रक्षा या गो-रक्षा के लिए जो हुआ था उससे

हार को घर्मे की दृष्टि से सुधारने को तत्पर उन जैसे संत महंत की जैन-समाज को बड़ी भारी खामी हुई है। मैंने कई साधु साध्वीओं के दर्शन एवम् सत्संग का लाभ लिया है परंतु ऐसे एक ही संत महंत मैंने अपनी तमाम उम्र में भी न देखे कि जिनका प्रताप, जिनकी वाणी, जिनकी शासन रक्षा, जिनका उपदेश, जिनका तप, तेज, जिनका आर्तक, जिनका उद्योग, जिनका उत्साह ये सब एक साथ दूसरों में भाग्य से ही होंगे। बेराक, कई साधु साध्वी जो उत्तम पूज्य हैं, बंदनीय हैं, परोपकारी हैं परन्तु मुझे पस्यवाती कहो वा अनन्य भक्त कहो, जो कहना हो सो कहो, परन्तु मेरा और मैं जिन जैनों को या जैनतरों को प्रामाणिक और परीक्षक समझता हूं उनका हृदय तो उन्हें सब साधुओं में श्रेष्ठ समझता था।

राजकोट में उन पर जैन और जैनतर सबका ऐसा उत्तम भाव रहा कि, उनके स्वर्गवास से उन पर प्रेम प्रकट करने के लिये सिर्फ जैनों ही की नहीं, परन्तु एक आम सभा मुलाकर खेद प्रकट किया और हिंदू मुमंजमान ज्योपारियों ने इनके मान में ज्योपार बंद रख पर्व पक्ष एक दिन अपने २ धर्मस्थान में बिताया।

परमपूज्य सद्गत आचार्य महाराज श्रीकालजी महाराज साहिब समभावशील और गुणानुरागी थे, यथा सब मतों में जो खया हो उस सत्य के पक्षपाती थे। जैन-धर्म में कथित जीवदया

शोकोद्गार ।

(राग सोरठा) -

अमृत भीनी चाण, सांभलता सुधर्या चणा,
 वण मूलुं व्याख्यान, भुगशुं क्यां श्रीलालजी ॥ १ ॥
 प्राणी-रक्षण काज, अमर पडों वजड़ावता,
 करी शके नवराज, करनारा श्रीलालजी ॥ २ ॥
 अडसठ साल कराल, छतां जणायो नहि जरा,
 थयो न वांको बाल, प्रताप ए श्रीलालजी ॥ ३ ॥
 आप गुणोनी खाण, अल्प प्राण शुं कही शके,
 अमने मोटी हाण, जगमां विण श्रीलालजी ॥ ४ ॥
 संयपना परिणाम, आप स्वर्गमां शोभता,
 मरजीवा तम नाम, विसरो कयम श्रीलालजी ॥ ५ ॥
 सदैव ल्यो संभाल, अवध ज्ञान उपयोगथी,
 गणी भूलणां बाल, अरज एज श्रीलालजी ॥ ६ ॥
 कइक कसाई खास, लाखो जीव विदारता,
 कर्या दयाना दास सांभरशो श्रीलालजी ॥ ७ ॥
 राजकोट पर प्यार, पूरो राख्यो प्रथम थी,
 गुण रसना भंडार, सत्यगुरु श्रीलालजी ॥ ८ ॥

श्री प्राणजीवन मोरारजी शाह-राजकोट..

अनेक गुना कार्य अठसठिया में हुआ अठसठिया दुष्काल में किये गये दया के कार्य पशु-रक्षा, गो-रक्षा, मनुष्य-रक्षा, इत्यादि कैसी सुन्दरता से हुए थे, एवम् धर्म-श्रद्धालु परोपकारी पुरुषों ने इस कार्य को पार लगाने में कैसा सरस वत्साह दिखाया था तथा राजकोट ने इस विषय पर समस्त काठियावाड़ को जो नमूना दिखाया था यह सब सोचते २ इन स्वर्गवासी-इन देवगतिपाये हुए महारथों का उपकार तनिक भी नहीं भूल सकते और इस काठियावाड़ में जहाँ २ पूज्य श्री के स्वर्गवास के समाचार मिलेंगे वहाँ २ उनके परिचितों को पारावार शोक होगा ।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम धर्म का अखंड पालन, हृदय की विरालता इन सबका जब हृदय हिसाब करता है तब उनकी जैन-समाज में कितनी बड़ी भारी कमी हुई है समझा जा सकता है । हृदय में आसू निकल पड़ते हैं और साधुलोचन से कलम अभिन्न कम्पित होती है, गद्गद-कंठ से आज इतना ही लिखता हूँ ।



शोकोद्गार ।

(राग सौरठा) :-

अमृत भीनी वाण, सोंभलता सुधर्या वणा,
 वण मूलुं व्याख्यान, सुगुणुं क्यां श्रीलालजी ॥ १ ॥
 प्राणी-रक्षण काज, अमर पडों वजड़ावता,
 करी शके नवराज, करनारा श्रीलालजी ॥ २ ॥
 अडसठ साल कराल, छतां जणायो नहि जरा,
 थयो न वांको वाल, प्रताप ए श्रीलालजी ॥ ३ ॥
 आप गुणोनी खाण, अल्प प्राण शुं कही शके,
 अमने मोटी हाण, जगमां विण श्रीलालजी ॥ ४ ॥
 संयमना परिणाम, आप स्वर्गमां शोभता,
 मरजीवा तम नाम, विसरो कयम श्रीलालजी ॥ ५ ॥
 सदैव ल्यो संभाल, अबध ज्ञान उपयोगथी,
 गणी भूलणां बाल, अरज एज श्रीलालजी ॥ ६ ॥
 कइक कसाई खास, लाखो जीव विदारता,
 कर्या दयाना दास सांभरशो श्रीलालजी ॥ ७ ॥
 राजकोट पर प्यार, पूरो राख्यो प्रथम थी,
 गुण रसना भंडार, सत्यगुरु श्रीलालजी ॥ ८ ॥

श्री प्राणजीवन मोरारजी शाह-राजकोट.

अध्याय ५३ वाँ ।

संन्वा—स्मारक ।

महियर नरेश को धन्यवाद ।

संख्याबंध प्राणियों को अभयदान ।

भेष्ट समुदाय और शुद्धाचारित्र यही पूज्यर्था का संन्वा स्मारक है । इस शुद्ध-चारित्र को निभाने की शक्ति उत्पन्न करना यह मुनि-राजों की और चारित्र पालने की सरलता का रक्षण करना भावकों की कृतज्ञता है । उनके उपदेश को याद रख इसी मुआफिक वर्णन करना यह उनका उत्तमोत्तम स्मारक है ।

जीव-दया की बर्कती में उन्होंने अपनी जिन्दगी का हृदय भाग अर्पण किया है । उनके स्मरणार्थ उनके स्वर्गवास के पश्चात् जल्दी ही जीव-दया का एक महान् कार्य हुआ और कायम की हिंसा बची । उस सम्बन्ध में 'जीव-दया' मासिक का निम्नोक्त लेख यहां देते हैं ।

वरिणोऽपि हि मुच्यन्ते, प्राणान्ते तृणभक्षणात् ।
तृणादाराः सदैवते, हन्यन्ते पशवः कथम् ॥ १ ॥

हमारे देशके रक्तक सचमुच ये पशु हैं,
 हमारे देशकी दौलत सचमुच ये पशु हैं,
 हमारा बल और बुद्धि सब कुछ ये पशु हैं,
 हमारी उन्नति का सुदृढ़ पाया ये पशु है.

“All are murderers-the man who advise the killing of a creature, the man who kills, the man who plays, the man who purchases, the man who sells, the man who cooks (the flesh) the man who distributes and the man who eats.”
 —Manu

पशु भारत का धन है, प्रभु की विभूति है और अपने लघु बांधव हैं। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, और आरोग्यशास्त्र, की दृष्टि से पशुवध करना यह अत्यंत हानिकर और महा अनर्थकारी है। प्रत्येक धर्मप्रवर्तक ने पशुवध का—प्राणीमात्र की हिंसा का निषेध किया है। अहिंसा, दया यह मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है हिन्दुओं के पांच यम, बौद्धों के पांच महाशील, जैनों के पांच महाव्रत इन सब में अहिंसा धर्म ही प्रधान पद पर आरुढ़ है।

पञ्चैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्म चारिणाम् ।
 अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुन वर्जनम् ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, त्याग और मैथुन वर्जन इन पांचों के प्रत्येक धर्म वालों ने पवित्र माने हैं इसके सिवाय

“अहिंसा परमोधर्मः” “माहिंस्यात् सर्वाभूतानि”

“आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति”

इत्यादि अनेक मनन योग्य वाक्य हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्थल स्थल दृष्टिगत होते हैं तो भी अफसोस की बात है, कि आर्यावर्त में ऐसा एक वर्ग प्रस्तुत है जो हिंसा के कृत्यों में ही धर्म मानता है—धर्म के लिये हिंसा करवा है जो अत्यंत निर्दयी एवं भयंकर है । काली, महाकाली दुर्गा, जगद्धात्री, बह्वरा, शारदा, आदि देवियों के उपासक अपनी अभिष्टात्री देवी को पशुओं के रुधिर की प्यासी महाविकाल और क्रूर हृदय की कल्पने हैं और उसकी कृपा सम्पादन करने के लिये उसे पादे, बकरे, इत्यादि निर्दोष पशुओं का बलिदान कर भेंट चढ़ाते हैं । यह प्रवृत्ति सिर्फ अज्ञानजन्य है । मांसलोलुप, स्वार्थान्ध, लेभगू आचार्य कि जिनके हृदय में दया का लहरा भी था, धर्म ग्रन्थों में कितनी ही कल्पित बातें घुसादी और लोगों के नेत्रों पर पट्टा बांध उन्हें केवल उलटे मार्ग पर चला दिया । इसतरह अपनी दुष्ट वासनाओं को नृप करने बोरते तथा अपने पर पूज्यभाव कायम रखने वास्ते उन्होंने धर्मशास्त्रों से और साधारण ज्ञान से भी प्रतिभूत इस प्रकार पापमय प्रवृत्ति को भी धर्म का कार्य ठहराया है । उनकी प्रपंच जाल में फँसे हुए भोले अज्ञाना लोग उनका भी विचार नहीं

करते कि इन कार्यों से देव देवी तुष्ट होंगे या रुष्ट होंगे ? उनकी ही गान्धितानुसार देवी जगज्जननी है समस्त जगत् की अर्थात् प्राणीमात्र की वह माता है इस हिसाब से मनुष्य मात्र उसके ज्येष्ठ पुत्र हैं और पशु उसके कनिष्ठ पुत्र हैं । माताओं का प्रेम हमेशा छोटे बच्चों पर अधिक रहता है यह स्वाभाविक है । माताको रिक्ताने के वास्ते उस के ही छोटे २ बच्चों के गले उसके समस्त छेद डालना यह कितना बेहूदा और मूर्खता पूर्ण क्रूर कर्म है ? इससे जो माताएं प्रसन्न होती हों तो वे माताएं ही नहीं हैं । देव देवियों को राजी करने के लिये बलिदान देना ही हो तो अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु का देना चाहिये । स्वार्थी उपासक इष्ट वस्तुओं का वियोग सहन नहीं कर सकते, इसलिए निरपराधी पशुओं पर दृष्टि डालते हैं । देव-देवी तो भिन्न वासना के भूखे हैं । तुम्हारी उनपर कैसी भावनाएं हैं यह योजना तुम्हारी कसोटी की है जो तुम रखते हो वे तो उसे लेते ही नहीं, उनकी अर्मादृष्टि से यह पावन होगया ऐसा समझ उसे तुम वापिस लेलेते हो, जठर उपासक, स्वार्थी पुजारियों ने मुफ्त के माल में मांसाहार प्राप्त करने की यह युक्ति ढूंढ निकाली और धर्म के नामपर भोले भारत को ठगना प्रारंभ किया ।

जबतक सत्य न समझा जाय तबतक ही लोग ठगे जाते हैं, सत्य रहस्य समझने के साथ ही लोग अपनी भूल से होते हुए अनर्थ

समझने लगे । देवी का साम्राज्य समस्त दुनियां में है, दुनियां के समस्त देशों की अपेक्षा भारत अधिक अधम दशा को प्राप्त होगया है । उसका कारण भी सोचने योग्य है पशुओं के बलिदान से देव प्रसन्न होते तो भारत की ऐसी दुर्दशा कभी न होती । सेग का प्रकोप, नानातरह के रोगों का उपद्रव, बड़े से बड़ा मृत्यु प्रमाण, दुष्काल पर दुष्काल पराधीनता, दरिद्रता आदि दुःखों का वरसाद, व्यर्थ पापमय प्रवृत्ति से क्रुपित हुए देव देवी ही क्यों न बरसाते हों "जैसे बाँवे जैसे लुने और करे वैसा मोगे अन्य को सुख देने से सुख और दुख देने से दुःख प्राप्त हो यह त्रिकाल से बंधा हुआ सनातन सत्य है अन्य के अनिष्ट द्वारा अपना इष्ट साधने की आशा रखना यह प्राकृतिक कानून से विरुद्ध है ।

“मा हिस्यात् सर्वा भूतानि” किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो यह महावाक्य याद रखकर ही उसके सस्वगुण सम्पन्न पुरुषों ने देवी पूजा इत्यादि कार्य करने चाहिए, परन्तु यह पूजा ऐसी न होनी चाहिए कि जिसमें दूसरे निर्दोष प्राणियों का संहार किया जाय । कदाचित कोई ऐसा कहे कि दुर्गा सप्तशती में पशु ‘पुष्पैश्च गंधैश्च’ पशु पुष्प और सुगंधित पदार्थों से देवी की पूजा करना कहा है तो उसका अर्थ क्या है ? जिसका उत्तर यही है कि जिसतरह पुष्प की पूजा, पुष्पों को पूरे २ चढ़ाकर की जाती है वसीतरह पशुओं से पूजा करनी हो तो पशुओं को माता के सामने लाकर

ऐसी प्रार्थना कर छोड़ देना चाहिए कि हे जगदम्भे ! आपके दर्शन से पवित्र हुआ यह बकरा भा निर्भय होकर विचरे अर्थात् कोई भी मांसाहारी उसका वध न करे, ऐसा संकल्प कर उस बकरे को छोड़ देना चाहिए जिससे पुण्य हो, सचमुच में पूजा की यही विधि है यह पद्धति कई स्थानों पर प्रचलित है और बकरे के कान में फड़ी पहना कर उसे निर्भय 'अमरा' किया जाता है उपदेशकों ने धर्मोपदेश द्वारा और राजाओं ने राज्य सत्ता द्वारा इस स्तव विधि का प्रचार करना चाहिए ।

जमाना ज्यों २ आगे बढ़ता जाता है त्यों २ ऐसे घातकी रुन्देह भी कम होते जाते हैं । किन्तु ही दयालु और धर्मनिष्ठ राजाओं ने अपने राज्य में इसतरह होते हुए पशुवध को देशकी अवनति का और कालेरा लेग इत्यादि रोगों की उत्पत्ति का कारण समझ राज्य-सत्ता से उसे बंध कर दिया है यह अत्यंत संतोष की बात है ।

अभी ही महियर राज्य के नामदार नरेश ने जिस पुण्यमय प्रवृत्ति द्वारा प्रतिवर्ष हजारों जीवों का वध होता हुआ बंद कराने का प्रशंसनीय कार्य किया है उसे सुन दयालु मनुष्यों के हृदय आनंद से लहराये बिना नहीं रह सकते ।

महियर यह तुंदेलखंड का एक देशी राज्य है । वहां अति प्राचीन समय से एक उच्च टेकरी पर शारदा देवी का स्थान है । इस ओर की

रियाया में से अधिकांश रियाया इस देवी की उपासक है । और देवी को प्रसन्न करने के लिये पुत्रादिक की प्राप्ति अथवा अन्य इच्छा की सिद्धि के लिये देवी को भेंटों बकरों का बलिदान देने की कुप्रथा बहुत समय से वहाँ प्रचलित थी । इसलिये वहाँ प्रतिवर्ष हजारों भेंटों बकरों का बलिदान दिया जाता था । चैत्र माह में वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है आर बहेसी, अज्ञानी, मूर्ख लोग नारियल की तरह पशुओं को माताजी पर चढ़ाते हैं । यह निंद्य प्रथा क्यों और किसतरह बंद की गई जिसका संक्षिप्त वृत्तांत वाचकों को आनंदित करेगा ।

जैनाचार्य भीलालजी महाराज कि जिनके सदुपदेश से लाखों जीवों को अभयदान मिला था और कई राजा महाराजाओंने अपने राज्य में धर्म निमित्त डोली हुई पशुहिंसा और शिकार इत्यादि बंद कराया था, उनका स्वर्गवास गत अपाद शुक्ला ३ को जेतारण मुकाम पर हो जाने के दुःखद समाचार इस लेखक को मोरबी मुकाम पर मिलने में उनके उपर पृथग्भाव और प्रशस्तराग के कारण से हृदय को बड़ा भारी आपात पहुँचा, परंतु धर्म क्रिया में प्रवृत्त हो संसार की अमारता और देह की क्षणभंगुरता का विचार आते ही अंतरात्मा की ओर से ऐसी प्रेरणा हुई कि गुरु भी के स्मारक के उपनक्ष में कुछ शुभ प्रवृत्ति करना उचित है । परंतु क्या करना इसका निर्णय न हो सका । मन अनेक तक विचर्च करता

रहा । विचार ही विचार में समस्त रात बीतगई दूसरे दिन वह-
वाण में मेरे एक मित्र श्रीयुत भगवानदास नाराणजी बोरा तरफ से
एक पत्र मिला जिसका सांगंश यह था कि:—

“महियर स्टेट में प्रतिवर्ष देवी को भोग देने के लिये हजारों
चकरो का बंध होता है । उसे बन्द कराने वास्ते प्रयत्न करना
आवश्यक है और रु० १५००० वहां होस्पिटल का मकान बंधाने
वास्ते देवी को अर्पण किया जाय तो बंध जल्द ही बंध हो जाय ।”

इस पत्र ने मुझे कर्तव्य पथ सुझाया । सद्गत गुरुवर्य की अदृश्य
प्रेरणा का ही यह फल हो ऐसा मुझे दृढ विश्वास हो गया और
इस कार्य को पार लगाने वास्ते मैंने दृढ़ संकल्प किया ।

महियर स्टेट के दिवान साहिब श्रीयुत हरिलाल उर्फ सारा-
भाई गणेशजी अंजारिया बी० ए० राजकोट के खानदान कुटुम्ब
के एक बड़नगरा नागर गृहस्थ है । उनके साथ पत्र व्यवहार
प्रारम्भ किया । और रु० १५००० के लिये मुम्बई स्थानकवासी
जैन संघ के अग्रेसर कच्छ माँडवी के रहिवासी शेठ मेघजी भाई
धोभणभाई तथा उनके भाणोज शांतिदास आसकरण जे० पी० से
वचन लिया । पश्चात् हम मुम्बई से (मैं और मेरे मित्र श्रीयुत
बोरा) महियर गये । वहां दिवान साहब की मुलाकात से हमें
अत्यन्त आनन्द हुआ और हमारा मनोरथ सफल होगा

ऐसा विश्वास हो गया । शारदा देवी के दर्शन करने की हमने इच्छा दर्शाई । दिवान साहेब भी हमारे साथ आये, संख्याबन्ध सीधे पंक्तियों चढ़ कर हम देवी के स्थान पहुँचे प्रथम दिन ही करीब तीस पैंतीस बकरे काटे गये थे जिस से वहाँ लोही का कुँवा भरा हुआ था, वह दृश्य हृदय को कम्पा देने वाला था । दीवान साहेब के दयार्थ अंतःकरणों भी इस क्रूर पथा से असह्य दुःख होता था फिर हम नामदार महाराजासाहिब से मिले, उनका मिलन सार स्वभाव विद्वत्ता, और धर्म पर भ्रष्टा इन सब से हमें अत्यन्त आनंद हुआ । हमने अत्यन्त नम्रता से देव देवी की बली देने वास्ते राज्य के प्रतिवर्ष हजारों निरपराध पशुओं के प्राण लूटे जाते हैं उन्हें बंद कर देने की प्रार्थना की और इस के बरत यत्किञ्चित् स्मारक के बतौर महियर के हार्सिफटिल के लिये एक मकान बंधा देने वास्ते रुपया (५०००) अर्पण करने की विनम्र की हमारी प्रार्थना का दयालु महाराज साहिब ने कितनी ही स्त्रीलों के बार स्वीकृति की और हार्सिफटिल के मकान पर शेर मेघजभाई तथा शातिदास के नागका शिलालेख रखने की परवानगी दी और आ-क्षा पत्र निकाल कर समस्त राज के समाम भंदिरों में हमेशा के लिये देवियों को बलिदान दखे बाबद पशुबध करने की विलकुल गनाई कर दी। इस आशापत्र की नकलें हिंदके समाम राज्यों में भेजी गई और प्रसिद्ध पेपरो में भी प्रकट की गई ।

नामदार महाराजा साहेब ने इस महान पुण्यकार्य से अपनी कीर्ति अमर करदी और कई भोले लोगों को घोर पाप के कार्यकी खानि में गिरने से बचाये तथा संख्याबन्ध मनुष्यों को नर्क के अधिकारी होने से रोक अपने लिये स्वर्ग के द्वार खोलदिये हैं विद्या और सत्ता का सदुपयोग कर अपना जीवन सार्थक किया है भारतवर्ष के अहिंसा धर्म के उपासकों के मन उनों ने इस शुभ प्रवृत्ति से जीत लिये हैं, हिन्द के प्रत्येक भागों में से हजारों सुवारक बाही के तार उन के पास जा गिरे हैं वहां के दिवान साहेब ने भी इस प्रवृत्ति के प्रेरक बन महान पुण्य प्राप्त किया है ।

सेठ मेघजी भई तथा सेठ शांतिदास ने अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय कर अलभ्य लाभ उठाया है, उनकी उदारता परम श्रेयका कारण भूत हूई पंद्रह कोटि रुपये खर्चने से भी जो लाभ प्राप्त न हो सके वह लाभ उन्हें रु० १५०००) से प्राप्त होगया, सात हजार बकरों को सिर्फ एक ही समय अभय दान देनेमें रु० ३५००० खर्च होते हैं उस के बदले रु० १५०००) में हमेशा के लिये प्रतिवर्ष होते हजारों पशुओं का बध बंद होगया यह लाभ कुछ कम नहीं है फिर इन १५००० रुपयों से दवाखाने का मकान बांधाजायगा जिस से हजारों दुःखी दर्दी की आशिय भी-इज्जत पर वरसती रहेगी द्रव्य का शुभ से शुभ उपयोग इसी को कहते हैं ।

हासिपेंडल की नवि का मुहूर्त वा १३ १० २० के रोज सुंदेलखंड के पोलिटिकल एजन्ट के हाथ से होगया और मकान बनना भी प्रारंभ है स्टेट तरफ से अधिक रकम देकर मकान बसा बनाना निश्चित हुआ है हासिपेंडल का खर्च भी राज्य से होगा ।

अंत में हम चाहते हैं कि इस सत्य प्रवृत्ति का सर्वत्र अनुकरण हो और पवित्र आर्यावर्त में से पशुबध बंद होजाय तथा पुण्य भारत भूमि अपना पूर्वसा गौरव पुनः प्राप्त करे ।

इस अवसर की खुरां में श्री मोरबी हाइ स्कूल के शास्त्रीजी प्रियुत पुरुषोत्तम हुवेरजी शुक्ल की ओर से निम्नांकित काव्य प्राप्त हुआ है ।

शार्दूल विक्रीडितं वृत्तम् ।

यत्साध्यं न भवेत् कदापि बहुलैः निष्कव्यैः कोटिभिः ।

वर्षाणामपुतेन नापि सुलभं यत्तत्र वदध्रमैः ॥

यस्मिन्नेव विजयं न याति सततं संख्याति तादाहिनी ।

तन्कार्यं सुमहात्मनां कव्यया स्वल्पश्रमात् सिध्यति ॥१॥

राज्ये यन्गाहियारके चलिवधौ भांशारदाम्बाकृते ।

प्राचीनः पशुतावधः कुत्रिधिना यः क्रियमाणोऽभवत् ॥


श्रीश्रीलालत्रि सद्गुरोर्गुणनिधेः स्मृत्यर्थमेवाधुना ।

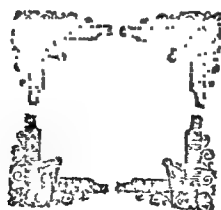
द्वोदुर्लभ शोधनेन कृपया धर्म प्रभावो महान् ॥ २ ॥

गुजराती अनुवाद ।

शार्दूल विक्रीडित ।

कोटी म्होर सुवर्ण खर्च करतां, जे कार्य थातुं नथी ।
जेनी वर्ष अयुत कष्ट श्रम थी, किंचित् सिद्धि नथी ॥
सेनाओ अगणि युद्ध कर शे, तोये न आशा फल ।
तेवुं महान् सुकर्म साध्य सुलभ, साधु कृपा किंचित् ॥१॥
जुवो महियर राज्य मां वलिबिधि, श्री शारदा मातने ।
थातो तो वध रे बहु पशुतणो, ते रोकव्यो सज्जने ॥
त्रिभुवन सुत दुर्लभे श्रमकरी, ते पाप रांकावियुं ।
जैनाचार्य श्रीलालजी स्मरणमां तेसंत नामें थयुं ॥ २ ॥

 इससे सम्बन्ध रखने वाले चित्र आगे दिये गये हैं ।



अध्याय ५४ वाँ ।

वीकानेर में हिन्द के जैन साधु
मार्गियों का सम्मेलन ।

श्री वीकानेर भावकों की ओर से स्मारक के विचार बाबर
भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों के अमगण्य नेताओं को आमंत्रण किया
गया था । जिस पर से भिन्न २ प्रान्तों से करीब २०० सद्गुरु
हाजर होगये जिनमें मुख्य २ ये थे ।

श्रीमान् सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा अजमेर, श्रीमान् सेठ बर्द्धभायजी
पांतालिया रतनाम, भीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदाम जौहरी जैपुर, भीयुत
सुगनचंदजी चोरङ्गिया जौहरी जयपुर, भीयुत जालमसिंहजी कोठारी
B A. जोधपुर, भीयुत माणकचंदजी मूधा जोधपुर, भीयुत जौहरी
माहनलाल रायचंद बम्बई, भीयुत जौहरी अमृतलाल रायचंद बम्बई,
जौहरी माणकचंद अकशी बम्बई, जौहरी लक्ष्मीचंद जराकरण पाल-
नपुर, जौहरी कालादास गोददभाई पालनपुर, सेठ भगवानजी नारा-
यणी बोरा नटवाण राहर, लाला केरागीमलजी रिटाईधं अजमेर, भीयुत
नगेदरी उदयपुर, जौहरी केसुलालजी ठाकादिया उदयपुर, भीयुत नंद-

लालजी मेहता उदयपुर, श्रीयुत सागरमलजी गिरधारीलालजी बंगलोर, श्रीयुत शम्भूमलजी गंगारामजी बंगलोर, श्रीयुत श्रीचंदजी अन्वाणी व्यावर, श्रीयुत घ सूलालजी चोरडिया व्या, श्रीयुत अ रचंदजी, घेवरचंदजी अजमेर, श्रीयुत मे तालालजी कांसवा अजमेर, श्रीयुत कानमलजी गाढ़मलजी चोरडिया अजमेर, श्रीयुत मिश्रीलालजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत रतनचन्दजी दफ्तरी जयपुर, श्रीयुत गुमानमलजी ढढा जयपुर, जौहरी कल्याणमलजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत शेषमलजी बालिया पाली इत्यादि २ ।

उपस्थित गृहस्थों तथा बीकानेर और भीनासर संघ की एक सभा ता० २-८-२० से ता० ४-८-२० तक श्रीयुत भेरूदानजी गुलेच्छा के मकान में ऐकत्रित हुई । प्रमुख स्थान श्रीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदास जौहरी को दिया गया । प्रारंभ में आये हुए देशावरों से सहानुभूति दर्शक तार, पत्र प्रमुख महाशय ने पढ़ सुनाये । पश्चात् १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के अकस्मात् वियोग से समाज को जो हानि पहुंची है उसके लिये हार्दिक खेद प्रकट किया गया ।

उपस्थित सभासदों ने ऐसा विचार उठाया कि श्रीमान् स्वर्ग-वासी पूज्य महाराज के उपदेशों की स्मृति सब के भावी संतानों में आरोपित करने के लिये एक ऐसी संस्था कायम की जाय कि,

जिससे उनके उपदेशामृत का यादगार चिरकाल तक स्थायी बने रहे । इस पर से निम्नांकित ठहराव सर्वानुमत से पास किये गए ।

प्रस्ताव १ ला ।

(१) निम्नय हुआ कि श्री संघ की वज्रत्यर्थ एक गुरुकुल खोला जावे और उसका नाम "श्री० श्वे० साधुमार्गी जैन गुरुकुल" रक्खा जावे ।

(२) इस संस्था के लिये अनुमान रु० ५०००००) पंच लाख की आवश्यकता है जिसमें रु० २०००००) दो लाख का चन्दा वसूत हो जाने पर कार्यारंभ किया जावे.

(३) कमसे कम रु० २१०००) का किरोप प्रदान करने वाला इस संस्था का संरक्षक (Patron) गिना जावेगा और संरक्षकों में से ही इस संस्था की प्रबन्ध कारिणी सभा का सभापति चुना जावे ।

(४) रु० ११०००) देने वाले गृहस्थ इस संस्था के सहायक गिने जावेगे और उनमें से इस संस्था की प्रबन्धकारिणी सभा के ५५ सभापति चरोंके या कोषाध्यक्ष (खजानची) तय किये जावेगे ।

(५) रु० ५०००) या ज्यादा और रु० ११०००) से कम देने वाले व्यक्ति इस संस्था के शुभेच्छुक (Sympathiser) गिने जायेंगे और उनमें से भी मंत्री आदि पदाधिकारी चुने जा सकेंगे ।

(६) रु० २०००) या अधिक प्रदान करने वाले गृहस्थ इस संस्था के सभासद् गिने जावेंगे और उनका चुनाव प्रबन्ध कारिणी सभा में हो सकेगा ।

(७) चंदा प्रदान करने वाले गृहस्थों के नाम शिलालेखों में गुरुकुल आश्रम के दरवाजे पर मय चंदे की तालाब के प्रकट किये जावेंगे ।

(८) प्रबंध कारिणी सभा अपनी इच्छानुसार पांच अन्य विद्वान गृहस्थों को सलाह लेने के लिये शरीक कर सकेगी और उनके मत गणना में आसकेंगे और उनपर चंदे का कोई प्रतिबंध न होगा ।

नोट—इस गुरुकुल का उद्देश संमाज की भावी संतान को धर्म परायण, नीतिमान, विनयवान, शीलवान, व विद्वान बनाने का होगा ।

प्रस्ताव २ रा.

श्री बीकानेर संघने प्रकट किया कि यदि बीकानेर में शहर के

बाहर गुरुकुल खोला जावे तो इस समय रु० १२५०००) का रकम यहां के संप की ओर से लिखी जाती है और प्रयत्न बंधा बढ़ाने का जारी रहेगा, रुपये दो लाख इकट्ठे होजाने पर कार्यारंभ किया जावेगा ।

उक्त कार्य के लिए सभा की तरफ से भी अधिकार संप की हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होंने उत्साहपूर्वक इतनी बड़ी रकम प्रदान कर एक प्रेसी संस्था की बुनियाद डालने का साहस किया कि जिसकी परम आवश्यकता थी ।

प्रस्ताव ३ वां.

इस उपयोगी कार्य में सलाह देने के लिये बहार गाम से सफलता लेकर पधारने वाले गृहस्थों को यह सभा धन्यवाद देती है ।

प्रस्ताव ४ था.

श्रीयुक्त दुर्लभजी भाई के सभापतित्व में यह कार्य सफलता पूर्वक किया गया अतएव यह सभा उनका उपकार मानती है ।

प्रस्ताव ५ वां ।

आपस में निंदायुक्त लेख छपने से समाज में पूरी हानि होती है एतल में जो सत्यासत्य कमेटी जागरे की तरफ से ३६ कलमों,

फा एक ट्रेन्सट निकला है उसका यथोचित उत्तर दिया जाना स्वीकृत
 भाविक है मगर आज रोज श्रीमान परम पूज्य महाराजा साहिब
 श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब ने शांतिपूर्वक
 ऐसा उपदेश व्याख्यान द्वारा विस्तारपूर्वक फरमाया कि अपने
 श्रीमान् सद्गत् पूज्य महाराज साहिब के उपदेशामृत को व श्री
 जैन मार्ग के मूल चमधर्म को अंगीकार करके श्रीमान् के भक्तों
 की तरफ से शान्तता ही रखना चाहिए । और छापा द्वारा उत्तर
 प्रत्युत्तर नहीं करना चाहिए । महाराजा साहिब के इस फरमान को
 सबने सर्प स्वीकार किया । यदि किसी की तरफ से फिर भी
 भविष्य में निंदायुक्त लेख प्रकट हुए और न्यायपूर्वक उत्तर देना
 ही जरूरी समझा जावे तो निम्नलिखित पांच मेम्बरों की नाम से
 उसका प्रतीकार किया जावे ।

- १ नगर सेठ नंदलालजी वाफना, उदेपुर
- २ सेठ मेघजी भाई थोभण, बंबई
- ३ ,, कनीरामजी बांठीया, भीनासर
- ४ ,, नथमलजी चौरडिया, नीमच
- ५ ,, दुर्लभजी भाई जौहरी, जैपुर



अध्याय ५४ वां ।

विहंगावलोकन ।

सद्गत आचार्य महोदय की असाधारण गुण सम्पत्ति उपर्युक्त लेखों से पाठकों को अप्रकट नहीं रही होगी, तोभी इस स्थान पर शश्वंसार रूप उनके मुख्य 'सद्गुण विमय' का समुच्चय किया जाय है । ऐसे युग प्रधान पुरुषों के सद्गुण वर्णन करना अथवा अमर का पानी गामर में भरने के समान उपहास जनक और अशुभ है तोभी उन के चरित्र की कितनी ही घटनाओं पर दृष्टि निक्षेप कर उन में से कुछ सार बोध ग्रहण करने कराने के हेतु से यथामति, यथाशक्ति, यत्कींचित्, प्रवृत्ति कर लिखता हूँ ।

ज्ञानबल ।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव, तपस, जिज्ञासापूर्वक परम पुद्गलार्थ, सुयोग्य सद्गुरु का सुयोग और विनयादि आवश्यक गुण इत्यादि ज्ञान प्राप्ति के परमावश्यक साधनों की पूर्ण पुण्य प्रसाद से पूज्य श्री में संपूर्ण दिद्यमानता थी जिससे उन्हें अल्प समय में अद्भुत तत्त्वावबोध होगया था. सूत्र श्री आचाराग, सूत्र कृताग, सुब्रवि-

पाक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी चारों छेदसूत्र (व्यवहार, निशीथ, बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कंध) तथा सूत्रों के सार रूप करीब १५० श्लोक (थोड़ा प्रकरण) उन्हें कंठस्थ थे, शेषसूत्र भी पुनः २ पढ़ने मनन करने से हस्तामलकवत् होगये थे, इनके सिवाय श्वेताम्बर दिगम्बर मतके अनेक तात्त्विक ग्रन्थों का भी उन्हो ने सूक्ष्म अवलोकन किया था. जैनतर दर्शन शास्त्रों का भी पठन अति विशाल था. ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़ने का उन्हें अतन्त शौक था. इस के सिवाय आधुनिक वैज्ञानिकों के नये २ आविष्कार उसी तरह हर्बर्ट स्पेन्सर, हार्विन इत्यादि पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धांत जानने की भी उन्हें अत्यंत जिज्ञासा रहती थी. स्वयं अंग्रेजी पढ़े हुए न होने से ऐसे ग्रन्थ अंग्रेजी पढ़े हुए विद्वानों के पास से सुचते थे ।

राजकोट के चातुर्मास में नई रोशनी वाले बी. ए. एम. ए. और वकील, वैरिस्टर पूज्य श्री के साथ दर्शनशास्त्र विज्ञान शास्त्र और भूगोल खगोल सम्बन्धी विवाद करते तब उन्हें आचार्य श्रीकी कुशाम बुद्धि और ज्ञान की उत्कृष्टता देख अत्यंत आश्चर्य होता और चर्चा में भी बहुत स्वाद मालूम होता था ।

दर्शनार्थ आने वाले आवकों में से जिज्ञासु जनों को ज्ञाना-मृत की आस्वादन कराने वास्ते ज्ञानचर्चा करने के लिये पूज्य श्री

निर्मात्रण करते, शिष्य के पूछे हुए एक प्रश्न का संतोषकारक समाधान होते ही “ और पूछो ” यह वाक्य प्रायः उनके मुल-कमल में से खिले बिना नहीं रहता था. उनकी वाणी में अद्वितीय आकर्षण था, उनके समाधान किये बाद शंका को मौका भाग्य से ही मिलता था, उनके साथ ज्ञानवर्षा करने वाले सूत्र के ज्ञाता भावक लोक उनके विशाल शास्त्रज्ञान पर बड़ा आश्चर्य प्रकट करते थे. एक सिद्धांत का समर्थन करने के लिए वे एक के पश्चात् एक शार्ङ्गोप अनेक प्रमाण अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक प्रकाशित करते थे जैन के ३२ सूत्रों को मानों उनको दृष्टि के सामने हो खिंचे हों, क्यों उनमें से एक के पश्चात् एक २ रत्न बूंद निकालते जिसे पदानुसारिणी लब्धि करते हैं वैसी लब्धि पूज्यश्री में हीन पड़ती थी, किन्हीं भी धार्मिक विषय की चर्चा छिड़ते ही उस विषय का उनका ज्ञान तत्कालस्पर्शी है ऐसा दूसरों को प्रतीत होता था. इतना ही नहीं परन्तु उनके मुंह से निकलते हुए असूत जैसे मीठे वाक्य सुनकर आनंद का पार भी नहीं रहता था ।

चारित्र विशुद्धि ।

पूज्यश्री का चारित्र अत्यंत निर्मल था. वे इतने अधिक आत्मार्थी, पाप शून्य, और निरतिशय चारित्र पालने में प्रावधान रहते थे कि उनका वर्णन शब्दों में हो ही नहीं सकता, जिन्होंने

इन महापुरुष का सत्संग किया है वे ही उनके चारित्र की महिमा कुछ भंश में जान सके हैं। साधुओं में ज्ञान थोड़ा हो या अधिक हो इसको चिंता नहीं, परन्तु चारित्र विशुद्धि तो अवश्य होनी ही चाहिये, ज्ञानका फलही चारित्र है 'ज्ञानस्य फलं विरतिः' जिस ज्ञान से विरति अथवा चारित्र प्राप्त न हो वह ज्ञान अफल समझना चाहिये। सच्चारित्र यही समस्त विश्व को वश करने वाला अद्भुत वशीकरण मंत्र है। जन समूह पर विद्या, लक्ष्मी, या अधिकार की अपेक्षा चारित्र का प्रभाव विशेष और निरुपेक्षणीय पड़ता है, चारित्र बल से ही महात्मा गांधीजी अभी विश्व बंदनीय हैं, पूज्य श्री बार बार उपदेश देते कि नर से नारायण होते हैं इसलिये चारित्र रत्न का यत्न जीव के रूढ़ होने पर भी करना चाहिये।

साधु पुरुषों का चारित्र यही सच्चा धन है। इस धन द्वारा स्वर्गीय सुख के अखूट खजाने खरीदे जा सकते हैं उसकी पूर्णता से पूर्ण-प्रभुता की प्राप्ति हो सकती है।

श्रीमान् पूज्यश्री को अविश्रान्त परिश्रम के कारण प्राप्त हुए सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र के अपूर्व ज्ञान के सुफलरूप उदार, अनुकरणीय और अति चार रहित चारित्र की प्राप्ति हुई थी। श्री वीर प्रभु की आज्ञा यही उनका मुद्रा लेख था और यही उनका पवित्र धर्म था। इन आज्ञा के पालन में वे

प्रमाद को त्याग और शुद्धोपयोग पूर्वक संयम के सुन्दर सुपथ में विचरते थे । अपना मन अन्य प्रदेश में लेश भी प्रवेश न कर उसकी बड़ी संभाल रखते थे और इसलिये व्यर्थ बैठे रहना, व्यर्थ की हँसी करना, सांसारिक खटपट में भाग लेना इत्यादि २ प्रवृत्तियों कि जो अभी निठल्ले जावकों की संगति से कितने ही साधुओं में घुल पड़ी हैं, पूज्य भी ने परिहार किया था । वे दिन रात ज्ञान ध्यान में निमग्न रह और ज्ञान विषय की वर्षावर्षा कर समय का सदुपयोग करते थे ।

आधाकर्मों—सदोष आहार पानी न लेने बाबत वे अत्यन्त सावधान रहते थे । अजमेर कॉन्फरन्स के समय स्थानीय रागवश दोषीणा आहार पानी बहिर्वाहों अधना अधु निमित्त पहिले या पीछे आरंभ समांरभ करेंगे ऐल संभव समझ पूज्य भी ने साधुमार्गी के यश से आहार पानी न लाने बाबत अपने शिष्यों को बिलकुल मनाकर आपने स्वयं तेला का पारखा कर दूसरा तेला कर लिया था और सात दिन में एक दिन आहार लिया था । कई वक्त साधुओं की बड़ी संख्या एक ग्राम में एकत्रित होजायीं तब तब पूज्य भी और उनके साधु दूध, अठम, चोले, पचोले की धुन लगा देते थे और ऐसे प्रसंग में कई समय कच्चा आटा लाकर पानी में ढाल पीजाते थे । पूज्य भी विशेषतः मक्की और जव की रोटी गरीबों के यहाँ से बेर लाते,

विषय का त्याग करना या आयम्बिल करना यह उनका खास शौक था। इंद्रियों को बश रखने का कार्य सचमुच बड़ा कठिन है जिस में भी रसेन्द्रिय का बश करना यह सब से अधिक दुष्कर है। शरीर पर से मुच्छा उत्तरती है जबही शरीर को पोषण देने वाले खाद्य पदार्थों पर से भी मुच्छा उत्तर सकती है।

आधाकर्मी स्थानक में उतर न जाय इस बावत भी वे बड़े सख्तवादी रहते थे। मांगरोलबंदर पक्षारे तब उन्हें भोजनशाला में उतारने की संघ की इच्छा थी। पूज्य श्री ने भोजनशाला देख, विशाल और श्रेयस्कर मकान तथा जैनों की वस्ती और साधुओं का वपाश्रय अधिक समीप होने से यह स्थान पूज्य श्री को अधिक पसंद हुआ। परंतु पूछताछ करने पर यह भोजनशाला बिगड़ी हुई थी और पूज्यश्री के लिये ही साफसुफ कराई गई थी ऐसा संदेह पड़ते ही वे वहां न ठहर ग्राम बाहर एक झोंपड़ी में उतर गए। ऐसी ही घटना मोरवी में भी घटी थी।

कल्पनिहार करने में भी वे कितने अप्रमत्त रहते और कैसे कष्ट सहते थे यह व्यर्थ के बहाने निकाल स्थिरवास पड़े रहने वाले साधुओं को खास ध्यान देने योग्य है। कई समय उनके पांव में असह्य वेदना हो उठती थी, तोभी वे कल्प उपरांत अधिक नहीं ठहरते थे। सं० १६७२ के कार्तिक वद १ के रोज उदयपुर

प्रमाद को त्याग और शुद्धोपयोग पूर्वक संयम के सुखद सुपथ में निश्चरते थे । अपना मन अन्य प्रदेश में लेरा भी प्रवेश न कर उसकी बड़ी संभाल रखते थे और इसलिये व्यर्थ बैठे रहना, व्यर्थ की हंसी करना, सांसारिक खटपट में भाग लेना इत्यादि २ प्रवृत्तियों कि जो अभी निठले भावकों की संगति से कितने ही साधुओं में घुस पड़ी हैं, पूज्य श्री ने परिहार किया था । वे दिन रात ज्ञान ध्यान में निमग्न रह और ज्ञान विषय की चर्चावार्ता कर समय का सदुपयोग करते थे ।

आषाढमी—सदोष आहार पानी न लेने बाबत वे अत्यन्त सावधान रहते थे । अजमेर कॉन्फरन्स के समय स्वधर्मी रागवरा शेरपाणा आहार पानी बहिरावेंगे अथवा अधु निमित्त पहिले या पीछे आरंभ समारंभ करेंगे ऐसी संभव सम्भूत पूज्य श्री ने साधुमार्गी के यश से आहार पानी न लाने बाबत अपने शिष्यों को शिक्षित मनाकर आपने स्वयं सेला का पारणा कर दूसरा सेला कर लिया था और सात दिन में एक दिन आहार लिया था । कई वक्त साधुओं की बड़ी संख्या एक प्रान्त में एकत्रित होजाती तब तब पूज्य श्री और उनके साधु छठ, अठम, चोले, पचोले की धुन लगा देते थे और ऐसे प्रसंग में कई समय कच्चा आटा लाकर पानी में डाल पीजाते थे । पूज्य श्री विशेषतः मक्की और जव की रोटी गरीबों के यहां से बेर लाते,

विषय का त्याग करना या आयम्बिल करना यह उनका खास शौक था । इंद्रियों को वश रखने का कार्य सचमुच बड़ा कठिन है जिस में भी रसेन्द्रिय का वश करना यह सब से अधिक दुष्कर है । शरीर पर से मुच्छा उतरती है जबही शरीर को पोषण देने वाले खाद्य पदार्थों पर से भी मुच्छा उतर सकती है ।

आधाकर्मि स्थानक में उतर न जाय इस बावत भी वे बड़े सावधान रहते थे । मांगरोलवंदर पदारे तब उन्हें भोजनशाला में उतारने की संघ की इच्छा थी । पूज्य श्री ने भोजनशाला देख, विशाल और श्रेयस्कर मकान तथा जैनो की वस्ती और साधुओं का उपाश्रय अधिक समीप होने से यह स्थान पूज्य श्री को अधिक पसंद हुआ । परंतु पूछताछ करने पर यह भोजनशाला बिगड़ी हुई थी और पूज्यश्री के लिये ही साफसुफ कराई गई थी ऐसा संदेह पड़ते ही वे वहां न ठहर ग्राम बाहर एक मौपड़ी में उतर गए । ऐसी ही घटना मोरवी में भी घटी थी ।

कल्पत्रिहार करने में भी वे कितने अप्रमत्त रहते और कैसे कष्ट सहते थे यह व्यर्थ के बहाने निकाल स्थिरवास पड़े रहने वाले साधुओं को खास ध्यान देने योग्य है । कई समय उनके पांव में असह्य वेदना हो उठती थी, तोभी वे कल्प उपरांत अधिक नहीं नहरते थे । सं० १६७२ के कार्तिक वद १ के रोज उदयपुर

शहर के मध्य से हो कर जब वे सूरजपोल महंत की धर्मशाला में पधारे उस समय का दृश्य जिन्होंने छाँछों से देखा है वे कहते हैं कि उस समय पूज्यश्री के पाँव में अतुल वेदना थी, पाँवकी तली छिजरही थी. ऊपरका भाग सूजरहा था. सोभी वे बज्जा कठिन हृदय कर विश्राम लेते २ चलते थे और अत्यन्त कष्ट होने से उनके नेत्रों में से मोठी की तरह अश्रुबिंदु टपकते थे, जिसे देख भाविक भक्तों के हृदय थर २ धूज उठते थे, इसमें तो कुछ नमीनता नहीं थी, परन्तु नगर का हरएक प्रेक्षक वह स्थिति देख थर २ धूज उठता था । ऐसी स्थिति में वन्होंने एक समय नहीं अनेक समय विहार किया है ।

वाक्पटुता ।

प्रिय और पथ्य वाणी किसी बिरले पुरुष की ही होती है. ऐसे बिरले पुरुषों में पूज्यश्री का दर्जा अति उच्च था. उनका वाक् चातुर्य अति प्रशंसनीय था. धर्म और हृदय की उच्च भावनाओं से मिश्रित तथा विचार के प्रवाह से प्रवाहित हुई उनकी असाधारण वाणी में अजब आश्चर्य था. अद्भुत शक्ति थी और परिपूर्ण निरवच्छता भी ।

जिसतरह अशस्त प्रेम का पवित्र प्रवाह पूज्यश्री के नेत्र गुगत से निरन्तर बहा करता था वसीतरह कमल बदन से भी व्याख्यान के गय बहता हुआ वचनमृत का स्रोत सर्वत्र प्रेम का “यमुपैव

कुटुम्बकम्” इस भावना का प्रादुर्भाव करने के परिणाम में लीन होता था । Give the ears to all but tongue to the few. इस न्याय से पूज्यश्री सब सुनते परन्तु विचारकर बहुत कम बोलते थे । जरूरत से ज्यादा न बोलते और जो कुछ बोलते वह जिनागम के अनुकूल ही बोलते थे । पूज्यश्री का व्याख्यान अनुपम था । त्रिविध तापों से तप्त शोकाकुल निराश आत्माओं को यह प्रतापी महात्मा नवीन उत्साह देते इनकी मधुरवाणी श्रवण करते ही आनन्दसागर उछलता । सुषुप्त हृदय की अन्धकारमय गुहा में जीवनज्योति का प्रकाश फैलता, भोतगण की आत्मा जागृत हो कर्तव्यक्षेत्र में प्रविष्ट होती । इनका अद्भुत वीरत्व इनके प्रत्येक वाक्य में व्यक्त होता था । उनकी सुधावर्षिणी वाणी से विश्व पर अवर्णनीय उपकार होता था । वे कर्तव्य पथ से भ्रान्त पथिकों को सन्मार्ग दर्शक सच्चिचार स्फुराते थे । जिन वाणीरूपअमृत से भरपूर अति मधुर जीवनराग सुनाकर कायरों की कायरता दूर करते उन्नति का मार्ग बताते, निडरता और साहसिकता के पाठ पढ़ाते थे । कर्तव्य पालन में प्राण की भी परवाह न करना यह उनके उपदेश का सार था । उनके लिये जीना, मरना समान था । वे स्थितप्रज्ञ और स्वस्वरूप स्थित थे । उनका देह—प्रेम छूट गया था । इसलिये वे अप्रतिबद्ध सम्पूर्ण स्वतन्त्र, अपरिमित सामर्थ्यवान्, और विशुद्ध चारित्रवान् बन गए थे । तीव्र वैराग्य के कारण समाधि लाभ हमेशा उनके समीप बैठा रहता था ।

इसलिए उनका सच्चारित्र धीन दशा में भी जन समूह पर जादूवा असर पतत्र करता था । तो फिर उनके पवित्र आत्मा की वाणी, व्यापार, लोगों के चरित्र, संगठन में अपूर्व अवलम्बन रूप हो इसमें क्या आश्चर्य है ? कभी २ उनके सद्बोध का पूरा रहस्य अल्पमति भोक्त समुदाय भी समझ सकती थी । उनकी वाणी का प्रभाव ऐसा अलौकिक था कि वह मज्जात्माओं के अन्तरपट को खोल देता था । पूज्य श्री की शास्त्रीय शैली ने निराश हुए कई भाषकों को अत्यन्त सहृदय आत्माओं को चरसाह और आशा दिला ससेज किये हैं । सूत्रों का स्वाध्याय रस के आनन्द में अर्वाचीन समय में मस्त होने वाले कितने सुनि हैं ? मलिन वृत्तियों को हटा कर, सात्विक वृत्तियों को जागृत कराने वाला पूज्य श्री के हृदय-सारंगी के तार से उमझ हुआ हृदय-भेदक-संगीत कर्णों को कितना प्रिय लगता था ! सात्विक भावना के प्रकाश दीप को प्रकटाना तो अनुभवी उपदेशकों के भाग्य में ही लिखा है । शिर्षक कर्णेन्द्रिय को प्रिय हो वह क्या काम का है ? अर्थ गंभीरता आत्मा को प्रसन्न करने तक ही असर होता है ।

पूज्य श्री की वाणी सत्य और हितकारी थी किंतु सर्वथा सब को प्रियकर हो ऐसी वाणी उच्चारण करना यह उनकी प्रवृत्ति के प्रसिद्ध था । कभी २ किसी २ व्यक्ति को उनकी वाणी में कटुता प्रतीत होती थी । क्योंकि स्वर पीड़ित मनुष्यों को शक्कर वा मिर्ची के

बदले, कवीनाईन या चिरायता या ऐसी ही कटु दवा चतुर मनुष्य
 देते हैं वैसे ही पूज्य श्री उन्मार्ग गामियों को सन्मार्ग पर लगाने
 वास्ते कटु वचन भी कह देते थे ।

प्रत्येक को हित शिक्षा देना यह पूज्यश्री का खास स्वभाव
 फिर चाहे वह अपने से बड़ा ही क्यों न हो या छोटा; गुरु हो
 या गुरु का भी गुरु हो, सब को चाहे जैसा हो, निर्भयता से और
 सधे हृदय से कह देने की उनमें आदत थी, यह गुण (चाहे इसे
 सद्गुण कहो या दुर्गुण) उनके लिये कई समय आपत्तिकारक भी
 होगया था. थंढी से थर २ धूजते थंदर को गृह बांधने की शिक्षा
 देने में सुगृही को अपना घर खोना पड़ा था. ऐसा ही मौका
 पूज्यश्री को प्राप्त हुआ था, अपात्र पर दया कर उनपर उपकार
 करने में श्रीजी को कई समय बहुत कुछ सहन करना पड़ा था.
 जिस तरह चूहे को थंढ से बचाने में हंस को पंख रहित होना
 पड़ा था । उसी तरह पामर जीवों को पाप पंक में से बचाने जाते
 पूज्यश्री के बहुत २ सहन करना पड़ा था परन्तु ऐसे कर्तव्य निष्ठ,
 सहनशील और परहित परायण पुरुषों का मन तो परोपकार करने
 में ही सच्ची मौज मानते हैं “ सहन करवूं एह छे एक लागु. ”

पूज्यश्री की वाणी में गुणीजनों के गुणगान का भी मौका आता
 था, आप अपनी प्रशंसा या परनिंदा तो वे कभी करते ही न थे ।

इसलिये उनका सच्चारित्र मौन दशा में भी जन समूह पर नादृष्टा असर उत्पन्न करता था। तो फिर उनके पवित्र आत्मा की पाणी, व्यापार, लोगों के चरित्र, संगठन में अपूर्व अवलम्बन रूप हो इसमें क्या आश्चर्य है ? कभी २ उनके सद्बोध का पूरा रहस्य अव्यमति भोक्तृ समुदाय भी समझ सकती थी। उनकी बाणी का प्रभाव ऐसा अलौकिक था कि वह भव्यात्माओं के अन्तरपट को खोल देता था। पूज्य श्री की शास्त्रीय शैली ने निराश हुए कई भावकों को अत्यंत सद्बुद्ध आत्माओं को उत्साह और आशा दिला सतेज किये हैं। सूत्रों का स्वाध्याय रस के आनन्द से अर्थाधीन समय में मस्त होने वाले कितने मुनि हैं ? मलिन धृतियों को हटा कर, सात्विक वृत्तियों को जागृत कराने वाला पूज्य श्री के हृदय-सारंगी के तार से उत्पन्न हुआ हृदय-भेदक-संगीत कण को कितना प्रिय लगता था ! सात्विक भावना के प्रकाश दीप को प्रकटाना तो अनुभवी उपदेशकों के भाग्य में ही लिखा है। सिर्फ कर्णेन्द्रिय को प्रिय हो वह क्या काम का है ? अर्थ गभीरता आना को प्रसन्न करदे तब ही असर होता है।

पूज्य श्री की बाणी सत्य और हितकारी थी किंतु सर्वथा सब को प्रियकर हो ऐसी बाणी उच्चारण करना यह उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। कभी २ किसी २ व्यक्ति को इनकी बाणी में कटुता प्रतीत होती थी। क्योंकि स्वर पीड़ित मनुष्यों को शकृत्वा मिश्री के

बदले, कवीनाईन या चिरायता या ऐसी ही कटु दवा चतुर मनुष्य देते हैं वैसे ही पूज्य श्री सन्मार्ग गामियों को सन्मार्ग पर लगाने वास्ते कटु वचन भी कह देते थे ।

प्रत्येक को हित शिक्षा देना यह पूज्यश्री का खास स्वभाव फिर चाहे वह अपने से बड़ा ही क्यों न हो या छोटा; गुरु हो या गुरु का भी गुरु हो, सब को चाहे जैसा हो, निर्भयता से और सच्चे हृदय से कह देने की उनमें आदत थी, यह गुण (चाहे इसे सद्गुण कहो या दुर्गुण) उनके लिये कई समय आपत्तिकारक भी होगया था. थंढी से थर २ धूजते बंदर को गृह बांधने की शिक्षा देने में सुगृही को अपना घर खोना पड़ा था. ऐसा ही मौका पूज्यश्री को प्राप्त हुआ था, अपात्र पर दया कर उनपर उपकार करने में श्रीजी को कई समय बहुत कुछ सहन करना पड़ा था. जिस तरह चूहे को थंढ से बचाने में हंस को पंख रहित होना पड़ा था । उसी तरह पामर जीवों को पाप पंक में से बचाने जाते पूज्यश्री के बहुत २ सहन करना पड़ा था परन्तु ऐसे कर्तव्य निष्ठ, सहनशील और परहित परायण पुरुषों का मन तो परोपकार करने में ही सच्ची मौज मानते हैं " सहन करवूँ यह छे एक लागु. "

पूज्यश्री की बाणी में गुणीजनों के गुणगान का भी मौका आता था, आप अपनी प्रशंसा या परनिंदा तो वे कभी करते ही न थे ।

घर्ष के शब्दों की मारामारी में चाहे जैसी बकीली पला
जाय परन्तु शब्दों की अब कीमत नहीं। कंठने की अपेक्षा कर
दिखाने का ही यह जमाना है। उनके फट के कभी भूले नहीं जाते।
' सुंदर सब मुरा आन मिले, पण संत समागम दुर्लभ भाई '

‘ धनवंत को आदर करे, निर्धन को रखे दूर;
एऊ तो साधु न जाणिये, वो रोटियां को मजूर ”
रंग घखा पण पोत नहीं, कुण लेवे उस साबी को ?
फूल घखा पण बास नहीं, कुण जावे उस बाड़ी को ?

निर्भयता

भय यह मानव जीवन की चरित्र में पीछे हटाने वाला भयं-
कर अभ्ररथ है। एक विद्वान् ने कहा है कि “ भय यह मनुष्य के
आसपास कटुता फैलाता है वह मानसिक, नैतिक, और आध्या-
त्मिक प्रवृत्तियों का नाश करता है और कितनी ही दृष्टा मृत्यु
तक का अवसर पैदा करता है वह सर्व शक्ति और विकास का
नाश कर देता है । ”

पूव्य भी में बालक से ही निर्भयता भरी हुई थी। आरेड़ा
प्रतिगमन, कानोड़ में साप के साथ चार माह तक निवास, माइल-
गढ़ से कोटे जाते समय भयंकर जंगल का बिहार, सुनेल के सुवास्ते

के सामने का सत्याग्रह इत्यादि अवसरों से वे कितने निर्भय बने हुए थे वह वाचकों को विदित ही है । -

लोकापवाद का भय भी उन्हें कर्तव्य विमुख कदापि न बना सका था । सम्प्रदाय परिवर्तन तथा अनेक बड़े २ साधुओं का वहिष्कार इत्यादि प्रवृत्तियों के उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत हैं सामान्य मनुष्यों के लिये लोकापवाद की भयंकर भीत उजाँघना अति कठिन है ।

जनभीरुता का स्थान पूज्य श्री में पापभीरुता ने लिया था । जनभीरुता इनके रोमांच में भी न थी । पापभीरुता इनके रग रग में भरी हुई थी । उन्हें देह की चिंता भी न थी । आत्मा की चिंता तो हमेशा रहती थी ।

दुनियां मुझे क्या कहेगी ? इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया, कभी विचार भी नहीं किया, परन्तु सिर्फ महावीर क्या कह गए हैं ? उनकी क्या आज्ञा है ? यही उनका जीवन पर्यंत शोध रहा, यही चिन्तवना रही और वे वीर प्रणीत निरवय मार्ग पर निश्चयता से, निर्भयता से आगे २ बढ़ते ही चले गए । एक फारसी काव्य वे फरमाते थे कि:—

“ तीर तलवार तत्र तेगा व खंजर वरसे;
जहर खून और मुसीबत के समुंदर वरसे;

घर्षा के शब्दों की मारामारी में पाहे जैसी बकीली प
जाय परन्तु शब्दों की अब कीमत नहीं. कहने की अपेक्षा क
दिखाने का ही यह जमाना है. उनके फट के कभी भूने नहीं जाते
' सुंदर सब सुख ध्यान मिले, पण संत समागम दुर्लभ भाई

‘ धनवंत को आदर करे, निर्धन को रखे दूर;
एऊ तो साधु न जाणिये, वो रोटियां को मजूर ”
रंग घणा पण पोत नहीं, कुण लेवे उस साढ़ी को ?
फूल घणा पण बास नहीं, कुण जावे उस बाढ़ी को ?

निर्भयता

भय यह मानव जीवन की सज्जति में पीछे हटाने वाला भयं
कर आध्वर्य है । एक विद्वान् ने कहा है कि “ भय यह मनुष्य के
आसपास कटुता फैलाता है वह मानसिक, नैतिक, और आध्या
त्मिक प्रवृत्तियों का नाश करता है और कितनी ही दफा मृत
तक का अवसर पैदा करता है वह सर्व शक्ति और विश्वास का
नाश कर देता है । ”

पृथ्वी में बालक से ही निर्भयता भरी हुई थी । आदेश
प्रतिगमन, कानोड़ में साँप के साथ चार माह तक निवास, माँदल-
गढ़ से कोटे जावे समय भयंकर जंगल का बिहार, मुनेल के मुषा से

के सामने का सत्याग्रह इत्यादि अवसरों से वे कितने निर्भय बने हुए थे वह वाचकों को विदित ही है । -

लोकापवाद का भय भी उन्हें कर्तव्य विमुख कदापि न कृता सक्ता था । सम्प्रदाय परिवर्तन तथा अनेक बड़े २ साधुओं का बहिष्कार इत्यादि प्रवृत्तियों के उवलंत उदाहरण प्रस्तुत हैं सामान्य मनुष्यों के लिये लोकापवाद की भयंकर भीत उत्तांघना अति कठिन है ।

जनभीरुता का स्थान पूज्य श्री में पापभीरुता ने लिया था । जनभीरुता इनके रोमांच में भी न थी । पापभीरुता इनके रग रग में भरी हुई थी । उन्हें देह की चिंता भी न थी । आत्मा की चिंता तो हमेशा रहती थी ।

दुनियां मुझे क्या कहेगी ? इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया, कभी विचार भी नहीं किया, परन्तु सिर्फ महावीर क्या कह गए हैं ? उनकी क्या आज्ञा है ? यही उनका जीवन पर्यंत शोध रहा, यही चिन्तवना रही और ये वीर प्रणीत निरवच मार्ग पर निश्चयता से, निर्भयता से आगे २ बढ़ते ही चले गए । एक फारसी काव्य वे फरमाते थे कि:—

“ तीर तलवार तत्र तेगा व खंजर वरसे;
जहर खून और मुसीबत के समुंदर वरसे;

त्रिजलियां चर्य से और कोट से पत्थर बरसे,
 सारी दुनियां की बलायें मेरे सरपे बरसे;
 सतम होजाय हर एक रँजो मुसीबत मुझपर,
 मगर इमान को जुंघिस हो तो लानत हो मुझपर।

संयम चरिता का प्रवाह सहज ही शिथिल हो जाता वो बर्ग
 बड़ा दुःख होता था । बिलकुल रज जैसे बारीक छिद्र न पूरे
 जाय तो हार्थ निकले जैसे द्वार होजाते हैं इसलिये छोटे कार्य से
 ही जल्द सात संभाल कर लेना ये पसंद करते थे । परन्तु प्रकृति
 हुए वृत्तों में जब क्षय घुसने लगा, ईर्ष्या और अंगद्वेष रूपी काँडे
 पशु को ही खाजाने लगे, तब सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धांत और
 सीमा की रक्षार्थ ये जागृत हुए, घबराये नहीं । अवसर के जल-
 कौशल ये महात्मा तो कभूत करते थे कि मतभेद यह महान् पुरुषों
 ने भी स्वीकार किया है और सजीवता का चिन्ह है जागृत रहने
 की चार्जी है ।

“मुँहु मुहुँ मोह गुणे जयंतं । अखेग रुवा समर्थे चरवं ।
 फासा फुसंती असमंजसच । नते सुगिखु मणसा पओ”

Bear and forbear

सब सहन करलेते और आत्मा पर विश्वास रखते. परन्तु
 सत्ता के मद में चारित्र्य की पांछ कटजाय या माजी बिगड़नाप

सब बहुत सावधान रहते थे । दुराग्रह से किसी विचार को पकड़े न रहते तथा शास्त्र का नियम खंडित हो वहां वे झुकते भी नहीं, परन्तु सत्याग्रह करते थे । समाज संरक्षा की सौपी हुई जोखिम से वे हमेशा जागृत रहते थे ।

शिष्यों के साथ के व्यवहार में कुसुम से कोमल मालूम होने वाला हृदय उनके अन्यायी व्यवहार के समय वज्र से भी कठिन बन जाता था । सत्य के ताप का यह तेज था । मतभेद के कारण सम्मोग न होने पर भी वे दूसरों के सद्गुणों की वेदरकारी न करते थे, परन्तु अवसर मिलने पर उनके गुणों की प्रशंसा करते थे । उन्होंने अपना समस्त जीवन श्री शासन देवी के शरण में ही समर्पण किया था । उनके वय के प्रमाण में दूसरा कोई व्यक्ति भाग्य से ही मिले, ऐसा अपूर्व गांभीर्य पूज्य श्री में प्रकट होगया था । सूत्र ज्ञान की प्रवीणता अनोखी थी । वे सूत्र के ज्ञान की पुनीत प्रकाशित किरणें फैलाने के लिये शिष्य समूह को खास आग्रह करते थे । ऐसे विचारशालि धर्माध्यक्ष के आश्रय में संख्या-वद्ध साधु आकर्षित होते और मनमानी प्राप्त कर जन्म सार्थक करते थे ।

धर्म के कारण मरना, प्राण देना यह कुछ प्राचीन समय की ही द्रव्य नही, जब २ धार्मिक तेजावृत्ता कम होती हुई दृष्टिगत:

विजलियां चर्खे से और कोट से पत्थर बरसे,
 सारी दुनियां का बलायें मेरे सरपे बरसे;
 सतम होजाय हर एक रँजो मुसीबत मुझपर,
 मगर इमान को जुंघिस हो तो लानत हो मुझपर

संयोग सरिता का प्रवाह सहज ही शिथिल हो जाता वो बड़ा
 बड़ा दुःख होता था । बिलकुल रज जैसे बारीक छिद्र न पड़े
 जाय वो हाथी निकले जैसे द्वार होजाते हैं इसलिये छोटे कार्य
 ही जल्द सात संभाल कर लेना में पसंद करते थे । परन्तु प्रकृति
 हुए शृंखलों में जब लय घुमने लगा, ईश्वर और अंगरेज रूपी कौड़े
 पक्ष को ही स्थाजाने लगे, तब सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धांत और
 सीमा की रक्षा में वे जागृत हुए, घबराये नहीं । अवसर के जन्म-
 पर ये महात्मा वो कयूत करते थे कि मतभेद यह महान् पुद्गल
 ने भी स्वीकार किया है और सजीवता का चिन्ह है जागृत रहने
 की भावी है ।

“मुंडु मुंडु मोह गुणे जयंतं । अखेग रुचा समर्थे चरंतं ।
 फासा फुसंती असमंजसच । नते सुभिखु मणसा पजे”

Bear and Forbear

सब सहन करलेते और आत्मा पर विश्वास रखते. परन्तु
 सत्ता के मद में चारित्र्य की पांख कटजाय या बाजी बिगड़नाय

। सख बहुत सोच-विचार करते थे । दुराग्रह से किसी विचार को पकड़ें न रहते तथा शास्त्र का नियम खंडित हो वहां वे झुकते भी नहीं, परन्तु सत्याग्रह करते थे । समाज संरक्षा की सौंपी हुई जोखिम से वे हमेशा जागृत रहते थे ।

शिष्यों के साथ के व्यवहार में कुसुम से कौमल मालूम होने वाला हृदय उनके अन्यायी व्यवहार के समय वज्र से भी काठिन्य बन जाता था । सत्य के ताप का यह तेज था । मतभेद के कारण सम्मोग न होने पर भी वे दूसरों के सद्गुणों की वेदरकारी न करते थे, परन्तु अवसर मिलने पर उनके गुणों की प्रशंसा करते थे । उन्होंने अपना समस्त जीवन श्री शासन-देवी के शरण में ही समर्पण किया था । उनके वय के प्रमाण में दूसरा कोई व्यक्ति भाग्य से ही मिले, ऐसा अपूर्व गांभीर्य पूज्य श्री में प्रकट होगया था । सूत्र ज्ञान की प्रवीणता अनोखी थी । वे सूत्र के ज्ञान की पुनीत प्रकाशित किरणें फैलाने के लिये शिष्य समूह को खास आग्रह करते थे । ऐसे विचारशील धर्माध्यक्ष के आश्रय में संख्या-वद्ध साधु आकर्षित होते और मनमानी प्राप्त कर जन्म सार्थक करते थे ।

धर्म के कारण मरना, प्राण देना यह कुछ प्राचीन समय की ही द्रव्य नही, जब २ धार्मिक तंजास्वता कम होती हुई दृष्टिगत:

हीवी, कि जल्द ही उसकी कीर्ति बढ़ाने की फिक्र लगती । धार्मिक ज्जुलम सहन न होता परन्तु उसे भिन्नकुल निर्मूलक करने का ही प्रयास होता था । परिणाम में सत्ता भिन्नता पकड़ती, सर्वानुगत असम्भव हो जाता, अनिवार्य प्रसंग उपस्थित होने से भिन्न २ सम्प्रदाय होते गए और पोषाते गए, इतने अधिक सम्प्रदायों का अस्तित्व ऐसे ही कारणों का आभारी है । सांसारिक व्यवहार या मान्यता को पकड़ कर भिन्न चौतरे पर नष्ट भिन्न २ बात कहना यह भिन्न बात है गुन्हेगारों का गुन्हा बिल्कुल साफ प्रकट होजाने पर भी ममत्व के कारण कितनी ही क्षातियों में गुन्हेगार के सगे सम्बन्धी भिन्न तर्कों डालदेते हैं वसीतरह सत्य की शमशेर के प्रभाव से संघम रणा-मय में पतरे हुए इन तर्कों का अनुकरण करें तो भी महावीर भगवान् की आज्ञाओं का प्रत्यक्ष अपमान होता है और भी संघ का त्यागर भाव गुमाते हैं ।

अलबत्त शरम भरी हुई स्थिति में बेशरम कबूल से अपात तो होता है परन्तु धार्मिक कायदे तो जीव को जोखिम में डालकर ही निभाने पड़ते है इन कायदों पर अडल नहीं, ठर्राविक सजा सुगचना ही चाहिए, भविष्य की भूलों का भान ऐसी सजाओं से ही जागृत रहता है और दूमरो को भी जागृत करता है । वृत्ति को पलटाने की यह कसोटी है । कसोटी के क्रम में शुद्ध कंठन इगों पार छुटने वालों का ही समय सार्थक है ।

आर्कपणों में फंसने वाले धोबी के कुत्तों की तरह न घर के न घाट के, धर्म के नियमों के कारण प्राणार्पण करने वालों के और अभिग्रह धरने वालों के प्राचीन दृष्टांत बहुत हैं आज भी ऐसे धर्म वीरों का पाक प्रस्तुत है ।

अपनी ही सम्प्रदाय के एक साधु की दृष्टांत ध्यान में देने योग्य है । दो प्रहर को कुछ औषधी लेते एक युवान साधु को एक गृहस्थ के वहां जाना पड़ा, उस मकान में उस समय एक विधवा स्त्री के सिवाय कोई न था, मुनिराज पीछे फिरते थे कि वह स्त्री विचारवश हो मुनि के पीछे पड़ी । मुनि ने असरकारक उपदेश दे स्त्री धर्म समझाया, परन्तु काम अंधा है समय बड़ा तीव्र था व्रूम देने से उल्टी अपनी इज्जत बिगड़ती है आत्मा के श्रेय के कारण ही सिर मुंडाने वाले इन मुनि ने मन में ही आलोचना कर अपनी जीभ काट अपने व्रत निभाने वास्ते अपनी प्रतिज्ञा पालने वास्ते अपने धर्म वास्ते अपना प्राण बहादुरी से अर्पण किया । एक गुरु ने शिष्य के संधारे के समय शिष्य की शिथिलता के कारण उस संधारे के स्थान पर सौकर प्राण दे टेक निभाई थी ।

आर्लेडमें नगर सेठ-लार्ड-मेयरने जेलमें खुराक न ले उपवास कर आत्मभोग दिया श्रीयुत् शेठी-अर्जुनलालजी ने जेल में इष्टदेव के दर्शन बिना किये अन्न लेना इन्कार कर दिया था । रामचन्द्र ब्राह्मण ने अंडमान में जनेव बिना अन्न न ले नब्बे दिन भूखे रह मृत्यु स्वीकार

[की थी ऐसे दृष्टांतों पर खास पुस्तक लिखी जा सकती है यहां ब्रिफे संकेत करने का कारण यह है कि धार्मिक नियम धार्मिक प्रतिष्ठा यह कुछ बालक का खेल नहीं है कि अपना इच्छानुसार कसोटी के समय प्रतिष्ठा को त्याग दें और समय के बराबर होजाय ।

‘ नवजीवन ’ इस सम्बन्ध में अपना यह अभिप्राय व्यक्त करता है कि इस सुधार के जमाने में ऐसे प्राणत्याग को कोई मूल्य से भरा हुआ भी कहें, क्योंकि अनेक कारण मरने को तैयार हो जाना ऐसी सलाह आजके समय कोई सचमुच में नहीं देगा. परन्तु अपने को जो धरतु धर्म लची है उसके लिये प्राण देने की शक्ति वो प्रत्येक मनुष्य में रहनी ही चाहिये. वर्तमान समय में समाज में से यह शक्ति बहुत कम होगई है इसीलिये समाज में धामरता दृष्टिगत होती है और अन्धमे इतना बढ़ा चला जाता है ।

इसु के इन वचनों का सार अंतःकरण में बतारना ठीक है कि गेहूं का कण जवतक जमीन में दबकर नहीं मरता तबतक जैसा का तैसा रहता है ।

सत्य और निर्भयता आत्मभोग बिना सजीवन नहीं होती । सचमुच जो हमें मर्द नहीं बनना है अपनी इच्छत कायम रखने जितना भी पुरुषार्थ हम में नहीं है स्वतः में प्रभु और पश की छाछी से ली हुई प्रतिष्ठा पाखने की सापथ्य भी (मर्दपना) नहीं है तो यह

ठाँक है कि लाचारी के साथ अपना पहिना हुआ भेष उतारकर फेंकदे, परन्तु भेष को न लजावें, दंभ से दुनिया को न ठगें. चोर चोरी करे इसमें नवीनता नहीं है परन्तु चोकी पहरे वाले, रक्षण करने वाले ही भक्षण करने लगजाँय वह असह्य होजाता है ।

कर्तव्य पालन की टेवें निर्भयता का पोषण करता है. पूष्यश्री का जीवन विविध घटनाओं से पूर्ण है वे कभी दुःख से दबे नहीं, दिक्मूढ़ बने नहीं, उदासीनता से दुपले हुए नहीं, आत्मा की भूख मिटाने, व्याघ्र छिपाने में उन्हें अभिश्रान्त श्रम किया है, पाप पुंज के अग्नि समान और अन्याय के शत्रु समान वे हमेशा गर्जित्व करके रहे, कभी भी कोमलता नहीं त्यागी, श्रीकृष्ण को एक ब्राह्मण ने लात मारी उसे अलंकार की तरह धारण करती, गांधारी ने चोर आप दिया, जिसे श्रीकृष्ण ने अधिक सम्मान दिया, साधु सरिता की ओट होजाने पर भी श्रीजी ऐसे ही अविचलित, गंभीर और महासागर बने रहें ।

“ आक्षार सिंधु महा शोधक मोती नोंतु !
 दोरी बिना उदधि ने तलीये ज्वानुं !
 त्यांमच्छसिंधु महि, व्हाय गली जनारा !
 तोफान गिरि मूल तेय उखेड़नारा !
 ते राक्षसोनी उपर प्रीति राखवानी !
 ते राक्षसोनी सहसा अब दैव अंश !

छे युद्ध तो जगावतुं, पण प्रेण प्रेम राखी !
लोही लीधा वगर लोही दइज देवु ”
कलापी

एमर्सन के ये वाक्य यहा याद आजाते हैं ।

“Doubt not O Poet but persist say it is in me
and shall outstand there, bulked and dumb shu'tering
and stammering hissed and hooted, stared and strive
until a last ruge draw out of thee that dream power
which every night shows thee is thine own A man
transcending all limit and privacy and by virtue of
which a man is conductor of the whole river of
electricity ”
Emerson

स्मरणशक्ति ।

पूज्यश्री की जैसी स्मरणशक्ति अच्छे २ अवधानियों में भी
नहीं दिखती, उनही असाधारण स्मरणशक्ति के एक दो उदाहरण
यहा देता हूं ।

पूज्यश्री राजकोट विराजते थे, तब एक दिन मोरवी से कितने
ही अग्रगण्य आशक मोरवी पधारने के लिये विनन्ती करने आये
थे. उनमें सेठ अम्भावीदास डोसाणी भी थे जब सेठ अम्भावी-
दास भाई ने वंदना की, तब महाराज भी ने उनका नामले 'जी' कहा,

यह देखे अम्भावीदास भाई को वड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हा-भ कहा कि “ महाराज श्री ! मुझे तो आज ही पहिले पहल आपके दर्शन का लाभ मिला है तब आप मुझे कैसे पहचान सकें ? पूज्यश्री ने कहा कि अजमेर कॉन्फरन्स के समय मैंने तुम्हारा फोटो देखा था, उस पर से मैं तुम्हें पहचान सका हूँ ।

उदयपुर के श्रावक रतनलालजी मेहता कहते कि “ उदयपुर में हम रात्रि के समय पूज्य श्री के साथ आधे रात वाँतने तक ज्ञान चर्चा करते रहते थे । पूज्य श्री अंदर मकान में विराजते और हम बाहर बैठते थे तब कोई श्रावक वहां से जाता तो तुरन्त महाराज श्री कह देते कि ये अमुक श्रावक है जिससे उपस्थित श्रावकों को अत्यन्त आश्चर्य पैदा होता । एक समय मैंने प्रश्न किया कि महाराज हम उसे वहाँ पहचान सकते और आप अंधेरे में भी उसे कैसे पहचान सकते हैं ? पूज्य श्री ने उत्तर में फरमाया कि उसकी चाल और पग रव पर से मैं अनुमान कर सका हूँ इन्ही तरह बाहर प्राम के आये हुए श्रावक रात को वंदना करने आते और ‘ मत्थएण वंदामि ’ बोलते ही उसे सुन पूज्य श्री उसे पहचान लेते थे । बहुत वर्ष बीत जाने पर भी अंधारे में केवल आवाज से ही पूज्य श्री पहचान सकते थे ।

अपने समागम में सिर्फ एक ही समय जो मनुष्य आया हो

उसका नाम ठाम पूज्य भी नहीं भूलते थे । भण्डाय वाले पंडित विहारिनाथजी इस के सबूत में सत्य कहते हैं कि:—

“ मुझे इनकी अद्भुत स्मरण शक्ति देख अत्यन्त आश्चर्य होता था और कभी २ मुझे ऐसा भान होता कि ये मनुष्य हैं या देवता हैं ।

कर्तव्य पालन में सावधानी ।

आचार्य पद प्राप्त हुए पश्चात् दूसरों की तरह अपना प्रचार बढ़ाने की ओर पूज्य भी का बिलकुल लक्ष न था, परन्तु अपनी आज्ञा से बिचरने वाले चतुर्विध संघ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य तब को बढ़ा कर जैन शासन की वृद्धि करें यही उनका परम ध्येय था । पूज्य भी अपने साधुओं से बार बार कहते कि:—

“ तुमने विद्याही है और घर कुटुम्ब की सब को छोड़ दिया है सो अब उनके काम के सो तुम नहीं रहे हो यह विद्या विवामखि रत्नों का हार है इसको अच्छी तरह से पालने में उत्कृष्ट रस आवेगा तो सिर्फ एक भव कर के मोक्ष में चले जाओगे संसार के सुख वैभव भुंगने की मुठी समान हैं सो इस भुंगने की मुठी के वास्ते विवामखि रत्नों का हार मत छो बैठना ” व्याख्यान पाचने वाले साधुओं को उद्देश्य कर वे कहते कि:—

“अन्य को उपदेश देना सरल है परन्तु उस सुआफिक वर्ताव करना कठिन है उपदेशक होने की अपेक्षा आदर्श होने में ही अपना और जगत का श्रेय विशेष सिद्ध कर सकते हैं इसलिये सुनियों ! तुम उपदेशक होने के पहिले दृष्टांत रूप बनो । बचन की अपेक्षा वर्ताव में बल अधिक है उत्तम वर्ताव कभी भी न धिसे ऐसे गहन संस्कारों द्वारा परिचित जनों के हृदय पट पर अंकित हो जाता है ” ।

पूज्य श्री बाह्य त्याग की अपेक्षा आंतर त्याग को प्रधान पद देते और कहते कि:—

“ विषय कषाय के त्याग रूप आंतर त्याग विना सिर्फ बाह्य त्याग जीवन के विना बेह विना नीर के कुप जैसा है । वे कहते कि:—

कामना सब दुःखों की जननी है । निष्काम वृत्ति धारण करना यही सुख प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है । सारे जल के पीने से तृषा तृप्त नहीं होती परन्तु बलती अधिक तृषा लगती है इसी तरह विषयों के सेवन से विषय वासना घटती नहीं परन्तु उलटी अधिक बढ़ती है ”

“ अशुचि मय शरीर पर मोह ममत्व रखना यह बड़ी भारी भूल है । शरीर के अन्दर जो २ वस्तुएं हैं वे अगर शरीर के ग्रह

भाग पर होती तो उसे खाने को गद्दि कोण, इत्यादि पक्षी शरीर पर गिरते और उन्हें हटाने में ही अधिक समय व्यतीत करना पड़ता । ”

“ मुनिधो ! तुम जो ससार के सुत्र बंधनों से पूर्ण वैराग्य पूर्वक मुक्त हुए हो अगर हो जाओ तो तुम आनन्द का भूमि में विचरने वाले हो । भय और दुःख तो हमेशा तुम्हारे से दूर ही रहेंगे । दुनिया जिसे दुःख २ कह कर रोती है उसे तो तुम आनन्द देने वाली मःन लांगे ”

“ केवल शास्त्र पढ़ने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती परन्तु शास्त्र की आज्ञानुसार चलने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है ” ।

उपरोक्त सद्बोधामृत का अपने शिष्य समुदाय को पान करा कर कर्तव्य पावन के लिये उचित प्रोत्साहन देते थे और अपने उत्तम चरित्र बल से सम्प्रदाय की नाव सही सलामत रीति से रास्ते पर आगे बढ़ाते चले जाते थे ।

अनुविध बंधनो पूज्यजी परमावलम्बन के समान थे । सत्पुण्य सद्गुण और सद्दर्शन की जति जागती मूर्ति हैं सब सग परिवर्ती किये हुए महात्माओं के देखने दी उनके दर्शनपात्र से ही कोई संस्कारी जीवों को उनके उत्तम गुणों के अनुकरण करने की राह:

ही स्फुरणा हो आती है। सचमुच महात्मा पुरुष इस अंधकार मय संसार समुद्र में फिरती हुई जीवन नौकाओं को खराब मार्ग में टकराकर नाश होने से बचाने वाली दीपदाडियों के समान है।

श्री वीतराग प्रभु की आज्ञा का विराधन न हो और अपनी आज्ञा में विचरते साधु आचार में शिथिल न हो जायं सिर्फ इसी के लिए उन्होंने शोभते साधुओं को अपनी सम्प्रदाय से अलग करने में तनिक भी देर न की थी जो वे थोड़ी भी झुकती दौरी कर देते तो भिन्न हुए कितने ही विद्वान् साधु, वक्ता, शास्त्र के ज्ञाता सुप्रसिद्ध मुनि और स्तेवर उनकी आज्ञा में चलना अपना गौरव समझते, परन्तु जिनाज्ञा को अपना सर्वस्व मानने वाले पूज्य श्री ने उनकी आज्ञा के बाहर एक पांव भी रखना न चाहा। पूज्य श्री के लिए यह सचमुच कसौटी का प्रसंग था और जिसमें भी उन्हें "प्राणान्ते ऽपि प्रकृति विकृतिर्जायते नोत्तमानाम्" अर्थात् उत्तम पुरुष की प्रकृति में प्राणांत कष्ट तक भी विकृति नहीं हो सकती यह कथन सत्यता सिद्ध कर दिखा सकता है।

प्रत्येक महान पुरुष को अपने युग के बड़े से बड़े खास अन्यायों के साथ लड़ना पड़ता है। जिस से क्राइष्ट हजरत महमद, गौतम बुद्ध, मार्टीन ल्युथर और अपने लौकाशाह इन सबको अपने युग की कठिनाइयों और अन्याय के साथ लड़ना पड़ा था, कइयों

को मरना भी पड़ा था पूज्य भी को भी चारित्र शुद्धि के लिये अपना आत्मभोग देना पड़ा था ।

फांसी की सजा पाए समाज वाद के एक कवि जोहले ने कहा है कि ।

Don't mourn for me,
Friends ! organise !

दोस्तो ! मेरे लिये शोक न करते समाजको सुख्यस्थित करने ऐसा ही उपदेश भीजी के अवसान समय का था.

त्याग

“ धर्म के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रथम सोपान त्याग है जहाँ तक बने वही त्याग तक मत स्वीकार करें ”

स्वामी विवेकानन्द

पूज्यभी के रक्त के एक २ अणु में त्याग की भावना उद्भूत रही थी दुनिया घन दोलत हाट हथेली की इत्यादि गिनाकर आनंद पाती है परन्तु पूज्यभी इन सब के त्याग में परमानन्द अनुभव करते थे. बाघ और अतर इन दोनों प्रकार के त्याग से वन्हों ने आत्माको समुत्थल किया था. सर्व संग परित्यागी और तपोधन महत्माओं के देखते ही त्याग वैराग्य की बर्णिया देखनेवालों के

हृदय में उछलने लगती ऋद्धि और रूप गुणवती रमणी को छोड़ घोर कष्ट सहने वाले इन साधु शिरोमणि के दर्शन मात्र से ही बहुत से लखपति और करोड़पति के हृदय में दान के गुण स्वतः प्रकटते और यथाशक्ति दान पुण्य करने की वृत्ति सहज ही हो जाती ।

सचमुच सत्पुरुष सद्गुणों की जीती जागती मूर्ति है, इस अंधकार मय संसार समुद्र में पर्यटन करती हुई अपनी जीवन नौका को चट्टान से टकराकर नाश होने से बचाने वाली ये दीप शिखाएं हैं, उन्नति की दिशा बताने वाले ये ध्रुव के तारे हैं ।

Be in the world, not of the world.

निरहंकार वृत्ति ।

दूसरे जब कीर्ति के पीछे दौड़ते फिरते हैं और जहां तहां अपनी बड़ाई के फव्वारे छोड़ते हैं वहां पुज्य श्री कीर्ति को उन्नति के पथमें अंतराय सम समझ उस से दूर भागते थे.

पहिले पाठक देख चुके हैं कि पूज्य श्री पूर्ण शास्त्र विशारद, समर्थ ज्ञानी होने पर भी श्रावकों से चर्चा करते समय क्वचित् 'कोई गहन प्रश्न का निराकरण करने में उन्हें कठिनता प्रतीत होती तो उस समय वे बिना संकोच कह देते कि इस समय मेरी बुद्धि

काम नहीं देती एक बड़े आचार्य होने पर सभा में एप्र ऐसा बड़
नेवाले निरमिमानी स्थितिक रत्न जैसे निर्मल हृदय के मशाम
भिरले ही होंगे ।

लिपही मन्प्रदाय के विद्वान् मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज
की प्रशंसा करते हुए पूज्य श्री कहते कि अमुक सिद्धांत बचन का
सचचा रहस्य मुझे उन्होंने समझाया है । इसी तरह गौडल संपाद
के आचार्य श्री जसाजी महाराज के ज्ञान की भी वे तारीफ करते
थे । पंडित श्री रत्नचंदजी महाराज के पास से विनय पूर्वक चंद्रप्र-
ज्ञप्ति सूत्रकी मांजना लेते थे, यह कितनी अधिक लघुता ।

पूज्य श्री किसी माम पधारते या कहीं से बिहार करते उषकी
खबर भावकों को ॥ होने देते थे, एक समय खतरपुरे से व्याघ्र
पधारते थे तब रास्ते में खबर मिली कि सैकड़ों भावक आविकाप
आप के सम्मुख आ रहे हैं महाराज श्री ने यह सुन दूसरी राह ली
और बिकट रास्ते थक एक छोटे से माम में पचारे वहां ओषवाल
का एक भी घर न था । उसने कहा कि हमारी पीडियां घटिगई परंतु
कोई साधुजी यहां पचारे ऐसा मैंने नहीं सुना ।

पूर्ण योग्यता न होने पर भी आचार्यपद प्राप्त करने के लिये
कितने ही साधु तनखोड़ परिश्रम और व्यर्थ के दावे रखते हैं ।

परन्तु पुज्य श्री को आचार्यपद प्राप्त होते भी उन्होंने सं० १९७१ में अपने बहुत से अधिकार अपनी सम्प्रदाय के सुयोग्य मुनिवरों को सुपूर्द कर स्वतः ने अपने सिर का भार हलका किया था ।

अखिल भारतवर्ष के साधु मार्गी जैन सम्प्रदाय में सत्र से अधिक साधुओं पर आधिपत्य धरानेवाले ये पूज्य श्री थे और उन के सदुपदेश से अनेक भव्यात्मियों ने वैराग्य पा दिक्षा लेा थी तौभी आश्चर्य यह था कि उन्होंने अपनी नेत्राय में एक भी शिष्य न किया । उन्होंने तो दिक्षा न लेने के पहिले शिष्य न करने का निश्चय कर लिया था ।

शिष्य के लिये संयम लुटानेवाले, चाहे जिसे मूंड अपने परिवार या नाम बढ़ाने की आकांक्षा वाले साधु पूज्य श्री का अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो ? करोडो तारों से जो अंधकार दूर नहीं होता वह सिर्फ एक चंद्र से दूर हो सकता है । जैन समाज में अभी भी लालजी जैसे चंद्र की आवश्यकता है । वेपधारी या जैनाभावी, प्रमादी, या पासत्ये के मुंड के मुंड मूंड कर इकट्ठे करते से उसका ऊद्धार नहीं हो सकता । वे जो जैन शासन रूपी सूर्य को राहू रूपे और जगत के केवल भाररूप हैं ।

परमत सहिष्णुता ।

एकांत में या व्याख्यान में पर धर्म की निंदा का एक शब्द

काम नहीं देती एक बड़े आचार्य होने पर सभा में १५८ पैसे का
नेवाले निरमिमानी रक्षितिक गन जैसे निर्मल हृदय के महापुरुष
भिरले ही होंगे ।

लिवहो मन्त्रदाय के विद्वान् मुनि श्री वत्तमचंदजी महाराज
की प्रशंसा करते हुए पूज्य भी कहते कि अमुक सिद्धांत वचन का
सच्चा रहस्य मुझे उन्होंने समझाया है । इसी तरह गौडल संघाके
के आचार्य श्री जसाजी महाराज के ज्ञान की भी वे शारीक करते
थे । पंडित भी रत्नचंदजी महाराज के पास से विनय पूर्वक चंद्रप्र-
ज्ञप्ति सूत्रकी बांधना लेते थे, यह कितनी अधिक लघुता ।

पूज्य श्री किसी माम पधारते या कहीं से बिहार करते ठहर
खबर भावकों को न होने देते थे, एक समय छतपुरे से व्यास
पधारते थे तब रास्ते में खबर मिली कि सैकड़ों भावक आनिका
आप के सम्मुख आ रहे हैं महाराज भी ने यह सुन दूसरी राह ली।
और बिकट रास्ते चर्र एक छोटे से माम में पधारे वहाँ ओझवाल
का एक भी घर न था। उसने कहा कि हमारी पीढ़ियाँ बीत गई परंतु
कोई साधूजी यहाँ पधारे ऐसा मैंने नहीं सुना ।

पूर्ण योग्यता न होने पर भी आचार्यपद प्राप्त करने के लिये
कितने ही साधु वनतोड़ परिश्रम और व्यर्थ के दावे रखते हैं ।

परन्तु पुज्य श्री को आचार्यपद प्राप्त होते भी उन्होंने सं० १९७१ में अपने बहुत से अधिकार अपनी सम्प्रदाय के सुयोग्य मुनिवरों को सुपुर्द कर स्वतः ने अपने सिर का भार हलका किया था ।

अखिल भारतवर्ष के साधु मार्गी जैन सम्प्रदाय में सब से अधिक साधुओं पर आधिपत्य धरानेवाले ये पूज्य श्री थे और उन के सदुपदेश से अनेक भव्यात्मियों ने वैराग्य पा दिक्षा ली थी तौभी आश्चर्य यह था कि उन्होंने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न किया । उन्होंने तो दिक्षा न लेने के पहिले शिष्य न करने का निश्चय कर लिया था ।

शिष्य के लिये संयम लुटानेवाले, चाहे जिसे मूँड़ अपने परिवार या नाम बढ़ाने की आकांक्षा वाले साधु पूज्य श्री का अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो ? करोड़ों तारों से जो अंधकार दूर नहीं होता वह सिर्फ एक चंद्र से दूर हो सकता है । जैन समाज में अभी श्री लालजी जैसे चंद्र की आवश्यकता है । वेप-धारी या जैनाभावी, प्रमादी, या पास्त्ये के मुँड़ के मुँड़ मूँड़ कर इकट्ठे करने से उसका ऊद्धार नहीं हो सकता । वे जो जैन शासन रूपी सूर्य को राहू रूपे और जगत के केवल भाररूप हैं ।

परमत सहिष्णुता ।

एकांत में या व्याख्यान में पर धर्म की निंदा का एक शब्द

भी पूज्य श्री के मुँह से न निकलता था। इतना ही नहीं परन्तु अन्य दर्शी पूज्य श्री की वाणी सुन सन्तुष्ट होने थे।

जोधपुर के चातुर्मास में एक समय एक रामस्नेही सम्प्रदाय के अनुयायी गुलाबदासजी अमवाल जो अभी पके जैनी हैं पूर भी के पास आ प्रभ किया कि महाराज मुझे कोई ऐसा सीधा सरल वपाय बताइये कि जिससे मेरा मन शांत और स्थिर रहे।

महाराज भी ने कहा कि भाई, तुम रामको जपते हो, उघीवरद्विष को विशेष एकाग्र कर निरंतर रामनाम जपते रहो भक्ति से तुम्हारा मन पवित्र और शांत हो जायगा। यह सुनकर तथा महाराज भी की सच धर्म पर ऐसी उदार भावना देखकर वे महाशय अत्यन्त आनंदित हुए और पूज्य श्री के सख्त से जैन धर्म का रहस्य समस्त जैन धर्म बन्होंने प्रेम पूर्वक स्वीकार किया।

वह उपदेशक अन्यधर्म की निंदा कर उस धर्म को जैन-धर्म के अनुयायी बनाने की आशा रखते हैं परन्तु इसका परिणाम बलटा होता है लोग ऐसे निंदको से हमेशा भड़क कर दूर भागते हैं ज्ञानी पुरुष शुद्ध आत्मिक प्रेम की शृंखला से दुनिया को युक्ति मार्ग की ओर लगाते हैं अन्य सम्प्रदाय या धर्म की निंदा करने से सम्प्रदाय की सेवा बचाने का श्रम कइयों के हृदय से बन्होंने निकलवा दिया है।

परनिंदा परिहार ।

पूज्य श्री कदापि किसी की निंदा न करते और न सुनते थे और अपने भक्तों को भी निंदा से सर्वथा दूर रहने का आग्रह पूर्वक उपदेश देते थे इसके लिए सिर्फ एक ही दृष्टांत बत है ।

सं० १६७६ के पौष माह में पूज्य श्री जावद में विराजते थे तब रतनाम के श्रावक बालचंदजी श्रीमान पौषव कर पूज्य श्री की सेवा में बैठे थे उस समय जावरे के एक श्रावक ने आकर तेज-सिंहजी महाराज की सम्प्रदाय के साधु प्यारचंदजी तथा इंदरमलजी से संभोग प्रारंभ करने के लिए पूज्य श्री से अर्ज की और विशेषता में कहा कि अभी ऐसा ही मौका है जो आप विचार न करेंगे तो दूसरे पक्ष वाले दुश्मन इन्हें मदद देंगे । यह वाक्य सुनकर आचार्य श्री बोले कि भाई तुम दुश्मान किसे कहते हो ? वे तो हमारे परम मित्र हैं उनकी प्रवृत्ति से हमें अपना चारित्र्य विशेष विशुद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

उस समय वहां वे दोही श्रावक थे । और दोनों पूज्य श्री के परम भक्त थे, तोभी एकांत में भी पूज्य श्री दूसरे पक्षवाले को परम प्रिय समझ बातचीत करते थे ।

उपरोक्त घटना घटी उसी दिन पूज्य श्री ने बातचीत में बाल-

चंदजी श्रीमाल से कहा कि मेरे सम्बन्ध में इस मामले में कुछ भी लेख निंदा या स्तुति रूप तुम्हें नहीं छपाने चाहिए ।

इसके सौगंध लेजो, परन्तु उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, तब पूज्यश्री ने फिर फरमाया कि ओ सुम सौगन्ध न लेओगे तो मैं तुमसे योतनाभी बढ़ कर दूंगा, तब उन्होंने उसी समय सौगन्ध लेलिये ।

दूसरे उनकी निंदा करते हैं ऐसे शब्द कभी वे सुनते तो उस मौके पर पूज्यश्री की गंभीर मुद्रा पर उसका अनुमान भी असर नहीं होता था, तथा एक ही शब्द उनके मुंह से निंदा में असममता का इसके प्रतिकूल कभी नहीं निकलता था ।

किसी भी धर्म वाले के साथ बढ़ाई के कारण साक्षार्थ करने विवहावाद में उतरने के लिये पूज्यश्री विलकुल सुरा न थे, जिसका मुख्य कारण अपनी वाणी विवेक बचाये रखना ही था ।

सं० १६७५ के चातुर्मास में एक समय उदयपुर में पूज्यश्री के व्याख्यान में एक वक्ता ने अपने भाषण में अमुक पक्ष के साधुओं की प्रशंसा के लिये सत्य परन्तु कटु टीका की, इस टीका के संगताचरण में ही पूज्यश्री पाटवर से उठकर चले गए ।

उदयपुर में तीन आचार्यों के चातुर्मास संवत् १६७१ में एक साथ हुए थे, उस समय खेरहंपंथी एवम् मूर्तिपूजक भाइयों ने

निंदा टूटवाजी इत्यादि कई लेशवर्धक प्रवृत्तियों की । परन्तु पूज्यश्री ने अनुपम क्षमा और शांति धारण कर निंदकों को प्रशंसक बना लिये थे, उनके साथ पूज्यश्री का प्रेममय वर्ताव " द्वेष का नाश द्वेष से नहीं परन्तु प्रेम से ही होता है " इस आत्मवाक्य को चरितार्थ करता था । पूज्यश्री का प्रेममय व्यवहार जावरे वाले मुक्ति-राजों के निम्नांकित काव्यों से स्पष्ट समझा जायगा ।

राग आसावरी ।

पूजजी के चरणों में धोक हमारी, जाऊं क्रोड़ २ बलीहारी

पूजजी के चरणों में धोक हमारी ।

टोक नम्र में रेनो थो मुनि को, मात पिता परिवारी ।

गुरु मुख उपदेश सुनीने, लीनो संजम भारी ॥ पूज० ॥ १ ॥

आतम वस कर इंद्री जीती, विषय विकार विडारी ।

वैराग्य माहे जली रया हो, धन २ हो ब्रह्मचारी ॥ पूज० ॥ २ ॥

होकम मुनि की संप्रदाय में, प्रगट भये दिनकारी ।

आचारज गुण करने दीपो, महिमा फैली चउदिशकारी ॥ पू० ३ ॥

नाम आपको श्रीलालजी, गुण आपका है भारी ।

चारों संग है मिल पदवी दीनी रत्नपुरी पुजारी ॥ पूज० ॥ ४ ॥

बीजचंद्र ज्युं कला बढ़त है, पूरण लो उपकारी ।

निरखत नैना तृप्त न हेवे, सूरत मोहनगारी ॥ पूज० ॥ ५ ॥

बंदजी श्रीमाल से कहा कि मेरे सम्बन्ध में इस मामले में कुछ भी लेख निंदा या स्तुति रूप तुम्हें नहीं छपाने चाहिए ।

इसके सौगंध लेलो, परन्तु उन्होंने ने कुछ उत्तर न दिया, तब पूज्यभी ने फिर फरमाया कि जो सुम सौगन्ध न लेओगे तो मैं तुमसे दोस्तनाभी बंद कर दूंगा, तब उन्होंने वही समय सौगन्ध लेलिये ।

दूसरे उनकी निंदा करते हैं ऐसे शब्द कभी वे सुनते तो वस मौके पर पूज्यभी की गंभीर मुखमुद्रा पर उसका अणुमात्र भी असर नहीं होता था, तथा एक भी शब्द उनके मुँह से निंदा या अप्रदक्षता का इसके प्रतिकूल कभी नहीं निकलता था ।

किन्ती भी धर्म वाले के साथ बर्झाई के कारण शास्त्रार्थ करने बितडावाद में उतरने के लिये पूज्यभी बिलकुल दुरा न थे, जिसका मुख्य कारण अपनी बाणी विवेक वचाये रखना ही था ।

सं० १६७५ के चातुर्मास में एक समय उदयपुर में पूज्यभी के व्याख्यान में एक वक्ता ने अपने भाषण में अमुक पक्ष के साधुओं की प्रवृत्ति के लिये सत्य परन्तु कटु टीका की, इस टीका के मंगलाचरण में ही पूज्यभी पाटवर से उठकर चले गए ।

उदयपुर में तीन आचार्यों के चातुर्मास ध्वन १६७१ में एक-साथ हुए थे, उस समय तेरहपंथी एवम् मूर्तिपूजक भाइयों ने

चौथे पाठ हुआ चौथमलजी महा गुणवंता,

हुआ पंडितों में परमाणु आचार्य दीपंता ।

केई जणा को दियो ज्ञान ध्यान और साजे ॥ हु ॥ ४ ॥

अब पंचम पाठे आप हुआ बड़ भागी,

श्रीलालजी महा गुणवंत छती के त्यागी,

कियो धर्म अधिक उद्योत मिथ्यात्वी लाजे ॥ हु ॥ ५ ॥

ये मुनी माल रसाल ध्यान नित धरना,

हीरालाल कहे इस धर्म उन्नति करना ।

जीवागंज कियो चौमासो मोक्ष के काजे ॥ हु ॥ ६ ॥

अथ स्तवन ।

पूज्यजी सीतल चंद्रसमान, देखलो गुणरतनो की खान ॥ टेर

जिन मारग में दीपितासरे, तीजे पद महाराज ।

कली कालमें प्रगट भये हो, दया धर्म की जहाज ॥ पु ॥ १ ॥

पूर्व पुण्य में आप पूज्यजी पूरा पुण्य कमाया ।

धन्य है माता आपकी, सरे ऐसा नंदन जाया ॥ पु ॥ २ ॥

सीठी चाणी सुणी आपकी, खुशी हुए नर नार;

फागण सुद पूनम के ऊपर कियो घणो उपकार ॥ पु ॥ ३ ॥

क्या तारीफ करू में आपकी, वाणी अमृतधारी ।
 मुझ ऊपर किरपा भट्ट कीजे, पूरख होत विचारी ॥ पूज० ॥ ६ ॥
 उगलीसे इकसठ साल में रतनपुरी मुजारी ।
 चोथमल की याही बिनती, कदमों में धोक हमारी ॥ पूज० ॥ ७ ॥

पूज्य श्री हुक्मीचंद्रजी महाराज की पाटावली ।

इस भरत खण्ड में तरण तारण की जहाजे
 हुआ हुक्मीचंद्रजी महाराज सुधारे कामे ॥ टेर ॥

इकवीस वर्ष लग घेले तप ठाया,
 इक वस्तर ओढ़त, ओढ़त अंग और लगाया ।
 करी आचार विचार को शुद्ध सिंघ जिम गाजे ॥ हु ॥ १ ॥

पीछे पूज्य श्री सीवलालजी महा वश लीनो,
 तेतास वर्ष तक्र तप एकांतर कीनो ।
 बहुविधि सम्प्रदा साधु साध्वी आने ॥ हु ॥ २ ॥

श्री उदयचंद्रजी महाराज आचरज भारी,
 केई राजा को समझाय आत्मा तारी ।
 ये तो हुआ जगत बिरुयात सिंघ जिम गाजे ॥ हु ॥ ३ ॥

छः सात और आठ उपवास के भी उन्होंने कई स्तोक किये हैं सात २ आठ २ उपवास के दिन भी पूज्य श्री स्वयं ही व्याख्यान फरमाते थे ।

तेरह उपवास का भी एक स्तोक पूज्य श्री ने किया था ।

वैयावृत्यः—स्वयं आचार्य होने पर और शिष्य समुदाय भी अति विनीत होने पर भी आप स्वयं आहार पानी लाते और शिष्यों के लिये भी ला देते थे । इतना ही नहीं परन्तु पात्र, भोली, पल्ले, इत्यादि भोने या पानी छानने इत्यादि के कार्य में भी वे शिष्यों की पूरी मदद करते थे । उनके विनयव्रत शिष्य ये काम न करने के लिये पूज्य श्री से बार २ निवेदन करते परन्तु वे अपने स्वभाव के कारण प्रमाद न कर कोई न कोई धर्म कार्य या वैयावृत्य में लगे रहते थे ।

अल्पनिद्रा और स्वाध्यायः—पूज्य श्री रात को १० या १२ और कभी २ एक बजे तक निद्राधीन न होते थे और एक दो या तीन बजे जागृत हो जाते थे । एक प्रहर से अधिक निद्रा व क्वचित ही लेते थे । नित्य प्रति रात को दो से तीन बजे तक निद्रा से जागृत हो सूत्र की स्वाध्याय करते थे । बहुत से सूत्र उन्होंने कंठस्थ कर लिये थे । उसमें से दशवैकालिक सूत्र का पाठ तो वे सबसे पहिले कर लेते थे । फिर उत्तराध्ययन के कितने

हाथ जोड़ कर करुं-वीनती, अरजी पर चित दीजे ।
 बनी रहे सुनजर आपकी, चरणोंमें रख लीजे ॥ पु ॥ ४ ॥
 भवजीवां ने तारतासरे, किरपा करी दयाल,
 रामपुरे महाराज विराजे, रखा कल्पतो काल ॥ पु ॥ ५ ॥
 उगयी से त्रेसठ पुज्यजी, ठाया एक सहस्र आठ
 रामपुरा में खूब लगाया, दया धर्मका ठाठ ॥ पु ॥ ६ ॥
 महाष्टुनि नंदलाल तणा शिष्य, कहे सुणो गुरुदेवा ।
 दो दिन भलो ऊगसी सरं, मिले आपकी सेवा ॥ पु ॥ ७ ॥
 (मुनि खूबचंदजी कृत

तपश्चर्या ।

एकांतरः—पूज्य भी के ३३ चातुर्मासों में एक भी चातुर्मास
 ऐसा शायद ही गया होगा कि जिस में आपाद श्रीमासे से
 संवत्सरी तक उन्होंने एकांतर उपवास न किये हों । कई बरस ये
 कार्तिक पूर्णिमा तक उपवास प्रारंभ रखते थे ।

बेला, तेला, खोला, पचैला, तो उन्होंने इतने किये हैं कि उन
 का पूरी २ गिनती बेना भी अशक्य है । पूज्य पदवी प्राप्त होने के
 पश्चात् ६ वर्ष तक तो हर महिने में एक २ तेला बिना नागा करते
 थे । फिर भी कोई एकही ऐसा मास गया होगा कि जिस में पूज्य
 भी ने तेला न किया हो ।

छः सात और आठ उपवास के भी उन्होंने कई स्तोक फिये हैं सात २ आठ २ उपवास के दिन भी पूज्य श्री स्वयं ही व्याख्यान फरमाते थे ।

तेरह उपवास का भी एक स्तोक पूज्य श्री ने किया था ।

वैयावृत्यः—स्वयं आचार्य होने पर और शिष्य समुदाय भी अति विनीत होने पर भी आप स्वयं आहार पानी लाते और शिष्यों के लिये भी ला देते थे । इतना ही नहीं परन्तु पात्र, भोली, पल्ले, इत्यादि धोने या पानी छानने इत्यादि के कार्य में भी वे शिष्यों की पूरी मदद करते थे । उनके विनयवन्त शिष्य ये काम न करने के लिये पूज्य श्री से बार २ निवेदन करते परन्तु वे अपने स्वभाव के कारण प्रमाद न कर कोई न कोई धर्म कार्य या वैयावृत्य में लगे रहते थे ।

अल्पनिद्रा और स्वाध्यायः—पूज्य श्री रात को १० या १२ और कभी २ एक बजे तक निद्राधीन न होते थे और एक दो या तीन बजे जागृत हो जाते थे । एक प्रहर से अधिक निद्रा व क्वचित ही लेते थे । नित्य प्रति रात को दो से तीन बजे तक निद्रा से जागृत हो सूत्र की स्वाध्याय करते थे । बहुत से सूत्र उन्होंने कंठस्थ कर लिये थे । उसमें से दशवैकालिक सूत्र का पाठ तो वे सबसे पहिले कर लेते थे । फिर उत्तराध्ययन के कितने

ही अध्ययनों का पाठ करते थे । इसके पश्चात् आचारांग सूत्र-
कृतांग, नंदी, सुखविपाक इत्यादि जो सूत्र कंठस्थ थे उनमें से
किसी सूत्र का स्वाध्याय करते थे । फिर अर्थ का चिंतन और
तत्त्वविचार में लीन हो अप्रमादपन से रात निर्गमन करते थे,
संछयावद्ध स्लोक उन्हें कंठस्थ थे, उनकी पर्यटना वे हमेशा करते थे,
उनमें भी २४ ठीकंठों का लेखा ज्ञानलक्षि इत्यादि कई थोकों
की पर्यटना तो वे नित्य प्रति करते थे ।

कभी २ एक आध घंटे की निद्रा ले वे जागृत हो जाते और
स्वाध्यायादि में प्रवृत्त रहते थे । फिर निद्रा आने लगती तो स्वा-
ध्याय किये पश्चात् एक आध घंटा निद्रा लेलेते और प्रतिक्रमण
के वहिजे जागृत हो जाते थे, सूत्रों की स्वाध्याय कई समय वे
अपने शिष्यों के साथ करते, शिष्य भी जल्द बठ पूज्यभी के साथ
स्वाध्याय करने लग जाते थे.

धीमें २ परन्तु गंभीर और सुमधुर स्वर से इस स्वाध्याय
सुनने का जिन २ भाग्यशाली साधु भावकों को सुषयसर प्राप्त
हुआ है वे कहते हैं कि इनारे जीवन की वे सफ़्त घटिकाएं थी,
उस समय का दृश्य कितना रम्य, बोधप्रद और आकर्षक था कि
विक्रम अनुभव से ही ज्ञात हो सका है । सूत्र की अतीतिक्रमणी
का प्रवाह रात्रि की नीरव शांति में पूज्यभी जैसे पवित्र पुरुष के
मुख कमल में से बढ़ता तब उसका प्रभाव कुछ भिन्न ही पड़ता था ।

बालकों के शिक्षा देने का शौक ।

लघुवय से ही बालकों को सत्पुरुषों के संसर्ग का लाभ मिलता रहे तो उनके चरित्र का बंध उच्चतम हो जाता है । उत्तम गुण उनमें स्वयं प्रकट हो जाते हैं । इसीलिये प्राचीन समय क श्रावक अपने बालकों को व्यवहारिक शिक्षा देने के पश्चात् धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये सद्गुरुओं के पास भेजते थे ।

मोरवी में जब पूज्यश्री का चातुर्मास था तब जैन शाला के विद्यार्थी महाराज श्री के सत्संग का लाभ लेते. पूज्यश्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने के लिये अत्यंत आतुरता के साथ वे कोमल वयस्क बालक हमेशा पूज्यश्री के पास आते, भक्ति के रंग से रंगा हुआ उनका कोमल हृदय कमल वहां प्रफुल्लित होजाता था और विनय से झुककर उनके शीप कमल पूज्यश्री के पदकमल का स्पर्श करते थे. इस विधि के पश्चात् वे सब सुमधुर ध्वनि से " जयवंता प्रभुवीर " का गायन ललकारते थे. उस समय का दृश्य अत्यंत रमणीक लगता था. गायन के पश्चात् वे पूज्यश्री के पास मर्यादा से बैठ जाते थे. ऐसे छोटे बालकों के योग्य कर्तव्य समझाने के लिये पूज्यश्री अपनी रसालवाणी का प्रयोग युक्ति पूर्वक करते कि जिससे बच्चों को आनन्द के साथ ज्ञान प्राप्त हो और अपना कर्तव्य क्या है उसे स्पष्ट समझें ।

ही अध्ययनों का पाठ करते थे । इसके पश्चात् आचारांग सूत्र-कृतांग, नंदी, सुखविपाक इत्यादि जो सूत्र कंठस्थ थे उनमें से किसी सूत्र का स्वाध्याय करते थे । फिर अर्थ का चिंतन और तत्त्वविचार में लीन हो अप्रमादपन से रात निर्गमन करते थे, संख्यावद्ध श्लोक उन्हें कंठस्थ थे, उनकी पर्यटना ये हमेशा करते थे, उनमें भी २४ तीर्थंकरों का जेसा ज्ञानलब्धि इत्यादि कई थोकों की पर्यटना तो वे नित्य प्रति करते थे ।

कभी २ एक आध घंटे की निद्रा ले थे जागृत हो जाते और स्वाध्यायादि में प्रवृत्त रहते थे । फिर निद्रा आने लगती तो स्वाध्याय रुकिये पश्चात् एक आध घंटा निद्रा लेते और प्रतिक्रमण के पहिले जागृत हो जाते थे. सूत्रों की स्वाध्याय कई समय वे अपने शिष्यों के साथ करते, शिष्य भी जल्द वठ पूज्यभी के साथ स्वाध्याय करने लग जाते थे.

धीमें २ परन्तु गंभीर और सुमधुर स्वर से इस स्वाध्याय सुनने का जिन २ भाग्यशाली साधु भावकों को सुश्रवसर प्राप्त हुआ है वे कहते हैं कि इनारे जीवन की वे सफल घटिकाएं थी, उस समय का दृश्य कितना रम्य, बोधप्रद और आकर्षक था कि सिर्फ अनुभव से ही ज्ञात हो सका है । सूत्र की अलौकिक वाणी का पवाह रात्रि की नीरव शांति में पूज्यभी, जैसे पवित्र पुरुष के मुख कमल में से बढ़ता तब उसका प्रभाव कुछ भिन्न ही पड़ता था ।

मोरवी के जैसी शुभ प्रवृत्ति राजकोट के चातुर्मास में भी पूज्य श्री की ओरसे प्रचलित रही ।

अवकाश मिलने पर बालकों को अपने समीप बिठाकर पंच-परमेष्ठी मंत्र सिखाते थे, उसकी अपार महिमा समझाते, सोते उठते बैठते, प्रभु के नाम की गुणों की याद करने की सुचाते थे, नवकार मंत्र को उच्चारण करते समय चंचल मन अन्य विषयों में गति न करें इसलिये आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी की उपयोगिता समझाते, इतना ही नहीं, परन्तु बालकों को अनुपूर्वी की पुस्तक की मदद किए बिना ही अंगुली के इशारे द्वारा गिनने की रीति समझाते थे, ऐसी २ रीतियां सीखना बड़े मनुष्यों को भी कठिन और कंटा ले जैसा मालूम होती है, परन्तु पूज्य श्री की प्रशंसनीय शिक्षा पद्धति से बालकों को ये रीतियां सरल और आनंद प्रदायक मालूम होती थीं ।

अन्य मुनिवरों का ध्यान इस ओर खींचना लेखक अपना कर्तव्य समझ विनयपूर्वक प्रार्थना करता है । बालक ये भविष्य का संघ है थोड़े वर्ष पश्चात् धीरे शासन के रक्षा की धुरी इन्हीं के स्कंध पर रखी जायगी इसलिए उन्हें अभी से ऐसी शिक्षा देना आवश्यक है कि जिससे उनके हृदय में धर्म पर प्रेम जगे । वे धर्म के सत्त्व रहस्य को समझ सद्बर्ताव शाली और सुखी हो । एवं थोड़ी उम्र में ही वे धर्म को दिपाने वाले शासन के शृंगार रूप बन जायें नहीं

“ कम खाना और गम खाना, पढ़ना ज्ञान, देखना अपना दोष, मानना गुरु वचन, सुनना शास्त्र, ग्रहण करना हित-शिखा, देना हितोपदेश, लेना परायागुण, सहना परिपह, चलना न्यायमार्ग, खानागम, मारनामन, दमना इंद्रिय, तजना लोभ, भजना भगवंत, करना जीवाजीव का भजन, जपना जाप, तपना तप, खपाना कर्म, हरना पाप, मरना पंडित मरण, तरना भवसागर, करना सचका भला, धरना ध्यान, बढ़ाना क्रिया, रटना प्रभुनाम, हटाना कर्म, मांगना मुक्ति, लगाना उपयोग, करना जीवोंका उपकार, रोकना गुस्सा, छोड़ना अभिमान, तजना झूठ, त्यागना चोरी, छोड़ना पर स्त्री, रखना मर्यादा ”

ऐसे २ छोटे वाक्य बालकों को कंठस्थ पाद करवाकर उसका रहस्य वे ऐसी सूखी से तथा मनोरम दृष्टियों से समझाते कि बालकों के हृदय पर उनकी गहन छाप पड़ जाती कि जो कभी न हट सके और एक दही शिखा का अमल उस दिन से ही प्रायः प्रारंभ हो जाता था ।

पाठक! स्कूल में नीचे पाठ रटा २ बालकों के मस्तिष्क में ठूंस २ कर भरते हैं परन्तु उनका बहुत प्रभाव नहीं पड़ता । परम माता पिता बार २ जो शिक्षा देते हैं वे भी उनके मले मही बैठती, परन्तु ऐसे सचारित्र और प्रभावशाली महात्माओं के बोव से तत्काल प्रभाव पड़ता है यह उनके चारित्र का ही प्रभाव समझना चाहिए ।

मोरवी के जैसी शुभ प्रवृत्ति राजकोट के चातुर्मास में भी पूज्य श्री की ओरसे प्रचलित रही ।

अवकाश मिलने पर बालकों को अपने समीप बिठाकर पंच-परमेष्ठी मंत्र सिखाते थे, उसकी अपार महिमा समझाते, सोते उठते बैठते, प्रभु के नाम की गुणों की याद करने की सुचाते थे, नवकार मंत्र को उच्चारण करते समय चंचल मन अन्य विषयों में गति न करे इसलिये आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी की उपयोगिता समझाते, इतना ही नहीं, परन्तु बालकों को अनुपूर्वी की पुस्तक की मदद लिए बिना ही अंगुली के इशारे द्वारा गिनने की रीति समझाते थे, ऐसी २ रीतियां सीखना बड़े मनुष्यों को भी कठिन और कंटाते जैसा मालूम होती है, परन्तु पूज्य श्री की प्रशंसनीय शिक्षा पद्धति से बालकों को ये रीतियां सरल और आनंद प्रदायक मालूम होती थीं ।

अन्य मुनिवरों का ध्यान इस ओर खींचना लेखक अपना कर्तव्य समझ विनयपूर्वक प्रार्थना करता है । बालक ये भविष्य का संघ है थोड़े वर्ष पश्चात् बीर शासन के रक्षा की धुरी इनही के स्कंध पर रखी जायगी इसलिए उन्हें अभी से ऐसी शिक्षा देना आवश्यक है कि जिससे उनके हृदय में धर्म पर प्रेम जगे । वे धर्म के सच रहस्य को समझ सद्बर्ताव शाली और सुखी हो । एवं थोड़ी उम्र में ही वे धर्म को दिपाने वाले शासन के शृंगार रूप बन जायें नहीं

वो ज्ञान के बिना धर्म सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा का जो परिणाम होता आरहा है वह सब दृष्टिगत होता ही है ।

निश्चय पर अटलता ।

पूज्यश्री स्पर्शति और परिस्थिति का पूर्णता से विचार कर प्रयत्न बुद्धिमत्ता से जीवन के उद्देश निश्चित करते थे । फलां कार्य करना है और फलां नहीं करना है । वह मार्ग जाने योग्य है और वह अयोग्य है । ऐसी २ प्रतिज्ञायें लेते, फिर प्राण की परवाह न कर उन्हें बराबर पालते थे ।

देहं पातयामि या कार्यं साधयामि ।

यह इनका मुद्रा लेख था । छोटी वस्त्र ही से वे दृढ़निश्चयी थे । छोटे या बड़े प्रत्येक निश्चयमें वे मेरु की तरह अटल रहते थे ।

दीक्षा लेने का इनका निश्चय फिराने वास्ते कुटुम्बी जनों ने आकाश पाताल एक करखाता, अनेक परिषद आयें, कैद में भी रहे, परन्तु ये नेक सत्याग्रही महापुरुष अपने निश्चय से तनिक भी न हिले । साध्य प्राप्त करने की दृढ़भावना वाले महापुरुष अपने मार्ग में चाहे जैसे आवरण आवें उन्हें प्रबल पुरुषार्थ द्वारा कित-तरह दटा देने हैं इसकी शिक्षा पूज्यश्री के जीवन में पद २ पर

मिलती हैं । मन वश करने के लिये निश्चय की निश्चकता एक चक्रेष्ट साधन है और जिन्होंने मन जीता, उन्होंने सब जीत लिया । मन और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना यही सच्चा धर्म है । जगत् की सब सिद्धियां मन वश से मन की दृढ़ता से सिद्ध हो सकती हैं । पूज्यभी आशातीत उन्नति साध सके यह उनके मनोनिग्रह का ही आभार है उनके जैसे निश्चल निश्चयवान्, पवित्र चारित्रवान्, प्रभाविक महापुरुष की भावनाएं हृदय में उतारकर उनसा पुरुषार्थ कर स्व परहित साधना यही कर्तव्य है यही प्राप्तव्य है और यही परम साध्य है । यह कर्तव्य और प्राप्त व्यक्तित्वा समीप पासके उतनी ही जीवनयात्रा की सफलता है ।

अपने आर्य धर्मग्रन्थों का प्रधान आशय ऐक्यता से भरा हुआ है परन्तु मतामह के कारण ऐक्य की कड़िया ढीली होती जाती हैं और अवनति को अवकाश मिलता जाता है । स्वयं जानबूझकर जहर खाते हैं जानबूझ कर अपना अकल्याण अपने हाथ से ही करते हैं, स्वार्थपूर्णता के कारण प्रकृति ने न्याय न किया, कुदरत की प्रणाली पलटजाय, निश्चयनय खूंटि पर रक्खाजाय, वहां उदय की आशा व्यर्थ है । गीठे तरवरों की जड़ें काट फिर पत्तों के खिरने से उनकी पूजा करना हास्यजनक गिना जाता है, संदेह के बदले सत्यका आदर होना चाहिये । संदेह में पड़े रहने से भलाई किसमें है यह दृष्टिगत नहीं होती तो फिर भला कैस हो ?

एक अनुभवी महाशय सलाह देते हैं कि संसार में सत्य और मिथ्या का भिन्न सततर्फ फैला हुआ दृष्टिगत होता है उसमें मृत्यु को ग्रहण कर झूठ को त्याग देना यही मनुष्य कर्तव्य है । उस मनुष्य के देव और देवत्व प्राप्त करने में अधिक भोग देना पड़ता है । उस सत्य हृदय से आगे बढ़ा जाय और असाध्य के आकर्षणों से बचता जाय यही सच्ची कसौटी है ।

अंतःकरण में उठते असंख्य विचारों—विकारों को दश करने का बल यही हृदयबल, यही सर्वोत्कृष्ट बल ' साधयति आत्मकार्यं मिति माधुः । '



परिशिष्ट.

पण्डित प्रवर पूज्य श्री १००८ श्री जवाहीरलालजी महाराजानां
सुशिष्येण श्रीधासीलालजी मुनिना विरचितम् ।

स्वर्गवासि—

पूज्यप्रवर श्री १००८ श्रीलालजी महाराजस्य

पूज्यगुणादर्शकाव्यम् ।

श्रीसन्दोहलसत्स्वरूपाविभया यो मोदयन्मेदिनि
लावंलावमलीलवल्लवमपि क्रोधादिकर्मोद्भवम् ।
लङ्कानिर्दहनोपमं च मदनं योऽधाक् त्रिदुःखच्छिदे
मुक्तं पादचतुष्टयादिचरमैर्वर्णैरमुं स्तौम्यहम् ॥ १ ॥

जिन्होंने शोभा समूह से देदीप्यमान आकृति की प्रभा द्वारा संसार
को प्रसन्न किया, क्रोधादि कर्मों के कारणों को एक २ कर के काट
दिया एवं जिस प्रकार हनुमान् ने लङ्का का दहन किया
था ठीक वैसे ही जरा-जन्म-मरण रूप दुःखों को मिटाने के लिये
जिन्होंने काम को नष्ट करदिया, शरीर से मुक्त-उन पूज्य श्रीलालजी

मुनि की इस पद्य के लक्षणों चरणों के आद्यन्त अक्षरों से यन्दना पूर्वक
में स्तुति करता हूँ । लंका दहन की उपमा लोके कि है ॥ १ ॥

कल्याणमन्दिरनिमात्सुरमन्दिरस्थात्
श्रीलालपूज्यकरुणावरुणालयात् ।
कल्याणमन्दिरमवाप्तुमना विनमि
कल्याणमन्दिरपदात्तसमस्यया तम् ॥ २ ॥

कल्याणगार, स्वर्गस्थ, करुणानिधि पूज्य श्रीलालजी से अधिक
कल्याण प्राप्त करने की इच्छा से ही कल्याणमन्दिरस्तोत्र के पद को ~~अं-~~
न्तिम समस्या के रूप में लेकर उक्त श्लोक चरणों की स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

जन्मान्तरीयदुरितान्तविमत्तिरथ
सावद्यहृद्यमभिपद्य विपद्यमानः ।
पूज्य ! त्वदीयपदपद्ममहं श्रयाणि
कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि ॥ ३ ॥

हे पूज्य ! जन्मान्तर में किये पापों से बोधित, सम्प्रति भी
लुकाओं का ही ध्येय—भ्रष्ट समझ कर अपनाने से उद्धिग्न मैं आपके
चरणकमलों का आश्रय लेता हूँ । क्योंकि, आप के चरणकमल
ही मुझे निवृत्तन, अत्यन्त उदार, एवं पापों के नाशक हैं ॥ ३ ॥

* श्रीलाल मुनि वन्देऽहम्

अहम भाष्य के प्रत्येक श्लोक का आन्तिम पद कल्याणमन्दिर स्तोत्र में पूरा किया गया है—

दुःखी ग्वदुःखशमनाय सुखी सुखाय
 धामान् धियेऽधरदरं सुकृती शमाय ।
 यत्ते सुपूज्य ! शुभसन्न तदा स्मराणि
 भीताऽभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिघृग्मम् ॥ ४ ॥

हे सुपूज्य ! आपके जिन चरणों को दुःखी सुख की काम-
 ना के लिए, सुखी एकान्त सुख के निमित्त, बुद्धिमान् प्रज्ञावृद्धि के
 लिए, तथा धार्मिक जन शान्तिके लिए आत्ममात् करते थे, उन्हीं
 चरणों का मैं स्मरण करता हूँ—कारण कि, संसारभयोद्विग्न मनु-
 ष्य को वही प्रशस्तचरण अभयदान दे सकते हैं ॥ ४ ॥

लोकेषु भूर्भुवि नरो नृपु मानतःतु-
 स्तेनापि चन्न हि भवेदणुजीवमःतुः ।
 तेनाप्यमेति भवतेति तरि व्यवोधि
 संसारसागरनिमज्जदशेषजःतुः ॥ ५ ॥

तीनों लोकों में पृथ्वी बड़ी है, पृथ्वी में मनुष्य श्रेष्ठ गिना
 जाता है, मनुष्यों में विवेक की पूजा होती है और विवेक में भी
 अहिंसात्मक ज्ञान को अराध्य समझा जाता है कारण कि, उसीसे
 मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त करता है आपने भी वही सर्वोत्तम ज्ञान
 रूप नौका ही अपार संसार सागर में डूबते हुए मनुष्यों को साधन
 बतलाया है ॥ ५ ॥

तं त्वां स्मरामि सततं य इह प्रपञ्च-
 पञ्चाननाञ्चितकलावमलोमलेऽपि ।
 ग्राहेऽगृहीत उदगा दिवमादिघयुग्मम्
 पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ ६ ॥

महाप्रपञ्चरूपी सिंह से युक्त, महामलिन, ग्राह समान दूर
 भी ही पकड़ ने वाले इस विकराल कलिकाल में भी मात्र वीर प्रभु के
 चरणों को ही नमस्कार कर आप स्फटिक तुल्य निर्मल तथा
 विषयों में अनासक्त रहकर देव लोक में पहुँच गये वैसे ही मैं
 भी आपका स्मरण करता हूँ कारण कि, स्वर्गारोहण की पद्धति आप
 बता ही गये हैं ॥ ६ ॥

दुर्दान्तदम्भिमदनोदानिदानमोद
 पापः पयोदवचनस्य तव स्तुतिं काम् ।
 कुर्यामहं न गदितुं स हि यां समीष्टे
 यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांश्चुराशेः ॥ ७ ॥

दुर्दान्त दम्भियों के मद को चूर करने का कारण, तथा अ-
 नृत जल वर्षा मेघ के समान भीरु-वचन वाले आप की स्तुति में
 (छुद्र) तो क्या ही कर सकता हूँ किन्तु प्रसिद्ध वक्ता बृहस्पति
 भी नहीं कर सकता क्योंकि आप गरिमा के सागर हैं ॥ ७ ॥

वाचा धनेन करणेन कृतेश्वयेन
 ग्रीणन्तु सन्तमसुमन्तमथो कियन्तः ।
 स्तन्वन्तु तान् तव दृशाऽऽदिशतांऽतिमोदं
 स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम् ॥ ८ ॥

मन वचन और काया से एवं अन्यान्य साधनों से जो मनुष्य
 सत्पुरुषों को अथवा जीव मात्र को प्रसन्न कर सकते हैं उनकी स्तुति
 साधारण भी कर सकते हैं किन्तु दृष्टिमात्र से एकान्तात्यन्त आन-
 न्द देने वाले आपकी स्तुति तो प्रगल्भ तथा विस्तृत बुद्धि मनुष्य
 भी नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

आसाद्य भासुरधनानि वसुन्धरां च
 सम्राट् पदं भजतु कोपि नृपासनस्थः ।
 त्वन्तून्नतः प्रतिनिधिर्हृदयगतोऽभू-
 स्तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोः ॥ ९ ॥

देदीप्यमान धन, विशालवसुंधरा और सम्राट् पद को कोई
 भी (साधारण) मनुष्य प्राप्त कर सकता है किन्तु कमठ नामक
 तापस के मदको चूर करने वाले तीर्थकर के प्रतिनिधि तथा प्रिय
 बनकर सब से उच्च आसन पर आपही बैठते थे ॥ ९ ॥

यो मत्सरं समपनीय दधार हार्दं
 हित्वैव स्वार्थमपरार्थविधिं व्यधत् ।

शक्तिं विनापि बहुभक्तिवशोऽधिकाश-
स्त्वस्याहमेव किल संस्तवनं करिष्ये ॥ १० ॥

हे पूज्य ! जो आपने द्वेष छोड़कर विश्वव्यापी प्रेम धारण किया था और अपना स्वार्थ छोड़ कर परमार्थ का ही विधान किया था वन आपको स्तुति केवल भक्तिवश होकरही शक्ति के बिना भी मैं कहूँगा ॥ १० ॥

मूमः कथं हृदयहैमगिरेः प्रभृतां,
शान्तिक्षमासुजनताकल्याणदीं ते ।
यत्कारुण्यमकरतोऽहमनीश एतत्
सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूपम् ॥ ११ ॥

आपके हृदयरूप हिमालय से निकली हुई शान्ति, क्षान्ति सुजनता, तथा दया रूप नदी की तो मैं क्या महिमा कर सकता हूँ किन्तु जिसको चित्रकार लोग दायों से लिख सकते हैं उस आपके स्वरूप को मैं सामान्यतः भी नहीं कह सकता ॥ ११ ॥

यत्कर्मवीरमतिधीरचरित्रलेखे
वाणी विचि-तयति नीतललाटपाणी ।
शेषो न चेश इह मन्दाधियोऽपि तस्मा-
दस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्वधीशाः ॥ १२ ॥

अ० जिस अत्यन्त बुद्धिमान् कर्मवीर का चरित्र लिखने के लिये सरस्वती भी मस्तक पर हाथ रख कर चिन्ता में पड़ती है, शेष भी सहस्र मुख से नहीं कहसकता हे नाथ ! फिर हमारे सरीखे मन्दबुद्धि समर्थ कैसे हो सकते हैं । (शेष का नाम लोकोक्ति है) ॥ १२ ॥

कुर्मो वयं बहुविधां दुमवर्णानां तु
किन्तावता सुरतरु-प्रभव-प्रभावः ।
वाच्यस्तथैव तव वर्णनहीनसन्धो
घृष्टोऽपि कौशिकाशिशुर्यदि वा दिवान्धः ॥ १३ ॥

हम लोग माधारण वृक्षों का वर्णन अनेक प्रकार से कर सकते हैं किन्तु कल्पवृक्ष का प्रभाव नहीं कह सकते जैसे उल्लू का बच्चा अपनी जाति में कदाचित् ढाँठ भी हान्ते क्या सूर्य को देख सकता है ? इसी प्रकार हम आपके वर्णन में कृतप्रतिज्ञ नहीं हो सकते ॥ १३ ॥

मल्लं हयं गजमजं धनिनं वदा-यं
संवर्णयेयमिति किं भवतोऽपि नूयाम् ।
धूकोऽवलोकयति वन्तु विहायसैति
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥ १४ ॥

जिस प्रकार मल्ल, (पहलवान) घोड़ा, हाथी, बकरा, घनी और दानी का वर्णन हम अच्छी तरह से कर सकते हैं क्या ? उसी

शक्तिं विनापि बहुभक्तिवशोऽधिकाश-
स्त्वभ्याहमेव किल संस्तवनं करिष्ये ॥ १० ॥

हे पूज्य ! जो आपने द्वेष छोड़कर विश्वव्यापी प्रेम धारण किया था और अपना स्वार्थ छोड़ कर परमार्थ का ही विधान किया था वन आपकी स्तुति केवल भक्तिवश होकरही शक्ति के बिना भी मैं करूँगा ॥ १० ॥

मूमः कथं हृदयहैमगिरेः प्रभूर्ता,
शान्तिक्षमासुजनताकव्यानर्दी ते ।
यत्कारुण्यमकरतोऽहमनीश एतत्
सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूपम् ॥ ११ ॥

आपके हृदयरूप हिमालय से निकली हुई शान्ति, क्षमा, सुजनता, तथा दया रूप नदी की तो मैं क्या महिमा कर सकता हूँ किन्तु जिसको चित्रकार लोग हाथों से लिख सकते हैं उस आपके स्वरूप को मैं सामान्यतः भी नहीं कह सकता ॥ ११ ॥

यत्कर्मवीरमतिधीरचरित्रलेखे
वाणी विचि-तयति नीतललाटपाणी ।
शेषो न चेश इह मन्दधियोऽपि तस्मा-
दस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्वधीशाः ॥ १२ ॥

अत्यन्तशान्तमनसो बचसोपनीता
 भावान् भव्यभविभिः परिभावितास्ते ।
 किं गण्यते मणिगणो जलधेर्वणिगंभिः
 कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मात् ॥ १७ ॥

आपके सुतरां शांत मन से वाणी द्वारा प्रकटित भी भाव
 (अभिप्राय) सांसारिक प्राणी नहीं गिन सकते जैसे कि, जल
 निकाल डालने से प्रकटित, समुद्र के रत्न बड़े से बड़ा हिस्सावी व्यौ-
 पारी भी गिन नहीं सकता ॥ १७ ॥

निर्गण्यगुण्यशुभपुण्यसुपूर्णकाय-
 कारुण्यपूर्णकरणस्य विभोर्गुणौघः ।
 गण्यो न ते गुणनिधेर्जगदार्तिहर्तु
 र्मायेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ १८ ॥

असंख्य गुणों से युक्त एवं मांगलिक पुण्य से पूर्ण है शरीर जिनका
 और करुणा रस से भरी हुई हैं इन्द्रियां जिनकी ऐसी गुणाकर तथा
 संसार के त्रिविध दुःखों को दूर करने वाला आपके गुण गणों की
 गणना नहीं हो सकती कारण कि, समुद्र के रत्नों की गणना अद्याव-
 धि नहीं हो सकी ॥ १८ ॥

नाहं कविर्न च सुकर्कशतर्कशीलो
 यद्गौरवात्कृतमतिस्तव वरणनेऽस्याम् ।]

प्रकार आपका भी वर्णन कर सकते हैं? नहीं, नहीं बल्कि अपनी आवश्यकता की वस्तुएं देखता और आकाश में भी गमन करता है तो जया सूर्य का स्वरूप भी कर्मा देख सकता है ॥ १४॥

गुर्वाथम श्रमकृदस्तसमस्तदोष-

स्तोपान्वितोऽपि विबुधोऽपि कुशाग्रबुद्धिः ।

शक्नो न वक्तुममितां भवदीयकीर्तिं

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यः ॥ १५ ॥

गुरु के आश्रममें श्रम करने वाला, समस्त पापों को नाश करने वाला, प्रसन्न चित्त, विद्वान्, तथा दीर्घबुद्धि मनुष्य मोह के जय से (मोहनीयकर्म के जयोपशान से) सांसारिक पदार्थों का अनुभव करता हुआ भी है नाथ ! आपकी विशाल कीर्तिको नहीं कह सकता । १५।

पारं परार्द्धमभिते गणिते गरिष्ठो

रात्रिदिवा यदिभवेद्गणनैकनिष्ठः ।

गीर्वाणजीविनशतं निरुगेव जीवे-

न्नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ॥ १६ ॥

सब संख्याओं में बड़ी संख्या को परार्द्ध (अन्त संख्या) कहते हैं वह संख्या में निपुणभी नीरोग मनुष्यदेवताओं की आयुष्य प्राप्त कर के आपके गुणों की गणना करने में कुनकाये नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

अत्यन्तशान्तमनसो बचसोपनीता
 भावान् भव्यभविभिः परिभावितास्ते ।
 किं गण्येते मणिगणो जलधेर्वणिग्भिः
 कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मात् ॥ १७ ॥

आपके सुतरां शांत मन से वाणी द्वारा प्रकटित भी भाव
 (अभिप्राय) सांसारिक प्राणी नहीं गिन सकते जैसे कि, जल
 निकाल डालने से प्रकटित, समुद्र के रत्न बड़े से बड़ा हिमाची व्यौ-
 पारी भी गिन नहीं सकता ॥ १७ ॥

निर्गण्यगुण्यशुभपुण्यसुपूर्णकाय-
 कारुण्यपूर्णकरणस्य विभोर्गुणौघः ।
 गण्यो न ते गुणनिधेर्जगदार्तिहर्तु
 र्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ १८ ॥

असंख्य गुणों से युक्त एवं मांगलिक पुण्य से पूर्ण है शरीर जिनका
 और करुणा रस से भरी हुई हैं इन्द्रियां जिनकी ऐसे गुणाकर तथा
 संसार के त्रिविध दुःखों को दूर करने वाले आपके गुण गणों की
 गणना नहीं हो सकती कारण कि, समुद्र के रत्नों की गणना अद्याव-
 धि नहीं हो सकी ॥ १८ ॥

नाहं कविर्न च सुकर्कशतर्कशीलो
 यद्गौरवात्कृतमतिस्तव वरणनेऽस्याम् ।]

वाचालयत्यतिमहात्मगुणो हि मूक-

मभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि ॥ १६ ॥

हे नाथ ! मैं कवि नहीं हूँ शब्द शब्द में तर्क करने वाला ता-
किंक भी नहीं हूँ जिससे आपकी स्तुति करने का विचार करूँ
किन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि, महात्माओं के गुण मूक को भी
वाचाल बना देते हैं इसी आशा से मन्दबुद्धि भी मैं आपके गुण-
गायन में प्रयुक्त हुआ हूँ ॥ १६ ॥

मन्त्रप्रभाव इव सज्जनशक्तिरात्म-

सेवापरं निजगुणेन गुणीकरोति ।

स्यां पिद्ध एवमिह ते स्तवने प्रवर्ज

कर्तुं स्तवं लसदसख्यगुणाकरम्य ॥ २० ॥

महात्माओं के समीप रहने से मन्त्र के प्रभाव समान महा-
त्माओं के गुण भी मनुष्य को गुणी बना देते हैं ठीक इसी तरह
आपकी स्तुति करने में मुझको आपके प्रभाव से सिद्धि अथर्व मिल
सकेगी इसी आशा से जाग्रत्यमान अनेक गुणों के निधान आपकी
स्तुति करने के लिये मैं उद्यत हुआ हूँ ॥ २० ॥

हास्यं श्रमे सफलं येदिह मे विपरिचत्

कामं ततो नहि मनागपि मे विषादः ।

हास्यास्पदं गुणवतां वियतः प्रमाणे

बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितन्त्य ॥ २१ ॥

आपकी स्तुति करने में मैं जो श्रम करता हूँ इस श्रम को देख कर यदि विद्वान् लोग इसे तो यथेष्ट हंसलें मुझे इस में कुछ विपाद न होगा क्योंकि आकाश के प्रमाण को बतलाने के लिये हाथ फैलाने वाला बालक विशेषज्ञों का हास्यपात्र अवश्य होता है ॥ २१ ॥

श्रीमद्गुणाब्धिरहमल्पपदार्थलब्धि-

भेदे महत्यपि गुणान् कथये तथा ते ।

कूपस्थितोऽप्यनवलोकितलोकभेको

विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥ २२ ॥

आपके गुण तो अगाध सागर हैं तथा मेरी बुद्धि अल्पज्ञ है इस प्रकार का महान् भेद (दिन रात का फर्क) रहने पर भी जो मैं आपके गुणों को कहने की धृष्टता करता हूँ सो उन छूट मंडूक के समान है जो संसार और सागर को न जानता हुआ भी उक्त दोनों की विस्तारता कू में ही अपने पांख फेनाकर दिखता है ॥ २२ ॥

सन्तः क्रियन्त इह सन्ति वदन्ति धर्मं

पञ्चव्रतान्यपि धरन्ति महीमदन्ति ।

त्वय्येव ते तु निजदर्शकहर्षिणोन्त-

र्ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तेऽश ! ॥ २३ ॥

हे नाथ ! इस अपार संसार में कितने ही साधु महात्मा हैं जो सदा धर्मोपदेश देते पांच महाप्रतों को पालते एवं दूसरों से पलवाते पृथ्वी में फिरते हैं किन्तु अदृष्टपूर्व दर्शकों को आनंद देने वाले गुण आप ही में थे जो अन्त्यान्य मुनियों में नहीं मिल सकते थे इसका साक्षी वही हो सकता है जिसने कदाचित् आपके दर्शनों का लाभ उठाया होगा ॥२३॥

ये सद्गुणास्तव हृदाद्रिदरीनिलीना-
 स्थत्कण्ठमार्गमसदम् हि जातु कुत्र ।
 साकं त्वयैव विधिना दिवि संप्रयाता
 वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ॥ २४ ॥

जो सद्गुण आपकी हृदय रूसी गुहा में छिपकर बैठे थे कभी भी आप के कंठ मार्ग द्वारा बाहिर नहीं आये थे (अपनी प्रशंसा आप कभी नहीं करते थे, ये गुण दैवयोग से स्वर्ग तक आप के साथ हैं। पहुंचे इसीसे उनको यथावत् कहने का अवकाश मुझे प्राप्त नहीं हो सका ॥ २४ ॥

आत्मप्रबोधविरहात्कलहायमानान्
 जाग्रत्प्रपञ्चकलिकालविवञ्चितांश्च ।
 अस्मान् विहाय दिवसंगमने त्वैत-
 ज्जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयम् ॥ २५ ॥

आत्मज्ञान के अभाव से परस्पर कलह करते हुये तथा महाप्रपंची इसत्रिकराल कलिकाल से छले हुए हमको छोड़ कर आप स्वर्ग को सिधारे कदाचित् आप ने अविचारित कार्य किया है तो यही किया है ॥ २५ ॥

श्रीमत्कृपाकृतिचयोपकृता वयं स्मो
नो शक्नुमोऽत्र भवतां प्रविकर्तुमेव ।

कुर्मः स्तवं परमिहोपकृता यथाव-

ज्जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥ २६ ॥

हे पूज्यवर ! आपकी कृपा और क्रिया से हम अधिक उपकृत हुए हैं किन्तु प्रत्युपकार करने कि शक्ति न होने से मात्र आपका गुण गायनही करते हैं कारण कि उपकृत पक्षीभी अपने उपकारी की गद्गदवाणी से स्तुति करता हूँ ॥ २६ ॥

यस्मान्न्यवर्ततभवान् विषयोपभोगाद्
रोगादिव प्रतिदिनं व्यलिखत्तमेव ।

श्रोतुर्हृद्राकृतिपटे भयदं हि चित्र-

मास्तामचिन्त्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते ॥ २७ ॥

हे पूज्य जिन विषयोपभोगों को रोग समझ कर आप दूर हटाते थे प्रत्युत् श्रावकों के भी हृदयपटल पर उसी को

लिखते थे और स्वरचित, अधिन्य माहिमा, जिनेन्द्र संस्तव करने में जो आपकी अलौकिक शक्ति का प्रत्यय मिलता था इत्यादि का वर्णन कैसे कर सकू ॥ २७ ॥

यस्मै पवित्रितजगत्त्रितयं विचित्रं
चित्ते चरित्रमतुलं सततं त्रिदध्यात् ।
तभ्योऽसतिस्त्वह परत्र किमत्र चित्र
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ॥ २८ ॥

त्रिलोकी का पावन करने वाले जो आप के विचित्र तथा अनु-
पम चरित्र का हृदयङ्गम करेगा उसकी उभय लोक की अवश्य उन्न-
ति होगी इस में सन्देह ही क्या है ? कारण कि आपका नाम ही
असार संसार में रचा कर न वाला है ॥ २८ ॥

श्रीनदियोग इह साधुसमाजनिष्ठान्
दुःसाकराति नितरां सुजनान् तथैव ।
पितृन् यथा जलमलं पयसामभाव-
स्तीत्रानपोपहतपान्थजनाविदाधे ॥ २९ ॥

पूज्य ! श्री चरणों का वियोग साधुमार्गी और समाज को तथा
सत्पुरुषों को कैसेही अन्यन्त दुःखों यना रहा है जैसेकि, आपाड़मास
की बड़ी धूरसे व्याकुल तथा प्यासे अधिक को जल का अभाव ॥ २९ ॥

धामुद्गतेऽत्रभवति प्रगतोऽशिलापो

नः श्रोतुमत्र भवतो वचनं सुचारु ।

दृष्टिं दयार्द्रविपुलां भवतः समीहे

प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥ ३० ॥

आप के स्वर्ग में निवास करने से आपका वचनामृत तो हम पान कर नहीं सकते मात्र आपकी दयार्द्रदृष्टि की चाहना है कारण कि, पद्ममंजर का पावन पवन भी संसार को पवित्र तथा प्रसन्न करता है ॥ ३० ॥

यादृक् प्रमोदजलसान्द्रपयोद आसीद्

दृग्बर्त्तिनि त्वयि मुने ! व्यतरन् सुधाधम् ।

तादृक्कृतस्तदपि विघ्नविषादयुथा

हृद्बर्त्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति ॥ ३१ ॥

हे विभो ! आपकी उपस्थिति में सर्वत्र अमृतमय वृष्टि होती थी अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक दुःख या पाप छू तक नहीं सकते थे, अब आपके न रहने पर वे उच्च आनन्द तो खपुष्प होगया है तो भी आपको आत्मसात् करने पर विघ्न और विषाद अवश्य शिथिल होते हैं ॥ ३१ ॥

लिखते थे और स्वरचित, अचिन्त्य महिमा, जिनेन्द्र संस्तव करने में जो आपका अलौकिक शक्ति का प्रत्यय मिलता था इत्यादि का वर्णन कैसे कर सकूँ ॥ २७ ॥

यस्ते पवित्रितजगत्त्रितयं विचित्रं
चित्ते चरित्रमतुलं सततं विदध्यात् ।
तस्योन्नतिस्त्वह परत्र किमत्र चित्र
नामापि पाति मयतो भवतो जगन्ति ॥ २८ ॥

त्रिलोकी को पावन करने वाले जो आप के विचित्र तथा अनु-
पम चरित्र का हृदयङ्गम करेगा उसकी उभय लोक की अवश्य वन्न-
ति होगी इस में शङ्का नहीं है क्या है ? कारण कि आपका नाम ही
असार संसार में रहता कर देने वाला है ॥ २८ ॥

श्रीनट्टिगोग इह साधुसमाजनिष्ठान्
दुःखाकरानि नितरां मुजनान् तथैव ।
पित्तान् यथा जलमलं पयसामभाव-
स्तीग्रानपोपहतपान्थजनादिदाघे ॥ २९ ॥

॥ पूज्य ! श्री चरणों का वियोग साधुमार्गी जैन समाज को तथा
उत्पुरुषों को पैपेही अन्यन्त दुःखी बना रहा है जैसेक, आपादमास
की कड़ी धूपसे ज्वाबुल नया प्यासे पथिक को जल का अभाव ॥ २९ ॥

द्यामुद्गतेऽत्रभवति प्रगतोऽभिलाषो

नः श्रोतुमत्र भवतो वचनं सुचारु ।

दृष्टिं दयार्द्रविपुलां भवतः समीहे

प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥ ३० ॥

आप के स्वर्ग में निवास करने से आपका वचनामृत तो हम पान कर नहीं सकें। मात्र आपको दयार्द्रदृष्टि की चाहना है। कारण कि, पद्ममण्डप का पावन पवन भी संसार का पवित्र तथा प्रसन्न करता है ॥ ३० ॥

यादृक् प्रमोदजलसान्द्रपयोद आसीद्

दृग्बर्त्तिनि त्वयि गुणे ! व्यतरन् सुधौघम् ।

तादृक्कृतस्तदपि विघ्नविपादयुथा

हृद्बर्त्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति ॥ ३१ ॥

हे विभो ! आपकी उपस्थिति में सर्वत्र अमृतमय वृष्टि होती थी। अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक दुःख या पाप छू तक नहीं सकते थे। अब आपके न रहने पर वे उच्च आनन्द तो खपुष्प होगया है तो भी आपको आत्मसात् करने पर विघ्न और विपाद अवश्य शिथिल होते हैं ॥ ३१ ॥

ध्यानप्रभावविधिना मधुलिदस्वरूपं
 कीटा भजन्त इति सन्त इहामनन्ति ।
 तद्वद् गुणांस्तव विभावयतो विभिन्ना
 जन्तोः चक्षेण निविडा अपि कर्मबन्धाः ॥ ३२ ॥

ध्यान एक ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से साधारण, विजातीय कीट भी भ्रमर बन जाता है ऐसा सत्पुरुषों (भिज्जानवेत्ताओं) का कहना है वैसे ही आप के गुणों का ध्यान करने पर मनुष्य के अनेक जन्मोपार्जित कर्म बन्धन भी सुवरां क्षण मात्र में दूर हो सकते हैं क्योंकि—जब आप अशुभ कर्मों के बन्धन से मुक्त हैं तब आप को आत्मसात् करने वाला भी अवश्य वैसाही होना चाहिये ॥ ३२ ॥

अस्मिन् द्विजिह्वजनजिह्वमये नृलोके
 ग्राप्ता वयं हि मुनिजाङ्गुलिकं भवन्तम् ।
 इच्छन्ति खं त्वयि गते प्रसितुं खला नः
 सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभागम् ॥ ३३ ॥

सर्वमनुष्य द्विजिह्व तथा कुटिल लोगों में दुःख दुःख भर भरे हुए हम संसार में विष के बँध एक आपही थे. अब आपके स्वर्ग पले जाने पर सर्प रूप के दुर्जन हमें हृदय में काटना चाहते हैं ॥ ३३ ॥

जाते दिवं त्वयि विमो ! सुपमां सुधर्मा
 मेजे यथा सुरतरां सति नन्दनस्य ।

देवैर्युतापि हि यथा शुकसङ्गतस्य
सत्यागते वनशिखण्डानि चन्दनस्य ॥ ३४ ॥

देवपूज्य ! देवताओं से भरी हुई भी इन्द्र की सभा आपके पधारने से खूब सुशोभित हुई होगी—कारण कि, शुकादि पक्षियों से युक्त चन्दन वृक्ष की शोभा मोर के आने तथा अनेक वृक्षों से युक्त चन्दन वन की शोभा कल्पवृक्ष के होने से ही होती है (यह कवि की उत्प्रेक्षा है) ॥ ३४ ॥

वीर ! त्वदीयदयया मिलितः सुपूज्यः
कालेन संहत इतो न जनोऽस्त्यनीशः ।
तस्यानुकम्पनतयाऽऽप्तसुपूज्यवर्या
मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा मुनीन्द्र ! ॥ ३५ ॥

हे वीर प्रभो ! आपकी कृपा से प्राप्त हुए पूज्य श्रीजी को तो काल उठाकर स्वर्ग में ले गया किन्तु इस से (यह) जन नायक हीन नहीं हो सका कारण कि, उक्त पूज्यश्री एक ऐसे पूज्य प्राणिनिधि को स्वस्थानापन्न कर गये हैं कि, जिनके कृपाकटाक्ष से ही असंख्य प्राणी बन्धनमुक्त हो रहे हैं ॥ ३५ ॥

श्रीलालपूज्य ! महिमा तव किं निगाथा
ऽविश्रान्तसञ्चितकलेस्त्रिविधाधिलीनाः ।

धैर्यं मुदं नहि जहृर्बहुहन्यमाना
रौद्रेरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ॥ ३६ ॥

हे श्रीलालजी पुत्र्य ! अवर्णनीय आपकी महिमा का वर्णन ।
करें क्योंकि, आपके दर्शनमात्र से ही अविश्रान्तसंचित पाप का
से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों मा
के दुखों में तल्लीन भी मनुष्यों ने धीरता और प्रसन्नता न छो
इससे बढ़कर और प्रभाव ही क्या हो सकता है ॥ ३६ ॥

जागतिं नृत्यति जने वृजिनं च तावद्
यावद्व्ययी दुरितपूरितचेतसापि ।
सूर्येऽधकार इव पापमपैति नूनं
गोषामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टिमात्रे ॥ ३७ ॥

इस सत्कार में पाप जीताजागता सब तक ही प्रथंड ताड़
करता है जब तक उसे पीठमर्दक पापी मनुष्य मिलने रहते हैं
लेकिन जब इन्द्रियों को वश करने वाले एवं देदीप्यमान प्रांति प्रांति
आप जैसे महात्मा दृष्टिगोचर होते हैं तब पाप की यही दशा होती
है जोकि मूयोंन्य में अधकार की ॥ ३७ ॥

दृष्टे भयन्यभिभवान् चहु पापमाप
विष्वक् ययौ हि बहुशो भयभीतमनिम् ।

ग्रस्ता जना हि खलु तेन भयान्निरस्ता
श्चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥ ३८ ॥

आपके दृष्टिगोचर होते ही पाप के होंश हवाश उड़गये और वह चारों ओर भागने लगा जिससे पाप ग्रस्त (पाप से पकड़े हुए) लोग भी वैसे ही छूट गये जैसे कि, डरसे भागते हुए चोर के हाथ से पशु छूट जाते हैं ३८ ॥

ये संसृतेः कृतिपरानुपदेशदानै
धर्माऽदरान् व्यधिषतेह नरान्मुनीशाः ।
शान्तिं क्षमामपि ददुः सततं भविष्य
स्त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव ॥ ३९ ॥

हे जिन ! सांसारिक जीवों को भवसागर से पार लगाने वाले के ही मुनिश्रेष्ठ, पुज्यप्रवर हो सकते हैं अर्थात् जीवों के मोक्ष दाता पूज्यवर ही हैं आप नहीं हो सकते, कारण कि, सांसारिक कृत्यों से लवलीन मनुष्यों को दिन रात उपदेश देकर धर्मशील, शान्ति प्रिय एवं क्षमादि गुणयुक्त उक्त पूज्यवरों ने ही किया है ॥ ३९ ॥

तात्स्थ्यात्स धर्म इति सत्यवचो मुनीश !
धृत्वा जिनं हृदि जना दिवमुत्सवन्ति ।

दृग्भ्यो गतान् जिनपरान् भवतो जनारच

त्वामुद्रहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ॥ ४० ॥

(१८),

धैर्यं मुदं नहि जडुर्बहुहन्यमाना
रौद्ररूपद्रवशतैस्त्वयि वीचितेऽपि ॥ ३६ ॥

हे श्रीलालजी पुज्य ! अवर्णनीय आपकी महिमा का वर्णन क्या करें क्योंकि, आपके दर्शनमात्र से ही अविभ्रान्तसंघित पाप कारणों से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के दुखों में तल्लीन भी मनुष्यों ने धीरता और प्रसन्नता न छोड़ी इससे बढ़कर और प्रभाव ही क्या हो सकता है ॥ ३६ ॥

जागर्ति नृत्यति जने दृष्टिनि च तावद्
यावद्व्यर्था दुरितपूरितचेतसापि ।
सूर्येऽधकार इव पापमपैति नूनं
गोधामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टिमात्रे ॥ ३७ ॥

इस सगर में पाप जीताजागता तब तक ही प्रथम ताड़व करता है जब तक उसे पीठमर्दक पापी मनुष्य मिलने रहते हैं लेकिन जब इन्द्रियों को बश करने वाले एव देहात्म्यमान प्राति पाले आप जैसे महात्मा दृष्टिगोचर होते हैं तब पाप की वही दशा होती है जोकि मूयोन्य में अधकार की ॥ ३७ ॥

दृष्टे भवत्यभिभवान् बहु पापमाप
विष्वक् यदा हि बहुशो मयमीतमीनम् ।

ग्रस्ता जना हि खलु तेन भयान्निरस्ता

श्चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥ ३८ ॥

आपके दृष्टिगोचर होते ही पाप के होंश हवाश उड़गये और वह चारों ओर भागने लगा जिससे पाप ग्रस्त (पाप से पकड़े हुए) लोग भी वैसे ही छूट गये जैसे कि, डरसे भागते हुए चोर के हाथ से पशु छूट जाते हैं ३८ ॥

ये संसृतेः कृतिपरानुपदेशदानै

र्धर्माऽदरान् व्यधिपतेह नरान्मुनीशाः ।

शान्तिं क्षमामपि ददुः सततं भविभ्य

स्त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव ॥ ३९ ॥

हे जिन ! सांसारिक जीवों को भवसागर से पार लगाने वाले के ही मुनिश्रेष्ठ, पुज्यप्रवर हो सकते हैं अर्थात् जीवों के मोक्ष दाता पूज्यवर ही हैं आप नहीं हो सकते, कारण कि, सांसारिक कृत्यों से लवलीन मनुष्यों को दिन रात उपदेश देकर धर्मशील, शान्ति प्रिय एवं क्षमादि गुणयुक्त उक्त पूज्यवरों ने ही किया है ॥ ३९ ॥

तात्स्थ्यात्स धर्म इति सत्यवचो मुनीश !

धृत्वा जिनं हृदि जना दिवमुत्सवन्ति ।

दग्भ्यो गतान् जिनपरान् भवतो जनाश्च

न्वामुद्रहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ॥ ४० ॥

हे मुनिराज ! धर्म धर्मों में रहता है यह शास्त्र सिद्धान्त सत्य है, कारण कि, जिनेन्द्र को आत्ममान् करके मनुष्य स्वर्ग तक नहीं २ : साक्षिशिला तक पहुँच जाने हैं इसीमें जिनेन्द्र में तर्कान तथा अर्थाः अन्तर्धान हुए आपको संसारमाग्न को पार करने की इच्छा पाने मनुष्य हृदयद्रम करते हैं ॥ ४० ॥

हित्वा हृदिस्थितमनोरथमवगन्तं
स्तद्धीनधर्मवपुषो भवतो निधाय ।
भग्नो जनस्तरति संसृतिमेव सम्यग् ।
यदाहतिस्तरति यज्जलमेव नूनम् ॥ ४१ ॥

सासारिक जीव अपने अन्तःकरण से मनोरथ और अहं-
का को दूर कर बीजराग, धर्ममात्र शरीर में आपकी ही, हृदय
में रहकर हम संसार से पार जाने हैं, जैसे कि, वायु के प्रभाव से
मृदा भी आगध जल से पार पा लेती है ॥ ४१ ॥

धीमन्तमेव हृदये निद्रधाति यस्मा
अस्मान्जनो दिवमुपेति मत ममेतन् ।
दृष्टयते दिवि मृदा पथु पार्थिव य-
चा-तःस्थितभ्य मरुतः स किलानुभावः ॥ ४२ ॥

यदि जीव स्वर्ग तक पहुँचने हैं तो वे निरसन्देह पृथ्वी
की मगामति में प्रविष्टा करते हैं, ऐसा मेरा मत है क्योंकि, वा

भौतिक पदार्थ आकाश में उड़ता है सो उसमें स्थित वायु को ही प्रभाव है न कि, उस पृथुल पदार्थ का ॥ ४२ ॥

क्रोधादिषट्पुण्यं विनिहत्य नूनं
शान्तिं वित्त्य च भवान्सुरमत्यशेत ।
लोकोऽप्युना विजित इत्यपि किं विचित्रं
यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः ॥ ४३ ॥

आपने इस लोक को जीत लिया, इसमें कौन बड़ी आश्चर्यजनक बात है कारण कि, आपने अन्तः करणस्थ उन क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर और शान्ति का विस्तार कर देवों को नीचा दिखाया जिन (क्रोधादि) से हरिहर प्रभृति भी पारं न पासके ॥ ४३ ॥

आकीटकैटभरिपुर्दमनेन यस्य
दीनो नु भामिनिपदं सभयं ह्युपास्त ।
कान्तानिदेशवशातः कपितां समाप ।
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ॥ ४४ ॥

जिस कन्दर्प के दर्प से कीट से लेकर विष्णु तक दीन बनकर स्त्री की सभय चरणसेवा करते हैं और स्त्री की आज्ञा वजाने में बंदर बन जाते हैं उसी दुर्दान्त दंभी काम को आपने पल भर में नष्ट भूष्ट कर दिया ॥ ४४ ॥

कामादयः सममवन् जगदाभ्यासाः
 पाशा इवेह सततं नृपशून् वबन्धुः ।
 कीलालमेव हि भवान् भविभिः सुलब्धो
 विध्यापिता हुतशुजः पयसाऽथ येन ॥ ४५ ॥

काम वगैरह ससाररूपी आश्रय को हड़प जाने वाला अग्निमें है इन्हो ने पाश के समान अपनी देदीप्यमान आलाओं से नर पशुओं (अज्ञानियों) को लिपटा रक्खा था, लेकिन आपको शीतलजल के समान पाकर मनुष्यों ने उन कामाग्निओं को बुझा डाला ॥ ४५ ॥

कामं जल वदतु काममपीह कामी
 त्वां वाऽनलं वदतु नैव तथापि हानिः ।
 निर्वापयत्यनलमेव जलं न वेत्तु ।
 पीतं न किं तदपि दुर्धरयादवेन ॥ ४६ ॥

विषयी लोग भले ही काम को जल और आपको अग्नि समझें तो भी इसमें हानि नहीं, सर्वत्र जल ही आग को बुझाता है ऐसा उनके मानना भ्रम मात्र है, कारण कि, बहवा नाम की अग्नि भी जलको धरम करदेती है ॥ ४६ ॥

उद्दीप्यतेऽनिलरयेण रजस्तदेव
 नाऽऽसादितेह रजसा गुरुता च येन ।

मत्प्राणरेणव इहाऽऽश्रयतस्त्वदीयात्
स्वामिन्नलपगारिमाणमपि प्रपन्नाः ॥ ४७ ॥

वायु के वेग से वही धूलि उड़ सकती है जिधमें भारीपन न आया हो किन्तु हमारी प्राणरूपी धूलि आपको आत्मसात् करने से भारी हो चुकी है इसीसे हे स्वामिन् ! इन काम क्रोधादि रूप वायु से वह धूलि उड़ नहीं सकती ॥ ४७ ॥

ये शीर्णपर्णनिभसूक्ष्मतरा नरास्ते
धूता भवन्तु मदकामसमीरणैश्च ।
नीता भवन्तु गुणगौरवमादधानं
त्वां जन्तवः कथमहो ? हृदये दधानाः ॥ ४८ ॥

अहंकार व कामरूपी वायु, उन्हीं को उड़ा सकती है, जो मनुष्य सूखे हुए पत्ते के समान एक दम हलके हैं लेकिन गुणों की गुरुता को धारण करने वाले पुज्य चरणों को जो मनुष्य हृदय में धारण करते हैं उन्हें उक्त वायु उड़ा नहीं सकती ॥ ४८ ॥

पूज्याऽनुराग इह भक्तिरतो विमुक्ति-
रेवं हि कार्यकरणं सुधियो वदन्ति ।
विद्युत्प्रशक्तिमिति युक्तिमवेत्य भक्ता
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन ॥ ४९ ॥

पूज्य के चरणों का अनुराग ही भक्ति कहलाता है एवं भक्ति से ही मुक्ति होती है इस प्रकार का कार्यकारण भाव विद्वान लोग कहते हैं, हमसे विजंजीबीजी शक्ति वाली उक्त युक्ति को जान कर अभिलाष से ही भक्त जन जन्मरूपी महासागर को पार करते हैं ॥ ४६ ॥

मन्तो भवन्त इह नो विषयानभिन्दन्
संखेदयन्ति हृदयानि परासवोऽपि ।
ते चैव सम्प्रति न नो हृदयात्प्रयान्ति,
चिन्त्यो न हन्त ! यदि वा महता प्रभावः ॥ ४० ॥

इस सत्कार में रहते हुए आपने हमारे प्रिय विषयों को हमसे छुड़ाया और स्वर्ग में जाकर वियोगरूपि दुःख सड़ा कर दिया, इस तरह भारी विरोध करने पर भी हमारा हृदय आपको छोड़ता नहीं इसीसे सिद्ध होता है कि, महान् आत्माओं का (सत्पुरुषों का) प्रभाव अविनाशाय है ॥ ४० ॥

संवीक्ष्य दिष्टु जनतापदपापलीना
नस्मान्दुरुद्धरतरान् रूपया गतोऽसि ।
त्वं क्रोधनः कथमभूरिति विस्मयो नः
क्रोधस्त्वया ननु विभो ! प्रथमं निरस्तः ॥ ४१ ॥

दशों दिशाओं में पापालेप एवं मुशकिल से उद्धार करने योग्य, हम लोगों को देख आप खिसलाकर यहां से चले जाते हैं किन्तु आप क्रोध के आवेश में क्योंकर आगये यही हमें आश्चर्य होता है कारण कि, हे विभो ! क्रोध को तो आप प्रथम ही जीत चुके थे ॥ ५१ ॥

आचार्यवर्य ! भवताऽपि वतापि रोपोऽ
रोपो न चेत्तदपि सत्यममुष्य लेशः ।
नो चेद्वयं विरहिता रहिता हितौघै
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौरा ॥ ५२ ॥

हे आचार्यप्रवर ! स्वेद की बात है किं, पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु कुछ अंश में आप भी क्रोध की धमकी में आगये यदि ऐसा न होता तो हितविमुख एवं दीनहीन हम लोगों को छोड़कर आप स्वर्ग में न चले जाते और अशुभ कर्मरूप चोरों का सर्व नाश न कर डालते इसका उत्तर आप ही दें ॥ ५२ ॥

आस्तां वितर्कविधिरेष न रोषलेशः
श्रीमत्सु शान्तिसहिताऽस्त निरीहतैव ।
सैवाऽजहाद्द्रुमततीर्हिमसंहतिर्हि
प्लोपत्यमुत्र यदिवा शिशिरापि लोके ॥ ५३ ॥

अथवा इस तर्क वितर्क को कल्पना मात्र ही रहने दो, आपमें तो क्रोध का लेश मात्र भी न था, सिर्फ शान्ति के साथ थोड़ी निरीहता

पूज के घरणों का अनुराग ही भक्ति कहलाता है एवं भक्ति में ही मुक्ति होती है इस प्रकार का कार्यकारण भाव विद्वान लोग कहते हैं, इसीसे विजयीहीनी शक्ति-वाली उक्त युक्ति को जान कर अविनाश से ही भक्त जन जन्मरूपी महासागर को पार करते हैं ॥ ४६ ॥

मृतो भवन्त इह नो विषयानभिन्दन्
सखेदयन्ति हृदयानि परासवोऽपि ।
ते चैव सम्प्रति न नो हृदयात्प्रयान्ति,
चिन्त्यो न हन्त ! यदि वा महता प्रभावः ॥ ४७ ॥

इस ससार में रहते हुए आपने हमारे प्रिय विषयों को हमसे छुड़ाया और स्वर्ग में जाकर वियोगरूपि दुःख खड़ा कर दिया, इस तरह भारी विरोध करने पर भी हमारा हृदय आपको छोड़ वा रहा इसीसे सिद्ध होता है कि, महान् आत्माओं का (सत्पुरुष का) प्रभाव अर्क्षितनीय है ॥ ४७ ॥

सर्वीक्ष्य दिक्षु जनतापदर्पापलीना
नस्मान्दुःखदस्तरान् रूपया गतोऽसि ।
त्व क्रोधनः कथमभूरिति विस्मयो नः
क्रोधस्त्वया ननु विमो ! प्रथमं निरस्तः ॥ ४८ ॥

दशों दिशाओं में पापालेप एवं मुशकिल से उद्धार करने योग्य हम लोगों को देख आप खिसलाकर यहां से चलंत बने किन्तु आप क्रोध के आवेश में क्योंकर आगये यही हमें आश्चर्य होता है कारण कि, हे विभो ! क्रोध को तो आप प्रथम ही जीत चुके थे ॥ ५१ ॥

आचार्यवर्य ! भवताऽपि वतापि रोषोऽ
रोषो न चेत्तदपि सत्यममुष्य लेशः ।
नो चेद्वयं विरहिता रहिता हितौघै
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौरा ॥ ५२ ॥

हे आचार्यप्रवर ! खेद की बात है कि, पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु कुछ अंश में आप भी क्रोध की धमकी में आगये यदि ऐसा न होता तो हितविमुख एवं दीनहीन हम लोगों को छोड़कर आप स्वर्ग में न चले जाते और अशुभ कर्मरूप चोरों का सर्व नाश न कर डालते इसका उत्तर आप ही दें ॥ ५२ ॥

आस्तां वितर्कविधिरेष न रोपलेशः
श्रीमत्सु शान्तिसहिताऽस्त निरीहतैव ।
सेवाऽजहाद्द्रुमततीर्हिमसंहतिर्हि
प्लोपत्यमुत्र यदिवा शिशिरापि लोके ॥ ५३ ॥

अथवा इस तर्क वितर्क को कल्पना मात्र ही रहने दो, आपमें तो क्रोध का लेश मात्र भी न था, सिर्फ शान्ति के साथ थोड़ी निरीहता

(तमाम आशाओं का अभाव) थी वही नेगर्मी हम लोगों को छोड़ कर स्वर्गचले जाने में कारण हुई क्योंकि, शीतल भी हिम वृत्तसमूह को जला कर खाक कर डालता है ॥ ५३ ॥

दुर्दान्तपद्मिपुपुरातनकर्मचौरा
श्चूर्णाकृतास्तव सुशान्तिनिरीहिताभ्याम् ।
दाह्यानि दावदहर्नर्दहतीह तानि
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ ५४ ॥

अदम्य क्रोधादि जः शत्रुओं और पुराने चोर कर्म को आपकी अटल शान्ति और निरमितापिता ने चूर कर दिया, कदाचिन् संदेह हो कि, अत्यन्त मृदु तथा शीतल शान्ति ने धम धम काम कैसे किया तो इसका निवारण यों है कि, वन के भयंकर अग्नि से (दाहागिन) भस्म होने योग्य वन हरे भरे वृक्षों को हिममहिनि (हिम की अधिकता) भी जला देती है ॥ ५४ ॥

यस्योपदेशमवसाय विहाय मोह
सोऽहं विदन्ति च वदन्ति जगन्ति तत्त्वम् ।
यस्य प्रमात्रमधिगन्तुमचिन्तयैश्च
त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूपम् ॥ ५५ ॥

दे जिन-द्र ! जिस पूज्यवर के उपदेश से योगी लोग मोहमाया

को छोड़ कर 'सोऽहं सोऽहं' (मैं वही हूं) तत्व को समझते और रटते हैं उस पूज्यवर के आत्मप्रभाव को जानने के लिये परमात्म-रूप आपका ध्यान करते हैं ॥ ५५ ॥

तं पूज्यवर्यमविचार्य गतं धुलोकं,
सद्योऽनवद्यमतिहृद्यमनाप्य भक्ताः ।
त्वां त्वत्पदे जिन ! निरस्य तमेवलोकाः
अन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे ॥ ५६ ॥

बिना विचारे स्वर्ग में सिधारे हुए, दूषण रहित, गुण रूप भूषण सहित उस पूज्यवर को न पाकर हे जिनेन्द्र ! आपके ध्यान ध्यान (हृदय) से निकाल कर भक्त अब उन्हीं पूज्य चरणों की खोज में हैं ॥ ५६ ॥

आसादयेप्सितपदं शिवमस्तु वर्त्म
सुस्वागतं समुचितं दिवि ते विभातु ।
पूज्य ! स्वपुण्यकिरणैरवलोकयास्मान्
पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्यत् ॥ ५७ ॥

हे पूज्य ! आप अपना अभिष्ट पद प्राप्त करें, आपके लिये मार्ग मंगलमय हो, स्वर्ग में आपका समुचित स्वागत खूब धूमधाम से हो. अपने पुण्य प्रकाश से हम लोगों को भी कर्तव्य मार्ग बतलावें कारण कि, पवित्र एवं निर्मल कान्ति से इतना मांगना पर्याप्त है ॥ ५७ ॥

(तमाम आशाओं का अभाव) यी वही बेगर्जी 'हम लोग
को छोड़ कर स्वर्गचले जाने में कारण हुई क्योंकि, शीतल भी हिम
वृत्तसमूह को जला कर राक कर डालता है ॥ ५३ ॥

दुर्दान्तपट्टिपुपुरातनकर्मचौरा
श्चूर्णाकृतास्तव सुशान्तिनिरीहिताभ्याम् ।
दाह्यानि दावदहनैर्दहतीह तानि
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ ५४ ॥

अदम्य क्रोधादि छः शत्रुओं और पुराने चोर कर्म को
आपकी अटल शान्ति और निरभिलाषिता ने चूर कर दिया,
कदाचिन् संदेह हो कि, अत्यन्त मृदु तथा शीतल शान्ति ने प्रत्येक
काम कैसे किया तो इसका निवारण यों है कि, वन के भयंकर अग्नि
से (दावागिन) भस्म होने योग्य वन हरे भरे वृक्षों को हिमसहनि
(हिम की अधिकता) भी जला देती है ॥ ५४ ॥

यस्योपदेशमवसाय विहाय मोह
मोऽहं विदन्ति च वदन्ति जगन्ति तत्त्वम् ।
यस्य प्रभावमधिगन्तुमचिन्तयैश्च
त्वा योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूपम् ॥ ५५ ॥

दे जिनन्द्र ! जिस पूज्यवर के उपदेश से योगी लोग मोहमाया

को छोड़ कर 'सोऽहं सोऽहं' (मैं वही हूं) तत्त्व को समझते और
रटते हैं उच्छ पूज्यवर के आत्मप्रभाव को जानने के लिये परमात्म-
रूप आपका ध्यान करते हैं ॥ ५५ ॥

तं पूज्यवर्यमविचार्य गतं द्युलोकं,
सद्योऽनवद्यमतिहृद्यमनाप्य भक्ताः ।
त्वां त्वत्पदे जिन ! निरस्य तमेवलोकाः
अन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे ॥ ५६ ॥

बिना विचारे स्वर्ग में सिधारे हुए, दूषण रहित, गुण रूप
भूषण सहित उस पूज्यवर को न पाकर हे जितेन्द्र ! आपके ध्यान
स्थान (हृदय) से निकाल कर भक्त अब उन्हीं पूज्य चरणों की खोज
में हैं ॥ ५६ ॥

आसादयेप्सितपदं शिवमस्तु वर्त्म
सुस्वागतं समुचितं दिवि ते विभातु ।
पूज्य ! स्वपुण्यकिरणैरवलोकयास्मान्
पूतस्य निर्मलरूपेयदि वा किमन्यत् ॥ ५७ ॥

हे पूज्य ! आप अपना अभिष्ट पद प्राप्त करें, आपके लिये मार्ग
मंगलमय हो, स्वर्ग में आपका समुचित स्वागत खूब धूमधाम से हो.
अपने पुण्य प्रकाश से हम लोगों को भी कर्तव्य मार्ग बतलावें
कारण कि, पवित्र एवं निर्मल कान्ति से इतना मांगना पर्याप्त है ॥ ५७ ॥

भूतस्तिरोहितवपुर्दिवि संगतोऽपि
 पूज्य ! प्रभाविन उपैष्य साधुमार्गान् ।
 आत्मा ह्रस्वीकमिव शक्तिमृते किमन्य
 दत्तस्य सम्मवपदं ननु कर्णिकायाः ॥ ५८ ॥

हे पूज्य ! जिस प्रकार आत्मा इन्द्रियों को चैतन्य शक्ति दे
 है वैसे ही स्वर्गविधारे हुए आप भी इस साधुमार्गी संमदाय ।
 कर्तव्य शक्ति दो कारण, कि, हृदय की शक्ति के बिना इन्द्रि-
 यकामयाय ही होती हैं ॥ ५८ ॥

देवाधिदेव ! जिनदेव ! तदेव नाम
 ध्यानं सुदेहि मुनिभक्तमनोजनेभ्यः ।
 यस्मात्सुपूज्यवरसुन्दररूपमीषी
 ध्यानाजिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन ॥ ५९ ॥

हे देवाधिदेव भगवान् जिनेन्द्र ! मुनिभक्त, साधुमार्गी जनता
 को यह ध्यान दो जिनसे आपके रूप के साथ २ पूज्यवर का भी
 सुन्दर स्वरूप दीख पड़े ॥ ५९ ॥

अस्मिन्ननादिनिघने भुवि भूरिशोके
 तद्विधानतो मम दृशं समुपेतु पूज्यः ।
 लोकाः सुरानपि यतोऽप्यतिशेस्ते स्म
 देहं विहाय परमान्मदशां व्रजन्ति ॥ ६० ॥

तदा से आते हुए, मृत्युकारक तथा शोक वाले इस संसार में
 ज्ञेय चरणों का हम उस ध्यानसे दर्शन करें जिस ध्यान से माधव
 मनुष्य भी देवताओं को पराजित करते और शरीर छोड़ने पर
 परमात्मस्वरूप में लीन होते हैं ॥ ६० ॥

पूज्य ! त्वदीयगुणचिन्तनमस्मदादीन्
संशोध्य शुद्धमनसो विदधातु तद्वत् ।
यादृक् कठोरमुपलं कनकत्वमेति
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके ॥ ६१ ॥

हैं पूज्य! आपका गुणगान हमको ठीक वैसे ही शुद्ध बनादे जिस प्रकार तीव्र अग्नि पत्थर की कठोरता को छुड़ा कर उसे निर्मल स्वर्ण बना देती है ॥ ६१ ॥

गृह्णन्ति ये तव सुनाम वदन्ति भावं
सम्यक् स्मरन्ति रमणीयवपुः सदैव ।
तेऽपि त्वदीयगुणगौरवमाप्नुवन्ति
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः॥६२॥

हे स्वामिन् ! जो मनुष्य आपका नाम रटते हैं, आपके अभि-
 प्रायों से वाणी को पवित्र तथा निर्मल करते हैं और आपके रम-

भृतस्तिरोहितवपुर्दिवि संगताऽपि
 पूज्य ! प्रभाविन उर्ध्वय साधुमार्गान् ।
 आत्मा इषीकमिव शक्तिमृते किमन्य
 दद्यस्य मम्मवपदं-ननु कर्णिकायाः ॥ ५८ ॥

हे पूज्य ! जिस प्रकार आत्मा इन्द्रियों को चैतन्य शक्ति
 है वैसे ही स्वर्गसिधारे हुए आप भी इस साधुमार्गी संप्रदाय
 कर्तव्य शक्ति दो फारण कि, हृदय की शक्ति के बिना इन्द्रि
 नकामयाय ही होती हैं ॥ ५८ ॥

देवाधिदेव ! जिनदेव ! सदेव नाम
 ध्यानं सुदेहि मुनिभक्तमनोजनेभ्यः ।
 यस्मात्सुपूज्यवरमुन्दररूपमीषी
 ध्यानाजिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन ॥ ५९ ॥

हे देवाधिदेव भगवान् जितेन्द्र ! मुनिभक्त, साधुमार्गी जनन
 को यह ध्यान हो जिनसे आपके रूप के साथ २ पूज्यवर का भी
 मुन्दर स्वरूप दीख पड़े ॥ ५९ ॥

अस्मिन्ननादिनिधने भुवि भूरिशोके
 तद्व्यानतो मम दृशं समुपेतु पूज्यः ।
 लोकाः सुरानपि यतोऽप्यतिशेरते स्म
 देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ॥ ६० ॥

सदा से आते हुए, मृत्युकारक तथा शोक वाले इस संसार में पूज्य चरणों का हम उस ध्यानसे दर्शन करें जिस ध्यान से साधारण मनुष्य भी देवताओं को पराजित करते और शरीर छोड़ने पर परमात्मस्वरूप में लीन होते हैं ॥ ६० ॥

पूज्य ! त्वदीयगुणचिन्तनमस्मदादीन्
संशोध्य शुद्धमनसो विदधातु तद्वत् ।
यादृक् कठोरमुपलं कनकत्वमेति
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके ॥ ६१ ॥

हैं पूज्य! आपका गुणगान हमको ठीक वैधे ही शुद्ध बनादे जिस प्रकार तीव्र अग्नि पत्थर की कठोरता को छुड़ा कर उसे निर्मल स्वर्ण बना देती है ॥ ६१ ॥

गृह्णन्ति ये तव सुनाम वदन्ति भावं .
सम्यक् स्मरन्ति रमणीयवपुः सदैव ।
तेऽपि त्वदीयगुणगौरवमाप्नुवन्ति .
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥ ६२ ॥

हे स्वामिन् ! जो मनुष्य आपका नाम रटते हैं, आपके अभि-
प्रायों से बाणी को पवित्र तथा निर्मल करते हैं और आपके रम-
णिय स्वरूपका सदा स्मरण करते हैं वे भी आपके गुणगौरवको प्राप्त

करते हैं, जैसे लोहा बगैरह धातु पारस के संयोग से सोना बन जाते हैं ॥ ६२ ॥

योऽन्यं संदोषकुरुते दययाऽमृतं नो
मृते कदापि समतां न हि सञ्जहाति ।
तादृक्तवानुकृदिहासमदीयपूज्यः
अन्तःमदैव जिन ! यस्य विमान्पसे त्वम् ॥ ६३ ॥

हे जिन ! परोपकारी, हित तथा मनोहर भापी एवं दया पूर्ण हृदयसम्पन्न जैसे आप हैं वैसेही आपका अनुकरण करने वाले हमारे भी पूज्य थे क्योंकि, इसीसे हमारे पूज्य के अन्तःकरण में आप हमेशा विराजते थे ॥ ६३ ॥

यद्वरूपमाप्तमसुमाद्भिरसोर्विशेषं
चिन्तामणिप्रतिकृतं परिपूजितं च ।
त्वं पूज्यरूपमधुना परिगृधुभिः स्म
भन्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ॥ ६४ ॥

सामरिक जीवों ने जिस मधुररूप को प्राणों से कई गुणा अधिक प्रिय समझ कर अपनाया था एवं चिन्तामणि के समान जिस रूप की पूजा करते थे व भव्यजीव जिस स्वरूप को देखना चाहते थे उस पूज्यरूप को आपने कैसे नष्ट कर दिया ॥ ६४ ॥

सन्त्वत्र सुन्दरतराणि मुखानि भूरि
 सर्वाणि किन्तु निजकृत्यपराङ्मुखानि ।
 तत्पूज्यकृत्यसुमुखं सुजनाः स्मरन्ति
 एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनोऽपि ॥ ६५ ॥

इस संसार में सुन्दर मुख कौड़ों की तादाद में हैं, किन्तु सब के सब अपने कर्त्तव्य से विमुख हैं मात्र कर्त्तव्य में तत्पर हे पूज्य । आपका ही स्वरूप था जिसका भूलोकवासी सज्जन सदा स्मरण करते हैं ॥ ६५ ॥

सम्प्रत्यसाम्प्रतमितो ह्यभवत्सुपूज्य
 प्रस्थानमत्रभवतो विबुधा वदन्ति ।
 स्वध्वाऽग्रहग्रहगृहीतसुविग्रहे के
 यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥ ६६ ॥

वर्त्तमान समय में इस लोक से स्वर्ग को सिधारना यह आपने सब कुछ उचित नहीं किया ऐसा ही सभी विचारशील मनुष्य कहते हैं क्योंकि, अपने २ आग्रह (हठ) रूप ग्रह से सचे हुए तलड़ाई ऋग्दों को कौन मिटा सकेगा कारण कि, आपके समान महानुभाव ही उसका शमन कर सकते हैं ॥ ६६ ॥

जाते दिवं त्वयि विभो ! सकला जनाशा
 जाता विनाशमभितोऽस्तपदावकाशा

आशास्ति ते गुणगणेन गुणीकृतये -
दात्मा मनीषिभिरयं त्वदमेदबुद्ध्या ॥ ६७ ॥

आप के स्वर्ग चले जाते परं हम लोगों की समाम आशाओं
निराशा के रूपमें मिलकर नष्ट भ्रष्ट होगयीं हैं सिर्फ एक ऐसी आशा
शोर रही है जिससे आपकी अमेदबुद्धि द्वारा - आपके ही गुणों
से अपनी आत्मा को विद्वान् गुणसंपन्न बना, सकेगा ॥ ६७ ॥

पूज्य त्वदीयकृपया प्रतिमास्त्वैव
लब्धा विभान्ति मतिशान्तिधनाः सुपूजयाः ।
तद्ध्यानतद्गुणकरं श्रवदन्ति यस्माद्
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभायः ॥ ६८ ॥

हे पूज्य ! आपकी परमकृपा से आपके समान ही शान्त दाम
तथा अगाध मतिवैभव वाले पूज्य मिलगये हैं, ज्येष्ठ (जिसके
ध्यान किया जाय) के गुण ध्याता (ध्यान करने वाले) ने
आजाते हैं ऐसी लोकोक्ति है, इसीसे हे पूज्य ! आपका ध्यान करने
से आपका प्रभाव होना ही चाहिये था ॥ ६८ ॥

ध्यानं धरातलज्जुषां विदितप्रभानं
ध्येयानुकूलफलमालम्बितं योगी ।
स्वस्यामरत्वमभिकांक्षिगदातुराणां
पानीयमप्यमृतीमत्यनुचिन्त्यमानम् ॥ ६९ ॥

सांसारिक जीव ध्यान के प्रभाव को खूब समझते हैं कि, ध्यान-शील योगी ध्येय के अनुकूल (जिसका ध्यान किया जाय उसीके अनुसार) अभीष्टफल को प्राप्त करते हैं, इसीसे ही अपने अमरत्व (सदा नीरोगिता) को चाहने वाले रोगियों के लिये जलभी अनृतमय होजाता है ॥ ६९ ॥

यो मासपूर्वमवदो बहु नो हितार्थं
स त्वं स्मृतोऽपि शुभदो भव भव्यमूर्ते ! ।
तिष्ठन्स्मृतोऽपि गरुडोऽहिरदक्षतानां
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥ ७० ॥

मास दो मास पहिले आप अनेक प्रकार के दितोपदेश दिया करते थे, अतः अब स्मरण किये गये भी आप शुभदायी हो कारण कि, जो गरुड़ सर्प के काटे हुए का विष प्रत्यक्ष होकर उतारता है तो क्या वह स्मरण करने से विष विकार को दूर नहीं कर सकता ? ॥७०॥

निन्द्यो निरक्षर इति प्रथमं त्वनिन्दन्
त्वच्छ्रान्तिशीलविधिना विगतप्रभावाः ।
निन्दन्ति तच्चरितमात्मगतं स्तुयन्ति
त्वामेव वाततमसं परवाद्रिनोऽपि ॥ ७१ ॥

जो भूठे प्रतिवादी प्रथम आपकी निन्दा किया करते थे वे ही अब आपकी अटल शान्ति के प्रताप से प्रभावहीन होकर अपने

आशास्ति ते गुणगणेन गुणीकृतये .

दात्मा मनीषिभिरयं न्वदमेदमुद्धया ॥ ६७ ॥

आप के स्वर्ग चले जाने पर हम लोगों की तमाम आशाएँ निराशा के रूपमें मिलकर नष्ट भ्रष्ट होगयीं हैं सिर्फ एक ऐसी आशा शेष रही है जिससे आपकी अमेदमुद्धि द्वारा आपके ही गुणों से सपनी आत्मा को विद्वान् गुणसंपन्न बना सकेंगे ॥ ६७ ॥

पूज्य त्वदीयकृपया प्रतिमास्तत्रैव .

लब्धा विमान्ति मतिशान्तिधनाः सुपूज्याः ।

तद्ध्यानतद्गुणकरं प्रवदन्ति यस्माद्

ध्यासो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ॥ ६८ ॥

हे पूज्य ! आपकी परमकृपा से आपके समान ही शान्त दान्त तथा अगाध मतिवैभव वाले पूज्य मिलगये हैं, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय), के गुण ध्याता (ध्यान करने वाले) में आजाते हैं ऐसी लांछोक्ति है, इसीसे हे पूज्य ! आपका ध्यान करने से आपका प्रभाव होना ही चाहिये था ॥ ६८ ॥

ध्यानं घरातलज्जुपां विदितप्रभावं .

ध्येयानुकूलफलमालभतेऽत्र योगी ।

स्वस्यामरत्वममिकांक्षिगदातुराणां

पानीयमप्यमृतीमत्यनुचिन्त्यमानम् ॥ ६९ ॥

सांसारिक जीव ध्यान के प्रभाव को खूब समझते हैं कि, ध्यात-शील योगी ध्येय के अनुकूल (जिसका ध्यान किया जाय उसीके अनुसार) अभीष्टफल को प्राप्त करते हैं, इसीसे ही अपने अमरत्व (सदा नीरोगिता) को चाहने वाले रोगियों के लिये जलभी अनृतमय होजाता है ॥ ६१ ॥

यो मासपूर्वमवदो बहु नो हितार्थं
स त्वं स्मृतोऽपि शुभदो भव भव्यमूर्ते ! ।
तिष्ठन्स्मृतोऽपि गरुडोऽहिरक्षतानां
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥ ७० ॥

मास दो मास पहिले आप अनेक प्रकार के इतोपदेश दिया करते थे, अतः अब स्मरण किये गये भी आप शुभदायी हो कारण कि, जो गरुड़ सर्प के काटे हुए का विष प्रत्यक्ष होकर उतारता है तो क्या वह स्मरण करने से विष विकार को दूर नहीं कर सकता ? ॥७०॥

निन्द्यो निरक्षर इति प्रथमं त्वनिन्दन्
त्वच्छान्तिशीलविधिना विगतप्रभावाः ।
निन्दन्ति तच्चरितमात्मगतं स्तुवन्ति
त्वामेव वीरतमसं परवाद्रिनोऽपि ॥ ७१ ॥

जो भूठे प्रतिवादी प्रथम आपकी निन्दा किया करते थे वे ही अब आपकी अटल शान्ति के प्रताप से प्रभावहीन होकर अपने

आदागस्तिं ते शुश्रूषणेन शुशीकृतये -

दात्मा मनीषिभिरयं न्वदमेदबुद्ध्या ॥ ६७ ॥

आप के स्वर्ग चले जाने पर हम लोगों की समान आचार्य
निराशा के रूपमें मिलकर नष्ट भ्रष्ट होगयी हैं सिर्फ एक ऐसी आगा
शेर रही है जिससे आपकी अभेदबुद्धि द्वारा आपके ही गुणों
से अपनी आत्मा को विद्वान् गुणसंपन्न बना सकेंगे ॥ ६७ ॥

पूज्य त्वदीयकृपया प्रतिमास्तवैव

लब्धा विमान्ति मतिशान्तिधनाः सुपूज्याः ।

तदध्यानतद्गुणकरं प्रवदन्ति यस्माद्

ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ॥ ६८ ॥

हे पूज्य ! आपकी परमकृपा से आपके समान ही शान्त दान्त
तथा अगाध मतिवैभव वाले पूज्य मिलगये हैं, ज्येष्ठ (जिसका
ध्यान दिया जाय) के गुण ध्याता (ध्यान करने वाले) में
आजाते हैं ऐसी लांछोक्ति है, इसीसे हे पूज्य ! आपका ध्यान करने
से आपका प्रभाव होना ही चाहिये था ॥ ६८ ॥

ध्यानं घरातलज्जुषां विदितप्रभावं .

ध्यानुकूलफलमालभतेऽत्र योगी ।

स्वत्स्यामरत्वमभिकीर्तिगदातुरार्या -

पानीयमप्यभृतीमत्यनुचिन्त्यमानम् ॥ ६९ ॥

शंख का अस्तित्व नहीं है और जिनकी आँखों में कामला रोग हुआ है उन्हें सफेद भी शंख सदा फीला ही दीखता है ॥ ७३ ॥

यस्ते निर्देशमधरद्भुदये न जन्तु
मन्तुने तस्य यदसौ श्रवणेन हीनः ।
दृष्टं न किं नु भवता बधिरैर्हितोऽपि
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥ ७४ ॥

जिस मनुष्य ने आपके उपदेश को हृदय में अंकित नहीं किया उसका कुछ भी अपराध नहीं है कारण कि, उसके कान ही नहीं थे, बधिर (कानों से बहरा) मनुष्य अपने हित की बात को भी नहीं समझता, कदाचित् समझ भी ले तो उलट पलट समझता है ॥ ७४ ॥

वर्षतुषारिदनिभेऽम्बुमृतं वचस्तद्
वर्षत्यरं त्वयि मयूरानिभा जनैः ॥
हर्षप्रकर्षमविदन् मुदमाप धर्मो
धर्मोपदेशसमये सविधानुभावात् ॥ ७५ ॥

वर्षा ऋतु का मेघ जिस प्रकार जल बरसाता है ठीक उसी तरह जब आप वचनामृत की झड़ी लगा देते थे, तब जनता मयूरों के समान अनिर्वचनीय आनंद को प्राप्त होती थी और अपनी समीपता देखकर धर्म भी फूला नहीं समाता था ॥ ७५ ॥

निन्द्य एवं व्यर्थ जीवन की निन्दा करते, आत्मा को फोसते और अतीत पर पश्चात्ताप करते हुए अज्ञान को दूर करने वाले आपको मुककंठ से प्रशंसा करते हैं ॥ ७१ ॥

येऽपि त्वदीरितपथाऽन्यपथप्रवृत्ता
स्त्वद्देवदेवनमपोह्य परं भजन्ते ।
तेऽपि त्वदीरितगुणाकृतिमन्तमेव
नूनं विमो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य आपके बतलाये हुए मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग में प्रवृत्त हैं एवं आपके द्वाराध्य देव की वन्दना न कर, दूसरे की हृदयज्ञम करते हैं, हे विमो ! वे भी मनुष्य केवल हरिहर आदि की बुद्धि से आपके ही बतलाये हुए गुण तथा आचार को प्राप्त करते हैं ॥ ७२ ॥

येषां मतावतिविपर्यय एव जांतो
येषां न वा मतिरभूचन ते प्रतीषाः ।
पीतोऽथ सन्नपि जनेर्विदितोऽस्ति नाधः
किं काचकामलिभिरीश ! शितोऽपि शंखः ॥ ७३ ॥

जिनकी बुद्धि उलटे रास्ते बढ़ गई थी या जो ज्ञानसे ही शून्य थे वे ही आपके विरुद्ध चलने थे; क्योंकि, अंधे के लिये मौजूर भी-

शंख का अस्तित्व नहीं है और जिनकी आखों में कामला रोग हुआ है उन्हें स्फेद भी शंख सदा पीला ही दीखता है ॥ ७३ ॥

यस्ते निर्देशमधरद्वये न जन्तु
मन्तुर्न तस्य यदसौ श्रवणेन हीनः ।
दृष्टं न किं नु भवता बधिरैर्हितोऽपि
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥ ७४ ॥

जिस मनुष्य ने आपके उपदेश को हृदय में अंकित नहीं किया उसका कुछ भी अपराध नहीं है कारण कि, उसके कान ही नहीं थे, बधिर (कानों से बहरा) मनुष्य अपने हित की बात को भी नहीं समझता, कदाचिन् समझ भी ले तो उलट पलट समझता है ॥ ७४ ॥

वर्षतुषारिदनिभेऽम्बुमृतं वचस्पदं
वर्षत्यरं त्वयि मयूरानिमा जनायाः ।
हर्षप्रकर्षमविदन् मुदमाप धर्मो
धर्मोपदेशसमये सविधानुसूयान् ॥ ७५ ॥

संयोगमप्रियमवाप्य प्रियाद्वियोगं

वेत्तिद्यते यदि भवद्दयं त्वया तत् ।

माऽस्तञ्चि जीव निकरेऽतिनिदेशतोऽस्मा

दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ॥ ७६ ॥

“ तुम्हा! हृदय यदि अप्रिय के संयोग से और प्रिय के वियोग से दुखी होता हो तो तुम भी किसी जीव को कष्ट मत दो, प्राणी मात्र को आत्म भाव से देखो और बन पड़े वहां तक दया देवी का हृदय में आह्वान करो ,, इस प्रकार का आपका उपदेश सुनकर मनुष्य ही नहीं किन्तु वृक्ष भी बीतरशोक हो जाता करते थे ॥ ७६ ॥

श्रीमद्ब्रह्मचोदिनकरे सदसि घुलोके

सिंहासनोदयगिरेरुदिते जनानाम् ।

चेतीरविन्दमभिनन्दति किं विचित्र

मभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि ॥ ७७ ॥

सिंहासन रूपी उदयाचल-पर्वत से सभा रूपी विशाल आकाश में आपके वचन रूपी सूर्य का जब उदय होता था, तब चारों दीर्घों के हृदय कमल एक दम खिल उठते थे, इसमें आश्चर्य ही क्या है, कारण कि, सूर्योदय में समस्त संसार ही जग जाता है ॥ ७७ ॥

श्रीमत्सुशान्तिमतिमानुविधुप्रकाशे

आसीतुप्रकाश इह जीवद्दोऽवकाशे ।

किं चित्रमंत्र तपनं तपति प्रशोकः ।

किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥ ७८ ॥

आपके शांति रूप चंद्र तथा ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से चारों
 दीर्घों के हृदयाकाश में प्रकाश हुआ है, इसमें आश्चर्य की कौनसी
 बात है; एक ही सूर्य के उदय होने से क्या वह समस्त संसार बोध
 को प्राप्त नहीं होता ? ॥ ७८ ॥

जाते तव प्रवचने तपनेऽत्र लोके
 हर्षन्ति सर्वसुमनांसि विनिस्तमांसि ।

सूर्याख्यपुष्पमिव दुर्जनचित्तमेकं

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव ॥ ७९ ॥

आपके वचन रूपी सूर्य के उदय होने पर कमलों के समान
 सज्जनों के हृदयों में प्रसन्नता छा गई, लेकिन सूर्यपुष्प (सूरजमुख-
 खिया) के समान सिर्फ दुर्जनों का मन अधोमुख ही रहा यही
 आश्चर्य है । ७९॥

हित्वा भुवं दिवमुपेतुमितः प्रयाते

श्रीमत्यवर्णनगुणः सुरसंभ्रमोऽभूत्

दक्षान दुन्दभिरगायत मञ्जु हाहा

विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ॥ ८० ॥

संयोगमप्रियमवाप्य प्रियाद्वियोर्ग
 वेस्तिद्यते यदि भवद्वदयं-त्वया तत् ।
 माऽसञ्जि जीव निरुदतिनिदेशतोऽस्मा
 दास्तां जनो भवति ते तुरुरप्यशोकः ॥ ७६ ॥

“ तुम्हाभा हृदय यदि अप्रिय के संयोग से और प्रिय के वियोग से दुखी होता हो तो तुम भी चिखी जीव को कष्ट मत दो, प्राणी मात्र को आत्म भाव से देखो और वन पड़े वहां तक दया देवी का हृदय में आह्वान करो , इस प्रकार का आपका उपदेश सुनकर मनुष्य ही नहीं किन्तु पृष्ठ भी बितशोक हो जाया करते थे ॥ ७६ ॥

श्रीमद्वचोदिनकरे सदसि घुलोंके
 सिंहासनोदयगिरेरुदिते जनानाम् ।
 चेतोरविन्दमभिनन्दति किं विचित्र
 सभ्युद्गते दिनपता समहीरुहोऽपि ॥ ७७ ॥

सिंहासन रूपा उद्याचल-पर्वत से सभा रूपा विशाल आकाश से आपके यवन रूपा मूर्ध का जब उदय होता था, तब चारों ओरों के हृदय कमल एक दम खिल उठते थे, इसमें आश्चर्य ही क्या है, कारण कि, सूर्योदय में समस्त संसार ही जग जाता है ॥ ७७ ॥

श्रीमन्मुशान्तिमतिमानुविधुप्रकाशे
 आसीनुप्रकाश इह जीवहृदोऽवकाशे ।

किं चित्रमत्र तपनं तपति प्रशोक !

किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥ ७८ ॥

आपके शांति रूप चंद्र तथा ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से चारों तीर्थों के हृदयाकाश में प्रकाश हुआ है, इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है; एक ही सूर्य के उदय होने से क्या वह समस्त संसार बोध को प्राप्त नहीं होता ? ॥ ७८ ॥

जाते तव प्रवचने तपनेऽत्र लोके
हर्षन्ति सर्वसुमनांसि विनिस्तमांसि ।

सूर्याख्यपुष्पमिव दुर्जनचित्तमेकं

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव ॥ ७९ ॥

आपके वचन रूपी सूर्य के उदय होने पर कमलों के समान सज्जनों के हृदयों में प्रसन्नता छा गई, लेकिन सूर्यपुष्प (सूरजमुखिया) के समान सिर्फ दुर्जनों का मन अधोमुख ही रहा यही आश्चर्य है । ७९ ॥

हित्वा भुवं दिवमुपेतुमितः प्रयाते

श्रीमत्यवर्णनगुणः सुरसंभ्रमोऽभूत्

दधान दुन्दभिरगायत मञ्जु हाहा

विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ॥ ८० ॥

इस लोक को छोड़कर जब स्वर्ग के लिये आपको प्रयाण हुआ था, तब देवों का संभ्रम (अतिथिसत्कार में कुतूहल) अवर्णनीय था, जैसे कि, देवदुन्दुभियों से स्वर्ग गूँज रहा था, गंधर्वों का मधुर गायन मोहित कर रहा था तथा चारों ओर निरंतर मंदार के पुष्पों की वृष्टि हो रही थी इत्यादि २ (उत्प्रेक्षा) ॥८०॥

पूज्य ! त्वदीयगुण अर्पितदृष्टिपातः
पातोऽप्यतप्यततदैव हृदो वियोगे ।
धर्तुं गुणांस्तव लसन्ति मनांसि नूनं .
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश ! ॥ ८१ ॥

हे पूज्य ! आपके गुणों को देखते ही राहु हृदयशून्य होकर अत्यन्त दुखी हुआ, कारण कि, आपके दर्शन होते ही देवताओं का हृदय गुण ग्रहण करने में अपूर्व उत्साह दिखलाता है (राहुका नाम लोकीक्ति है) ॥८१॥

वन्दिप्रभे भवति दृष्टिपथे प्रयाते .
एनांसि पापिनि भवन्ति समिन्धनानि ।
भस्मीभवन्त्यसुमतां भुवि तत्कृतानि .
गच्छन्ति नूनमथ एव हि बन्धनानि ॥ ८२ ॥

अग्नि के समान जायवन्त्य मान प्रभा वाक्से आपके दृष्टिमार्गमें आते

हुए पापियों के-पाप सूखी लकड़ी के समान भस्म होजाते हैं, इसीसे उन पापों द्वारा प्राप्त बंधन भी छिन्न भिन्न होजाते हैं ॥८२॥

जाते दिवं त्वयि निराश्रयतां गतायाः ।

निर्व्याजशान्तिधृतिबुद्धिदयाक्षमायाः ।

हृत्कम्पतापकरुणार्द्रविलाप आस्ते

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः ॥ ८३ ॥

आपके गंभीर हृदय-समुद्र से उत्पन्न स्वाभाविक शांति, धृति, बुद्धि दया तथा क्षमा के हृदय में कंपन, संताप और सकरुण-क्रंदन होरहा है; सो युक्त है, क्योंकि, वे सब की सब आपके स्वर्ग-पधारने से आश्रय हीन होचुकी हैं ॥ ८३ ॥

जाने जनो भुवि सदान्पगुणामिधानो

ब्रूते हरिं गिरिधरं मुरलीधरं हि ।

पीयूषयूपमिव सद्बचनं ततोऽमी

पीयूषतां तव गिरः समूदीरयन्ति ॥ ८४ ॥

ऐसा मालूम होता है कि, संसार में मनुष्यनात्र का यह स्वभाव सा होगया है कि, बड़े से बड़े को छोटे से छोटा पुकारना, जैसेकि, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले हरि को मुरलीधर कहते हैं ऐसे ही आपकी वाणी यद्यपि अमृत का नाँवा (सार) है तोभी उसे अमृत समान ही बोलते हैं ॥८४॥

इस लोक को छोड़कर जब स्वर्ग के लिये आपके प्रयाण हुआ था, तब देवों का संभ्रम (अतिपिस्तकार में कुतूहल) अवर्णनीय था, जैसे कि, देवदुंदुभियों से स्वर्ग गूँज रहा था, गंधर्वों का मधुर गायन मोहित कर रहा था तथा चारों ओर निरंतर मंदार के पुष्पों की वृष्टि हो रही थी इत्यादि २ (उत्प्रेक्षा) ॥८०॥

पूज्य ! त्वदीयगुण अर्पितदृष्टिपातः
यातोऽप्यतप्यततदैव हृदो वियोगे ।
धत्तु गुणांस्तव लसन्ति मनांसि नूनं
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश ! ॥ ८१ ॥

हे पूज्य ! आपके गुणों को देखते ही राहु हृदयशून्य होकर अत्यन्त दुखी हुआ, कारण कि, आपके दर्शन होते ही देवताओं का हृदय गुण ग्रहण करने में अपूर्व उत्साह दिखलाता है (राहुका नाम लोकोक्ति है) ॥८१॥

वन्निःप्रभे भवति दृष्टिपथे प्रयाते . . .
एनांसि पापिनि भवन्ति समिन्धनानि ।
मरमीभवन्त्यसुमतां भुवि तत्कृतानि
गच्छन्ति नूनमध-एव हि बन्धनानि ॥ ८२ ॥

अभि के समान जात्यन्व मान प्रभा वाले आपके दृष्टिमार्गमें अति

लङ्कां गता इह यथा पयनात्मजाताः

स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तः ॥ ८७ ॥

हे स्वामिन् ! आपके चरणों में जो मनुष्य नम्र होते हैं वे ठीक वैसे ही देवाङ्गनाओं को मोहित करने वाला रूप प्राप्त कर जगन् भर में स्वर्ग जाते हैं जैसे कि, रामचन्द्रजी के चरणों में नम्र होकर तुरन्त मारुति (हनुमान्) लंका में पहुँचा था ॥ ८७ ॥

स्वः संगते त्वयि विभो ! दिविपत्प्रसादाः

अस्मादृशा ककुभि ते बहुलीभवन्ति ।

एवं हि बालनिकरान्मुहुरा किरन्तो

मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ॥ ८८ ॥

हे विभो ! आपके स्वर्ग जानेपर देवताओं की प्रसन्नता हमारे समान दसों दिशाओं में पर्याप्त फैल रही है, मानो यही संदेश देते हुए देवताओं के चामर अपने शुभ्रवालों को आकाश में इतस्ततः बिखेर रहे हैं ॥ ८८ ॥

तेऽस्मिन् जनेऽमरपुरे मुदमाप्नुवन्ति

लप्स्यन्त आपुरभितः समयत्रये च ।

संमोहयन्ति जनतां परिमोदयन्ति

येऽस्मै नर्ति विदधते मुनिपुङ्गवाय ॥ ८९ ॥

पूज्य ! त्वदीयवचनारचना विचित्रा -
 पीयूषयूपमिव नः श्रवणोरसिञ्चत् ।
 तां चाधरीकृतसुधामधुनाधुरीं स्मः
 पीत्वा यतः परमसंमदसंगमोजः ॥ ८५ ॥

हे पूज्य ! आपकी वचन रचना मनोहर एवं अलौकिक थी,
 हमारे कानों में मानो सदा शमूत का मावा (सार) बरसाया करती
 थी, इसीसे सुधा तथा मधु की माधुरी की अवहेलना करने वाली
 वस आपकी वाणी को श्रवण पुटों से पीकर हम अब तक भी आनं-
 द में हैं ॥ ८५ ॥

केचिद्ब्रजन्ति यशसा स्तुतिपात्रवान्तु
 केचिद्रणे जम्बरमां महसा लभन्ते ।
 युष्मादृशं हि सहसां समुपास्य धीरं
 भव्या ब्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ॥ ८६ ॥

हे विभो ! कई एक यश से स्तुति पात्र बन बैठते हैं और कई
 एक बल प्रयोग से युद्ध में जय को प्राप्त करते हैं, किन्तु आप जैसे
 धीर की उपासना करने वाले सब से बल अजरामरत्व-पद पर
 पहुँचते हैं ॥ ८६ ॥

नम्रास्त्वदीयचरणे सुरसुन्दरीणां
 कम्पाः प्रयान्ति सुरसत्र तथैव जीवाः ।

लङ्कां गता इह यथा पवनात्मजाताः

स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तः ॥ ८७ ॥

हे स्वामिन् ! आपके चरणों में जो मनुष्य नम्र होते हैं, वे ठीक वैसे ही देवाङ्गनाओं को मोहित करने वाला रूप प्राप्त कर जग भर में स्वर्ग जाते हैं जैसे कि, रामचन्द्रजी के चरणों में नम्र होकर तुरन्त मारुति (हनुमान्) लंका में पहुँचा था ॥ ८७ ॥

स्वः संगते त्वयि विभो ! दिविपत्प्रसादाः

अस्मादृशा ककुभि ते बहुलीभवन्ति ।

एवं हि वालनिकरान्मुहुरा किरन्तो

गन्धे वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ॥ ८८ ॥

हे विभो ! आपके स्वर्ग जानेपर देवताओं की प्रसन्नता हमारे समान दसों दिशाओं में पर्याप्त फैल रही है, मानो यही संदेश देते हुए देवताओं के चामर अपने शुभ्रवालों को आकाश में इतस्ततः भिखेर रहे हैं ॥ ८८ ॥

तेऽस्मिन् जनेऽमरपुरे मुदमाप्नुवन्ति

लप्स्यन्त आपुरभितः समयत्रये च ।

संमोहयन्ति जनतां परिमोदयन्ति

येऽस्मै नर्ति विदधते मुनिपुङ्गवाय ॥ ८९ ॥

वे ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में तीनों काल आनंद पाते हैं, संसार को अपने अधीन कर सकते हैं तथा प्राणीमात्र को प्रसन्न बना सकते हैं जो मनुष्य मुनिपुंगव-आपको नमस्कार करते हैं ॥ ८६ ॥

पूज्याङ्घ्रिपद्मजपरागसुरागितान्तः
 स्थान्ता भवन्ति मनुजा हि नितान्तशान्ताः ।
 तस्माद्मजन्ति वृजिनं परिवर्ज्य जीवा
 स्ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धमायाः ॥ ६० ॥

पूज्यश्री के चरण कमलों के पराग से जिन मनुष्यों का अंश-करण रंगा गया है, वे ही मनुष्य एकान्तशांत मनोवृत्ति वाले होते हैं इसीसे तमाम पापों का क्षयोपशम कर एवं शुद्धात्मा होकर स्वर्ग सिधारते हैं ॥ ६० ॥

धर्मानुरक्तदुरितादिविरक्तभक्त
 भूपामर्षीनिव गुणान् परिवर्धयन्तम् ।
 पूज्यं परासुमपि दृग्स्थितमेव मन्ये
 श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नम् ॥ ६१ ॥

धर्मानुरागी तथा पापादियों में विरागी ऐसे भक्तरूप भूषण में गणिरूप गुणों की वृद्धि करने वाले, शांत एवं गंभीर वाली बोलने

चाले और स्वर्ण के नगीने सर्राजे दयान वर्ण-पूज्यभीजी को अपने नेत्रों के सामने उपस्थित ही देखता हूं ॥ ६१ ॥

कारुण्यनीरधरमुत्तममात्मविज्ञं
चारित्र्यभूमिगुणसस्यविशेषकम् ।
हर्षन्ति सर्वसुजनाः शरणं विलोक्य
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डनस्त्वाम् ॥ ६२ ॥

करुणारूप जल से भरे हुए तथा चरित्र रूपी भूमि में गुणरूपी घान्य को उचित रीतिसे सोचने वाले ऐसे आत्म ज्ञानी, उत्तम रक्षक तथा सिंहासन पर बैठे आपको निहार कर समस्त सज्जन रूपी मयूर हर्षित होते हैं ॥ ६२ ॥

ज्ञानासिमेत्य शुभकर्म तनुव्रितं च
पाखण्डखण्डनपरं सुकृताजिशूरम् ।
अर्हद्गिरं भुवि भवन्नमतान्द्रियार्था-
मालोकयन्ति रमसेन नदन्नमुच्चैः ॥ ६३ ॥

धर्म युद्ध में ज्ञान तलवार को पकड़ कर शुभकर्मों का कवच पहिन कर पाखंड मत खंडन शूर, अतिन्द्रिय अर्थ युक्त-अर्हद्वाणी को वारवचनों में धोलते हुए आपको सभी प्रसन्न हो होकर देखते हैं ॥ ६३ ॥

वे ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में तीनों काल आनंद पाते हैं, संसार को अपने अधीन कर सकते हैं तथा प्राणीमात्र को प्रसन्न बना सकते हैं जो मनुष्य मुनिपुंगव-आपको नमस्कार करते हैं ॥ ८६ ॥

पूज्याह्विपद्मजपरागसुरागितान्तः
स्वान्ता भवन्ति मनुजा हि नितान्तशान्ताः ।
तस्माद्भजन्ति धृजिनं परिवर्ज्य जीवा
स्ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धमावाः ॥ ६० ॥

पूज्यश्री के धरण कमलों के पराग से जिन मनुष्यों का संतःकरण रंगा गया है, वे ही मनुष्य एकांतशांत मनोवृत्ति वाले होते हैं इसीसे तमाम पापों का क्षयोपशम कर एवं शुद्धात्मा होकर स्वसिधारते हैं ॥ ६० ॥

धर्मानुरक्तदुरितादिविरक्तमक्त
भूषामणीनिव गुणान् परिवर्धयन्तम् ।
पूज्यं परामुमपि दृग्स्थितमेव मन्ये
श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नम् ॥ ६१ ॥

धर्मानुरागी तथा पापादियों में विरागी ऐसे भक्तरूप भूषण, भगिनिरूप गुणों की वृद्धि करने वाले, शांत एवं गंभीर वाली, बोलने

घाले और स्वर्ण के नगीने सर्राजे स्थान वर्ण-पूज्य श्रीजी को अपने नेत्रों के सामने उपस्थित ही देखता हूं ॥ ६१ ॥

कारुण्यनीरधरमुत्तममात्मविज्ञं
चारिव्यभूमिगुणसस्यविशेषकम् ।
हर्षन्ति सर्वसुजनाः शरणं विलोक्य
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डनस्त्वाम् ॥ ६२ ॥

करुणारूप जल से भरे हुए तथा चरित्र रूपी भूमि में गुणरूपी धान्य को उचित रीतिसे सोंचने वाले ऐसे आत्म ज्ञानी, उत्तम रक्तक तथा सिंहासन पर बैठे आपको निहार कर समस्त सज्जन रूपी मयूर हर्षित होते हैं ॥ ६२ ॥

ज्ञानासिमेत्य शुभकर्म तनुव्रितं च
पाखण्डखण्डनपरं सुकृताजिशूरम् ।
अर्हद्गिरं भुवि भवन्नमतान्द्रियार्था-
मालोकयन्ति रभसेन नदन्नमुच्चैः ॥ ६३ ॥

धर्म युद्ध में ज्ञान तलवार को पकड़ कर शुभकर्मों का कवच पहिन कर पाखंड मत खंडन शूर, अतिन्द्रिय अर्थ युक्त-अर्हद् वाणी को वीरवचनों में बोलते हुए आपको सभी प्रसन्न हो होकर देखते हैं ॥ ६३ ॥

वे ही मनुष्य इस लोकमें तथा परलोक में तीनों काल आनंद पाते हैं, संसार को अपने अधीन कर सकते हैं तथा प्राणीमात्र को प्रसन्न बना सकते हैं जो मनुष्य मुनिपुंगव-आपको नमस्कार करते हैं ॥ ८६ ॥

पूज्याङ्घ्रिषद्यज्ञपरागसुरागितान्तः
स्वान्ता भवन्ति मनुजा हि नितान्तशान्ताः ।
तस्माद्व्रजन्ति वृजिनं परिवर्ज्य जीवा
स्ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धमावाः ॥ ८७ ॥

पूज्यश्री के चरण कमलों के पराग से जिन मनुष्यों का संवत्करण रंगा गया है, वे ही मनुष्य एकांशरात मनोपृप्ति वाले होते हैं इसीसे समान पापों का क्षयोपराम कर एवं शुद्धात्मा होकर स्वर्ग विधारे हैं ॥ ८७ ॥

धर्मानुरक्तदुरितादिविरक्तमक्त
भूपामर्णानिव गुणान् परिवर्धयन्तम् ।
पूज्य परामुमपि दृग्स्थितमेव मन्ये
श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नम् ॥ ८८ ॥

धर्मानुरागी तथा पापादियों में विरागी देने अंतरूप भूपाल में नाशित्व गुणों की वृद्धि करने वाले शान्त एवं गंभीर वाली बोलेने

घाले और स्वर्ण के नगीने सरीजे स्नान वर्ण-पूज्यभीजी को अपने नेत्रों के सामने उपस्थित ही देखता हूं ॥ ६१ ॥

कारुण्यनीरधरमुत्तममात्मविज्ञं
चारित्र्यभूमिगुणसस्यविशेषशेकम् ।
हर्षन्ति सर्वसुजनाः शरणं विलोक्य
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डनस्त्वाम् ॥ ६२ ॥

करुणारूप जल से भरे हुए तथा चरित्र रूपी भूमि में गुणरूपी घान्य को उचित रीतिसे सौंचने वाले ऐसे आत्म ज्ञानी, उत्तम रक्तक तथा सिंहासन पर बैठे आपको निहार कर समस्त सज्जन रूपी मयूर हर्षित होते हैं ॥ ६२ ॥

ज्ञानासिमेत्यं शुभकर्म तनुव्रितं च
पाखण्डखण्डनपरं सुकृताजिशूरम् ।
अर्हद्गिरं भुवि भवन्नमतान्द्रियार्था-
मालोकयन्ति रभसेन नदन्नमुच्चैः ॥ ६३ ॥

धर्म युद्ध में ज्ञान तलवार को पकड़ कर शुभकर्मों का कवच पहिन कर पाखंड मत खंडन शूर, अतिन्द्रिय अर्थ युक्त-अर्हद् वाणी को वीरधचनों में बोलते हुए आपको सभी प्रसन्न हो होकर देखते हैं ॥ ६३ ॥

दुर्नीतिरीतिगिरिराजिषु सेकशीला
 अर्थोदका जनघनाः प्रतिवारिता यैः ।
 वायुर्विवाहयति वारिमुचं समन्ता
 घामीकराद्रिसिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥ ६४ ॥

दुर्नीति तथा कुरीति रूपी पर्वत पर जल बरसाते हुए जन रूपी
 मेघ को पूज्यभीजी ने इस तरह उड़ाया कि, जिस तरह सुमेरु पर
 बरसते हुए नवजलधर को प्रकुपित वायु उड़ावेता है अर्थात् दुर्नीति
 और कुरीति रूपी मेघ के लिये आप प्रलयकाशीन वायु थे ॥ ६४ ॥

तापत्रयं जनमनोजनि येन नष्टं
 निस्तन्द्रशारदशशाङ्कमनोदरेण ।
 अन्यन्तशान्तमनसस्तव का कथास्ते
 उद्गच्छता तथ शितिषुतिमण्डलेन ॥ ६५ ॥

जब शरत्पूणिमा के चन्द्रसमान आकाश में जनक तथा मनोहर
 आपके दर्शन से ही मनुष्यों के तीनों प्रकार के दुःख दूर हो जाते हैं -
 फिर यदि उसमें सुतरां शान्त मन वाले आप के अन्तःकरण से
 निकली हुई आशिर्वाद भी हो तो त्रया नहीं हो सकती ॥ ६५ ॥

धर्मन्तरुः कलिनिदाघगतो विशुष्कः
 पाखण्डिचण्डवचनमिहिरः कठोरः ।

श्रीमद्वचोऽमृतभरैरभितोऽपि सिक्तो
लुप्तच्छदच्छविरशोकतर्ल्वभूव ॥ ६६ ॥

इस प्रचण्ड कलिकाल निदाघ-धमय में पाजण्डियों के मुख
रूपी उदयाचल से निकले हुए कठोर सूर्य से धर्मतरु पतझड़ हो
कर झुलस रहा था, परन्तु आपके वचनामृत भरने से फिर हरा
भरा हो गया ॥ ६६ ॥

उत्पत्तिमूलबहुकामदलार्तिपुष्प
सौख्यालिसंसृतितरुर्विशदो जटालः ।
नश्यत्यवश्यमिह तत्र भवत्प्रसादा
त्सानिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग ! ॥ ६७ ॥

जन्म ही जिसका मूल (जड़) है, मनोरथ ही जिसके पत्र
हैं, तीनों प्रकार के दुःख ही जिसके फल फूल हैं और सुख जिसके
अमर हैं ऐसे संसार रूपी विशाल वृक्ष का आपकी कृपा तथा
ज्ञानिध्य से ही विध्वंस होता है ॥ ६७ ॥

भोगोचितेन वयसा कमलादयाभिः
सम्पन्न एव हि भवान् जगदत्यजघत् ।
वैराग्यमेतदयतो धनतो विहीनो
वीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥ ६८ ॥

दुर्नीतिरीतिगिरिराजिषु सेकशीला
 अथोदका जनघनाः प्रतिवारिता येः ।
 वायुर्विवाहयति वारिमुचं समन्ता
 क्षामीकराद्रिसिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥ ६४ ॥

दुर्नीति तथा कुरीति रूपी पर्वत पर जल बरसते हुए जन रूपी
 मेघ को पूज्यभौजों ने इस तरह उड़ाया कि, जिस तरह सुमेरु पर
 बरसते हुए नवजलधर को प्रकुपित वायु उड़ा देता है अर्थात् दुर्नीति
 और कुरीति रूपी मेघ के लिये आप प्रलयकालीन वायु थे ॥ ६४ ॥

तापत्रयं जनमनोजनि येन नष्टं
 निस्तन्द्रशारदशशाङ्गमनोहरेण ।
 अन्यन्तशान्तमनसस्तव का कथास्ते
 उद्वेज्यता तव शितिषुतिमण्डलेन ॥ ६५ ॥

जब शरत्पूणिमा के चन्द्रसमान आस्थाद जनक तथा मनोहर
 आपके दर्शन से ॥ मनुष्यों के तीनों प्रकार के दुःख दूर हो जाते ॥
 फिर यदि उसमें सुतरां शान्त मन वाले आप के अन्तःकरण से
 निकली हुई आशिर्वाद भी हो तो क्या नहीं हो सकता ॥ ६५ ॥

धर्मस्तरुः कलिनिदाघगतो विशुष्कः
 पास्तण्डिचण्डवचनमिहिरैः कठोरैः ।

श्रीमद्वचोऽमृतमरैरभितोऽपि सिक्तो
लुप्तच्छदच्छाविरशो कतरुर्बभूव ॥ ६६ ॥

इस प्रचण्ड कलिकाल निदाघ-धमय में पाखण्डियों के सुख
रूपी उदयाचल से निकले हुए कठोर सूर्य से धर्मतरु पतझड़ हो
कर झुलस रहा था, परन्तु आपके वचनामृत भरने से फिर हरा
भरा हो गया ॥ ६६ ॥

उत्पत्तिमूलबहुकामदलार्तिपुष्प
सौख्यालिसंस्तुतिरुर्विशदो जटालः ।
नश्यत्यवश्यमिह तत्र भवत्प्रसादा
त्सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग ! ॥ ६७ ॥

जन्म ही जिसका मूल (जड़) है, मनोरथ ही जिसके पत्र
हैं, तीनों प्रकार के दुःख ही जिसके फल फूल हैं और सुख जिसके
झरर हैं ऐसे संसार रूपी विशाल वृक्ष का आपकी कृपा तथा
सान्निध्य से ही विध्वंस होता है ॥ ६७ ॥

भोगोचितेन वयसा कमलादयाभिः
सम्पन्न एव हि भवान् जगदत्यजघत् ।
वैराग्यमेतदयतो धनतो विहीनो
लीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥ ६८ ॥

अगाधलक्ष्मी सम्पन्न आपने भोगोचित अवस्था (जुवानी) में जो संसार का त्याग किया सो ही वास्तविक त्याग कहलाता है; अन्यथा धन के नष्ट होजाने तथा इन्द्रियों के शिथिल पड़जाने पर तो बुद्धिमान् से बुद्धिमान् को भी वैराग्य होजाता है ॥ ६८ ॥

उन्मादवातममताविपदादिचिन्ता
सन्तानशामकनिदानमतिं सुपूज्यम् ।
यद्यात्मचिन्तनरसे रसिकाः स्थ यूयं
भो ! भो ! प्रमादमवधूय मजध्वमेनम् ॥ ६९ ॥

हे संसार के उपामकों ! यदि आत्मचिन्तन रसी रसिक बनना चाहते हो तो प्रमाद की जड़ उखाड़ो और उन्माद, ममता, तथा अनेक विपत्तियों के दूर करने में कुतश्चिद् बुद्धि वाले पूज्य की आराधना करो ॥ ६९ ॥

ध्यानादिसम्बन्धयुता शिवमार्गगा भो !
आधेःकदम्बबहुजर्जरिता गुणजाः ।
सर्जीभवन्तु कुरुते बभुवृत्तिमेतु :
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ॥ ७० ॥

हे ध्यानादि पाथेय (रास्ते में खाने के लिये बनाई हुई वस्तु) वाले मोक्षमार्ग के पथिकों ! तथा मानसिक दुःखों से दुस्त्रियो एवं

गुणज्ञ मनुष्यो ! आपको मोक्षपुरी में लेजाने को पूज्यश्री बुलारहे हैं
अतः शीघ्र ही मोक्षगामी संन में सम्मिलित हो जाओ ॥ १०० ॥

नो प्राणिपीडनमथो न च दुष्टवाक्यं
नो चौर्यमाचरत चारु समाचरध्वम् ।
संश्रूयते दिवि गतोऽपि भवान् यथाप्रा-
गेतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय ॥ १०१ ॥

तुम सब किसी भी जीव को कष्ट मत दो, असंस्कृत (दुष्ट)
भाषा को व्यवहार में मत आने दो, चोरी का आचरण मत करो
और सदा अपने आचार विचार को शुद्ध बनाओ इत्यादि जैसा
आप कहा करते थे ज्यों का त्यों अब भी सुन पड़ता है । (यदि
कोई मनुष्य नाटक आदि की सीन सीनरी को दत्ताचित्त तथा एक-
रस होकर देखता है तो बहुत दिनों तक उसके सामने वही नजारा
(दृश्य) उपस्थित रहता है) ॥ १०१ ॥

प्रस्थानमाविरभवच्च तवेदमेत-
दाकास्मिकं तु मुनिनाथ ! प्रयोदकाले ।
गर्जन्ति मेघनिबहाः सुजना विदन्ति
दंघ्वन्यते तव मुदे सुरदुन्दुभिर्हि ॥ १०२ ॥

हे मुनिराज ! जब भी बादल गर्जता है तभी लोग समझते

हैं कि, आपके स्वागत में देवगण दुन्दुभि ही बजा रहे हैं, कारण कि, आपका आकस्मिक प्रस्थान ही इस वर्षा ऋतु में हुआ है, इससे आपके स्वर्गारोहण का दिवस वर्षाऋतु भर समय लोक में खूब भूमधाम से प्रति वर्ष हुआ करेगा ॥ १०३ ॥

शास्त्रविकाशनपरमिहिरैः सदा हि
 लुप्तप्रतत्त्वनिचयाः परवाधलूकाः ।
 नरयन्ति दूरमथवा स्वधिर्यं त्यजन्ति
 उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ ! ॥ १०३ ॥

जैसे द्योतमान सूर्य के समान शास्त्रों से परवादी बलू अपने २ तत्त्व को भूल कर लुप्त प्राय हो जाते हैं, वैसे ही आपके प्रत्यक्ष प्रताप से भी यही पटना घट रही है ॥ १०३ ॥

शिष्यौघतारकयुतं भवदिन्द्रमथ
 शीतैः प्रतीग्मरुचिभिश्च निदेशनाभिः
 शश्वत्प्रकाशमवलोक्य विशादयुक्त
 स्तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ॥ १०४ ॥

शिष्यरूपी तारागणों से सुशोभित एवं शीतिल तथा देदीप्यमान धर्मदेशनारूप चंद्रिका से सुतरां प्रकाशमान आज आपको देखकर नक्षत्रों सहित चंद्रमा अपने अधिकार को भूल रहा है ॥ १०४ ॥

अभ्यागते त्वयि गते दिवि देवतानां
 स्वस्वामिभावमपनीय बभूव वार्ता ।
 चष्टेमरोऽमरपतिं त्यज शीघ्रमिन्द्र !
 मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रम् ॥ १०५ ॥

हे पूज्य ! आपके स्वर्ग चले जाने पर स्वामीसेवक भाव को एक ओर रखकर देवता इन्द्र से इस प्रकार कहने लगे हैं कि, हे इन्द्र ! भूमती हुई मोतियों की लाड़ियों वाले अपने छत्र को यहां से दूर कर दो ॥ १०५ ॥

यस्त्वां जहार कुटिलः समयः स नून
 मस्माकमाविरभवत्परमार्थशत्रुः ।
 यामीं कृतिं सकललोककृते सुपूज्य
 व्याजत्त्रिधाधृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ १०६ ॥

जो कुटिल काल ने आपको हर लिया (चुरालिया) सो वह अवश्य ही हमारा परमार्थ शत्रु है, कारण कि, छल से भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों रूपों से उस काल ने सब के लिये यमराज का कार्य स्वीकार किया है ॥ १०६ ॥

वर्मस्वरूपसमुदर्कसुरद्रुमेण
 त्रयोतितं हि भवता वचसा समन्तात् ।

हैं कि, आपके स्वागत में देवगण दुन्दुभि ही बजा रहे हैं, कारण कि, आपका आकस्मिक प्रस्थान ही इस वर्षा ऋतु में हुआ है, इससे आपके स्वर्गारोहण का दिवस वर्षाऋतु भर उभय लोक में खूब धूमधाम से प्रति वर्ष हुआ करेगा ॥ १०२ ॥

शास्त्रैर्विकाशनपरैर्मिहिरैः सदा हि
 लुप्तप्रतिबन्धिचयाः परवाधलूकाः ।
 नश्यन्ति दूरमथवा स्वाधियं त्यजन्ति
 उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ ! ॥ १०३ ॥

जैसे द्योतमान सूर्य के समान शास्त्रों से परमादी अस्तु अपने २ तत्त्व को भूल कर लुप्त प्राय हो जाते हैं, वैसे ही आपके प्रत्यक्ष प्रताप से भी यही घटना घट रही है ॥ १०३ ॥

शिष्याद्यतारकयुतं भवदिन्द्रुमद्य
 शीतैः प्रतीग्मरुचिभिश्च निदेशनाभिः
 शब्दप्रकाशमवलोक्य विशादयुक्त
 स्तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ॥ १०४ ॥

शिष्यरूपी तारागणों से सुशोभित एवं शीतल तथा देदीप्यमान धर्मदेशनारूप चंद्रिका से सुतरां प्रकाशमान आज आपको देखकर नक्षत्रों सहित चंद्रमा अपने अधिकार को मूल रहा है ॥ १०४ ॥

अभ्यागते त्वयि गते दिवि देवतानां
स्वस्वामिभावमपनीय बभूव वार्ता ।

चष्टेऽमरोऽमरपतिं त्यज शीघ्रमिन्द्र !

मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रम् ॥ १०५ ॥

हे पूज्य ! आपके स्वर्ग चले जाने पर स्वामीसेवक भाव को एक ओर रखकर देवता इन्द्र से इस प्रकार कहने लगे हैं कि, हे इन्द्र ! भूमती हुई मोतियों की लाड़ियों वाले अपने छत्र को यहां से दूर करदो ॥ १०५ ॥

यस्त्वां जहार कुटिलः समयः स नून

मस्माकमाविरभवत्परमार्थशत्रुः ।

यामीं कृतिं सकललोककृते सुपूज्य

व्याजत्त्रिधाधृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ १०६ ॥

जो कुटिल काल ने आपको हर लिया (चुरा लिया) सो वह अवश्य ही हमारा परमार्थ शत्रु है, कारण कि, छल से भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों रूपों से उस काल ने सब के लिये यमराज का कार्य स्वीकार किया है ॥ १०६ ॥

वर्णस्वरूपसमुदकसुरद्रुमेण

प्रद्योतितं हि भवता वचसा समन्तात् ।

उद्गोचमानमशेषा दिवमेव भाति
 स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन ॥ १०७ ॥

धर्म स्वरूप तथा रमणीय फल वाले कल्पवृक्ष द्वारा प्रकाशित
 स्वर्ग भी गाया जाता है यश जिन्हों का और पूर्ण करदिये हैं तीनों
 लोक जिन्होंने ऐसे आपके वचनों से ही शोभित होना है ॥ १०७ ॥

मानी धनी स्वमतिमन्थितशास्त्राग्नि
 दीप्तीकृततरजनोऽपि विधर्षितस्ते ।
 प्रौढन्मरीचिनिचयेन भवन्मुखेन
 कान्तिप्रतापमशेषामिव सञ्चयेन ॥ १०८ ॥

धनी, अभिमानी, निज शुद्धि द्वारा शास्त्रों को विज्ञोद्धन करने
 वाले तथा दूसरे जीवों को दास बना लेने वाले मनुष्य भी
 कान्ति, प्रताप और यश इन तीनों के समूह के समान देशान्-
 मान हैं मजः पुंज जिसमें ऐसे आपके मुख को देख कर प्रसन्न हो
 जाते थे अर्थात् उन मनुष्यों में उक्त दोष नहीं रहते थे ॥ १०८ ॥

त्वत्पादसेवनसुधा प्रददाति सौख्यं
 तर्जव जैव लभते गुणिनां प्रमुख्य ! ।
 एवं वदन्ति कवयो नृपमन्दिरेण
 भाणिकमहेमरजतप्रविनिर्मितेन ॥ १०९ ॥

हे गुणिगणामनस्य ! आपके चरणों की सेवा मनुष्यों को जितना सुख देती थी उतना सुख मणि, सुवर्ण और चांदी से घना हुआ राजभवन भी नहीं देता है. इस प्रकार कविलोग कहते हैं ॥ १०६ ॥

त्रैलोक्यपूत ! समितौ समये तु तस्मिन्
त्वत्तुल्यकान्तिसुपमां न कदाऽऽपि कोऽपि ।
अद्याऽपिकोऽपि गणनाथ ! यथा त्वमेव
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभाति ॥ ११० ॥

हे भगवन् ! त्रिलोकपावन-पार्श्वनाथ ! उस त्रिदुर्ग से उस समय में जो शोभा आपने प्राप्त की थी उसे कोई भी जीव प्राप्त न कर सका तथा वैसे ही हे गणनाथ ! आप जैसे आपही शोभते हैं अर्थात् आप आप ही हैं, आपकी समता बिना आपके दूसरों से नहीं हो सकती ॥ ११० ॥

देवेन्द्रभक्तिविभवार्चितपादपीठ !
संस्पृश्य पादयुगलं तव पूर्णपूताः ।
पूज्यस्य संश्रितदिवो बहुशोभमाना
दिव्यसृजो जिन ! नमस्त्रिदशाधिपानाम् ॥ १११ ॥

हे देवेन्द्र की भक्ति से पूजित चरणों वाले-सुपूज्य ! स्वर्ग में

पधारे हुए आपके चरणों के स्पर्श से अत्यन्त पवित्र एवं सुरोभित
मंदारमाला नमस्कार करते हुए इन्द्र की और भी अधिक सुरोभित
होती है ॥ १११ ॥

स्वर्गापवर्गमुखरत्नचये वदान्यं
सम्पन्नभूपनिवहाश्रयणी पतन्ति ।
स्वच्छुद्रबोधमधिचित्तममीप्सवस्त्वद्
उत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलियन्धान् ॥ ११२

स्वर्गापवर्ग मुखरूरी रत्न समूह के देने वाले आपके अन-
ज्ञान को हार्दिक सम्मान देते हुए तथा मन में आपके शुद्ध-बोध
लेने की इच्छा वाले राजालोग रत्नजवित मुकुटों को अलग
आपके चरणों पर पड़ते हैं ॥ ११२ ॥

संसारतापपरितप्तचित्तो जना हि
मिथ्यात्वमोहमदजर्मरिता मुनीन्द्र ! ।
आप्तं मुखानि भुवनेऽभयदाबुदारा
मार्दो भयन्ति भवतो यदि वा परत्र ॥ ११३ ॥

हे मुनिन्द्र ! संसार के त्रिविध तापों से संतप्त एवं मिथ्या
रोग से पीड़ित मनुष्य उभयलोक में मुख की कामना से उद-
वधा अभयप्रद आपके चरणों का अभय लेते हैं ॥ ११३ ॥

हस्त्यश्वयानमणिजातसुखाङ्गमन्यद्

वाराङ्गनादिकृतगीतमभिप्रपन्नाः ।

ये वैहलौकिकसुखे निरतास्त एव

त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥ ११४ ॥

जो मनुष्य हाथी, घोड़े, रथ और रत्नादिक सम्पत्ति के सुख में मग्न होकर तथा वेश्या आदि के विलास और गीतों में आशक्त हो केवल ऐहलौकिक सुख को ही जानते एवं मानते हैं हे नाथ ! वे ही मनुष्य आपके संगसे प्रसन्न नहीं हैं ॥ ११४ ॥

वीरप्रभोर्वचनमानसमस्ति शस्तं

नीरं सदक्षरतरङ्गसुभक्तिरत्र ।

तीर्थारविन्दमिह तत्र निवासिहंसः

त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽसि ॥ ११५ ॥

हे नाथ ! अक्षररूपी जल बाले एवं भक्तिरूप तरङ्गों से तरङ्गित तथा साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों तीर्थिकमलों से मण्डित, भगवान् वीरप्रभु के वचनरूपी मानस-सरोवर में सर्वदा विहार करने वाले राजहंसरूपी आप जन्म-समुद्र से विरुद्ध हैं. मानस-सरोवर में रहने वाला राजहंस स्वारी जन्म-समुद्र से कोसों दूर रहता है. यह स्वभावसिद्ध है ॥ ११५ ॥

पधारे हुए आपके चरणों के स्पर्श से अत्यन्त पावित्र एवं सुरोभित
मंदारमाला नमस्कार करते हुए इन्द्र की और भी अधिक सुरोभित
होती है ॥ १११ ॥

स्वर्गापवर्गसुखरत्नचये वदान्यं
सम्पन्नभूयनिबहांश्वरणी पतन्ति ।
स्वच्छुद्रबोधमधिचित्तममीप्सवस्त्वद्
उत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिवन्धान् ॥ ११२ ॥

स्वर्गापवर्ग सुखरूपी रत्न समूह के देने वाले आपके अनंत-
ज्ञान को हार्दिक सम्मान देते हुए तथा मन में आपके शुद्ध-बोध को
लेने की इच्छा वाले राजालोग रत्नश्रित मुकुटों को अलग कर
आपके चरणों पर पड़ते हैं ॥ ११२ ॥

संसारतापपरितर्षार्थिना हि
मिथ्यात्वमोहगदजर्मरिता मुनीन्द्र ! ।
आप्तं सुखानि भुवनेऽभयदाबुद्धारा
मादौ भयन्ति सचतो यदि वा परत्र ॥ ११३ ॥

हे मुनिन्द्र ! संसार के त्रिभिध तारों से संतप्त एवं मिथ्यात्व
रोग से पीडित मनुष्य लभ्यलोक में सुख की कामना से तृप्त
तथा अभयप्रद आपके चरणों का आश्रय लेते हैं ॥ ११३ ॥

हेस्त्यश्वयानमणिजातंसुखाङ्गमन्यद्

वाराङ्गनादिकृतगीतमभिप्रपन्नाः ।

ये चैहलौकिकसुखे निरतास्त एव

त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥ ११४ ॥

जो मनुष्य हाथी, घांड़े, रथ और रत्नादिक सम्पत्ति के सुख में मग्न होकर तथा वैश्या आदि के विलास और गीतों में आशक्त हो केवल ऐहिलौकिक सुख को ही जानते एवं मानते हैं हे नाथ ! वे ही मनुष्य आपके संगसे प्रसन्न नहीं हैं ॥ ११४ ॥

वीरप्रभोर्वचनमानसमस्ति शस्तं

नीरं सदक्षरतरङ्गसुभक्तिरत्र ।

तीर्थारविन्दमिह तत्र निवासिर्हसः

त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽसि ॥ ११५ ॥

हे नाथ ! अक्षररूपी जल बाले एवं भक्तिरूप तरङ्गों से तरङ्गित तथा साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों तीर्थकमलों से मण्डित, भगवान् वीरप्रभु के वचनरूपी मानस-सरोवर में सर्वदा विहार करने वाले राजहंसरूपी आप जन्म-समुद्र से विरुद्ध हैं. मानस-सरोवर में रहने वाला राजहंस खारी जन्म-समुद्र से कौनों दूर रहता है. यह स्वभावसिद्ध है ॥ ११५ ॥

ज्ञानक्रियातरयिरूपमतिर्मतोऽसि
जन्मदिशम्बरविपचित्तरङ्गरूपात् ।
संसारसागरनिभादुचितं त्वमेव
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नाम् ॥ ११६ ॥

जन्मरूपी गहरे जल वाले तथा विपक्षरूपी कुटिल तरङ्गों वाले भयंकर संसार-सागर से शरणागत जीवों को आप पार करते हैं सो उचित ही है, क्योंकि, ज्ञानक्रियारूपी नौका के साटस बुद्धि वाले आप ही प्रसिद्ध हैं ॥ ११६ ॥

अस्मद्गुरोर्गुणनिधेश्च दयैकसिन्धो
नित्ये परार्थनि बहार्पितजीवितस्य ।
सर्वातिशायिजिनतन्त्र उदारधी त्वं
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव ॥ ११७ ॥

गुणनिधि, कहला-सागर तथा परोपकार में समर्पित जीवन वाले हमारे पूज्य गुरुजी का सशर बुद्धि होना समुचित ही है, क्योंकि, विराल, सर्वजीव हितकारी तथा सर्वोत्तम जैनतन्त्रों में श्रीजी की ही मति परिपक्व थी ॥ ११७ ॥

सामान्यधीर्भवतु कर्म विपाकरिक्तो
जानाति नो य इह कर्म विपाकमेव ।

विज्ञाततत्त्वनिकुरम्बमुनीन्द्रचन्द्र !

चित्रं विभो! यदासि कर्मविपाकशून्यः ॥ ११८ ॥

जो जीव इस संसार में कर्म क्या वस्तु है और उसका विपाक क्या है ऐसा नहीं जानते हैं वे ही कदाचित् कर्म विपाक से (क्रियाजन्य फलेच्छा से) शून्य हो सकते हैं, किन्तु तत्त्व को जानने वाले आप भी कर्मविपाक से रहित हैं यही आश्चर्य है ॥ ११८ ॥

सत्प्रातिहार्यमपि यस्य सुरश्चिकीर्षुः

शेतेऽष्टसिद्धिरनिशं शयशायिनीव ।

नाथोच्येस तदपि मन्दाधिया जनेन

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वम् ॥ ११९ ॥

हे नाथ ! हे जनपालक ! जब आपकी नौकरी देवताभी बजाना चाहते हैं और आपके हाथों में आठों सिद्धियां सदा नृत्य सी करती रहती हैं, तब भी मन्दबुद्धि लोग आपको अकिञ्चन कहा करते हैं, यह कितना आश्चर्य है ॥ ११९ ॥

आस्यं वशेऽस्ति रसनाऽपि वशंवदैव

लेखन्यखेदलिलिखुर्मसिपात्रमत्र ।

त्वामस्म्यहं लिखितमुद्यत एव मूढः

किंवाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ! ॥ १२० ॥

ज्ञानक्रियातरणिरूपमतिर्मतोऽसि
जन्मदिशम्बरविपचितरङ्गरूपात् ।
संसारसागरनिभादुचितं त्वमेव
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नाम् ॥ ११६ ॥

जन्मरूपी गहरे अल वाले तथा विपत्तिरूपी कुटिल तरा
वाले भयंकर संसार-सागर से शरणागत जीवों को-आप पार करते
सो उचित ही है, क्योंकि, ज्ञानक्रियारूपी नौका के साटश पुं
वाले आप ही प्रसिद्ध हैं ॥ ११६ ॥

अस्मद्गुरोर्गणनिधेश्व दयैकसिन्धो
नित्ये परार्थनि वहापितजीवितस्य ।
सर्वातिशायिजिनतन्त्र उदारयो र्त्थं
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव ॥ ११७ ॥

गुणनिधि, कठला-सागर तथा परोपकार में समर्पित जीव
वाले हमारे पूज्य गुरुजी का उदार धुद्धि होना समुचित ही है
क्योंकि, विशाल, सर्वजीव हितकारी तथा सर्वोत्तम जैनतन्त्रों के
धीमा की ही मति परिपक्व थी ॥ ११७ ॥

सामान्यधीर्मरुतु कर्म विपाकरिक्तो
जानाति नो यद्द कर्म विपाकमेव ।

पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर जा लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए ॥ १२६ ॥

साभ्रेऽहि संभ्रमविहीनधियैव धीमन् !

धर्म्यं वचस्तव मुखाद्बहिराजगाम ।

गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार

यद्गर्जद्गूर्जितघनौघमदभ्रभीमम् ॥ १२७ ॥

वर्षा ऋतुमें संभ्रमके बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से गर्जने वाली काली घटाको तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघकी मंद एवम् मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी ॥ १२७ ॥

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु,

तारापथे च तव गीः प्रणिनाद मेघम् ।

गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय

अश्रयत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम् ॥ १२८ ॥

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वशमें करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसल-धार जल-वर्षाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी ॥ १२८ ॥

मृत्युरूपी सर्प के लिये गरुड़, कामरूपी वनमत्त हाथी के लिये सिंह, लोभरूप मृग के लिये व्याघ्र और शोकरूपी अंधारी रात्रि के लिये प्रचंड मानु के समान जो आपका नाम है वह नितरां कमठ नामक शठ तापस से उठाये गये पापों को निःसन्देह नाश करने की शक्ति रखता है ॥ १२४ ॥

पास्वण्डमण्डनपरैर्निजशक्तिः सारै
रिच्छानुसारकृतिमेव विकाशयद्भिः ।
तीर्थादिसस्य उदवग्रहसाग्रद्वय
छायाऽपि तैस्तव न नाथ ! हता हताशैः ॥ १२५ ॥

अपनी मौढ शक्ति से पास्वण्ड, मण्ड का मण्डन करने वाले, स्वेच्छाचार का विस्तार करने में कुशल एवं चारों तीर्थरूपी सत्तों में दृष्टि को रोकने वाले दुर्जन हतारा होकर आपकी छाया को भी इधर उधर न कर सके ॥ १२५ ॥

कुट्येऽमराजिरचिते सविधास्थितास्त्वै
लौष्ठिर्विघट्य सहसा प्रतिवर्तितैश्च ।
चेसा हतो भवति तत्कपटेस्तथैव
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ १२६ ॥

जिस प्रकार पत्थर की टट बनी हुई दीवार पर कोई जोर से

पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर जा लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए ॥ १२६ ॥

साभ्रेऽहि संभ्रमविहीनधियैव धीमन् !
 धर्म्यं वचस्तव मुखाद्बहिराजगाम ।
 गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार
 यद्गर्जद्गर्जितघनौघमदभ्रभीमम् ॥ १२७ ॥

वर्षा ऋतुमें संभ्रमके बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से गर्जने वाली काली घटाको तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघकी मंद एवम् मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी ॥ १२७ ॥

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु
 तारापथे च तव गीः प्रणिनाद मेघम् ।
 गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय
 अश्रयत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम् ॥ १२८ ॥

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वशमें करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसल-धार जल-वर्षाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी ॥ १२८ ॥

हे नाथ ! मुझ भी नेरे अधीन है, जिह्वा वशं वदा में है, ले-
खिनी आलस्य छोड़कर लिखना चाहती है मसी (स्याही) आदि
साधन भी आधिक्य से मौजूद हैं और मैं भी लिखने को साहाय्य
हूँ तो भी आपको वर्णन नहीं कर सकता और न लिख सकता हूँ
इससे स्पष्ट जाना जाता है कि, आप अक्षरप्रकृति होकर भी ब्रह्म
में नहीं आ सकते ॥ १२० ॥

तन्त्रार्थवे विविधधर्ममणिव्रजस्य
निःशरणे कुशलसंविदलं न भूदः ।
अस्मां स्थितौ तव कृपानिकरैः सुशक्ति
रहानवत्यपि सदैव कथं विदेव ॥ १२१ ॥

शास्त्ररूपी अगाधसागर से अनेक प्रकार के धर्म-रत्नों को
निकालने के लिये विचारशील मनुष्य ही समर्थ एवं कटिबद्ध होते
हैं. मंदबुद्धि कांसों दूर भागते हैं. ऐसी विकट स्थिति में आपकी
अतुल कृपा से वह शक्ति अज्ञानी जीवों में भी आवसी जिससे
सर्व साधारण भी उक्त समुद्र से धर्मरूपी रत्नों को लूट रहे हैं
॥ १२१ ॥

अत्यन्तदुष्कृतिनिलीनमनाथ साधु
द्रोही जिघांसुरपि जीवचयं त्वदीयम् ।

सान्निध्यसन्निधिमवाप्य जहौ स्वभावं
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु ॥ १२२ ॥

अत्यन्त पापमें गन देने वाले, साधु से द्वेष करने वाले, जीवों को घात करने की इच्छा वाले, महापातकी मनुष्य आपके सन्निधि (संमीपता) रूपी सन्निधि (शाश्वत स्वजाना) प्राप्त कर अपने कूर स्वभाव का त्याग करते हैं. अतः विदित होता है आपका ज्ञान जगत् के विकाश करने में देदीप्यमान तथा कृतहस्त था ॥ १२२ ॥

मिथ्यात्वमोहकलुषाऽविलचेतनाजुट्
जन्तोर्यथा जलधरः पयसा निजेन ।
प्रक्षालये दिवत्तमस्तव नाथ ! नाम
प्राग्भारसंभृतनभांसि तमांसि रोषात् ॥ १२३ ॥

जिस प्रकार धूलि से मलिन आकाश को गर्जना करता हुआ नवीन जलधर (बादल) अपने जल से साफ कर देता है ठीक उसी प्रकार आपका नाम भी मिथ्यात्व और मोह से मलिन बुद्धि वाले जीवों के हृदयाकाश को शुद्ध और साफ कर देता है ॥ १२३ ॥

मृत्योरेहेःखगपतिः स्मरदन्तिर्सिंहो
लोभैनराजिमृगयुः शुचरात्रिभानुः ।
हन्तीह नाथ ! दुरितानि तवाऽभिधान
मुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ॥ १२४ ॥

हे नाथ ! मुख भी मेरे अधीन है, जिह्वा वश वश में है, ले-
खिनी आलस्य छोड़कर लिखना चाहती है मसी (-स्याही) आदि
साधन भी आधिक्य से मौजूद हैं और मैं भी लिखने को जालायित
हूँ तो भी आपको धर्मेन नहीं कर सकता और न लिख सकता हूँ
इससे स्पष्ट जाना जाता है कि, आप अक्षरप्रकृति होकर भी ब्रह्म
में नहीं आ सकते ॥ १२० ॥

तन्त्रार्णवे विविधधर्ममणित्रयस्य
निःशरणे कुशलसंविदलं न मूढः ।
अस्मां स्थितौ तव कृपानिकरैः मुशक्ति
रज्ञानवत्यपि सदैव कथं चिदेव ॥ १२१ ॥

शास्त्ररूपी अगाधसागर से अनेक प्रकार के धर्म-रत्नों को
निकालने के लिये विचारशील मनुष्य ही समर्थ एवं कटिबद्ध होते
हैं. मंदबुद्धि कांसें दूर भागते हैं. ऐसी विकट स्थिति में आपकी
अतुल कृपा से वह शक्ति अज्ञानी जीवों में भी आवती जिससे
सर्व साधारण भी वक्त समुद्र से धर्मरूपी रत्नों को लूट रहे हैं
॥ १२१ ॥

अत्यन्तदुष्कृतिनिलीनमनाथ साधु
द्रोही जिघांसुरपि जीवचयं त्वदीयम् ।

पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर जा लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए ॥ १२६ ॥

साभ्रेऽहि संभ्रमविहीनधियैव धीमन् !
 धर्म्य वचस्तव मुखाद्वाहिराजगाम ।
 गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार
 यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमम् ॥ १२७ ॥

वर्षा ऋतुमें संभ्रमके बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से गर्जने वाली काली घटाको तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघकी मंद एवम् मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी ॥ १२७ ॥

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु
 तारापथे च तव गीः प्रणिनाद मेघम् ।
 गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय
 अश्रयत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम् ॥ १२८ ॥

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वशमें करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसल-धार जल, वर्षाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी ॥ १२८ ॥

मृत्युरूपी सर्प के लिये गरुड़, कामरूपी चन्दमत्त हाथी के लिये सिंह, लोभरूप मृग के लिये व्याघ्र और शोकरूपी अंधारी रात्रि के लिये प्रपञ्च मानु के समान जो आपका नाम है वह नितरां कमठ नामक शठ तापस से उठाये गये पापों को निरामन्देह नाश करने की शक्ति रखता है ॥ १२४ ॥

पाखण्डमण्डनपरैर्निजशक्तिसारै
रिच्छानुसारकृतिमेव विकाशयद्भिः ।
तीर्थादिसस्य उदयग्रहसाग्रदथ
छायाऽपि तैस्तत्र न नाथ ! हता हतार्थः ॥ १२५ ॥

अपनी प्रौढ शक्ति से पाखण्ड मत का मण्डन करने वाले, स्वेच्छाचार का विस्तार करने में कुशल एवं चारों तीर्थरूपी सस्यों में वृष्टि को रोकने वाले दुर्जन हतार होकर आपकी छाया को भी इधर उधर न कर सके ॥ १२५ ॥

कुड्येऽश्मराजिरचिते सविधास्थितास्ते
लोपिर्विधव्य सहसा प्रतिवर्तितैश्च ।
चेप्ता हतो भवति तत्कपटैस्तथैव
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ १२६ ॥

जिस प्रकार पत्थर की टट बनी हुई दीवार पर कोई जोर से

पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर जा लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए ॥ १२६ ॥

साभ्रेऽहि संभ्रमविहीनधियैव धीमन् !

धर्म्यं वचस्तव मुखाद्बहिराजगाम ।

गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमम् ॥ १२७ ॥

वर्षा ऋतुमें संभ्रमके बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से गर्जने वाली काली घटाको तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघकी मंद एवम् मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी ॥ १२७ ॥

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु

तारापथे च तव गीः प्रणिनाद मेघम् ।

गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय

भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम् ॥ १२८ ॥

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वशमें करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसल-धार जल-वर्षाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी ॥ १२८ ॥

भवोर्जितात्ममकरध्वजनाशदक्षः
 सत्पक्षमाक्षिपति पक्ष इनो विपक्षः ।
 पार्श्वप्रभुर्व सिषुणोक्तमसौ सुमोदा
 दैत्येन युक्तमथ दुस्तरवारिदध्रे ॥ १२६ ॥

अहंकार से जिसकी आत्मा उन्नत है ऐसे काम को नष्ट करने में कृतहस्त, सत् पक्ष में झूठ आक्षेप करने वालों के प्रबल विरोधों पूज्य श्री ठीक वैसे ही दुर्जनोंकी दुष्ट वालीरूपी वर्षा को एक क्षित से सहते थे जैसे कि, दैत्यों द्वारा वर्षाये हुए जल को श्री पार्श्वप्रभु बड़ी शान्ति से सहते थे ॥ १२६ ॥

बाणरि योऽत्र विततार मलीमसात्मा
 मालिन्ययुक्तमधिसाधुमुदेव सेहे ।
 दाताऽऽप तापमभितोऽभिहितेन वस्तु
 स्तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥ १२७ ॥

हमारे पूज्य श्री पर मलिन आत्मा दुष्टों ने जो वालीरूपी जल को वर्षाया उस कठोर वाली-वर्षा को पूज्य श्री ने बड़ी खुरी से सह लिया, किन्तु वर्षा करने वाले बाद में संतप्त हुए और बोलने वाले को उन दुष्ट वचनों से निकले हुए विषयुक्त जल को पीने का फल भी मिला ॥ १२७ ॥

प्राग्जन्मसञ्चितसुपुण्यविभावतश्चेत्
 साधानवद्यमभिगद्य न खिद्यतेऽसौ ।
 मृत्वा व्रजिष्यति यमालयमाविषीदन्
 ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्डः ॥ १३१ ॥

अगर साधुओं की निन्दा करने वाला पूर्वजन्म के इकट्ठे किये हुए पुण्योदय से दुःखी न हुआ तो भी केशों के उल्लाड़ने से विकृताकार तथा दुःखी होता हुआ वह मनुष्य अवश्य ही नरक में षड़ेगा ॥ १३१ ॥

निन्दाऽभिनन्दितधियां दुरितक्षयाय
 कालिन्ददिष्टपुरुषैः परुषैः समिद्धः ।
 जिह्वेन्धनो धमतिनो विकलं करोति
 प्रालम्बभृद्भयदक्त्राविनिर्द्यदग्निः ॥ १३२ ॥

जो मनुष्य सदा दूसरों की निन्दा करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, उन्हें पापों से मुक्त करने के लिये धर्मराज की आज्ञा से भयानक यमदूत उक्त मनुष्यों की जिह्वा में 'आग' लगा देते हैं जिससे वह आग उनके मुखों से बड़ी २ ज्वाला-रूप से निकलती है और उन्हें भस्मसात् करती जाती है ॥ १३२ ॥

नाथ ! त्वदीयहितदेशनतः सनाथ
 तिष्ठन् विरोहिततनुस्तरुमौलिलीनः ।
 तत्याज्य तूर्णमपिसोथ परेतयोनिं
 प्रेतवृजः प्रतिभयन्तमपीरितो यः ॥ १३३ ॥

हे नाथ ! आपके हितोपदेश से सनाथ-वृक्ष की सघन शाखाओं में शरीर को छिपा कर बैठे हुए प्रेत भी आप के प्रति भक्ति प्रेरित होकर तथा आपको आरमसात् करके प्रेतयोनी से मुक्त होते हैं ॥ १३३ ॥

यैः प्राप्नोमानिनिवर्हैर्भवतोपदेशः
 प्रतः कृतो न निजकर्णगतोऽभिमानात् ।
 तस्माद्विरुद्धविधिमाविदधे विरोधात्
 सोऽस्याऽभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥ १३४ ॥

अपने को ही परिहृत मानने वाले जो लोग आपके दिये गये अमृतमय उपदेश को कानों द्वारा नहीं पीते थे प्रत्युत विरोधी होकर उपदेश से विपरीत आचरण करते थे उनके जन्म २ के लिये वह विरोध दुःख का कारण बन बैठा है ॥ १३४ ॥

सद्वाक्यरन्निचयं व्यतरन् जनेभ्यो
 ज्ञानप्रभावगुणगौरवगुण्णिकात् ।

ध्यायन्ति धीरधिपणास्त्वमिव प्रभुं चेत्
धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्यम् ॥ १३५ ॥

सुन्दर वाणी रुपी रत्न समूह को लेकर सारी जनता को देने वाले, ज्ञान एवम् प्रताप से सुशोभित जो विद्वान् आपके समान तीनों कालों में परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे भी धन्य हैं ॥ १३५ ॥

सुज्ञानदर्शनचरित्रपवित्रचित्तं
यत्सर्वजन्मितरणिं शरणं प्रपद्य ।
दुष्टाष्टकर्मरिपुमोचनसिद्धहेतु
आराधयन्ति सततं विधुतान्यकृत्याः ॥ १३६ ॥

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र से जिन्होंने हृदय को पवित्र किया है और प्रतिपक्षी (शत्रु) आठों कर्मों के मिटाने के प्रधान कारण तथा प्राणीमात्र को भवसागर से पार करने कीर्तिका के समान परमेश्वर को तल्लीनता से जो भजते हैं वे धन्य हैं (इतना पूर्व श्लोक से जानना) ॥ १३६ ॥

आवालवृद्धयुवकायधराऽविशेषाः
प्राप्तत्वदीयवचनार्थमुदाद्यशेषाः ।
न्यस्तासृजीवसुलभत्रिविधार्त्तिलेशा
भक्त्योल्लसत्पुलकपद्मलदेहदेशाः ॥ १३७ ॥

बालक, पृष्ठ, युवा एवम् समस्त प्राणधारि, जीव आपके सारगर्भित वचन-जन्य अर्थज्ञान से हर्षित हुए, तर्जियों प्रकार के दुःखों को त्याग कर भक्ति से रोमाञ्चित देह वाले हो रहे हैं ॥ १३७ ॥

शास्त्रान्विगूहदयार्थविदः समन्ता
ज्जीवादितत्त्वनिकरे परमार्थविन्दाः ।
तेऽप्यालपन्ति भवदुःखविनाशहेतु
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्ममाजः ॥ १३८ ॥

शास्त्ररूपी समुद्र के छिपे हुए हृदयरूप अर्थ को जानने वाले, जीवादि तत्त्वों को प्राप्त करने वाले, प्राणी भी आपके चरणों को सांसारिक दुःखों के दूर करने का कारण ही कहते हैं ॥ १३८ ॥

जन्मान्तताव्यविषयपङ्कवितर्पगतै
मयैर्मज्जन्ममकरस्वभूपाष्टकर्म ।
पापाणदम्भविशदेऽवनिमज्जतोऽस्मान्
अस्मिन्नपारमववारिनिधौ मुनीश ! ॥ १३९ ॥

॥ मुनिराज ! जन्म तथा मरणरूपी जल वाले, विषयरूपी मयंकर तृष्णा ही है मंवर जिसमें, अहंकार की तरंगों से युक्त, जीव माहों से भरे हुए बन्धुवर्ग है मीन जिसमें, आठों वर्म रूपी

चट्टानों से विषम तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर
में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो ॥ १३६ ॥

विश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो
धर्मादितत्त्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम् ।

ज्ञाणायमानधिपणः सकले प्रतीतो

मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ॥ १४० ॥

दान में कुवेर सदृश, धर्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान
बुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही
मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है) ॥ १४० ॥

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो
न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविपाक्तवाणाः ।

दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रैयान्ति

आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे ॥ १४१ ॥

धुद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त
हार्था, भयंवर सिंह, उद्धत सूअर, विषालिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु,
संकट और रोग ये सब उड़ी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ !
जब आपका नाम रूपी पवित्र मन्त्र सुनलेते हैं ॥ १४१ ॥

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ

कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे ।

बालक, धृष्ट, युवा एवम् समस्त प्राणधारी जीव आपके सारगर्भित वचन-जन्य अर्थज्ञान से हर्षित हुए, तीनों प्रकार के दुष्टों को त्याग कर भक्ति से रोमाञ्चित देह वाले हो रहे हैं ॥ १३७ ॥

शास्त्राब्धिगूढहृदयार्थविदः समन्ता
ज्जीवादितत्त्वनिकरे परमार्थविन्दाः ।
तेऽप्यालपन्ति भवदुःखविनाशहेतु
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ॥ १३८ ॥

शास्त्ररूपी समुद्र के क्षिपे हुए हृदयरूप अर्थ को जानने वाले, जीवादि तत्त्वों को प्राप्त करने वाले, प्राणी भी आपके चरणों की सासारिक दुष्टों के दूर करने का कारण ही कहते हैं ॥ १३८ ॥

जन्मान्ततात्त्वविषयपङ्कवितर्पगते
गर्वोर्मिजन्ममकरस्वभूपाष्टकर्म ।
पापाणदम्भनिशदेऽवनिमज्जतोऽस्मान्
अस्मिन्नपारमपवारिनिघौ मुनीश ! ॥ १३९ ॥

हे मुनिराज ! जन्म तथा मरणरूपी जल वाले, विषयरूपी मयकर मृच्छा ही है मंवर जिसमें, अहंकार की तरंगों से युक्त, जीव मादों से भरे हुए बन्धुवर्ग है मीन जिसमें, आठों कर्म रूपी

चट्टानों से विपम तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो ॥ १३६ ॥

विश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो
धर्मादितत्त्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम् ।
ज्ञाणायमानधिषणः सकले प्रतीतो
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ॥ १४० ॥

दान में कुबेर सदृश, धर्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान बुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है) ॥ १४० ॥

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो
न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविपाक्तवाणाः ।
दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रयान्ति
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे ॥ १४१ ॥

युद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त हार्था, भयंवर सिंह, उद्धत सूअर, विषालिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु, संकट और रोग ये सब उन्नी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ ! जब आपका नाम रूपा पवित्र मन्त्र सुनलेते हैं ॥ १४१ ॥

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ
कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे ।

हृत्पद्मसञ्जवसिते भविनां मुनीन्द्र !

किंवा विपाद्विपघरी सविधे समेति ॥ १४२ ॥

चिन्ता समूह को तथा जन्म मरण को नाश करने वाले एवं कल्पवृक्ष के समान अष्टसिद्धि स्वरूप आप जब जनता के हृदय सरोज में निवास करते हैं, हे नाथ ! तब क्या विपत्तिहारी महा विपरी-नागिन पाष आसकती है ? ॥ १४२ ॥

पीयूषपूषसमशान्तिनितान्तपुष्टौ

हृष्टः सदा धनगणैश्चरणप्रभावात् ।

नो विस्मरामि शुभतत्त्वगृहीतकोऽहं

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं मुनीश ! ॥ १४३ ॥

अमृत के मात्रा समान सरस शान्ति से पुष्ट तथा आपके चरणों के प्रभाव से धन ध्यानादि से संतुष्ट एवं तत्त्वमाही हम आपके श्री-चरणयुगलों को जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकेंगे ॥ १४३ ॥

विश्राणनश्रमितशीलितपोत्रतस्य

मुध्यानयोगशममयमसिद्धशुद्धेः ।

कस्यापि शुद्धचरणं तव चाप्यसद्यो

म-ये मया महितमाहितदानदक्षम् ॥ १४४ ॥

अभ्युदाये तथा सत्याय दान में तत्पर, शील एवं तप के

धारक, शुक्त ध्यान तथा संयमादि से युक्त ऐसे किसी महापुरुष के पवित्र चरणों को जन्मान्तर में आत्मसात् करके ही अभीष्टप्रद, समर्थ एवं जगत्पूजित आपके चरणकमलों को प्राप्त किया है ऐसी हमारी प्रबल धारणा है ॥ १४४ ॥

श्रीमत्सु सत्सु न हि दुःखमवाप चास्मान्
यातेषु खं प्रतिनिधीन् समयज्ञमुज्ञान् ।
ज्वाहीरलालशमिनः प्रददत्सु नाणु
स्तेनेह जन्मनि मुनीश ! परामवानाम् ॥ १४५ ॥

हे मुनिराज ! आपके रहते हुए हमें दुःख का अनुभव नहीं हुआ तथा आपके स्वर्ग सिंघारने पर अवश्य देश, काल, क्षेत्र एवं भाव के जानकार प्रबल पण्डित श्री १००८ श्री जवाहीरलालजी महाराज को आप अपने स्थानापन्न कर गये हैं, इससे वर्तमानभव में तो हम पराभूत नहीं हो सकते ॥ १४५ ॥

काव्यप्रणीतिजनितानवकीर्त्तिदूत्या
आहूतिनीतमतिरघु भवद्विभूतेः ।
प्राप्तेऽपवादपदभागभिसारिकाया
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥ १४६ ॥

काव्य बनाने से पैदा हुई नवीन कीर्तिरूपी दूती के बुलाने पर सम्मत होकर पूज्यप्रवर श्रीजी की विभूतिरूप अमिसारिका

हृत्पद्मसमवमिते भविनां मुनीन्द्र !

किंवा विषद्विषधरी सविधे समेति ॥ १४२ ॥

चिन्ता समूह को तथा जन्म मरण को नारा करने वाले एवं कल्पवृक्ष के समान अष्टसिद्धि स्वरूप आप जब अनन्ता के इस पसरोज में निवास करते हैं, हे नाथ ! सब क्या विपत्तिहारी महा विपत्तरी-तागिन पास आसकती है ? ॥ १४२ ॥

पीयूषयूपसमशान्तिनितान्तपुष्टौ

हृष्टः सदा धनगणैश्चरणप्रभावात् ।

नो विस्मरामि शुभतत्त्वगृहीतकोऽहं

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं मुनीश ! ॥ १४३ ॥

अमृत के मात्रा समान मरस शान्ति से पुष्ट तथा आपके चरणों के स्पर्श से धन ध्यानादि से सतुष्ट एवं सत्त्वमाही हम आपके श्री-चरणयुगलों को जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकेंगे ॥ १४३ ॥

निश्चाणनभमितशीलतपोव्रतस्य

मुध्यानयोगशममयममिद्विशुद्धेः ।

कस्यापि शुद्धचरणं तव चाप्यसद्यो

मये मया माहितमाहितदानदक्षम् ॥ १४४ ॥

अभ्युदाय तथा सत्पात्र दान में तत्पर, शील एवं तप के

धारक, शुक्त ध्यान तथा संयमादि से युक्त ऐसे किसी महापुरुष के पवित्र चरणों को जन्मान्तर में आत्मसात् करके ही अभीष्टप्रद, समर्थ एवं जगत्पूजित आपके चरणकमलों को प्राप्त किया है ऐसी हमारी प्रबल धारणा है ॥ १४४ ॥

श्रीमत्सु सत्सु न हि दुःखमवाप चास्मान्

यातेषु खं प्रतिनिधीन् समयज्ञमुज्ञान् ।

ज्वाहीरलालशमिनः प्रददत्सु नाणु

स्तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानाम् ॥ १४५ ॥

हे मुनिराज ! आपके रहते हुए हमें दुःख का अनुभव नहीं हुआ तथा आपके स्वर्ग सिंघारने पर अवश्य देश, काल, क्षेत्र एवं भाव के जानकार प्रबल पण्डित श्री १००८ श्री जवाहीरलालजी महाराज को आप अपने स्थानापन्न कर गये हैं, इससे वर्तमानभव में तो हम पराभूत नहीं हो सकते ॥ १४५ ॥

काव्यप्रणीतिजनितानवकीर्त्तिदूत्या

आहूतिनीतमतिरघ भवद्विभूतेः ।

प्राप्तोऽपवादपदभागभिसारिकाया

जातो निकेतनमहं मयिताशयानाम् ॥ १४६ ॥

काव्य बनाने से पैदा हुई नवीन कीर्तिरूपी दूती के बुलाने पर सम्मान होकर पूज्यप्रवर श्रीजी की विभूतिरूप अमिसारिका-

के आदेश से हमने मलिन आशय वालों के अपवाद से युक्त घर को प्राप्त किया है ॥ १४६ ॥

यो भाव आपिरभनत्त चिद्वियत्तो
भास्यत्प्रभाव इव तेन तमो निरस्तम् ।
त्वद्भाजभाविताजनैरिदं ते प्रतीपै
नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन ॥ १४७ ॥

हे नाथ ! जो भाव आपके मनोव्योम में प्रचण्ड भास्कर के समान प्रकट हुआ उस तेजोमय भाव के प्रताप से आपके अनुयायी मनुष्यों के इन्द्रियपटल पर जो मोहमय अन्धकार था सो एकाएक नष्ट होगया परन्तु आपके विपक्षचारियों की आँखें मोह से अन्धकारित हो गयीं जिससे उनके इन्द्रियाकाश का मोहान्धकार दूर न हो सका ॥ १४७ ॥

ज्ञातः सतोऽमितहितोऽप्रमनान् महीतो
दृष्टिं गतो नहि भवेदिति नैव कष्टम् ।
ध्यातो भविष्यसि यतो हि जनैर्वियुक्तः
पूयं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ १४८ ॥

सुतरा सज्जनों के हितकारी, परमपूज्य आप इस ससार में पधार गये अतः अब आपका साक्षात्कार दुर्लभ होगया है, सोभी इस बात की विशेष चिन्ता नहीं; कांश्च कि, आपका प्रथम दर्शन

किया हुआ है जिससे अब ध्यान से आपका सार्त्तकार हो जाया करेगा ॥ १४८ ॥

युष्मत्पदानुगमने भविनां मनीषा
उत्कण्ठयन्ति रमयन्ति सदादिशन्ति ।
कृत्वाऽखिलं परिकरं गमनोत्सुकश्च
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः ॥ १४९ ॥

आपका अनुसरण करने की इच्छा भव्य जीवों को उत्कण्ठित करती है, प्रसन्न करती है एवं सब प्रकार से आज्ञा देती है इसीसे मैंने भी आपका अनुसरण करने को सब तरह की तैयारियाँ कर ली हैं परन्तु मर्मभेदी अनर्थ (पाप) ही मुझे बारंबार रोक्क रहा है ॥ १४९ ॥

स्युस्त्वाद्विधा बहुविधा विबुधाः सुशान्ता
स्त्वां वीक्ष्य मानवशिरोऽर्चितपादपीठम् ! ।
आहेयभोगानिभभोगभुजा निरस्ताः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥ १५० ॥

अनेकों विद्वानों ने आपको समस्त जनमस्तकों से पूजित चरण पीठ देखा, ये सब आपके समान शान्तात्मा बनना चाहते थे किन्तु बन न सके वे सांसारिक भोगों को भोग कर सर्प के समान मूर्च्छित हो चुके थे, जिससे उन्हें पछाड़ खानी पड़ी

अन्यथा कुल तैयारीयां करने पर भी वे वैसे (आपके समा-
क्यों न बने ॥ १५० ॥

भावाऽवबोधविधुराय निरक्षराय
द्रव्याधिपाय च समृद्धिप्रवर्जिताय ।
सर्वेभ्य एव समबोधमदाः सुपूज्य ।
आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि ॥ १५१ ॥

आप श्रुत—भ्रवणगोचर थे, पूजित-समस्तलोकमान्य थे व
दृष्ट-देखे गये थे इसीसे आपने भेदभाव को एक ओर छोड़
विद्वानों, मूर्खों, धनियों तथा निर्धनो को समान ज्ञान दिया जिस-
आप पूर्ण समदर्शी थे ॥ १५१ ॥

दाने दयार्द्रहृदयः परमस्त्वमासी
हृद्यो दरिद्रनिबद्धः परमस्तवासीत् ।
यातो यतो दिवमवैमि च निर्धनेन
नूनं न चेत्तसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ॥ १५२ ॥

हे पूज्य ! शून्य दुःखियों के लिये आपका हृदय सदा दया-
रहा था और दरिद्रियों ने आपको आत्मसात्कर लिया था, इतने
दोनोंपर भी आप स्वर्ग में चले गये इससे स्पष्ट विदित होता है कि
परमदरिद्रों में आपको हृदय में स्थान न दे सका—अपना ज सफ
पश्चात्ताप ॥ १५२ ॥

दैवेन मे हि विमुलेन भवन्तमद्य

हत्वा हतं मम हृदो वद किं न सद्यः ।

किं वाऽधिकेन मम शर्मविभिन्नमर्म

जातोऽस्मि तेन जनवान्धव ! दुःखपात्रम् ॥ १५३ ॥

हमारे प्रतिकूलवर्ती दैवने आपको हरकर हमारा क्या नहीं
हर लिया यह आपही कहें, अधिक क्या कहें, हमारा शर्म—कल्याण
(शुभ) भिन्नमर्म हो चुका है जिससे हे प्राणिमात्र के बन्धो !
आज हम दुःख के भाजन बन बैठे हैं ॥ १५३ ॥

सम्प्रत्यसाम्प्रतबहुच्छलदम्भयुक्त

स्तद्धीनसाधुपथवर्त्तिनमाक्षिपन्ति ।

रञ्ज प्रभो ! बहुदुरक्षरवर्पतोऽस्मात्

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य ! ॥ १५४ ॥

हे प्रभो ! इस समय कपट पट्ट अनेकों दंभी लोग निष्कपटी
साधुमार्गी जैन समाज की हंसी उड़ाते हैं अतः हे नाथ ! हे दीन
बन्धो ! हे भक्तवत्सल ! हे शरणागतप्रतिपालक ! उन दुष्टाक्षरों
के बरसाने वालों से रक्षा करो ॥ १५४ ॥

नाथ ! त्वदीयचरणे विनयेन युक्ता

सत्प्रार्थनेयमधुना सफलैव कार्या ।

स्यादस्मदादिहृदयं शुभभावलिप्तं

यस्मात्क्रियाःप्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥ १५५ ॥

हे नाथ ! आपके चरणों में हमारी यह सविनय प्रार्थना अब युक्त है-उचित है अब इसे आप सफल करें और हमारे अन्तःकरणों को शुभ भावों से भावित-संस्कारित बनावें कारण कि, भावशून्य (भट्टाविर्दान) क्रियाएँ फलदायी नहीं, वे व्यर्थ होती हैं ॥ १५५ ॥

स्वस्मिन्निवाशु बहु पूरय शान्तिपूय

कारुण्यशास्त्रनिर्वहैर्मम मानसानि ।

मन्मानमाऽप्रमदमाशु विवर्त्तयेत् !

कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य ! ॥ १५६ ॥

हे ईश ! हे सयमियों में भेष ! हे करुणा और पुण्य के निवास भवन ! अपनी आत्मा के समान हमारी आत्मा को भी उन्नत बनादो अर्थात् हमारे हृदयों में भी शान्ति, पुण्य, दया एवं शांति समुद्र को झूट २ कर भरदो और हमारे अन्तःकरण में जो मद मे उलटदो अर्थात् मद (दाहवृत्तियों से मन को रोकना) करदो अथवा मद की उन्नति को रोक कर उसका ह्रास करदो ॥ १५६ ॥

सन्तु प्रपूर्णमनसो वचसा विनाऽपि ॥

स्यात्केवलेन मनसाऽपि ममेष्टसिद्धिः ।

भारो न ते यदि सचेत्तदपीह सार्थो

भक्त्या न ते मयि महेश ! दयां विधाय ॥ १५७ ॥

“ तुम सब पूर्ण मनोरथ होवो ” यदि आप ऐसा कहने का कष्ट न भी उठाकर केवल हमारे अभ्युदय को आप मनमें ही विचार दिया करें तोभी हमारी अभिलषित सिद्धि हो सकती है, भक्ति से नम्र हमारे जैसे भक्तों में दया करना आपका कर्तव्य है, कोई बोझा नहीं मानलो यदि बोझा भी है तो निष्प्रयोजन नहीं सप्रयोजन है ॥ १५७ ॥

चेखिद्यते जनमनः कलिखेदतश्च

श्रीमद्वियोगप्रभवात्परिभावतश्च ।

हित्वाऽधुना सुखनिदानसमाधिमाशु

दुःखाङ्कुरोदलनतत्परतां विधेहि ॥ १५८ ॥

विकराल कलिकाल जन्य दुःख से तथा श्री चरणों के वियोग से आविर्भूत परिभव द्वारा इस समय समस्त मनुष्यों के अन्तःकरण पूर्ण दुःखमय हो रहे हैं अतः आत्मा का सुख साधन करने वाली समाधी छोड़कर हमारे दुःखाङ्कुरों के दलन में कटिवद्ध हो जाइए

जन्मान्तरीयकलुषार्तजनार्तिहारि .
 भावत्कमच्यमवनं दुरितप्रहारि ।
 आसाद्य प्रीतिनिकरं समुपैति भोगी
 निःसह्यसारशरणं शरणं शरण्यम् ॥ १५६ ॥

भवान्तर में किये हुए पापों से दुःखी जनों के दुःख दूर करने
 वाले, कल्याण-मंगल के उच्च मवन, दुरित विदारक एवं असहाय
 के सहाय आपके चरणों को पाकर सांसारिक जीव प्रसन्न होते
 हैं ॥ १५६ ॥

मन्ये स पापपरिपूरितचित्त आसीद्
 दुर्दैवदेवनभिलासनिवास एव ।
 नाऽसादि येन सुखमहिम्नयुगं त्वदीय
 मासाद्य सादितरिपुप्रथिताऽवदात्तम् ॥ १६० ॥

निःसन्देह यह मनुष्य घोर पापी एवं दुर्दैव का क्रीडारण्य है।
 था जो आपके सर्व सुखकारी चरणों को पाकर भी सुखी न बन
 सका ॥ १६० ॥

अन्यत्कृतिप्रतिहितात्मतया न दृष्टो
 दिष्टेन नष्टशुभकर्मचयेन दीनः ।
 प्यातोऽपि नैव नियतं च विवञ्चितोऽस्मि
 त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानवन्ध्यः ॥ १६१ ॥

और और कार्यों में व्यग्र होने से तथा दुर्देव से बाधित होने से मैं दीन हीन आपके पदारविन्दों का दर्शन न कर सका अथवा ध्यान न करने पाया, अतः हे जगत्पावन ! मैं अवश्य ही छला गया ॥ १६१ ॥

त्वत्पादचिन्तनपरं प्रविहाय सर्वं
सम्प्रस्थितो यदि भवोन्नहि मामवादीत् ।
सम्प्रत्यपि प्रतिपलं भवता न गुप्तो
बन्ध्योऽस्मि तदभुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥ १६२ ॥

सर्वस्व का बलिदान कर मात्र आपके ही शरणागत था परन्तु आपने भी मुझे निराधार छोड़ बिना कहे बूझे परलोक सिधार गये अब इस समय में यदि रक्षा न करोगे तो इस अनाथ का सर्वनाश अवश्यंभावी है ॥ १६२ ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनो गददैर्न्यमुक्ताः
सक्ताः परोपकृतिकार्यचये भवन्तु ।
जह्युः परस्परविरोधमवाप्य मोदं
देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताऽखिलवस्तुसार ! ॥ १६३ ॥

हे देवेन्द्रवन्द्य ! हे सकल पदार्थ तत्त्वज्ञ ! आपकी अतुल कृपा से आधिग्याधि एवं शोक से मुक्त होकर प्राणमित्र सुखी हों सदा परोपकार में लगेँ और प्रसन्न रहकर पारस्परिक विरोध को छोड़ें ॥ १६३ ॥

विद्याऽनवद्यकृतिधर्मधनोन्नतीना
 मास्ते निदानमिति तां परिवर्धयस्व ।
 स्वत्सेवकान् कुरु सुशास्त्ररसे रसज्ञान्
 संसारत्तारक ! विमो ! भुवनाधिनाथ ! ॥ १६४ ॥

आवृत्तिया, धर्म, एवं धन आदि की उन्नति का मूल कारण
 साधिका ही है, अतः विद्या को बढ़ाइये और सेवकों को शास्त्ररस के
 रसिक बनाइये ॥ १६४ ॥

संसारसागरसेतुमतिं विवेक
 माग्मारपूरितकृतिहृदनीहिमाद्रिं ।
 पूज्यं नवीनमतिदीनजने दयालुं
 त्रायस्व देव ! करुणाहृद ! मां पुनीहि ॥ १६५ ॥

दुन्तर भयसागर में सेतु समान है बुद्धि जिनकी, विवेक
 संसार से पूर्ण क्रियाकर नदी के लिये हिमालय (नदी हिमालय
 से ही निकलती है) दुःखी जीवों में परमदयालु ऐसे हमारे नवीन
 पूज्य श्री जी की रक्षा आप करें ॥ १६५ ॥

ध्वान्तार्त्तजीवमिव भानुमुदन्ययात्तं
 वारीव पन्नगगणार्त्तमिवाहिभोजी ।
 यो मां जुगोप बहू गोप्स्यति पाति नित्यं
 सोदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥ १६६ ॥

आप हमारे उन नवीन पूज्य श्री की रक्षा करें जो अन्धकार से पीड़ितों के लिये प्रचण्ड मार्तण्ड हैं, पिपासा कुलों के लिये शीतल जल हैं, विपथरों से काटे हुआ के लिये गरुड़ हैं एवं जिन्होंने भय प्रद व्यसनरूपी जल से भरे हुए इस अपार संसारसागर से रक्षा की, करते हैं और करेंगे ॥ १६६ ॥

शत्रुः प्रशाम्यति पराङ्मुखतां प्रयाति

सिंहाहिदन्तिमहिदारचयाश्च हिंसाः ।

ध्यानं नितान्तसुखदं हृदये नराणां

यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणाम् ॥ १६७ ॥

हे नाथ ! यदि आपके चरणकमलों का ध्यान मनुष्यों के हृदय में है तो निस्सन्देह शत्रु स्वयं नष्ट होंगे अथवा भग जांभगे सिंह, सर्प, हाथी आदि हिंसक जीव भी पसभव पा सकेंगे ॥ १६७ ॥

वक्तुं बृहस्पतिरसक्त इनोऽपि दीनः

शक्नोति नो बहुविशारदशारादऽपि ।

अस्माद्दृशोऽल्पविषयस्तव किं गदामि

भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ॥ १६८ ॥

एकान्त संचित की हुई जिस भक्ति के फल को समर्थ बृहस्पति भी नहीं कह सकता बहुत जानने वाली सरस्वती भी कहने को

समर्थ नहीं हो सकती उस भक्ति के फल को बहुत थोड़ा जानने वाला मेरे जैसा दीन क्या कह सकता है ? ॥ १६८ ॥

सातार नामनगरे यमतोऽब्दकालं
 पद् सिन्धुसागर सुनेत्र मिते शुभाब्दे ।
 वीरस्य मासि नमसि स्तुवतोऽप्यकारी
 तन्मे त्र्यंशशरणस्य शरण्यभूयाः ॥ १६९ ॥

का ते स्तुतिः स्तुतिपयादतिरिक्तवृत्तेः
 सर्वानुकूलकरणाप्तनिशेषशक्तेः ।
 किन्त्वर्थयेऽहमिदमेव भवान् विभूयात्
 स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥ १७० ॥

समस्त अनुकूल कारणों की प्राप्ति से ज्ञाताधारण शक्ति बाने तथा स्तुतिमार्ग में न आने वाले आपको स्तुति क्या हो सकती है, किन्तु मेरी यही एक प्रार्थना है कि, इस भय में और भवान्तर में भी एक आप ही मेरे स्वामी हों ॥ १७० ॥

ध्यात्वाऽभिनुत्य निजकृत्यमथो वितत्य
 पूज्यो गतोऽस्ति च भवान् त्रियत्तं यथैव ।
 एव वर्यं जितहृषीकचना प्रज्ञाय
 इत्य समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र ! ॥ १७१ ॥

विधिवत् शुक्लादि ध्यान करके, जिनचरणों में अभिनमन करके तथा अपने चारु कृत्यों को विस्तारित करके आप इस संसार से जिस प्रकार स्वर्ग को सिधारे उसी प्रकार जितेन्द्रिय एवं समाधियुक्त बुद्धि वाले होकर हम भी आपका अनुगमन करें ॥ १७१ ॥

हिन्वा यदापि गतवानिह नस्तथाऽपि
स्वीयेषु नो गणय नाथ! सदैव सौम्य ! ।
ध्यानं विदेहि तव-येन सदा भवेम
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ॥१७२॥

यद्यपि हमें छोड़कर आप इस संसार से स्वर्ग चले गये हैं तो भी भव्यमूले! अपनी में आत्मीयों में हमारी गणना अवश्य करें हमें अवश्य अपनाये आपकी दृष्टि मानसे ही हम सधन एवं उत्पन्न हुए रोमांच से बख्तवारी बन सकते हैं अर्थात् अनिर्वचनीय आनन्द के भागी बन सकते हैं ॥ १७२ ॥

कामं विभातु भुवने सदृशस्तवेश!
शान्तिं विना न तव कान्तिरमुष्य चास्ति ।
यत्राऽस्महे सुसुखिनः समवीक्ष्यमाणा
स्त्वब्दिम्वनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः ॥१७३॥

समर्थ नहीं हो सकती उस भक्ति के फल को बहुत छोटा जानने वाला मेरे जैसा दीन क्या कह सकता है ? ॥ १६८ ॥

सातार नामनगरे वमतोऽब्दकालं
पद् सिन्धुसागर सुनेत्र मिते शुभाब्दे ।
वीरस्य मासि नमसि स्तुवतोऽयकारी
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्यभूयाः ॥ १६९ ॥

का ते स्तुतिः स्तुतिपथादतिरिक्तवृत्तेः
सर्वानुकूलकरणाप्तविशेषशक्तेः ।
किन्त्वर्थयेऽहमिदमेव भवान् विभूयात्
स्वामी त्वमेव भुजनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥ १७० ॥

समस्त अनुकूल करणों की प्राप्ति से असाधारण शक्ति प्राप्त तथा स्तुतिमात्र म न आने वाले आपकी स्तुति क्या हो सकती है, किंतु मंत्री यही एक प्रार्थना है कि, इस भय में और भवान्तर म भी एक आप ही मेरे स्वामी हों ॥ १७० ॥

भ्यात्वाऽभिनुत्य निजदृश्यमथो वितत्य
पूज्यो गतोऽस्ति च भवान् नियत यथैव ।
एव त्वं जितहृषीकचक्षुः प्रणाम
इत्य समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र ! ॥ १७१ ॥

विधिवत् शुक्तादि ध्यान करके, जिनचरणों में अभिनमन करके तथा अपने चारु कृत्यों को विस्तारित करके आप इस संसार से जिस प्रकार स्वर्ग को सिधारे उसी प्रकार जितेन्द्रिय एवं समाधियुक्त बुद्धि वाले होकर हम भी आपका अनुगमन करें ॥ १७१ ॥

हिन्वा यदापि गतवानिह नस्तथाऽपि ।
स्वीयेषु नो गणय नाथ! सदैव सौम्य ! ।
ध्यानं विदेहि तव-येन सदा भवेम
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ॥ १७२ ॥

यद्यपि हमें छोड़कर आप इस संसार से स्वर्ग चले गये हैं तो भी भव्यमूले! अपनों में आत्मीयों में हमारी गणना अवश्य करें हमें अवश्य अपनाये आपकी दृष्टि मानते ही हम सघन एवं उत्पन्न हुए रोमांच से बलधारी बन सकते हैं अर्थात् अनिर्वचनीय आनन्द के भारी बन सकते हैं ॥ १७२ ॥

कामं विभातु भुवने सदृशस्तवेश!
शान्तिं विना न तव कान्तिरमुष्य चास्ति ।
यत्राऽस्महे सुसुखिनः समवीक्ष्यभागां
स्त्वद्दिम्बनिर्मलमुखाम्बुजजद्बलक्षयाः ॥ १७३ ॥

अर्धैर्जैर्नैर्हयगजैश्च समेषमानाः

भव्यः सुधीभिरतितश्च विमर्द्धमानाः , . .

अन्ते समीप्सितपदं सततं दृश्यन्ते

ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥ १७४ ॥

हे विभो ! जो भव्य जीव आपके इस प्रकार सस्त्व (स्तुति) की रचना करते हैं वे निःसन्देह इस संसार में धासे बन्धुओं से, सुन्दर घोड़ों से, वनभक्ष हाधियों से युक्त बुद्धिमान् भव्य जीतों से वृद्धि गत अन्त में निश्चय से अभिलषित पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ॥ १७४ ॥



परिशिष्ट २ रा.

जीवदया का पट्टा परवाना

बोहोतसा छोटा मोटा जागीरदारो व ठाकरो की तरफ से पूज्य श्री को जीवदया का पट्टा परवाना मिला था, वो सब मिल नहि सकने से जो थोड़ा सा मिला वो असल भाषा में अक्षरसः ऊत्र दीया है ।

॥ श्रीरामजी ॥

नंबर ३८२

महौरवाप छे

हुकम कचेरी राजस्थान बान्सी बनाम समसी पंचां जैन मार्गी साकीन सादड़ी वाला अभी अठे आये मालुम कराई के मारे श्री पूज्यजी महाराज मारवाड़ सुं पधारे है और अठे सादड़ी में चतुर्मास करेगा सो महाराज का फरमान उपकार के धारे में है बंदोवस्त के बास्ते फरमायो है जीसुं और ठिकाना में चाहे जैसो जैसो बंदोवस्त करावे ।

और अबे अठे भी अरज है सो उयकार को बंदोवस्त का वक्से जीसुं थाने जरिये हुकमनामा दाजा लीखो जावे है के अठे खिटीक, कसई दगैरे की दुकान आवण, कार्तिक, वैशाख मासमें शिलकुल बंद रहेगा हुंके अलावा हमेशा मुजब हग्यारस व अमा-

अर्थर्जनैर्हयगजैश्च समेधमानाः
 भव्यैः सुधीभिरतितश्च विवर्द्धमानाः
 अन्ते समीप्सितपदं सततं ह्यययन्ते
 ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥ १७४ ॥

हे विभो ! जो भव्य जीव आपके इस प्रकार संस्तव (स्तुति) की
 रचना करते हैं वे निःसन्देह इस संसार में धनसे बन्धुओं से, सुन्दर
 घोड़ों से, सम्भक्त हाथियों से युक्त बुद्धिमान् भव्य जीों से वृद्धिगत
 अन्त में निश्चय से अभिलषित पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ॥ १७४ ॥



परिशिष्ट २ रा.

जीवदया का पट्टा परवाना

बोहोतसा छोटा मोटा जागीरदारो व ठाकरो की तरफ से पूज्य श्री को जीवदया का पट्टा परवाना मिला था, वो सब मिल नहि सकने से जो थोड़ा सा मिला वो असल भाषा में अक्षरसः ऊत्र दीया है ।

॥ श्रीरामजी ॥

नंबर ३८२

महौरछाप छे

हुकम कचेरी राजस्थान बान्सी बनाम समसी पंचां जैन मार्गी साकीन सादड़ी वाला अभी अठे आये मालुम कराई के बारे श्री पूज्यजी महाराज मारवाड़ सुं पधारे है और अठे सादड़ी में चतुर्मास करेगा सो महाराज को फरमान उपकार के बारे में है बंदोवस्त के बास्ते फरमायो है जीसुं और ठिकाना में चाहे जैसो जैसो बंदोवस्त करावे ।

और अबे अठे भी अरज है सो उयकार को बंदोवस्त का वक्से जीसुं थाने जरिये हुकमनामा दाजां लीखो जावे है के अठे खिटीक, कंसाई वगैरे की दुकान आवण, कार्तिक, वैशाख मासमें बिलकुल बंद रहेगा हुंके अलावा हमेशा मुजब हज्यारस व अमा-

यास्या को तो थावर भी दुकान बंद रहेगा खटीक, कसाई लोग बिना समझसुं दुकान करेगा तो बीने सजा देदी जावेगी संवत् १८६५ के जेठ सुद १-

श्री एकलिंगजी
('सही')

श्रीरामजी

बिधुश्री कुंतवास राजश्री ओंकारसिंहजी दस कसबे हाजा का समस्त पंचों आपने थांकेणी करीके भीपूजनी महाराज सा, को पधारवो हुआ और धरम चरचा यगैरे उपकार हुआ और उपकार हमेशा के घास्ते घेणो पाले छे धास्ते यो पटो अठा के घास्ते तथा पटा की रियासत के लिये लीख देवणों सो ई माफिक बन्दोबस्त रहेगा ।

बैशाख, आषण, कार्तिक, या तीन महीना में जीवने नहीं मारेगा, मारेगा जीने सजावेगा ।

बारा महीना में पाच अमरिया अठा की तरफ से होता रहेगा सालोसाल ई माफिक और ई सिवाय पेलां सुं बन्दोबस्त अगियारस अमावस पञ्चमण, नगद यगैरा की दे ई जैमे गजबुन रहेगा सं० १८६६ का चैत सुदी १५

द० केगरीचंद धोराधिया

द्वयम से

श्री

नकल रोयकार महकमें म्याम व इजलास मुन्शी सुजानमल
 बांढिया कामदार कुशनगर ता. २१—६—६ ईस्वी

सिका

B. SUJANMUL

Kamdar of Kushalnagar

मुझे सोसन बारिध म्याम होने आया और जंगलमें घासभी
 पका होकर सुखने आगया है भील लोक अपनी कम कहमी से इलाके
 राजा के जंगल में आग जाने (दवाइ) से अदती जाती से लगादेते
 हैं जिस से की नमाम घास व सब किस की लकड़ी जलजाती है
 जो उन्ही गरीब लोगों के गुजार की बड़ी आधारकी चीज है और
 ऐसा होने से राजाको भी नुकसान होता है अबल भी इस अमर
 में माकुत इन्तजाम रखनेलिये हुकम जारी हुवा है मगर इन्मिताल
 लायक इन्तजाम हुवा नहीं लिहाजा फवल अज गुजर जाने देखे
 बाका के इस माल इन्तजाम होना मुनाबिध लिहाजा

हुकम हुवा के

एक एक नकल रोयकार राजा महकमें मालमें भेजकर लिख
 जावे के इस वक्त जमाबन्धी का काम शुरू है और हर देहान के
 भील वास्ते टकवाने के जमाबन्धी महकमें माल में आते हैं
 इस वास्ते हर मुखिया गांव से इस बातकी काफी समजावसर
 मुचलके तावानी रूपे पंथरा का लिया जोत्र के वो अपने अपने

गांव की हद के जंगल को पुरी निगरानी रखकर दावद न लगावे
 वन लगने देवे अगर दवाइ ऊपर से आई तो पीरन तमाम गांव
 के लोग जमा हों बुझावे और जंगल या रास्तेमें तमाकु पीने बातें
 या दीगर अशक्यता न आग न डालदे जिस से के अलोकनकर
 जंगलमें लुहरीयन पहुँचानेका अहनमाल हो अगर इसमें किसी के
 जानीब से कसूर होगा तो उस से रुपये मरु तावान के बसूल किये
 जावेंगे और एक नकल रोबकार ताजा पुलिस में भेजी जावे और
 लिप्या जावे के हर मुलिजमान पुलिसमें दिशयत की जावे के वो
 इस बातकी पुरी निगरानी रखे यानि दवाइ के अजीनान बुढ़ापा
 व मोहकमपुरा व छोटा शरवा काबू न तावे शराके नरक भेजी
 जावे और यह अमल फाईन महकमें हुाना में वास्ते दाखला वे रखा
 जाय फक्त

सिका

धीरकुलिंगजी

श्रीरामजी

सावत

राजधी जालोदा ठाकरे साहेब श्री दोनतसिंहजी
 इस मुनब छोडवा मारी सीम माही

मारी सीम में हरण व पंखरु कोई मारे नहीं जाखाय ता उमर पीछे
से भी कोई मारे नहीं ।

द० ग्यारचंद मालु का श्री रावला हुकमसुं
लिखा सं० १६६५ जेठ बुदी ३

श्रीरामजी ।

सावत

ठिकाना साठोला में ई मुजब नहीं वेगा । रावतजी साहब
श्री दलपतसिंहजी सादड़ी का पंच अरज करवा आया जी पर छोड़ा ।

तालाब में मछली नहीं मारागा गजा पगु तलानठेपर तीतर
आतो परगणामें कोई नहीं मारेगा और खास रावले आ जानवरां
के सिवाय हिरण रोज नहीं मारेंगा और उपर लिख्या मुजब पर
गणा में कोई मारेगा तो सजादी जावेगी सं० १६६५ जेठ बुद १०
द० नरसिंही राजा हुजुररा हुकमसुं श्रावण कातीक वैशाख तीन
महीना में जानवर मात्र नहीं मारेगा रुदीवरे सीवे नरसिंही राजी
हुजुर रा केणासुं ।

नकल रोवकार महकमे खास व इजलास मुंशी सुजानमल
चांठीया कामदार कुशलगढ़ ता० २१-६-६ ई०

महोर छाप

B. SUJANMAL

KAMDAR OF KUSHALGARH.

सुके ऐसा बजद हुआ कि इतने हाजा के हर देहात में भील लोग दशहरा पर पाड़ा मारा करते हैं और वो पाड़े ऐसे जानवर हैं के जो खेती के काम में बजाय बैलों के मदद देते हैं तो ऐसे सैकड़ों जानवर के एक दिन में हलाक होने से और हर साल पर नौबत पहुँचने से बेसुमार जानवरों के नाश होने में बहुत भारी नुकसान उन्ही लोगों को मालूम होता है पर मुनासिब कि ऐसे ना दुस्त और बेरहम तरीकेके जरिये जो सैकड़ों जानवरों का नारा करने में बहुत कोम कमहमी करते हैं उसके निवृत्त बन को ऐसी समजुत दीनायके वो अपनी इस भुव भरी दुई पात का तरफ कर ऐसे पाप के काम को हरगीज न करे वरके पाड़ों की जान का बचाव करने में अपना फायदा समझे और शायद है के उनके उन दाम खधालीकों के जो पाड़ा एक देवी के भोगकी खातर हलका करते हैं वे बेसा होने स उनके जान माल की खैर है मगर देवी को वो और तरीके से भोग दे सकत हैं । लेकिन इस रिवाज को कर्त्तइ नाशुद करे ताके उन काम की बहुतही हो लीहाजा

हुकम हुआ के

नकल इसकी भान आफीसर की तरफ भेजकर लिखा जावे के दशहरे के दिन पाड़ा हरगीज नहीं मारे अगर जिस किसी के जानीन से ऐसा होगा उस स रु० १५) तावान लिया जावेगा ऐसे मुचलक हर देहात के मुखीया तद्वी के लिये जाकर उनके दिल

पर पुरा असर इस बात का कर दिया जावे के वो पाड़े के मारने के रिवाज को व खुत्री छोड़कर उसमें अपने फायदे का एतकाद कर लेवे वनकल सारी पुलिस सुपरीन्टेन्डेन्ट की तरफ भेजकर तहरीर हो के इस बात के निगरार होके ऐसा वाकान गुजरे क्योंकि यह एक सबाब का काम है इस में इसमें हर मुलामजीम ने वादीली कोशीश करने में इसी साल इस बात का नतीजा जहुर में आयेगा कि इस हुकम की तामील व पायबंदी रीयाया इलाके हाजा के जानीब से वा इतमीनान हुई तो निहायत दर्जे खुशी का वायस होगा और एक एक नकल इसका वइनाय तामील मसन्दरे मोहकम पुराव छोटी सरवा को भेजी जाकर बजी नहीं फाईल में रहे । फक्त

सिका

ल० कामदार कुशलगढ़

हजुरी चेनाजी साकिन अमावली ई मुजब सोगन कर्था मारा हाथ सुं जनावर बिलकुल मारुं नहीं और घरे खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है ।

द० जालमसिंह चेनाजी का कहवासुं

ठाकरों रुगनाथसिंहजी वगेली साकीन अमावली जागीरदार को भाई हरण, हुलो, तीतर मारुं नहीं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है ।

द० जालमसिंह रुगनाथसिंहजी का कहवासुं

गाम ननाए पेटे

ठाकरां देवीसिंहजी, गोड़ इए मुजब सोगन कर्या मारा हाथसु
जानवर मात्र नहीं मारु माने चारमुजारा सोगन है कसई लोगाने
भेजए नहीं देऊं ।

६० ठाकरां देवीसिंहजी ६० जितमल का

ठाकरां दलैसिंहजी जोड़ भौमिया इए मुजब सोगन कर्या मारा
हाथसु जानवर मात्र खाया के वास्ते नहीं मारुं हाथ मारा हाथसु
नहीं लगावणो मवेशी बिना सेंधा आदमी ने नहीं बेचुं

६० बदेसिंह

ठाकरां जालिमसिंहजी जागीरदार अमावली ई मुजब सोगन
कर्या जीरी बिगत मारा गाम में सुं गाय बिना आलजाएने बेचवा
देवुं नहीं मारी सीम गाम अमावली में कोई जानवर मारी जाए में
मारवा देवुं नहीं और मैं मारुं नहीं हरण खरगोश मारुं नहीं खार्क
नहीं और पंखेह जानवर मारु खाऊ नहीं माने चारमुजारा सोगन है ।

६० जालिमसिंह का हाथरा छै

॥ भीरामजी ॥

सावत

श्री पूजभी महाराज भाँदड़ी पधारवा पर पंच साइदी का
ठकाणा लुंदा अरज होवा पर निचे लिख्या मुजब छोट्या और

सरदार वगैरे से भी छोड़ाया गया सो साधित है जानवर वगैरा
ई मुजब सं १८६५ का जेठ बर्दा बुधवार ।

श्री रावली तरफ से

वेशाख कार्तिक में कसाई अमावस ग्यारस बकरा खंज नहीं
करेगा आगे भी बंदोबस्त हो परन्तु अब भी पुख्ता राखा जावेगा
बारा ही मदिनारी अमावास ग्यारस भी माफ है कार्तिक वैशाख
दो मदिना माफ और बाराही मदिना की अग्यारस माफ ई साल
में चैत्र मास में राज गन देवगन धारे है कसाई दुकान नहीं करेगा
हिरण झीलरा रोज ग्यारस अमावास लुंदा में शिकार नहीं करेगा ।

द० पन्नालाल रांका श्री हजुर का हुक्म से

श्रीपरमेश्वरजी

सिक्को छे

सवरुप श्री ठाकरां राज श्री १०५ श्री मोतीसिंहजी लाखावतंग
जैनरा साधु पूजजी महाराज श्री श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी
महाराज मोटा वत्तम पुरुषारो पधारणों बाधरे हुआ तरे मैं वादणने
गया तरे इणा मुजब सोगन किया है सो जावजीव पासां जावसुं

१—शिकार में सूर वो नार सिवाय दुजो कोई जानवर मारा
हाथसुं नहीं मारसुं

२—अमावस अगियारस महिना में तिन आवे है सो-मार
बारारी छतीस तिथी हुए सो मारा राज में जावजीव हलारो (हल,
अगतो रेसी

३—चारसरी तिथीरे दिन कुंभार, लघार तेली ग्याव,
निभाइो, घाणी, एरणरो अगतो पालसी ने कसाई खटीकरो भी
अगतो रेसी

४—मारा राज में गाय बगैरे कसाई व परदेसी मुसलमान ने
नहीं बेचसी

५—सुइ फोकइ रा खेतारो मारा राज में बारे नाम देसी
बालण देसी नहीं बालसी सो राजरो कसुरवार होमी

६—आसोज सुइ १० ने सालो साल नव जीव बकरा ११
रे कुकड़क गलाया जावसी

इयां मुजब पाला जावसी ए कलमां पीढ़ी दर पीढ़ी पालां जावसी
सं० १६६४ पोरा सुइ १५ दं० कामदार महेताव चंदरा छे श्री
ठाकोर साहबरा हुकम सुं लिख दिनो छे

श्रीभैरवनाथजी

श्रीरामजी

महोरछाप

सीधथी महाराज महारावतजी श्री भोपालसिद्धजी रा. भदेसर
चनान् वही सादरी का समस्त ओसवाल माननारा पंचा सुं प

सादापेच अपरंच थां अरज कीधी के मारवाड़ सुं मां के श्री पूज्य जी चतुरमांसो करवान आवे है सो वठां पुं केवाड़ हैं के मारो आवो वे है ई निमित्त कुत्र उपकार वणो चावे ई वास्ते अठे हुकम है के सावन कातिक वैशाख तीनों महिना कसाई दुकान सदैव बंद रहेगा और इगियारस अमावस तो आगे सदैव सुं पाले है जो पले ही है ।

सिकोछै

सं० १६६५ का जैठ सुद १३

द० गिरभारी सिंह

श्रीएकलिंगजी

श्रीरामजी

राजस्थान गोगुन्दा मेवाड़

नंवर की

८५६

महोरछाप छे

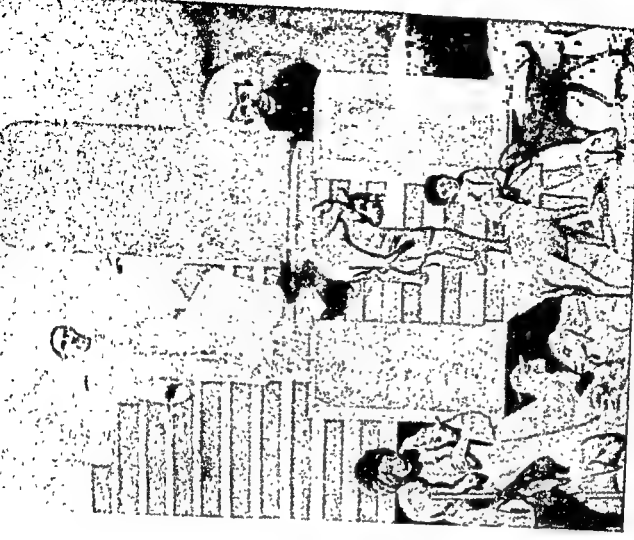
स्वामीजी महाराज श्री पूज्यजी महाराज श्री श्रीलालजी को हालमें गोगुन्दे पधारणो हुआ आपका उपदेश की तारीफ सुण मारो भी खभा में जावो हुआ. जो उपदेश श्रीमान् को मैं सुणों मारो मन बहुत प्रसन्न हुआ और आप जैसा महात्मा का उपदेश सुं मैं हमेशा के वास्ते पंखेरू जानवरों की व हरण की शिकार छोड़

दो है । और अठै राजस्थान में आबोज सुदी ८ हमेशा सुं दो
 पाड़ा रो बलशान होवे है वी में सुं १ हमेशा के लिये बंध कियो
 भो मारी पुस्त हर पुस्त बंध रहेगी ई के पहिले सं० १६६५ में खा-
 मिजी महाराज बांधगलमी को पवारबो दुपरे जद भी बड़ा हजुर
 २ बकरा हर साल अमरा करवा को प्रण कीयो वा अब तक बली
 जावे है वीरो हमेशा अमल रहेगा मैं भी पूजनी महाराज क ई
 बपकार के लिये जतरो धन्यवाद कर्न बाँहो है सं० १६७१ का
 जेठ सुदी ७ सोम०

द० रामराणा वसुपतसिंह



महीयर राज्यना दयालु दीवान
रा. रा. हीरालाल गणेशजी अंजारीया वी. ए.



परियार-परियार २. प्रकाश ४५.

श्री शारदा देवी पासे धर्म निमित्ते यती
जीव हिंसानो बहिष्कार.



सेठ मेघजीभाई थोमणभाई.

मुंबई श्री शे. स्या. सकळ श्री संघना प्रमुख.

महोदय राज्यमां देवीजीनो वध वंध करादनार परमार्थी.

परिचय-परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.



नामदार महीयर नरेश.

राजा साहेब मीरजापुरी नरेश.



ગ્રેટ શાંતિનામ આસરણ જે પો મુર્દે
 મદનિય રાગ્યમો કથ રા રા રાગ્યનામ પગ્યા મી
 પરિચય-પરિચિત્ત . પ્રકરણ . .



શ્રીમાન્ મહારાણા મોદિવના જ્યેષ્ઠ મ્નાતા
 વાવાજી મુરત્તસિદ્ધની મોદિવ-હૃદયપુર.
 પરિચય-પ્રકરણ ૪૬

महीयर स्टेटमां धर्म निमित्ते धती हिंसा केम अटकी ?

महीयर राज्यमां एक हील उपर श्री शारदा देवीनुंमंदिर आवेलुं
छे तेमां देवी निमित्ते अनेक प्रसंगे देवी भक्तो तरफथी बकरा, पाडा,
विगेरे हजारो प्राणिश्रोनो लांचा कालथी दर वर्षे भोग अर्पातो हतो
के जे बात त्यांना दिवान साहेब रा. रा. हिरालाल गणेशजी अंजा-
रीचाने रुचिकर नहि लगवाथी तेसो आवा प्रचारनी करीपण हिंसा
हमेशाने माटे बंध थाय तेवुं इच्छता हता अने ते माटे तेसो श्री
मी० भगवानलाल तथा मी० दुर्लभजी श्रीभुवनदास कवेरीने ज्ञान
करतां ते उपरथी जो कांइपण सारे रस्ते लोकोने दोरवी ते हिंसा
अटकावाय तो ते बायत पोतानो विचार जणत्रिव्यो हतो. आ उपरथी
मी. दुर्लभजीए शेठ मेघजीभाई थोभण भाईने पत्र लखी आ हिंसा बंध
करवा माटे कईक इलाज लेवानी भलामण करी हती, ते उपरथी
अमे तेमने खास आ कार्यमाटे महीयरना मे० दिवान साहेबनी
मुलाकात लेवा मोकल्या हता के ज्यां तेसोए नजरोजर आ करपीण
हिंसायुक्त कार्यो जोयां हतां वाद दीवान सहेबे जणाव्युं के जो आ
राज्यमां कोइ सखी गृहस्थ तरफथी एक सार्वजनिक लाभ माटे एक
इस्पितालनुं मकान बंधाची देवामां आवे तो तेना बदलामां नामदार
महीयरना महाराजा साहेबनी संमति मेलवी ते घातकी कार्य सदाने
माटे हुं बंध करावी राष्ट्र. आ उपरथी मी. दुर्लभजीए हमने एहकी-

કત જણાવતાં અમે નીચેનો શરતે લેવો એક દસ્તીતાલ બંધાવી આપવા
ઠરાવ કર્યો હતો

શરતો. -

૧ મહીયર રાજ્યમાં તમામ આદિર દેવલોમાં હિંસા સર્વતર બંધ કરવી.
૨ તે વાવતના લેસ્તીત હુકમો અમને ત્યાંના સત્તાવાલાઓને અપવા.
૩ આવી જાતની હિંસા બંધ કરોતે તે વાવત શ્રી શારદા દેવીના
દેવાલય આગલ તે વાવતનો રાજ્ય તરફથી લે વીલર લગાવી હિંદી
તથા અમની ભાષામાં શિલા લેખ લગાડવા.

૪ અમે તે દસ્તીતાલ બંધાવવા માટે રૂ० ૧૫૦૦૧ અંકે પંદર હજાર
અને એકતો રકમ સ્ટેટને એવી શરતે સોંપીએ કે તે દસ્તીતાલ વપરે
આવાવતનો શિલાલેખ પણ હમેશ માટે કાયમ રાસ્ટ્રયામાં આવે અને
પંદર હજારથી ઓછી રકમ સ્વર્ચી નહિ પણ જો વિશેષ રકમ
જાંદણ તો સ્ટેટ તરફથી તે આપવામાં આવે અને દસ્તીતાલ નિરંતર
નિભાવવાનો સંચલો સર્ચ રાડેયે આપવો.

વપરના શરતો પ્રમાણે તે રાજ્યના નામદાર રાજા સાહેબ મીઝ-
નાથ સંદતો મહાદુર પોતાના રાજ્યમાં તેમના દોવાન સાહેબની નેરુ
સનાદથી ખર્મિક પગુવચ હમેશને માટે બપ કરવાના પરમાર્થ ઠરાવો
કરેજા છે, અને આ ઠરાવ ત્રિહદ જો કોઈવણ શરત ચર્ચન કરે તો
લેને ૬ માસની સજા કેદગ તાની મજા તથા રૂ० ૫૦ પચામ દદ

करवाना ठराव ता. २ सप्टेम्बर १९२० ना रोज-राज्य तरफ्ती
प्रसिद्धथो छे. अने ते माटे अमे ते नामदारनो मानपूर्वक आभार
मानीए छीए. दीवान साहेबनी असल सही सीकावाला सदरहु ठरावोना
फोटोग्राफोनी नकल अमे जाहेर प्रजानी जाण माटे प्रसिद्ध करीए
छीए, के जे जेथी भविष्यमां ते राज्यमां तेवो बनाव कदि दैवयोगे
बनवा पामे तो अमारा आ दस्तावेजोनी साक्षी अने आधार द्वारा
जाहेर प्रजाते अटकावी शके.

चलभं टेरस
संन्डहस्ट रोड
बम्बई नं. ४. }

मेघजी थोमण.
शांतिदास आशकरण.

अरुएक अनुवाद

(१)

मिस्टर हीरालाल गणेशजी अंजारिया साहेब; बी. ए.
दीवान रियासत मईहर तारीख -२-६-१९२०
नम्बर. १२६७.

(सही) हीरालालजी अंजारिया

महीयर-राज्यना मंदीरामां धरुं करीने बकरां तथा बजि प्रा-
णिओनां बलीदान आपवामां आवे छे. आ रुढी पसंद नहीं होवा
थी हुकम करवामां आवे छे के श्री देवी शारदाजीना मंदीरमां अथवा

રાજ્યના કોઈ પણ જાદર મદીરોમાં કોઈપણ માણસ કોઈપણ દેવી અથવા દેવતાઓના નામ સપર ચઠરાં અથવા તો બીજાં જનાવરાને વધ કરવાની કે ચલીદાન દેવાની સહત મનાઈ કરવામાં આવે છે. અને જે માણસ આ હુકમનો ભંગ કરશે અથવા કોઈ માણસને આ હુકમ કોઈપે ભંગ કર્યાની સ્થિતિ હશે અને તે દરબારમાં તે જાણત નહીં રજુ કરશે, તો તે હુકમનો ભંગ કરવા ચાલ્યાનો, અથવા તેથી સ્થિતિ જાણવાવાલાને દરેકને ૬-૬ માસ સુધી સહત કેદની સજા અને ૫૦-૫૦ પચાસ રૂપયા સુધી દંડ કરવામાં આવશે અને જે માણસ આ હુકમનો અનાદર કરવાવાતાને પકડી દરબારમાં હાજર કરશે તેને ૧૦૦૦ રૂપિયા દંડની રકમમાંથી પેસ્ટર કાપી દરબારમાંથી આપવામાં આવશે, અને તે માણસને રાજ્યનું દિનેચ્છુ ગણવામાં આવશે. આ હુકમનો અમલ આજની તારીખથી કરવામાં આવશે, તરખૂં.

(૨)

હુ.

આ હુકમની એક નકલ રવિન્દ્ર ઓફીસરને મોકલવી અને એવું લખવું કે તેઓ જલ્દીથી સર્વ પુજારીઓ તથા માનવા લેવાવાલા માણસને આ જાણત સ્થિતિ દે અને સુપરિટેન્ડેન્ટ સાહેબોલીસને મોકલી એવું લખવામાં આવે કે રાજ્યના દરેક ગામોમાં હુકમ પ્રમાણે પોતાનામાં આવે અને ડાંડીદારો તેમાં સ્થિતિ દેવામાં આવે.

Maihar, 2nd September, 1920.

Arable lands bearing the undermentioned notices in English and Hindi will be fixed in two pillars to be erected at the foot of the Gharda Devi Hill at Maihar.

Notice

Sacrifice of animals in the Maihar State before or in the name of Gharda Devi or any god or goddess in all public temples in the State is strictly prohibited by the State. No one shall, therefore, slaughter or sacrifice any animal in the name of any god or goddess. Offenders will be punished with rigorous imprisonment which may extend to six months and to pay a fine up to Rs 50/-.



Shree G. Anand
Deewan Maihar State 2/

[illegible]

and a in pecure and all exa are borne by the state

You will all shall be seated at the feet of
the Master and will bearing for Riptons in English and in
first now going to the public that killing of guests and other
a house is prohibited and that defendants shall be punished

If any Acolite or Priest be dedicated to guard
 Levi or any of my God or Goddess in any public temple in the
 state they shall be taken charge of by the state and their
 maintenance provided for

Method: t

2003 2nd Int'l. Conf. on Cyber Security and Information Assurance

John Paul 2
BIRMINGHAM, ALA. 1



रूपकार डेजानसी मिमर सीमानान गेडात भेजागिया मांदप. सी. गे. अस्त
गियास्त मंदप बाक. २३२३



Shri Lal S. Kaur

रियास्त मैहर के मंदिरान में अक्षर बफा रा दीगर जानपों का बनीदान फिया
जाताह. यह काररवाई न पमंदी है इसलिये मुतामिक नमाप फिया जाताह
कि श्री बेबी शारदाजी के मंदिर में. या रियास्तहाप के ज्ञान मंदिर में कौंद शरदा
किमी देगा या देयता के नाम पर बकरा व दीगर जानपर काटने की व बर्ती
दान देने का मुग्त मुमानियत की जापु. अगर जो शरदा हुकर दाना के खिलाफ
करेगा. या जिस शरदा को सेम ना जायज फेल करने की रपपर हांगा और यह
दरबार में हुकर दान करेगा ना फेल करने वाले को १- जानने वाली ६-६ मात
तक मरण कैद की सजा दी जायगी और ५० — ५० रुपया तक जुर्बाना फिया
जायगा और जो शरदा हुकर फेल के करने वाले को गिरफ्तार करे दारवा में
हुकर दाना उम्का १०० इनाम जुर्बाना में पस्त कर दारवा दिया जायगा
और वह शरदा रियास्त दारवा समझा जायगी और हुकर अमर दरमद आज
ही के नौगिर में हांगा लिहाजा -

हु.

जगि नरुल रुकामात रेहनु २५ नर माह को दाना २५० र
जाग रुक पुजा मान व मातयात गमाग को न २५० र
रेहनु २५० र मातयात गमाग को न २५० र

महीयर रेट्टना दीवान साहेब साथेना करारनो दरतावेज.

[illegible]

Final of Anyana
Dennis Markov

॥ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

878

10/9/52

અને મહીયર તલપરમા ઠુકમની નકલ હાવાથી ચાંટાણવામાં અને
 ડાંડી પિટાની જોહર કાચામાં આવે અને દશ ૨ પાંચ—પાંચ નકલો
 મજકુર રાજ્યની આમવાસ જાણ વાસ્તે મોકલવામાં આવે અને
 એક નકલ મજિસ્ટ્રેટને અને એક નકલ ગ્રાજાર માસ્તર ને સ્વર
 માટે મોકલાવવી અસલ નકલ ફાઇલમાં હાજર રાખવી

(મહી) ફતેસિંહજી,

(મહી) હીરાલાલજી. અંજારિયા.

દીવાન મહીયર.

નકલ મા, શેઠ મેઘજી ભાંડે

અને શાન્તિદાસ ભાંડેને મોકલવી.

Sd. H. G. A.

10-9-20.

જીવદયાના સિદ્ધાંતોને અનુસરીને મહીયર રાજ્યના જાહેર દેવ-
 લોમાં દેવી, શારદા દેવી અથવા તો કોઈ દેવદેવીઓના શામે અગર
 તેમના નામે થતો વકરાઓ અથવા પ્રાર્થાઓનો વધ કરવાની મહી-
 યર રાજ્યે મંચત મનાઈ કરેલી છે અને એના દાખલા લઈને કચ્છ
 માંડવીના રહીશ શેઠ મેઘજીભાઈ થોમણ ભાઈ તથા શેઠ શાંતિદાસ
 આસકરણ, જે. પી. જેઓએ રૂ. ૧૫૦૦૦) ની રકમ આ છટ-

કાવની યાદગીરીમાં શારદા દેવીને તે રકમ ઝીલવાના કાર્યમાં વા-
પરવા માટે અર્પણ કરવા વિનંતી કરી છે. રાજ્ય તેમની વિનંતીનો
સુશીથી સ્વીકાર કરે છે અને તેમની માથે મસલત પાડ્યા પછી
તેમના તરફથી અર્પણ કરવામાં આવેલી રકમથી ઝીલ્લી નહીં ટેટલા
સ્વર્ણથી એક હોસપિટલ ચાંડવાના નિર્ણય જ્વર આશ્ચર્ય છે.

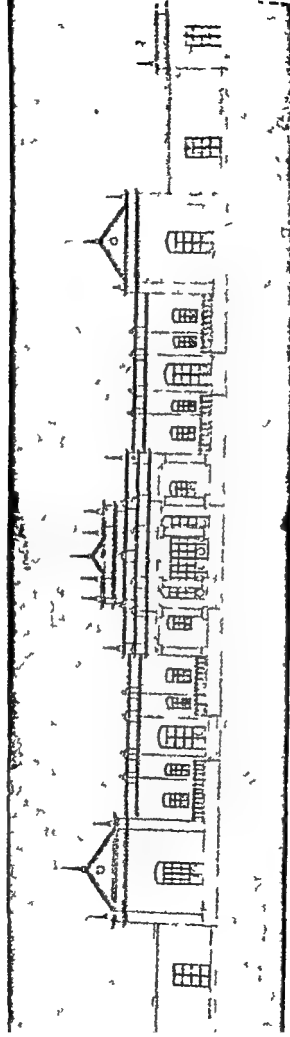
આ ફરિયાદોનું મર્યાદ સત્ત્ર કરવાનો, મીઠાવવાનો, દુરસ્ત
કરવાનો તથા એને લગતો સમાપ્ત કરવો રાજ્ય તરફથી સ્પષ્ટતામાં
આવશે.

શારદા દેવીના યુગરની તલ્લીમાં જે સ્થંભો વધા કરવામાં આ-
વશે અને જેમાં રૂમેજી તથા હિન્દુસ્થાની મર્યાદા બકરાઓ તથા
બીજાં પ્રાણીઓના ધત્તા વધ અથવા બહારના અટકાવવાની અને
કમુર કરનારને સજા કરવાની જાહેર સ્વરોના શીજાકેસ સગાહ-
વામાં આવશે.

જો કોઈપણ પ્રાણી અથવા વ્યવસ્થાની શારદા દેવીને અથવા
યો કોઈ રેલ અગર સ્થાને જાહેર સ્થળોમાં અર્પણ કરવામાં આવશે
તો તેનો જવજો રાજ્ય તરફથી સમાપ્તી નમનો સ્વર્ણ રાજ્ય તરફથી
નીમાવવામાં આવશે.

મહીયર, સી આઈ } (૭૬૧) હીરાલાલ મણેજી ઝંજારીયા
તા. ૨૭મી સપ્ટેમ્બર ૧૯૩૦ } વાંચન, મહીયર નેટ.

महीयरनी ईस्पीतालनो प्लान.



देवीने थतो कायमी वध वंध थवाना स्मरणार्थे तैयार थती होस्पिटल.

परिचय-परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.

हंस्पीनालनी उपर लगनारा शिलालेख

A Tablet bearing the following inscription will be
 fixed in a conspicuous place in the hospital building to be
 erected

This hospital was built at the instance of Datto
 Meghjiabhai Thakur and Shantidas Ashkaru J. of Cutch and
 who have sold Rs 2,000 towards the cost of its erection in
 token of their gratitude to the Raja Sahib Mirjapur 1st
 Bahadur for the prohibition of animal sacrifice in all
 public temples in the state since for ever
 bearing date from the 1st of SEPTEMBER, 1900.

At the place of work

1st 1st March 1901



General P. Chyavan
 1st 1st March 1901

મહોદ

મહીયર, તા. ૨ જી સપ્ટેમ્બર ૧૯૨૦

(૪) મહીયર રાજ્યમાં આવેલા શારદાદેવીના હુંગરની તલ્લે-
દીમાં ઝમા કરવામાં આવતા કે સ્થંભો ઉપર અંગ્રેજી તથા હિન્દુસ્થાની
બંને ભાષામાં નીચે દર્શાવેલી જાહેર જાહેરની કે જાહેરની તફતીઓ
જાહેરવામાં આવશે.

જાહેર જાહેર.

મહીયર રાજ્યમાં આવેલા શારદા દેવી અગર કોઈ દેવ અથવા
દેવીના સામે અથવા તેમની નામમાં જાહેર દેવલોમાં તથા પ્રાણી અથ
માટે રાજ્ય તરફથી સસ્તત મનાઈ કરવામાં આવે છે, જેથી કરીને
કોઈપણ મનુષ્ય કોઈપણ જાતના પ્રાણીના કોઈપણ દેવ અથવા દેવીના
સામે અથવા તે બત્તીદાન કરી અથવા તે કઈ શરૂ નહીં.

કસુર કરનારને છ માસ સુધીની સસ્તત મજુરી સાથેની જેલની
જાતે રૂ. ૫૦ પચાસના દંડની જાજા કરવામાં આવશે.

(સહી) હીરાલાલ જી. અંજારીયા, ધીવાન, મહીયર સ્ટેટ.

નાંચે દર્શાવ્યા મુજબનો શિલાનેર ચાંધવામાં આવતી હોસ્પિટાલના મકાનમાં (પ્રસિધ્ધ) મુદરચ જગાએ લગાડવામાં આવશે.

“આ હોસ્પિટલ કચ્છ માંડવીના રહીશ શેઠ મેઘજીભાઈ ધોબન ભાઈ તથા શેઠ શાંતિદાસ આસફરમુ, જે. પી. જેમ્સોન, મહીયર રાજ્યનાં સર્વે જાહેર દેવલોમાં થતા પ્રાણીવધની અટકાયતના માટે ત્યાંના મહારાજા સાહેબ શ્રી મીજનાથમિદ્દજી વહાદુરના આભારની યાદગીરીમાં તેનાં ચાંધકામના સર્વે ચલન રૂ० ૧૧૦૦૧) અંકે પંદર હજાર એક એનાયત કરતાં તેમના ગ્રેણાથી ચાંધવામાં આવે છે.”

દીવાન હિરાલાલ ગણેશજી અંજારીયાના વચ્ચતમાં

મહીયર, { (મહી) હીરાલાલ ગણેશજી અંજારીયા.
તા. ૦૨ જી સપ્ટેમ્બર, ૧૯૨૦ { દીવાન, મહીયર સ્ટેટ.
મ્હોર

(१०१)

परिशिष्ट ३

पूज्य श्री का, मुसलमीन भक्त सैयद असदअली M. R.
A. S. F. T. S. जोधपुर ।

सैयद असदअली लिखते हैं कि, जब श्री १००८ श्री
पूज्य श्रीलालजी महाराज का चौमासा जोधपुर में हुआ था, मुझको
श्रीपूज्य महाराज के उपदेश से फ़ैजरुहानी (आत्मज्ञान) बहुत
पहुँचा । मुझको श्रीपूज्य महाराज ने अत्यन्त कृपा करके नौकार
मंत्र की कृपा करी और खुद श्रीपूज्य महाराज ने अपनी जुवान
फ़ैजतर जुवान (खास श्रीमुख) से जुवाती नौकार मंत्र याद कराया
जो अबतक जपता हूँ और बड़ा काम देता है—जैनधर्म का उपदेश
लेने के बाद उन्हीं दिनों में मूढ लोगों से बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, यहाँ
तक कि मूढ लोगों ने मुझे जान से मरवा डालने के उपाय किये थे ।
और दो तीन जगह दुष्ट लोगों ने मेरे बदन पर चोट भी पहुँचाई
थी, इस वजह से कि, मेरे भाई अमीरहुसैन जिले गुड़गांव (देश-
हरियाना) में डाक्टर थे । सो मैंने अपने भाई डाक्टर भजकूर से
कहकर तमाम जिले में करीब ३००० तीन हजार के गौओं को
बध होने से बचाया । जब कि, लोग उस तरफ फैला हुआ था और
मेरे भाई डाक्टर भजकूर को हर तरह के अख्तियारात हासिल थे ।
इस काररवाई से रियासत जोधपुर में इस दया के काम के वाचन

खुशी के जलसे हुए थे और उन जलसों में तीन २ चार २ हजार आदमियों ने इकट्ठे होकर मानपत्र अर्पण किये थे ।

दाता जिजे गुजरात के राजा साहिव मेरे मेहरबान थे । वे राजा साहिव मौसूक अम्बे भवानी के मन्दिर में तशरफ़ लेगये थे मैं भी साथ में था वहाँ अम्बे भवानी के मंद चढ़ाने को चकरे पचास २ के करीब आते थे याने जितने आदमी उठने ही मकरे अम्बे भवानी को वगरज सुख शान्ति चढ़ाने लाते थे और यह बात राजा साहिव को भी बड़ी खुशी और मरजी की होती थी । मैंने राजा साहिव का और हाथरीन को 'आदिछा परमो धर्मः' का मसला समझाकर और सुख शान्ति बराबर रहने का अपना जिम्मा लिया । चुनांचे राजा साहिव से मकरे छुड़ाने के बदले नरुद रुपया अर्पण अम्बे भवानी की के कराना मुकरर करा दिया जाता था और उन सब बकरों के कान में कड़वा डलवा कर अगरे करादिये गये । सब तरह से सुख शान्ति रही किसी की आख भी बड़ा नहीं दुखी । इस वाकत कई द्वेपी लोगों की तरफ से मुझपर बड़े २ जोर पड़े परन्तु मैंने धर्म मार्ग में किसी तरह तकलीफ पढ़ने को परवाह नहीं की, और राजा साहिव ने वहाँ सबको सरोपाव दिये थे वह भी मैंने वहाँ नहीं लिया । इस तरह पंजाब की तरफ एक रियासत में एक खैस को हजार २ कागले राज मारने का शौक होगया था, और

मार २ कर घगिंग करते थे. जो कि, वहां पर उस रईस ने मुक्तको खास उनकी मुशकिल के वक्त बुलाया था। मैंने वहां पहुंचते ही उन रईस साहब से अर्ज कराई कि, मैं अब वापिस जोधपुर जाता हूं। आपका मुझसे जो खास काम है वह धरा रहेगा, लेकिन उन रईस साहिब का मुझसे खास तौर से मतलब और गालज थी उन्होंने जल्दी से मुलाकात की और मुझसे पूछा कि, धिरर मुलाकात किये वापिस क्यों जाते थे। मैंने कहा कि, मैं सुनता हूं कि, आप हजार हजार कागलों का रोज मर्राह फक्त मनराजी के शकल में शिकार करते हैं। इससे आपकी बड़ी बदनामी हो रही है और लोग गालियां देते हैं और फक्त आपकी दिललगी के लिये हजारों जानों का मुफ्त में नाश हाता है। इस तरह उनको कई तरह समझाया तो रईस ने आयन्दा के वास्ते ऐसी हिंसा करने की सौगन्द लेली। इसी तरह एक रईस साहब जो जोधपुर में बड़े मुअज्जिज हैं।

उनको उनकी इस किस्म की नामवरी जाहिर कराने का बहुत शौक हुआ तो उन्होंने बच्चे वाली कुतिया जंगल वगैरह से तलाश कराकर मंगाना शुरू किया और उनके शरीर पर चिथड़े लिपटा, लिपटा कर लैम्प के तेल के पीपों में उन कुतियों को डलवा देते खूब तर करवाते पीछे दिया सलाई बत्ता देते जब वह बच्चे वाली कुतिया जलती कूदती उछलती वह रईस साहिब मय जनाना के बहुत हंसते

आर गधों की चन रईस साहिब ने ले डाली। जब मुक्तको मालूम हुआ
 मैं खुद चन रईस साहिब की सिद्धमत में गया और अपनी जान
 तक देना मंजूर किया और हर तरह समझा कर उनसे आइन्दा
 के वास्ते सोगन करा दी। लेकिन इस मौके पर यह ज़ाहिर कर देने
 काबिल है कि, चन रईस साहिब को इस पाप के अशुभ फल हाथों
 हाथ मिल गये। जिसको मारवाड़ के छोटे बड़े जानते हैं। मुसलमानों
 में एक महात्मा मौलाना रुम टुप हैं। उन्होंने भी चन की बाणों में
 लिप्रा है कि:-

तो मशाले खौफ अर हन्म रुदा ।
 देरगिरो सख्त गिरो भर तरा ॥

जनाबमन हमारे कलेजे कांपते हैं। हमारा दिल दुखता है,
 हमारी कलम में ज़रा ताकत नहीं कि, हम एक सिन्मा बराबर भी
 ओसाफ हमारे परम दयालु, परम कृपालु, सत्य धर्म की नाव, ज्ञान
 के समुद्र, दया धर्मकी होली गार्ड, श्री श्री १००८ श्री श्री पूज्य
 श्री श्रीलालजी महाराज का क्या लिख सकें, आपने हज़ारों पापियों
 को सत्य मार्गी और हज़ारों हिंसाकारों को “आईसा परमो धर्मः”
 पर आभिल बना दिया था। सैकड़ों चोरोंने चोरी और हिंसा के
 पेशे छोड़ दिए थे। मीने बाबरियों तक ने तीर कमठे फेंक दिये थे और
 मेरी माँ की तरफ़ से सबका सब करने वाले थे ।

Indeed, I will never find such a prop-kari Guru on this world, like shri pujya Shrilalji Maharaj again. His fatherly love & sympathy bring me into force, to weep for him once a day at least.

My Jiwan is usless now without his superium satsung, what I can write you, Sir, more than this?



परिशिष्ट ४.

वर्तमान आचार्यश्री

परित्रनायक सङ्गात पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के पश्चात् भारतवर्ष की जैन साधुमार्गी सम्प्रदाय में सत्र से अधिक मुनि व आर्याजी वाली इस सम्प्रदाय का समस्त भार पूज्य श्री जवाहिर-लालजी महाराज के सुमुँह हुआ. आप इस पद पर आरुढ़ होकर जैनधर्म को वैशिष्ट्यमान कर पूज्य पदवी दिया रहे हैं। आपका संक्षिप्त परिचय पाठकों को करा देना आवश्यक है।

मालवा देशकी पवित्र उर्वरा भूमि में सं० १६३२ कार्तिक शुक्ला ४ को श्रीमती नायीवाई के उदर से आपका जन्म थादलामाम में हुआ। आपके पिता श्रीका नाम सठ जीवराजनी था। आप बाँसा ओसवाल कुमार गोत्र में उत्पन्न हुए आपको बालवय से ही अनेक बकटों का सामना करना पड़ा। जब आप दो वर्ष के थे तब आपकी माता श्री एवम् चार वर्ष की अवस्था में आपके पिता भी का देहान्त होगया। अतएव आप मौसार में रह पड़ने लगे, मामा मूलचंदजी को ब्यौपार कार्य में मदद भी देने और विद्याभ्यास भी करते थे, देवात् मामाजी का आपकी चौदह वर्ष की अवस्थामें स्वर्गवास होगया, अत एव आप पर उनके समस्त कुटुम्ब वाल बच्चे

एवम् व्यौपारका समस्त भार आपड़ा आपने तीव्र बुद्धि से सबको यथोचित संभाला परंतु सांसारिक कई अनुभवों ने आपको वैराग्य में तल्लीन बनादिया आप संसार को असार संमत् वैराग्यवंत हो दीक्षित होनेको तैयार हुए, परंतु आपके बड़े बाप (पिताके बड़े भाई) ने आपको आज्ञा न दी । अतएव आप स्वयं भिक्षा लाकर गुजर करने लगे. वर्ष सवा वर्ष यों व्यतीत होने पर आपने सबकी आज्ञा ले महाराज श्री घासीलालजी महाराज श्री मंगललालजी के पास भावुआ के समीप लीमड़ी ग्राम में सं० १९४८ में मंगसर सुदी १ को दीक्षा अंगीकार की. परंतु दीक्षित होने के १॥ माह बाद ही आपके गुरुजी का परलोकवास होगया इतने अल्प समय में गुरुजी ने आपको अत्यंत शिक्षित बना दिया था उस गुरुतर मोह के कारण आपका मन डूब गया और आप पागल से होगए, पौने पांच माह पागलावस्था में रहे । दरम्यान तपस्वीजी श्री मोतीलालजी महाराज ने आपकी खूब सेवा सुश्रूषा की. आपके उस समय के पागलपनेके घावोंके निशान अभी तक मौजूद हैं । आपको भले चंगे किये और सब चातुर्मास प्रायः अपने साथ ही कराये, इसी कृतज्ञता के कारण पूज्य जवाहिरलालजी महाराज तपस्वीजी की आज तक सेवा कर रहे हैं और इस उपकार के स्मरणार्थ आप के पूर्ण अहसानमंद हैं । दीक्षा लिये पश्चात् आज तक आपके निम्नोक्त ३१ चातुर्मास हुए हैं ।

१ धार, २ रामपुरा, ३ जावरा, ४ थांदला, ५ परतापगढ़,
 ६ सेलाना, ७—८ खाचरोद, ९ महिदपुर, १० उदयपुर, ११ जोधपुर,
 १२ व्यावर, १३ बीकानेर, १४ उदयपुर, १५ गंगापुर, १६ रतलाम,
 १७ थांदला, १८ जावरा, १९ इंदौर, २० अहमदनगर, २१ जुनेर,
 २२ घोड़नदी, २३ जामनगर, २४ अहमदनगर, २५ घोड़नदी, २६
 मौरी, २७ दीवड़ा, २८ उदयपुर, २९ बीकानेर, ३० रतलाम, ३१
 सवारा ।

आप शुरू से ही विद्या के अत्यंत प्रेमी थे । आप संस्कृत पढ़े
 न थे परन्तु संस्कृत के काव्यादि आप बहुत प्रेमसे शीखते और मनन
 करते थे, जब आप दक्षिण की तरफ पधारे तब आपको सब अनुकूलता
 मिली और आप संस्कृतके धुरंधर विद्वान् होगए । आपका व्याख्यान
 आज अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग का वर्तमान शैलीसे होता है । आपके
 व्याख्यान से विद्वान् जन भी अत्यंत संतुष्ट हैं । आपने अत्यंत परिश्रम
 कर बहुत अधिक ज्ञान सन्गदल किया । कई ग्रंथ देखे उनमें से
 रघुदासमंजरी ' लघुसिद्धांतकौमुदी, मालापद्धति, न्यायदीपिका,
 परिश्रामण, विशेषावरयक, रघुवंश, माघकाव्य, कादंबरी, बंशकुमार,
 किरातार्जुनीय, नेमिनिर्वाण, हितोपदेश इत्यादिका तो अभ्यास किया
 और तत्पार्यसूत्र, गोमटसार, महाराष्ट्रग्रंथज्ञानेश्वरी, रामदासका दास-
 मोध, लो. निलक की गीता, कर्मयोग तुष्टारामजी की पुस्तकें, मनु-
 स्मृति, महाभारत, गीता, पुराण, उपनिषद् इत्यादि जैन सूत्रोंके सिवाय

अन्य ग्रंथों का अवलोकन किया है। आप संस्कृत के पारंगत विद्वान् होकर हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाएं बोल सकते हैं। श्रीमान् लोकमान्य तिलक आपसे अहमदनगर में मिले थे। आपने जैन धर्म के सम्बन्ध में अपनी गीता में कई सुधार करना चाहे थे और लोकमान्य ने मंजूर भी किये थे। जैनधर्म के सम्बन्ध में जगत् प्रसिद्ध लोकमान्य तिलक महाराज के सुवर्णांकित शब्द ये हैं—

“जैन और वैदिक ये दोनों प्राचीन धर्म हैं। परन्तु अहिंसाधर्म का प्रणेता जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिक धर्म पर कभी न मिटने वाली ऐसी उत्तम छाप बिठाई है।”

वैदिक धर्म में अहिंसा को जो स्थान प्राप्त हुआ है वह जैनों के कारण ही है। अहिंसा धर्म के पूर्ण वारिस जैन ही हैं। अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व वेद विधायक यज्ञों में हजारों पशुओं का बध होता था, परन्तु चौबीस सौ वर्ष पहिले जैनियों के चरम तिर्थकर श्री महावीर स्वामी ने जब इस धर्म का पुनरोद्धार किया तब जैनियों के उपदेश से लोगों के चित्त अघोर निर्दय कर्म से विरक्त होने लगे और धीरे २ लोगों के चित्त में अहिंसा दृढ़ जम गई। उस समय के विचारशील वैदिक विद्वानों ने धर्म के रहस्यार्थ पशुहिंसा विलकुल बंद कर दी और अपने धर्म में अहिंसा को आदर पूर्वक स्थान दिया और अहिंसा मंडन कर अपने धर्म को बचाया, यह सब अहिंसा

धर्म के प्रणेता जैन धर्म का ही प्रमाण है। (प्रो० आनंद शंकर वापु-
माई ध्रुव के लेख का कुछ अनुवाद)। आप के चातुर्मास जहां २
हुए वहां २ अत्यन्त सरकार हुए। उदयपुर के चातुर्मास में तपस्या के
पूर पर किसना नाम के खटीक ने यात्राजीवन पर्यंत अपना मूरघन्ना
बंद किया और उमने दूसरे जो जनों को मुबारक, सेवापंथी खाद्य
फौजमलजी के साथ जेत्तारण में एक माह तक आपने लिखित च-
र्चा की, उस समय मंदिरमार्गी व वैष्णव मध्यस्थ थे। इस के फल
स्वरूप सद्गुरु मंदिरमार्गी महाराज श्री सीवजीरामजी का लेख
मोजूद है।

आपने कई ठाढ़ों का मांखहार छुड़ाया तथा शिकार का
त्वाग कराया। कई मुनलमान आवक बनाये। कई जगहों के
संघ के दो भाग दूर कराये व कुछयहार बंद कराये हैं। प्रोफेसर
राममूर्ति ने शांतता में आश्रय व्याख्यान सुनकर कहाया था कि,
अगर ऐसे भारतवर्ष में हम व्याख्याता भी हो जाँय तो ममार का
बड़ा भारी कल्याण हो जाय।

आपका शिष्य समुदाय विद्वान् और भद्वालु है। पूज्य परपी
प्राप्त हुए बाद आप श्री संघ एवम् साधु समाज में सिंह समान गाने
रहे हैं। विराज भाल, दिव्य चक्षु उज्जल बांति, देदीयमान शरीर
रचना इत्यादि इतने आकर्षक हैं और व्याख्यान शैली इनको उत्कृष्ट
शास्त्रीय, एवम् मरल है कि, ओता बर्सापर नागके सदरा डोलते रहते हैं।

(१११)

शिष्य समुदाय और श्री कोटापुर महाराजा साहिब—

सं० १६७७ मार्गशीर्ष वद ५ मंगलवार के दिन मिरिजम श्री १००८ घासीरामजी महागज को लेकर हम आये । उसी दिन गोरे डाक्टर साहिब ने महाराज साहिब को देखकर निश्चय कर दिया कि, मार्गशीर्ष वद ३ गुरुवार को सफा स्नाना में आकर डेरा करो, और भिगसर वद ८ को शुक्रवार को आपरेशन किया जायगा ।

हम इस बात के विचार में थे कि, अस्पताल में रहने से ४ बात साधुओंके कल्प से विरुद्ध पड़ेगी । उसका घन्दोवस्त डाक्टर साहिब से करना चाहिये जैसा कि, १ अस्पताल में नर्स वगैरह छीजाति सब काम करती है । और श्री महाराज साहिब छीजाति को छूते नहीं इसलिये स्त्री मात्र महाराज साहिब से स्पर्श न करे ।

(२) पानी वगैरह कोई भी चीज अस्पताल के काम में हीं आना चाहिये ।

(३) अस्पताल के सब कमरों में रोशनी जलती है परंतु महाराज साहिब के कमरे में रोशनी नहीं होनी चाहिये ।

(४) दूसरे कोई रोगी महाराज साहिब के कमरों में दोनों

साथ वाजे साधु महाराजके धिया नहीं रहने चाहिये । इसी विचार से थे कि, इतने में ही श्री गुरु देवों के प्रतापसे कोल्हापुर के सेठ फतहचंदजी श्रीमालजी जिन्होंने सातारा में श्री १००८ घासीरामजी से सम्यक्त्व ली थी आन मिले । और फतहचंदजी डाक्टर साहिब के पहिले मे मुलाकाती होने के सिवा कोल्हापुर के महाराज साहिब के मर्जीदानों में हैं । इस वास्ते फतहचंदजी ने कहा कि, मैं कोल्हापुर से महाराज साहिब की शिकायत डाक्टर साहिब के नाम लिखा लाऊंगा । जिसमें महाराज साहिब का कल्प के मुजब सब पन्दोषस्त हो जायगा । यह बात मार्गशीर्ष षष्ठ बुद्धवार की है ।

उसके दूसरे दिन ७ गुरुवार को महाराज साहिब कोल्हापुर गुरुदेवों के प्रताप से अकस्मात् उनके किसी हजुरी का अप्रेरान कराने के लिये अस्पताल मिरिजम में आगये उसी दिन श्री १००८ घासीरामजी महाराज साहिब भी डाक्टर साहिब के कथनानुसार अस्पताल में पहुँचे । सो सेठ फतहचंदजी ने महाराज साहिब से इन्ट्रोड्यूस (Introduce) श्री महाराज साहिबको कराया और पंजे गोरे डाक्टर साहिबके रुक्खड़ी कोल्हापुरके महाराजने श्री महाराज साहिबसे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप किया । उस समय श्रीमहाराज साहिबने संस्कृत के अनेक गीता अदि ग्रंथों के श्लोकों से जैनधर्म का महत्त्व सिद्ध कर सुनाया जिन पर डाक्टर साहिब ने भी बहुत प्रमत्त होकर कहा

कि, मैं भी जैनतत्वों को सुनना समझना चाहता हूँ । उस समय महाराज साहिब के पास ऐसी हेन्डबुक मौजूद थी जिसमें ऊपर संस्कृत श्लोक और नीचे अंग्रेजी तरजुमा भी था । वह किताब साहिब को दी सो साहिब ने बहुत खुशी से ले ली । उस वक्तमें कोल्हापुर के राजा साहिब ने डाक्टर साहब से खास तौर पर इन शब्दों में शिफारस की कि, ये हमारे गुरु महाराज हैं आप कल इनका अप्रेशन बहुत तवज्जह और मेहरबानी से करें ” इस बात का असर डाक्टर साहिब पर ऐसा हुआ कि, जो चारों बातें ऊपर लिख आये हैं उन सबका इन्तजाम महाराज साहिब के कल्प के अनुसार हुआ और अप्रेशन करते समय भी बहुत तवज्जह से काम किया और सातारा वाले सेठ मोतीलालजी को भी अप्रेशन के समय में मौजूद रहने दिया । और खुद डाक्टर साहिब भी और अस्पताल के कुल कर्मचारी हिन्दू अंग्रेज वगैरह श्री महाराज साहिब को गुरु महाराज के नाम से बोलते हैं दोनों साधु महाराज और हम लोग महाराज साहिब के पास रात दिन हाजिर रहकर कल्प के अनुसार सेवा करने पाते हैं । और आहार पानी आदि का भी साधु नियमानुसार ही काम चलता है ।

अप्रेशन के पूर्व दिन कोल्हापुर राजा साहिब कोल्हापुर से खास श्री १००८ श्री वासीलालजी महाराज के दर्शनार्थ सेठ फतहचंदजी को तथा कोल्हापुर संस्कृत के पंडित दिगम्बरी जैन को साथ लेकर मिरिजम अस्पताल में आये और श्री महाराज के सामने कुर्सी पर

बैठकर मूर्तिपूजन चातुर्वर्ण्य जैन सिद्धांत आदि विषयों पर १।
 डेढ़ घंटा तक चर्चा की। और आते ही हाथ जोड़कर नमस्कार
 किया, और खड़े रहे। कहने से कुर्सी पर बैठे और पाव की जूती
 निकलवा कर कमरे से बाहर भिजवा दी और अतिनम्रता से पात
 करते थे तथा महारज की बात नोट करते जाते थे। पड़िली दफे के
 सिवा इस वक्त भी महाराज से कोल्हापुर जहर पधार ने की विनती
 की और कहा कि, आपके जैन धर्म सिद्धांत में सुनूंगा और हमारे
 और लोगों को भी सुनाऊंगा।

डेरे पर जाकर सेठ कवहचंद जी से कहा कि,
 महाराज की बातें मुझे बहुत पसंद आई, महाराज को कोल्हापुर
 जहर लाना। जिस समय राजा साहिब कोल्हापुर महाराज के पास
 आये थे उद्य वक्त पं० दुःसमोचनजी भी मौजूद थे अतएव जान
 पहचान होजाने से २ वक्त डेरा पर पंडितजी को बुलाया और
 खूब माम देकर घातिलाप करते रहे रात के ११ बजे छकि दी। उस
 समय मैं भी भी १००८ भी घासीलालजी महाराज साहिब के गुरु
 महाराज पद से हर बात में प्रशंसा करते थे। फक्त

भी कोल्हापुर राजा साहिब के बास्ते मराहूर है किसी
 देवी, देवता, परिष्ठत, संन्यासी आदि मान जहाँ किसी
 न हाथ जोड़कर किसी को

वासीलालजी महाराज साहिब को हाथ जोड़कर आते जाते नमस्कार करने हरेक बातों में गुरु महाराज कहने नम्रता पूर्वक कोल्हापुर पधारने को चारोंवार विनंति करने वगैरह सबब से सैठ मौलीलालजी साहिब ने ऐसा लिखा होगा सो ऊपर लिखी हकीकत से आप भी जैसा मुनासिब हो गौर फरमाइए ।

भिरिज

मिशन हास्पिटल

प्राईवेट रूप नं० २

अभी महाराज साहिब अस्पताल में हैं, ३।४ दिनमें अस्पताल से रुकसद देने वास्ते साहिबने कहा है। और साहिबने यह भी कहा है कि आराम होने पर हमारे बंगलेमें आप जरूर आवें। हम धर्म विषयमें बात चीत करना और जैन सिद्धांत सुनना चाहते हैं।

मुकाम सातारा शहर में स्वामीजी महाराज श्री १००८ श्री-वासीलालजी महाराज, श्रीगणेशलालजी, महाराज मय दूसरे साधुओं के साथ विराजमान थे। उस स्थानक में उनके पास महात्मा गांधीजी आए वह थोड़ी देर बाद ही मौलाना सोकतअलजी मय दो दूसरे मुसलमान साहिब आए और महाराज श्रीवासीलालजी से हाथ जोड़ नमस्कार कर बैठ गये और कहा कि यह तख्ता जो बिछा

हे आपको इसके ऊपर बैठना चाहिये था । आप ही वह जगह
 और जमीन पर क्यों बैठे हैं । यहा तो हमारे बैठने का इकरो
 घासीलाचजी महाराज ने कहा कि तबले पर तो हम बगैरा
 बल बैठते हैं और हम इस में कुछ ऊँच नीच नहीं खयाल करते
 साधु है । उसके बाद गांधीजी ने भी घासीलाचजी महाराज
 कहा कि मैं जैन साधुओं और जैन सिद्धान्तों से अच्छी तरह बर्ग
 हूँ और मैं जहा मौका मिलता है आप साधुओं के पास जाता
 और अच्छा जानता हूँ मगर आप लोगों में १ छुट्टि है वह यह है ।
 आप अपने भावकों को हाल के माफिक वसेजन नहीं देते हैं—
 यह छुट्टि निकाल देनी चाहिये । इस पर भी घासील जी महाराज
 ने जवाब दिया कि हमारा तालुक धर्म सम्बन्धी बातों से है सो
 हम जैसी हमारे धर्म में रीति और आगना है वही मुताबक बर्ताना
 करते हैं । उससे ज्यादा कम नहीं कर सकते । इसी किशमती हाल
 चीत में करीब २५ मिगट के डोगये में और दोनो महारामा की के
 चीत चीत करने की छवि थी मगर धारक से बाहर से रुकौ आर
 की भीड़ लग गई थी उस से बहुत से आरमी दरकिशम के मर
 त्मा गांधीजी की जय बोलते बाहर पहरम मुम्माये और महाराज
 गांधीजी के पास पड़ पड़कर उनकी ओर शोकतमनी की जय बोल
 लगे और घेरलिया जिस से महारामा गांधीजी और शोकतमनी
 जी दोनू ने भी घासीलाचजी महाराज से हाथ जोड़ नमस्कार क
 ली और बिदा होगये ।

नकल

ता० १८-१२-१९२० ई०

श्रीः

श्रीगन्साह छत्रपति कोल्हापुर नरेश प्रत प्रशंसापत्रस्य प्रतिकृतिः

श्रीमतां श्री १००८ मोतीलालजी महाराजानां पूज्यप्रवर श्री १००८ श्रीजवाहिरलालजी महाराजनां सुशिष्यैः श्री १००८ वासीलालजी महाराजैः समगंधि मया मिरजाभिध ग्रामस्य भैषज्यालये । प्रागेवं ध्रुतैर्द्व्युत्तान्तावर्यं सति साक्षात्कारैऽप्राप्तम मूर्त्तिपूजादि प्रधान जैन तत्त्व विषयान् । रुग्णासनासीना अपि एते महाराजा नः तथा सर्व विषयानुदात्तारिषुर्येन जैनशास्त्रादिचार्यादि प्रधानोपाधिमाधायु मर्हन्तीति मामकीनानुमतिः ।

यद्य मी जनताभिः स्युः प्रोत्साहितास्तदा भवेयुर्भारत भाग्य भानूजायकाः साधव इति मि० मार्ग० शु० ८ शनिवाखरे संवत् १९७७

इस्तावर साह छत्रपति कोल्हापुराधीशस्य
अधोविन्यस्तरेखाद्वयस्थले.

(Sd.) साह छत्रपति खुद.

Copy

AMERICAN PRESBYTERIAN

MISSION HOSPITAL MIRAJ

18th, December 1920

This is to Certify that Mr Ghanshal Sadhu had a patient in this hospital from 2nd December to 16th December 1920 while under my treatment. In this hospital the patient was not touched by nurse or a woman. He was put in a private room and he used no eatable or drinking water etc. of the hospital. (Sd) C. E. Vaid B. A. M.

शांति-कामना ।

‘ले०- श्रीमन्मैत्रेयविरचितेष्टासकं श्रीमद्भगवद्गीता (१)

विष्णु ध्वजान श्री जवाहर, लालजी मुनीश,
शान्तिता के माथ देन्यता का मात साजेगे ।
द्वैतता मिटाय रातशय्यता हृदयमें लीप,
सर्व सम्प्रदायों के हितेषी आप पाजेंगे ।
लानेंगे विपन्न लोक गाजे गे गजेंद्र गम,
अहा ! हा ! हमारे सकेल शोक शोक भाजेंगे ।
‘पृथ्वी-पद पाय, सम्प्रदाय में पड़ाय प्रेम,
‘प्रतिदिन प्रताप दुनों पाते पट्ट-राजेंगे ॥ १ ॥

